ऋग्वेद-संहिता

वेदज्योति प्रेस

ओ३म्

ऋग्वेद-संहिता

वेदज्योति प्रेस
जी० ७, मॉडल टाऊन, दिल्ली-९

ओ३म्

ऋग्वेदसंहिता

(प्रथमो भागः)

(मण्डलम् १-७)

सम्पादक :
परमहंस स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

प्रकाशक :
वेदज्योति प्रेस
जी-७, मॉडल टाउन, दिल्ली

इस ग्रन्थ के प्रकाशन के लिए दानवीर **श्री हरबंसलालजी शर्मा जालन्धर निवासी** ने पचास सहस्र रुपये उदारतापूर्वक प्रदान किये थे। आज वे संसार में नहीं हैं, परन्तु उनकी कीर्ति सदा अमर रहेगी।

प्रकाशक : **वेदज्योति प्रेस**
जी-७, मॉडल टाउन, दिल्ली-११० ००९
संस्करण : प्रथम,
श्रावणी उपाकर्म [रक्षाबन्धन]
सन् २००३
मूल्य : चारों वेदों का सेट ३५०.०० रुपये
शब्द संयोजन : **भगवती लेज़र प्रिंट्स**
४६/५ कम्युनिटी सेंटर, ईस्ट ऑफ कैलाश,
नई दिल्ली-११० ०६५
दूरभाष : २६४१४३५९
मुद्रक : **राधा प्रेस**
कैलाशनगर, दिल्ली-११० ०३१

भूमिका

वेद परमात्मा द्वारा प्रदत्त दिव्य ज्ञान है। यह ज्ञान सृष्टि के आदि में परमात्मा ने मानवमात्र के कल्याण के लिए दिया था। वेद से पुराना कोई साहित्य उपलब्ध नहीं होता। पाश्चात्य विद्वानों ने भी स्वीकार किया है कि Rigveda is the oldest book in the library of mankind, अर्थात् ऋग्वेद संसार के पुस्तकालय में सबसे प्राचीन ग्रन्थ है। हमारी मान्यता के अनुसार तो अन्य वेद भी उतने ही पुराने हैं, जितना ऋग्वेद, क्योंकि वेद में चारों वेदों के नाम दिये हुए हैं।

वेद ऋषि-महर्षियों के बनाये हुए नहीं हैं, वे तो वेद-मन्त्रों के द्रष्टा थे, उनके अर्थों के साक्षात्कर्त्ता थे। मनुष्य बिना सिखाये हुए न कोई ज्ञान प्राप्त कर सकता है और न कोई भाषा ही बना सकता है। वेद का ज्ञान और भाषा—दोनों ही परमात्मा प्रदत्त हैं।

वेद में इतिहास नहीं है। इतिहास तो मनुष्य—किसी राजा-महाराजा, ऋषि-मुनि की उत्पत्ति के पश्चात् लिखा जाता है और वेद सृष्टि के आदि में प्रकट हुए, अतः उनमें इतिहास कैसे हो सकता है? वेद में आदेश हैं, उपदेश हैं, सन्देश हैं। वेद के कुछ उपदेश देखिए—

मनुर्भव जनया दैव्यं जनम्। —ऋ० १०.५३.६

मनुष्य=मननशील बनों और दिव्य सन्तानों को जन्म दो।

अक्षैर्मा दीव्यः। —ऋ० १०.३४.१३

जुआ मत खेलो।

एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति। —ऋ० १.१६४.१

परमात्मा एक है, परन्तु विद्वान् लोग उसे अनेक नामों से पुकारते हैं।

मा प्र गाम पथो वयम्। —ऋ० १०.५७.१

हम सुपथ को छोड़कर कुपथ पर न चलें—मार्ग-भ्रष्ट न हो जाएँ।

कैसे दिव्य उपदेश हैं, कैसी उच्च और भव्य भावनाएँ हैं। वेद ऐसे अनूठे उपदेशों के अगाध भण्डार हैं।

वेद चार हैं—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। ऋग्वेद ज्ञानकाण्ड है। इसमें तृण=तिनके से लेकर ब्रह्म=परमेश्वर-पर्यन्त सारा ज्ञान दिया हुआ है। इस वेद में दस मण्डल हैं, १०२८ सूक्त हैं और १०,५२२ मन्त्र हैं। छोटे-से-छोटा सूक्त एक मन्त्र का है और बड़े-से-बड़ा सूक्त ५८ मन्त्रों का है।

पाश्चात्य लेखकों की मान्यता है कि आरम्भ में ऋग्वेद में दूसरे मण्डल से लेकर नवें मण्डल तक केवल आठ ही मण्डल थे। पहला और दसवाँ मण्डल बाद की रचनाएँ हैं। यह बात सरासर झूठी है। क्या कोई ग्रन्थ बीच में से भी आरम्भ होता है? वेद में नासदीय-जैसे उदात्त सूक्तों को देखकर विकासवाद का सिद्धान्त लड़खड़ा गया, अतः उन लोगों ने इस प्रकार के अनर्गल प्रलाप आरम्भ कर दिये।

मधु को जिधर से भी चखें मीठा होता है, वेद का प्रत्येक शब्द, प्रत्येक सूक्ति, प्रत्येक मन्त्र अनुपम है, फिर भी कुछ मन्त्र, कुछ सूक्त तो अद्भुत हैं। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल का 'अस्यवामीय' सूक्त [१.१६४], दूसरे मण्डल का इन्द्र-[स जनास इन्द्रः]-सूक्त [२.१२], सातवें मण्डल के ८६ और ८९ वरुणसूक्त [मृळा सुक्षत्र मृळय], नवम मण्डल के ११२ से ११४ तक 'इन्द्रायेन्दो परिस्रव' सूक्त, दशम मण्डल का धनान्नदान-प्रशंसासूक्त [१०.११७], नासदीयसूक्त [१०.१२९], श्रद्धासूक्त [१०.१५१], अन्तिम संज्ञानसूक्त [सं गच्छध्वम्] आदि तो इसके देदीप्यमान रत्न हैं। सारे संसार के साहित्य को देख जाइए, ऐसे उदात्त विचार कहीं नहीं मिलेंगे।

मैक्समूलर ने आरम्भ में वेदों को बचकाना और कूड़ाकर्कट बताया था, परन्तु महर्षि दयानन्द की ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका और वेदभाष्य को पढ़कर उसका हृदय परिवर्तन हुआ और उसने लिखा—

I maintain, then, that for a study of man, or, if you like, for a study of Aryan humanity, there is nothing in the world equal in importance with the Veda. I maintain that to everybody who cares for himself, for his ancestors, for his history, or for his intellectual development, a study of Vedic literature is indispensable.

—India—What can it Teach us, p. 72

अब मैं दृढ़तापूर्वक कह सकता हूँ कि मनुष्य के अध्ययन के लिए अथवा यूँ कहिए कि आर्य मानवता का सम्यक् ज्ञान प्राप्त करने के लिए संसार में वेद के समान महत्त्वपूर्ण और कोई साहित्य नहीं है। मैं निश्चयपूर्वक यह भी कहना चाहता हूँ कि प्रत्येक उस व्यक्ति के लिए, जिसे अपने बारे में—अपने स्वरूप के बारे में जानने की इच्छा है, जिसे अपने पूर्वजों के बारे में जानने की रुचि है, जो अपने इतिहास को जानने का इच्छुक है, निश्चितरूप से वैदिक साहित्य का अध्ययन अनिवार्य है।

आइए, हम अपनी संस्कृति पर गर्व करना सीखें। वेद के स्वाध्याय का व्रत लें। वेद पढ़ें-पढ़ाएँ, सुनें और सुनाएँ। वेद को अपने जीवन में उतारें और अपने जीवनों को दिव्य और भव्य बनाएँ।

ईक्ष्यवाचन [प्रूफ रीडिंग] में **वेदरत्न श्री केशव सीताराम जोगलेकर** गोकर्ण, कर्नाटक तथा उनके शिष्यों ने जो बहुमूल्य सहयोग दिया है, तदर्थ उन्हें हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

वेद के प्रचार और प्रसार की दृष्टि से हमने ग्रन्थ का मूल्य लागत से भी कम रक्खा है। वेद के प्रचार में सहयोग दीजिए और पुण्य के भागी बनिए।

विदुषामनुचरः
जगदीश्वरानन्द सरस्वती

अध्यक्ष
संन्यासाश्रम
आर्यनगर, गाजियाबाद (उ०प्र०)

ओ३म्

ऋग्वेद-संहिता

अथ प्रथमं मण्डलम्

अथ प्रथमाष्टके प्रथमोऽध्यायः

प्रथमोऽनुवाकः [१] प्रथमं सूक्तम्

ऋषिः—मधुच्छन्दाः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—१, ३-५, ७ गायत्री; २ पिपीलिकामध्यानिचृद्गायत्री; ६ निचृद्गायत्री; ८ यवमध्याविराड्गायत्री; ९ विराड्गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

अथ प्रथमो वर्गः॥ १॥

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्॥ १॥
अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत। स देवाँ एह वक्षति॥ २॥
अग्निना रयिमश्नवत् पोषमेव दिवेदिवे। यशसं वीरवत्तमम्॥ ३॥
अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि। स इद्देवेषु गच्छति॥ ४॥
अग्निर्होता कविक्रतुः सत्यश्चित्रश्रवस्तमः। देवो देवेभिरा गमत्॥ ५॥

अथ द्वितीयो वर्गः॥ २॥

यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि। तवेत्तत् सत्यमङ्गिरः॥ ६॥
उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम्। नमो भरन्त एमसि॥ ७॥
राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम्। वर्धमानं स्वे दमे॥ ८॥
स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव। सचस्वा नः स्वस्तये॥ ९॥

[२] द्वितीयं सूक्तम्

ऋषिः—मधुच्छन्दाः॥ देवता—१-३ वायुः; ४-६ इन्द्रवायू; ७-९ मित्रावरुणौ॥ छन्दः—१, २ पिपीलिकामध्यानिचृद्गायत्री; ३-५, ७-९ गायत्री; ६ निचृद्गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

अथ तृतीयो वर्गः॥ ३॥

वायवा याहि दर्शतेमे सोमा अरंकृताः। तेषां पाहि श्रुधी हवम्॥ १॥

वाय उक्थेभिर्जरन्ते त्वामच्छा जरितारः। सुतसोमा अहर्विदः॥ २॥
वायो तव प्रपृञ्चती धेना जिगाति दाशुषे। उरूची सोमपीतये॥ ३॥
इन्द्रवायू इमे सुता उप प्रयोभिरा गतम्। इन्दवो वामुशन्ति हि॥ ४॥
वायविन्द्रश्च चेतथः सुतानां वाजिनीवसू। तावा यातमुप द्रवत्॥ ५॥

अथ चतुर्थो वर्गः॥ ४॥

वायविन्द्रश्च सुन्वत आ यातमुप निष्कृतम्। मक्ष्वि१त्था धिया नरा॥ ६॥
मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम्। धियं घृताचीं साधन्ता॥ ७॥
ऋतेन मित्रावरुणावृतावृधावृतस्पृशा। क्रतुं बृहन्तमाशाथे॥ ८॥
कवी नो मित्रावरुणा तुविजाता उरुक्षया। दक्षं दधाते अपसम्॥ ९॥

[३] तृतीयं सूक्तम्

ऋषिः—मधुच्छन्दाः॥ देवता—१-३ अश्विनौ; ४-६ इन्द्रः; ७-९ विश्वेदेवाः; १०-१२ सरस्वती॥ छन्दः—१, ३, ५-१०, १२ गायत्री; २ निचृद्गायत्री; ४, ११ पिपीलिकामध्यानिचृद्गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

अथ पञ्चमो वर्गः॥ ५॥

अश्विना यज्वरीरिषो द्रवत्पाणी शुभस्पती। पुरुभुजा चनस्यतम्॥ १॥
अश्विना पुरुदंससा नरा शवीरया धिया। धिष्ण्या वनतं गिरः॥ २॥
दस्रा युवाकवः सुता नासत्या वृक्तबर्हिषः। आ यातं रुद्रवर्तनी॥ ३॥
इन्द्रा याहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः। अण्वीभिस्तना पूतासः॥ ४॥
इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः। उप ब्रह्माणि वाघतः॥ ५॥
इन्द्रा याहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः। सुते दधिष्व नश्चनः॥ ६॥

अथ षष्ठो वर्गः॥ ६॥

ओमासश्चर्षणीधृतो विश्वे देवास आ गत। दाश्वांसो दाशुषः सुतम्॥ ७॥
विश्वे देवासो अप्तुरः सुतमा गन्त तूर्णयः। उस्राइव स्वसराणि॥ ८॥
विश्वे देवासो अस्रिध एहिमायासो अद्रुहः। मेधं जुषन्त वह्नयः॥ ९॥
पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती। यज्ञं वष्टु धियावसुः॥ १०॥
चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम्। यज्ञं दधे सरस्वती॥ ११॥

महो अर्णः सरस्वती प्र चेतयति केतुना। धियो विश्वा वि राजति॥ १२॥

द्वितीयोऽनुवाकः

[४] चतुर्थं सूक्तम्

ऋषिः—मधुच्छन्दाः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१, २, ४-९ गायत्री; ३ विराड्गायत्री; १० निचृद्गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

अथ सप्तमो वर्गः॥ ७॥

सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे। जुहूमसि द्यविद्यवि॥ १॥
उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब। गोदा इद्रेवतो मदः॥ २॥
अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम्। मा नो अति ख्य आ गहि॥ ३॥
परेहि विग्रमस्तृतमिन्द्रं पृच्छा विपश्चितम्। यस्ते सखिभ्य आ वरम्॥ ४॥
उत ब्रुवन्तु नो निदो निरन्यतश्चिदारत। दधाना इन्द्र इद् दुवः॥ ५॥

अथ अष्टमो वर्गः॥ ८॥

उत नः सुभगाँ अरिर्वोचेयुर्दस्म कृष्टयः। स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि॥ ६॥
एमाशुमाशवे भर यज्ञश्रियं नृमादनम्। पतयन्मन्दयत् सखम्॥ ७॥
अस्य पीत्वा शतक्रतो घनो वृत्राणामभवः। प्रावो वाजेषु वाजिनम्॥ ८॥
तं त्वा वाजेषु वाजिनं वाजयामः शतक्रतो। धनानामिन्द्र सातये॥ ९॥
यो रायो३वनिर्महान्त्सुपारः सुन्वतः सखा। तस्मा इन्द्राय गायत॥ १०॥

[५] पञ्चमं सूक्तम्

ऋषिः—मधुच्छन्दाः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१ विराड्गायत्री; २ आर्च्युष्णिक्; ३ पिपीलिकामध्यानिचृद्गायत्री; ४, १० गायत्री; ५-७, ९ निचृद्गायत्री; ८ पादनिचृद्गायत्री॥ स्वरः—१, ३-१० षड्जः; २ ऋषभः॥

अथ नवमो वर्गः॥ ९॥

आ त्वेता नि षीदतेन्द्रमभि प्र गायत। सखायः स्तोमवाहसः॥ १॥
पुरूतमं पुरूणामीशानं वार्याणाम्। इन्द्रं सोमे सचा सुते॥ २॥
स घा नो योग आ भुवत्स राये स पुरन्ध्याम्। गमद् वाजेभिरा स नः॥ ३॥
यस्य संस्थे न वृण्वते हरी समत्सु शत्रवः। तस्मा इन्द्राय गायत॥ ४॥
सुतपाव्ने सुता इमे शुचयो यन्ति वीतये। सोमासो दध्याशिरः॥ ५॥

अथ दशमो वर्गः ॥ १० ॥

त्वं सुतस्य पीतये सद्यो वृद्धो अजायथाः। इन्द्र ज्यैष्ठ्याय सुक्रतो ॥ ६ ॥
आ त्वा विशन्त्वाशवः सोमास इन्द्र गिर्वणः। शं ते सन्तु प्रचेतसे ॥ ७ ॥
त्वां स्तोमा अवीवृधन् त्वामुक्था शतक्रतो। त्वां वर्धन्तु नो गिरः ॥ ८ ॥
अक्षितोतिः सनेदिमं वाजमिन्द्रः सहस्रिणम्। यस्मिन् विश्वानि पौंस्या ॥ ९ ॥
मा नो मर्ता अभि द्रुहन् तनूनामिन्द्र गिर्वणः। ईशानो यवया वधम् ॥ १० ॥

[६] षष्ठं सूक्तम्

ऋषिः—मधुच्छन्दाः ॥ देवता—१-३, १० इन्द्रः; ४, ६, ८, ९ मरुतः;
५, ७ मरुत इन्द्रश्च ॥ छन्दः—१, ३, ५-७, ९, १० गायत्री;
२ विराड्गायत्री; ४, ८ निचृद्गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

अथ एकादशो वर्गः ॥ ११ ॥

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः। रोचन्ते रोचना दिवि ॥ १ ॥
युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे। शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥ २ ॥
केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे। समुषद्भिरजायथाः ॥ ३ ॥
आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे। दधाना नाम यज्ञियम् ॥ ४ ॥
वीळु चिदारुजत्नुभिर्गुहा चिदिन्द्र वह्निभिः। अविन्द उस्रिया अनु ॥ ५ ॥

अथ द्वादशो वर्गः ॥ १२ ॥

देवयन्तो यथा मतिमच्छा विदद्वसुं गिरः। महामनूषत श्रुतम् ॥ ६ ॥
इन्द्रेण सं हि दृक्षसे सञ्जग्मानो अबिभ्युषा। मन्दू समानवर्चसा ॥ ७ ॥
अनवद्यैरभिद्युभिर्मखः सहस्वदर्चति। गणैरिन्द्रस्य काम्यैः ॥ ८ ॥
अतः परिज्मन्ना गहि दिवो वा रोचनादधि। समस्मिन्नृञ्जते गिरः ॥ ९ ॥
इतो वा सातिमीमहे दिवो वा पार्थिवादधि। इन्द्रं महो वा रजसः ॥ १० ॥

[७] सप्तमं सूक्तम्

ऋषिः—मधुच्छन्दाः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१, ३, ५-७ गायत्री; २, ४ निचृद्
गायत्री; ८, १० पिपीलिकामध्यानिचृद्गायत्री; ९ पादनिचृद्
गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

अथ त्रयोदशो वर्गः ॥ १३ ॥

इन्द्रमिद् गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः। इन्द्रं वाणीरनूषत ॥ १ ॥
इन्द्र इद्धर्योः सचा सम्मिश्ल आ वचोयुजा। इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥ २ ॥
इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद् दिवि। वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥ ३ ॥
इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च। उग्र उग्राभिरूतिभिः ॥ ४ ॥
इन्द्रं वयं महाधन इन्द्रमर्भे हवामहे। युजं वृत्रेषु वज्रिणम् ॥ ५ ॥

अथ चतुर्दशो वर्गः ॥ १४ ॥

स नो वृषन्नमुं चरुं सत्रादावन्नपा वृधि। अस्मभ्यमप्रतिष्कुतः ॥ ६ ॥
तुञ्जेतुञ्जे य उत्तरे स्तोमा इन्द्रस्य वज्रिणः। न विन्धे अस्य सुष्टुतिम् ॥ ७ ॥
वृषा यूथेव वंसगः कृष्टीरियर्त्योजसा। ईशानो अप्रतिष्कुतः ॥ ८ ॥
य एकश्चर्षणीनां वसूनामिरज्यति। इन्द्रः पञ्च क्षितीनाम् ॥ ९ ॥
इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः। अस्माकमस्तु केवलः ॥ १० ॥

तृतीयोऽनुवाकः

[८] अष्टमं सूक्तम्

ऋषिः—मधुच्छन्दाः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१, ५, ८ निचृद्गायत्री; २ विराड्
गायत्री; ३, ४, ६, ७, ९ गायत्री; १० वर्धमाना गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

अथ पञ्चदशो वर्गः ॥ १५ ॥

एन्द्र सानसिं रयिं सजित्वानं सदासहम्। वर्षिष्ठमूतये भर ॥ १ ॥
नि येन मुष्टिहत्यया नि वृत्रा रुणधामहै। त्वोतासो न्यर्वता ॥ २ ॥
इन्द्र त्वोतास आ वयं वज्रं घना ददीमहि। जयेम सं युधि स्पृधः ॥ ३ ॥
वयं शूरेभिरस्तृभिरिन्द्र त्वया युजा वयम्। सासह्याम पृतन्यतः ॥ ४ ॥
महाँ इन्द्रः परश्च नु महित्वमस्तु वज्रिणे। द्यौर्न प्रथिना शवः ॥ ५ ॥

अथ षोडशो वर्गः ॥ १६ ॥

समोहे वा य आशत नरस्तोकस्य सनितौ। विप्रासो वा धियायवः ॥ ६ ॥
यः कुक्षिः सोमपातमः समुद्रइव पिन्वते। उर्वीरापो न काकुदः ॥ ७ ॥
एवा ह्यस्य सूनृता विरप्शी गोमती मही। पक्वा शाखा न दाशुषे ॥ ८ ॥
एवा हि ते विभूतय ऊतय इन्द्र मावते। सद्यश्चित् सन्ति दाशुषे ॥ ९ ॥

एवा ह्यस्य काम्या स्तोम उक्थं च शंस्या। इन्द्राय सोमपीतये॥ १०॥

[९] नवमं सूक्तम्

ऋषिः—मधुच्छन्दाः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१, ३, ७, १० निचृद्गायत्री; २, ४, ८, ९ गायत्री; ५, ६ पिपीलिकामध्यानिचृद्गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

अथ सप्तदशो वर्गः॥ १७॥

इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः। महाँ अभिष्टिरोजसा॥ १॥
एमेनं सृजता सुते मन्दिमिन्द्राय मन्दिने। चक्रिं विश्वानि चक्रये॥ २॥
मत्स्वा सुशिप्र मन्दिभिः स्तोमेभिर्विश्वचर्षणे। सचैषु सवनेष्वा॥ ३॥
असृग्रमिन्द्र ते गिरः प्रति त्वामुदहासत। अजोषा वृषभं पतिम्॥ ४॥
सं चोदय चित्रमर्वाग्राध इन्द्र वरेण्यम्। असदित्ते विभु प्रभु॥ ५॥

अथ अष्टादशो वर्गः॥ १८॥

अस्मान्त्सु तत्र चोदयेन्द्र राये रभस्वतः। तुविद्युम्न यशस्वतः॥ ६॥
सं गोमदिन्द्र वाजवदस्मे पृथु श्रवो बृहत्। विश्वायुर्धेह्यक्षितम्॥ ७॥
अस्मे धेहि श्रवो बृहद् द्युम्नं सहस्रसातमम्। इन्द्र ता रथिनीरिषः॥ ८॥
वसोरिन्द्रं वसुपतिं गीर्भिर्गृणन्त ऋग्मियम्। होम गन्तारमूतये॥ ९॥
सुतेसुते न्योकसे बृहद् बृहत एदरिः। इन्द्राय शूषमर्चति॥ १०॥

[१०] दशमं सूक्तम्

ऋषिः—मधुच्छन्दाः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१-३, ५ विराडनुष्टुप्; ४ भुरिगुष्णिक्; ६, ८ निचृदनुष्टुप्; ७, ९-१२ अनुष्टुप्॥ स्वरः—१-३, ५-१२ गान्धारः; ४ ऋषभः॥

अथ एकोनविंशो वर्गः॥ १९॥

गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः।
ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्वंशमिव येमिरे॥ १॥
यत्सानोः सानुमारुहद् भूर्यस्पष्ट कर्त्वम्।
तदिन्द्रो अर्थं चेतति यूथेन वृष्णिरेजति॥ २॥
युक्ष्वा हि केशिना हरी वृषणा कक्ष्यप्रा।
अथा न इन्द्र सोमपा गिरामुपश्रुतिं चर॥ ३॥

एहि स्तोमाँ अभि स्वराभि गृणीह्या रुव।
ब्रह्म च नो वसो सचेन्द्र यज्ञं च वर्धय॥ ४॥
उक्थमिन्द्राय शंस्यं वर्धनं पुरुनिष्षिधे।
शक्रो यथा सुतेषु णो रारणत् सख्येषु च॥ ५॥
तमित् सखित्व ईमहे तं राये तं सुवीर्ये।
स शक्र उत नः शकदिन्द्रो वसु दयमानः॥ ६॥

अथ विंशो वर्गः॥ २०॥

सुविवृतं सुनिरजमिन्द्र त्वादातमिद् यशः।
गवामप व्रजं वृधि कृणुष्व राधो अद्रिवः॥ ७॥
नहि त्वा रोदसी उभे ऋघायमाणमिन्वतः।
जेषः स्वर्वतीरपः सं गा अस्मभ्यं धूनुहि॥ ८॥
आश्रुत्कर्ण श्रुधी हवं नू चिद्दधिष्व मे गिरः।
इन्द्र स्तोममिमं मम कृष्वा युजश्चिदन्तरम्॥ ९॥
विद्मा हि त्वा वृषन्तमं वाजेषु हवनश्रुतम्।
वृषन्तमस्य हूमह ऊतिं सहस्रसातमाम्॥ १०॥
आ तू न इन्द्र कौशिक मन्दसानः सुतं पिब।
नव्यमायुः प्र सू तिर कृधी सहस्रसामृषिम्॥ ११॥
परि त्वा गिर्वणो गिर इमा भवन्तु विश्वतः।
वृद्धायुमनु वृद्धयो जुष्टा भवन्तु जुष्टयः॥ १२॥

[११] एकादशं सूक्तम्

ऋषिः—जेता माधुच्छन्दसः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१-३, ८ निचृदनुष्टुप्; ४, ६ अनुष्टुप्; ५ भुरिगुष्णिक्; ७ विराडनुष्टुप्॥ स्वरः—१-४, ६-८ गान्धारः; ५ ऋषभः॥

अथ एकविंशो वर्गः॥ २१॥

इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः।
रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम्॥ १॥

सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते ।
त्वामभि प्र णोनुमो जेतारमपराजितम् ॥ २ ॥
पूर्वीरिन्द्रस्य रातयो न वि दस्यन्त्यूतयः ।
यदी वाजस्य गोमतः स्तोतृभ्यो मंहते मघम् ॥ ३ ॥
पुरां भिन्दुर्युवा कविरमितौजा अजायत ।
इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्ता वज्री पुरुष्टुतः ॥ ४ ॥
त्वं वलस्य गोमतोऽपावरद्रिवो बिलम् ।
त्वां देवा अबिभ्युषस्तुज्यमानास आविषुः ॥ ५ ॥
तवाहं शूर रातिभिः प्रत्यायं सिन्धुमावदन् ।
उपातिष्ठन्त गिर्वणो विदुष्टे तस्य कारवः ॥ ६ ॥
मायाभिरिन्द्र मायिनं त्वं शुष्णमवातिरः ।
विदुष्टे तस्य मेधिरास्तेषां श्रवांस्युत्तिर ॥ ७ ॥
इन्द्रमीशानमोजसाभि स्तोमा अनूषत ।
सहस्रं यस्य रातय उत वा सन्ति भूयसीः ॥ ८ ॥

चतुर्थोऽनुवाकः

[१२] द्वादशं सूक्तम्

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१, २, ७-९, ११, १२ गायत्री, ३-५ निचृद्गायत्री; ४, १० पिपीलिकामध्यानिचृद्गायत्री; ६ विराड्गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

अथ द्वाविंशो वर्गः ॥ २२ ॥

अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् । अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ १ ॥
अग्निमग्निं हवीमभिः सदा हवन्त विश्पतिम् । हव्यवाहं पुरुप्रियम् ॥ २ ॥
अग्ने देवाँ इहा वह जज्ञानो वृक्तबर्हिषे । असि होता न ईड्यः ॥ ३ ॥
ताँ उशतो वि बोधय यदग्ने यासि दूत्यम् । देवैरा सत्सि बर्हिषि ॥ ४ ॥
घृताहवन दीदिवः प्रति ष्म रिषतो दह । अग्ने त्वं रक्षस्विनः ॥ ५ ॥
अग्निनाग्निः समिध्यते कविर्गृहपतिर्युवा । हव्यवाड् जुह्वास्यः ॥ ६ ॥

अथ त्रयोविंशो वर्गः ॥ २३ ॥

कविमग्निमुप स्तुहि सत्यधर्माणमध्वरे । देवममीवचातनम् ॥ ७ ॥
यस्त्वामग्ने हविष्पतिर्दूतं देव सपर्यति । तस्य स्म प्राविता भव ॥ ८ ॥
यो अग्निं देववीतये हविष्माँ आविवासति । तस्मै पावक मृळय ॥ ९ ॥
स नः पावक दीदिवोऽग्ने देवाँ इहा वह । उप यज्ञं हविश्च नः ॥ १० ॥
स नः स्तवान आ भर गायत्रेण नवीयसा । रयिं वीरवतीमिषम् ॥ ११ ॥
अग्ने शुक्रेण शोचिषा विश्वाभिर्देवहूतिभिः । इमं स्तोमं जुषस्व नः ॥ १२ ॥

[१३] त्रयोदशं सूक्तम्

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः ॥ देवता—१ इध्मः समिद्धो वाऽग्निः; २ तनूनपात्; ३ नराशंसः; ४ इळः; ५ बर्हिः; ६ देवीर्द्वारः; ७ उषासानक्ता; ८ दैव्यौ होतारौ, प्रचेतसौ; ९ तिस्रो देव्यः—सरस्वतीळाभारत्यः; १० त्वष्टा; ११ वनस्पतिः; १२ स्वाहाकृतयः ॥ छन्दः—१-६, १० गायत्री; ७, ८, ११, १२ पिपीलिकामध्यानिचृद्गायत्री, ९ निचृद्गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

अथ चतुर्विंशो वर्गः ॥ २४ ॥

सुसमिद्धो न आ वह देवाँ अग्ने हविष्मते । होतः पावक यक्षि च ॥ १ ॥
मधुमन्तं तनूनपाद् यज्ञं देवेषु नः कवे । अद्या कृणुहि वीतये ॥ २ ॥
नराशंसमिह प्रियमस्मिन् यज्ञ उप ह्वये । मधुजिह्वं हविष्कृतम् ॥ ३ ॥
अग्ने सुखतमे रथे देवाँ ईळित आ वह । असि होता मनुर्हितः ॥ ४ ॥
स्तृणीत बर्हिरानुषग् घृतपृष्ठं मनीषिणः । यत्रामृतस्य चक्षणम् ॥ ५ ॥
वि श्रयन्तामृतावृधो द्वारो देवीरसश्चतः । अद्या नूनं च यष्टवे ॥ ६ ॥

अथ पञ्चविंशो वर्गः ॥ २५ ॥

नक्तोषासा सुपेशसास्मिन् यज्ञ उप ह्वये । इदं नो बर्हिरासदे ॥ ७ ॥
ता सुजिह्वा उप ह्वये होतारा दैव्या कवी । यज्ञं नो यक्षतामिमम् ॥ ८ ॥
इळा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः । बर्हिः सीदन्त्वस्रिधः ॥ ९ ॥
इह त्वष्टारमग्रियं विश्वरूपमुप ह्वये । अस्माकमस्तु केवलः ॥ १० ॥

अव सृजा वनस्पते देव देवेभ्यो हविः। प्र दातुरस्तु चेतनम्॥ ११॥
स्वाहा यज्ञं कृणोतनेन्द्राय यज्वनो गृहे। तत्र देवाँ उप ह्वये॥ १२॥

[१४] चतुर्दशं सूक्तम्

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः॥ देवता—विश्वेदेवाः॥ छन्दः—१-६, ९ गायत्री; ७, ८ पिपीलिकामध्यानिचृद्गायत्री; १०, ११ विराड्गायत्री; १२ निचृद्गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

अथ षड्विंशो वर्गः॥ २६॥

ऐभिरग्ने दुवो गिरो विश्वेभिः सोमपीतये। देवेभिर्याहि यक्षि च॥ १॥
आ त्वा कण्वा अहूषत गृणन्ति विप्र ते धियः। देवेभिरग्न आ गहि॥ २॥
इन्द्रवायू बृहस्पतिं मित्राग्निं पूषणं भगम्। आदित्यान् मारुतं गणम्॥ ३॥
प्र वो भ्रियन्त इन्दवो मत्सरा मादयिष्णवः। द्रप्सा मध्वश्चमूषदः॥ ४॥
ईळते त्वामवस्यवः कण्वासो वृक्तबर्हिषः। हविष्मन्तो अरङ्कृतः॥ ५॥
घृतपृष्ठा मनोयुजो ये त्वा वहन्ति वह्नयः। आ देवान्त्सोमपीतये॥ ६॥

अथ सप्तविंशो वर्गः॥ २७॥

तान् यजत्राँ ऋतावृधोऽग्ने पत्नीवतस्कृधि। मध्वः सुजिह्व पायय॥ ७॥
ये यजत्रा य ईड्यास्ते ते पिबन्तु जिह्वया। मधोरग्ने वषट्कृति॥ ८॥
आकीं सूर्यस्य रोचनाद् विश्वान् देवाँ उषर्बुधः। विप्रो होतेह वक्षति॥ ९॥
विश्वेभिः सोम्यं मध्वग्न इन्द्रेण वायुना। पिबा मित्रस्य धामभिः॥ १०॥
त्वं होता मनुर्हितोऽग्ने यज्ञेषु सीदसि। सेमं नो अध्वरं यज॥ ११॥
युक्ष्वा ह्यरुषी रथे हरितो देव रोहितः। ताभिर्देवाँ इहा वह॥ १२॥

[१५] पञ्चदशं सूक्तम्

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः॥ देवता—१, ५ इन्द्रः; २ मरुतः; ३ त्वष्टा; ४, १२ अग्निः; ६ मित्रावरुणौ; ७-१० द्रविणोदाः; ११ अश्विनौ॥ छन्दः—१, १२ निचृद्गायत्री; २, ४ भुरिग्गायत्री, ३, ५-१० गायत्री; ११ पिपीलिकामध्यानिचृद्गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

अथ अष्टाविंशो वर्गः॥ २८॥

इन्द्र सोमं पिब ऋतुना त्वा विशन्त्विन्दवः। मत्सरासस्तदोकसः॥ १॥
मरुतः पिबत ऋतुना पोत्राद् यज्ञं पुनीतन। यूयं हि ष्ठा सुदानवः॥ २॥

अभि यज्ञं गृणीहि नो ग्नावो नेष्टः पिब ऋतुना। त्वं हि रत्नधा असि॥ ३॥
अग्ने देवाँ इहा वह सादया योनिषु त्रिषु। परि भूष पिब ऋतुना॥ ४॥
ब्राह्मणादिन्द्र राधसः पिबा सोममृतूँरनु। तवेद्धि सख्यमस्तृतम्॥ ५॥
युवं दक्षं धृतव्रत मित्रावरुण दूळभम्। ऋतुना यज्ञमाशाथे॥ ६॥

अथ एकोनत्रिंशो वर्गः॥ २९॥

द्रविणोदा द्रविणसो ग्रावहस्तासो अध्वरे। यज्ञेषु देवमीळते॥ ७॥
द्रविणोदा ददातु नो वसूनि यानि शृण्विरे। देवेषु ता वनामहे॥ ८॥
द्रविणोदाः पिपीषति जुहोत प्र च तिष्ठत। नेष्ट्रादृतुभिरिष्यत॥ ९॥
यत्त्वा तुरीयमृतुभिर्द्रविणोदो यजामहे। अध स्मा नो ददिर्भव॥ १०॥
अश्विना पिबतं मधु दीद्यग्नी शुचिव्रता। ऋतुना यज्ञवाहसा॥ ११॥
गार्हपत्येन सन्त्य ऋतुना यज्ञनीरसि। देवान् देवयते यज॥ १२॥

[१६] षोडशं सूक्तम्

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१, २, ४, ६-८ गायत्री; ३, ५ पिपीलिकामध्यानिचृद्गायत्री; ९ विराड्गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

अथ त्रिंशो वर्गः॥ ३०॥

आ त्वा वहन्तु हरयो वृषणं सोमपीतये। इन्द्र त्वा सूरचक्षसः॥ १॥
इमा धाना घृतस्नुवो हरी इहोप वक्षतः। इन्द्रं सुखतमे रथे॥ २॥
इन्द्रं प्रातर्हवामह इन्द्रं प्रयत्यध्वरे। इन्द्रं सोमस्य पीतये॥ ३॥
उप नः सुतमा गहि हरिभिरिन्द्र केशिभिः। सुते हि त्वा हवामहे॥ ४॥
सेमं नः स्तोममा गह्युपेदं सवनं सुतम्। गौरो न तृषितः पिब॥ ५॥

अथ एकत्रिंशो वर्गः॥ ३१॥

इमे सोमास इन्दवः सुतासो अधि बर्हिषि। ताँ इन्द्र सहसे पिब॥ ६॥
अयं ते स्तोमो अग्रियो हृदिस्पृगस्तु शन्तमः। अथा सोमं सुतं पिब॥ ७॥
विश्वमित्सवनं सुतमिन्द्रो मदाय गच्छति। वृत्रहा सोमपीतये॥ ८॥
सेमं नः काममा पृण गोभिरश्वैः शतक्रतो। स्तवाम त्वा स्वाध्यः॥ ९॥

[१७] सप्तदशं सूक्तम्

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः॥ देवता—इन्द्रावरुणौ॥ छन्दः—१, ३, ७, ९ गायत्री; २ यवमध्याविराड्गायत्री; ४ पादनिचृद्गायत्री; ५ भुरिगार्चीगायत्री; ६ निचृद् गायत्री; ८ पिपीलिकामध्यानिचृद्गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

अथ द्वात्रिंशो वर्गः॥ ३२॥

इन्द्रावरुणयोरहं सम्राजोरव आ वृणे। ता नो मृळात ईदृशे॥ १॥
गन्तारा हि स्थोऽवसे हवं विप्रस्य मावतः। धर्तारा चर्षणीनाम्॥ २॥
अनुकामं तर्पयेथामिन्द्रावरुण राय आ। ता वां नेदिष्ठमीमहे॥ ३॥
युवाकु हि शचीनां युवाकु सुमतीनाम्। भूयाम वाजदाव्नाम्॥ ४॥
इन्द्रः सहस्रदाव्नां वरुणः शंस्यानाम्। क्रतुर्भवत्युक्थ्यः॥ ५॥

अथ त्रयस्त्रिंशो वर्गः॥ ३३॥

तयोरिदवसा वयं सनेम नि च धीमहि। स्यादुत प्ररेचनम्॥ ६॥
इन्द्रावरुण वामहं हुवे चित्राय राधसे। अस्मान्त्सु जिग्युषस्कृतम्॥ ७॥
इन्द्रावरुण नू नु वां सिषासन्तीषु धीष्वा। अस्मभ्यं शर्म यच्छतम्॥ ८॥
प्र वामश्नोतु सुष्टुतिरिन्द्रावरुण यां हुवे। यामृधाथे सधस्तुतिम्॥ ९॥

पञ्चमोऽनुवाकः

[१८] अष्टादशं सूक्तम्

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः॥ देवता—१-३ ब्रह्मणस्पतिः; ४ ब्रह्मणस्पतिरिन्द्रश्च सोमश्च; ५ ब्रह्मणस्पतिसोमेन्द्रदक्षिणाः; ६-८ सदसस्पतिः; ९ सदसस्पतिर्नराशंसो वा॥ छन्दः—१ विराड्गायत्री; २, ७, ९ गायत्री; ३, ६, ८ पिपीलिकामध्यानिचृद्-गायत्री; ४ निचृद्गायत्री; ५ पादनिचृद्गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

अथ चतुस्त्रिंशो वर्गः॥ ३४॥

सोमानं स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते। कक्षीवन्तं य औशिजः॥ १॥
यो रेवान् यो अमीवहा वसुवित् पुष्टिवर्धनः। स नः सिषक्तु यस्तुरः॥ २॥
मा नः शंसो अररुषो धूर्तिः प्रणङ् मर्त्यस्य। रक्षा णो ब्रह्मणस्पते॥ ३॥
स घा वीरो न रिष्यति यमिन्द्रो ब्रह्मणस्पतिः। सोमो हिनोति मर्त्यम्॥ ४॥
त्वं तं ब्रह्मणस्पते सोम इन्द्रश्च मर्त्यम्। दक्षिणा पात्वंहसः॥ ५॥

अथ पञ्चत्रिंशो वर्गः॥ ३५॥

सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्। सनिं मेधामयासिषम्॥ ६॥

यस्मादृते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन। स धीनां योगमिन्वति॥ ७॥
आदृध्नोति हविष्कृतिं प्राञ्चं कृणोत्यध्वरम्। होत्रा देवेषु गच्छति॥ ८॥
नराशंसं सुधृष्टममपश्यं सप्रथस्तमम्। दिवो न सद्ममखसम्॥ ९॥

[१९] एकोनविंशं सूक्तम्

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः॥ देवता—अग्निर्मरुतश्च॥ छन्दः—१, ३-८ गायत्री; २ निचृद्गायत्री; ९ पिपीलिकामध्यानिचृद्गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

अथ षट्त्रिंशो वर्गः॥ ३६॥

प्रति त्यं चारुमध्वरं गोपीथाय प्र हूयसे। मरुद्भिरग्न आ गहि॥ १॥
नहि देवो न मर्त्यो महस्तव क्रतुं परः। मरुद्भिरग्न आ गहि॥ २॥
ये महो रजसो विदुर्विश्वे देवासो अद्रुहः। मरुद्भिरग्न आ गहि॥ ३॥
य उग्रा अर्कमानृचुरनाधृष्टास ओजसा। मरुद्भिरग्न आ गहि॥ ४॥
ये शुभ्रा घोरवर्पसः सुक्षत्रासो रिशादसः। मरुद्भिरग्न आ गहि॥ ५॥

अथ सप्तत्रिंशो वर्गः॥ ३७॥

ये नाकस्याधि रोचने दिवि देवास आसते। मरुद्भिरग्न आ गहि॥ ६॥
य ईङ्खयन्ति पर्वतान् तिरः समुद्रमर्णवम्। मरुद्भिरग्न आ गहि॥ ७॥
आ ये तन्वन्ति रश्मिभिस्तिरः समुद्रमोजसा। मरुद्भिरग्न आ गहि॥ ८॥
अभि त्वा पूर्वपीतये सृजामि सोम्यं मधु। मरुद्भिरग्न आ गहि॥ ९॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

[२०] विंशं सूक्तम्

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः॥ देवता—ऋभवः॥ छन्दः—१, २, ६, ७, गायत्री; ३ विराड्गायत्री; ४ निचृद्गायत्री; ५, ८ पिपीलिकामध्यानिचृद्गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

अथ प्रथमो वर्गः॥ १॥

अयं देवाय जन्मने स्तोमो विप्रेभिरासया। अकारि रत्नधातमः॥ १॥
य इन्द्राय वचोयुजा ततक्षुर्मनसा हरी। शमीभिर्यज्ञमाशत॥ २॥
तक्षन्नासत्याभ्यां परिज्मानं सुखं रथम्। तक्षन्धेनुं सबर्दुघाम्॥ ३॥
युवाना पितरा पुनः सत्यमन्त्रा ऋजूयवः। ऋभवो विष्ट्यक्रत॥ ४॥

सं वो मदासो अग्मतेन्द्रेण च मरुत्वता। आदित्येभिश्च राजभिः ॥ ५ ॥

अथ द्वितीयो वर्गः ॥ २ ॥

उत त्यं चमसं नवं त्वष्टुर्देवस्य निष्कृतम्। अकर्त चतुरः पुनः ॥ ६ ॥
ते नो रत्नानि धत्तन त्रिरा साप्तानि सुन्वते। एकमेकं सुशस्तिभिः ॥ ७ ॥
अधारयन्त वह्नयोऽभजन्त सुकृत्यया। भागं देवेषु यज्ञियम् ॥ ८ ॥

[२१] एकविंशं सूक्तम्

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः ॥ देवता—इन्द्राग्नी ॥ छन्दः—१, ३, ४, ६ गायत्री; २ पिपीलिकामध्यानिचृद्गायत्री; ५ निचृद्गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

अथ तृतीयो वर्गः ॥ ३ ॥

इहेन्द्राग्नी उप ह्वये तयोरित्स्तोममुश्मसि। ता सोमं सोमपातमा ॥ १ ॥
ता यज्ञेषु प्र शंसतेन्द्राग्नी शुम्भता नरः। ता गायत्रेषु गायत ॥ २ ॥
ता मित्रस्य प्रशस्तय इन्द्राग्नी ता हवामहे। सोमपा सोमपीतये ॥ ३ ॥
उग्रा सन्ता हवामह उपेदं सवनं सुतम्। इन्द्राग्नी एह गच्छताम् ॥ ४ ॥
ता महान्ता सदस्पती इन्द्राग्नी रक्ष उब्जतम्। अप्रजाः सन्त्वत्रिणः ॥ ५ ॥
तेन सत्येन जागृतमधि प्रचेतुने पदे। इन्द्राग्नी शर्म यच्छतम् ॥ ६ ॥

[२२] द्वाविंशं सूक्तम्

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः ॥ देवता—१-४ अश्विनौ; ५-८ सविता; ९, १० अग्निः; ११ देव्यः; १२ इन्द्राणीवरुणान्यग्नाय्यः; १३, १४ द्यावापृथिव्यौ; १५ पृथिवी; १६ विष्णुर्देवो वा; १७-२१ विष्णुः ॥ छन्दः—१-३, ८, १२, १७, १८ पिपीलिकामध्यानिचृद्गायत्री; ४, ५, ७, ९-११, १३, १४, १६, २०, २१ गायत्री; ६, १९ निचृद् गायत्री; १५ विराड्गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

अथ चतुर्थो वर्गः ॥ ४ ॥

प्रातर्युजा वि बोधयाश्विनावेह गच्छताम्। अस्य सोमस्य पीतये ॥ १ ॥
या सुरथा रथीतमोभा देवा दिविस्पृशा। अश्विना ता हवामहे ॥ २ ॥
या वां कशा मधुमत्यश्विना सूनृतावती। तया यज्ञं मिमिक्षतम् ॥ ३ ॥
नहि वामस्ति दूरके यत्रा रथेन गच्छथः। अश्विना सोमिनो गृहम् ॥ ४ ॥
हिरण्यपाणिमूतये सवितारमुप ह्वये। स चेत्ता देवता पदम् ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमो वर्गः ॥ ५ ॥

अपां नपातमवसे सवितारमुप स्तुहि। तस्य व्रतान्युश्मसि ॥ ६ ॥
विभक्तारं हवामहे वसोश्चित्रस्य राधसः। सवितारं नृचक्षसम् ॥ ७ ॥
सखाय आ नि षीदत सविता स्तोम्यो नु नः। दाता राधांसि शुम्भति ॥ ८ ॥
अग्ने पत्नीरिहा वह देवानामुशतीरुप। त्वष्टारं सोमपीतये ॥ ९ ॥
आ ग्ना अग्न इहावसे होत्रां यविष्ठ भारतीम्। वरूत्रीं धिषणां वह ॥ १० ॥

अथ षष्ठो वर्गः ॥ ६ ॥

अभि नो देवीरवसा महः शर्मणा नृपत्नीः। अच्छिन्नपत्राः सचन्ताम् ॥ ११ ॥
इहेन्द्राणीमुप ह्वये वरुणानीं स्वस्तये। अग्नायीं सोमपीतये ॥ १२ ॥
मही द्यौः पृथिवी च न इमं यज्ञं मिमिक्षताम्। पिपृतां नो भरीमभिः ॥ १३ ॥
तयोरिद् घृतवत्पयो विप्रा रिहन्ति धीतिभिः। गन्धर्वस्य ध्रुवे पदे ॥ १४ ॥
स्योना पृथिवि भवानृक्षरा निवेशनी। यच्छा नः शर्म सप्रथः ॥ १५ ॥

अथ सप्तमो वर्गः ॥ ७ ॥

अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे। पृथिव्याः सप्त धामभिः ॥ १६ ॥
इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्। समूळ्हमस्य पांसुरे ॥ १७ ॥
त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः। अतो धर्माणि धारयन् ॥ १८ ॥
विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे। इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ १९ ॥
तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम् ॥ २० ॥
तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते। विष्णोर्यत्परमं पदम् ॥ २१ ॥

[२३] त्रयोविंशं सूक्तम्

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः ॥ देवता—१ वायुः; २, ३ इन्द्रवायू; ४-६ मित्रावरुणौ; ७-९ इन्द्रो मरुत्वान्; १०-१२ विश्वेदेवाः; १३-१५ पूषा; १६-२२ आपः; २३, २४ अग्निः ॥ छन्दः—१-१८ गायत्री; १९ पुरउष्णिक्; २० अनुष्टुप्; २१ प्रतिष्ठागायत्री; २२-२४ अनुष्टुप् ॥ स्वरः—१-१८, २१ षड्जः; १९ ऋषभः; २०, २२-२४ गान्धारः ॥

अथ अष्टमो वर्गः ॥ ८ ॥

तीव्राः सोमास आ गह्याशीर्वन्तः सुता इमे। वायो तान्प्रस्थितान्पिब ॥ १ ॥
उभा देवा दिविस्पृशेन्द्रवायू हवामहे। अस्य सोमस्य पीतये ॥ २ ॥

इन्द्रवायू मनोजुवा विप्रा हवन्त ऊतये। सहस्राक्षा धियस्पती॥ ३॥
मित्रं वयं हवामहे वरुणं सोमपीतये। जज्ञाना पूतदक्षसा॥ ४॥
ऋतेन यावृतावृधावृतस्य ज्योतिषस्पती। ता मित्रावरुणा हुवे॥ ५॥

अथ नवमो वर्गः॥ ९॥

वरुणः प्राविता भुवन्मित्रो विश्वाभिरूतिभिः। करतां नः सुराधसः॥ ६॥
मरुत्वन्तं हवामह इन्द्रमा सोमपीतये। सजूर्गणेन तृम्पतु॥ ७॥
इन्द्रज्येष्ठा मरुद्गणा देवासः पूषरातयः। विश्वे मम श्रुता हवम्॥ ८॥
हत वृत्रं सुदानव इन्द्रेण सहसा युजा। मा नो दुःशंस ईशत॥ ९॥
विश्वान्देवान्हवामहे मरुतः सोमपीतये। उग्रा हि पृश्निमातरः॥ १०॥

अथ दशमो वर्गः॥ १०॥

जयतामिव तन्यतुर्मरुतामेति धृष्णुया। यच्छुभं याथना नरः॥ ११॥
हस्काराद्विद्युतस्पर्यतो जाता अवन्तु नः। मरुतो मृळयन्तु नः॥ १२॥
आ पूषञ्चित्रबर्हिषमाघृणे धरुणं दिवः। आजा नष्टं यथा पशुम्॥ १३॥
पूषा राजानमाघृणिरपगूळ्हं गुहा हितम्। अविन्दच्चित्रबर्हिषम्॥ १४॥
उतो स मह्यमिन्दुभिः षड्युक्ताँ अनुसेषिधत्। गोभिर्यवं न चर्कृषत्॥ १५॥

अथ एकादशो वर्गः॥ ११॥

अम्बयो यन्त्यध्वभिर्जामयो अध्वरीयताम्। पृञ्चतीर्मधुना पयः॥ १६॥
अमूर्या उप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह। ता नो हिन्वन्त्वध्वरम्॥ १७॥
अपो देवीरुप ह्वये यत्र गावः पिबन्ति नः। सिन्धुभ्यः कर्त्वं हविः॥ १८॥
अप्स्व१न्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तये। देवा भवत वाजिनः॥ १९॥
अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा।
अग्निं च विश्वशंभुवमापश्च विश्वभेषजीः॥ २०॥

अथ द्वादशो वर्गः॥ १२॥

आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे३ मम।
ज्योक् च सूर्यं दृशे॥ २१॥

इदमापः प्र वहत यत्किं च दुरितं मयि।
यद्वाहमभिदुद्रोह यद्वा शेप उतानृतम्॥ २२॥
आपो अद्यान्वचारिषं रसेन समगस्महि।
पयस्वानग्न आ गहि तं मा सं सृज वर्चसा॥ २३॥
सं माग्ने वर्चसा सृज सं प्रजया समायुषा।
विद्युर्मे अस्य देवा इन्द्रो विद्यात्सह ऋषिभिः॥ २४॥

षष्ठोऽनुवाकः

[२४] चतुर्विंशं सूक्तम्

ऋषिः—शुनःशेप आजीगर्तिः स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः॥ देवता—१ प्रजापतिः; २ अग्निः; ३-५ सविता भगो वा; ६-१५ वरुणः॥ छन्दः—१, २, ६-१५ त्रिष्टुप्; ३-५ गायत्री॥ स्वरः—१, २, ६-१५ धैवतः; ३-५ षड्जः॥

अथ त्रयोदशो वर्गः॥ १३॥

कस्य नूनं कतमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम।
को नो मह्या अदितये पुनर्दात्पितरं च दृशेयं मातरं च॥ १॥
अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम।
स नो मह्या अदितये पुनर्दात्पितरं च दृशेयं मातरं च॥ २॥
अभि त्वा देव सवितरीशानं वार्याणाम्। सदावन्भागमीमहे॥ ३॥
यश्चिद्धि त इत्था भगः शशमानः पुरा निदः। अद्वेषो हस्तयोर्दधे॥ ४॥
भगभक्तस्य ते वयमुदशेम तवावसा। मूर्धानं राय आरभे॥ ५॥

अथ चतुर्दशो वर्गः॥ १४॥

नहि ते क्षत्रं न सहो न मन्युं वयश्चनामी पतयन्त आपुः।
नेमा आपो अनिमिषं चरन्तीर्न ये वातस्य प्रमिनन्त्यभ्वम्॥ ६॥
अबुध्ने राजा वरुणो वनस्योर्ध्वं स्तूपं ददते पूतदक्षः।
नीचीनाः स्थुरुपरि बुध्न एषामस्मे अन्तर्निहिताः केतवः स्युः॥ ७॥
उरुं हि राजा वरुणश्चकार सूर्याय पन्थामन्वेतवा उ।
अपदे पादा प्रतिधातवेऽकरुतापवक्ता हृदयाविधश्चित्॥ ८॥

शतं ते राजन्भिषजः सहस्रमुर्वी गभीरा सुमतिष्टे अस्तु।
बाधस्व दूरे निर्ऋतिं पराचैः कृतं चिदेनः प्र मुमुग्ध्यस्मत्॥ ९॥
अमी य ऋक्षा निहितास उच्चा नक्तं ददृश्रे कुह चिद्दिवेयुः।
अदब्धानि वरुणस्य व्रतानि विचाकशच्चन्द्रमा नक्तमेति॥ १०॥

अथ पञ्चदशो वर्गः॥ १५॥

तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः।
अहेळमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्र मोषीः॥ ११॥
तदिन्नक्तं तद्दिवा मह्यमाहुस्तदयं केतो हृद आ वि चष्टे।
शुनःशेपो यमह्वद् गृभीतः सो अस्मान् राजा वरुणो मुमोक्तु॥ १२॥
शुनःशेपो ह्यह्वद् गृभीतस्त्रिष्वादित्यं द्रुपदेषु बद्धः।
अवैनं राजा वरुणः ससृज्याद्विद्वाँ अदब्धो वि मुमोक्तु पाशान्॥ १३॥
अव ते हेळो वरुण नमोभिरव यज्ञेभिरीमहे हविर्भिः।
क्षयन्नस्मभ्यमसुर प्रचेता राजन्नेनांसि शिश्रथः कृतानि॥ १४॥
उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय।
अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम॥ १५॥

[२५] पञ्चविंशं सूक्तम्

ऋषिः—शुनःशेप आजीगर्तिः॥ देवता—वरुणः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

अथ षोडशो वर्गः॥ १६॥

यच्चिद्धि ते विशो यथा प्र देव वरुण व्रतम्। मिनीमसि द्यविद्यवि॥ १॥
मा नो वधाय हत्नवे जिहीळानस्य रीरधः। मा हृणानस्य मन्यवे॥ २॥
वि मृळीकाय ते मनो रथीरश्वं न सन्दितम्। गीर्भिर्वरुण सीमहि॥ ३॥
परा हि मे विमन्यवः पतन्ति वस्यइष्टये। वयो न वसतीरुप॥ ४॥
कदा क्षत्रश्रियं नरमा वरुणं करामहे। मृळीकायोरुचक्षसम्॥ ५॥

अथ सप्तदशो वर्गः॥ १७॥

तदित्समानमाशाते वेनन्ता न प्र युच्छतः। धृतव्रताय दाशुषे॥ ६॥

वेदा यो वीनां पदमन्तरिक्षेण पतताम्। वेद नावः समुद्रियः॥ ७॥
वेद मासो धृतव्रतो द्वादश प्रजावतः। वेदा य उपजायते॥ ८॥
वेद वातस्य वर्तनिमुरोर्ऋष्वस्य बृहतः। वेदा ये अध्यासते॥ ९॥
नि षसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्या३स्वा। साम्राज्याय सुक्रतुः॥ १०॥

अथ अष्टादशो वर्गः॥ १८॥

अतो विश्वान्यद्भुता चिकित्वाँ अभि पश्यति। कृतानि या च कर्त्वा॥ ११॥
स नो विश्वाहा सुक्रतुरादित्यः सुपथा करत्। प्र ण आयूंषि तारिषत्॥ १२॥
बिभ्रद् द्रापिं हिरण्ययं वरुणो वस्त निर्णिजम्। परि स्पशो नि षेदिरे॥ १३॥
न यं दिप्सन्ति दिप्सवो न द्रुह्वाणो जनानाम्। न देवमभिमातयः॥ १४॥
उत यो मानुषेष्वा यशश्चक्रे असाम्या। अस्माकमुदरेष्वा॥ १५॥

अथ एकोनविंशो वर्गः॥ १९॥

परा मे यन्ति धीतयो गावो न गव्यूतीरनु। इच्छन्तीरुरुचक्षसम्॥ १६॥
सं नु वोचावहै पुनर्यतो मे मध्वाभृतम्। होतेव क्षदसे प्रियम्॥ १७॥
दर्शं नु विश्वदर्शतं दर्शं रथमधि क्षमि। एता जुषत मे गिरः॥ १८॥
इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृळय। त्वामवस्युरा चके॥ १९॥
त्वं विश्वस्य मेधिर दिवश्च ग्मश्च राजसि। स यामनि प्रति श्रुधि॥ २०॥
उदुत्तमं मुमुग्धि नो वि पाशं मध्यमं चृत। अवाधमानि जीवसे॥ २१॥

[२६] षड्विंशं सूक्तम्

ऋषिः—शुनःशेप आजीगर्तिः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—१, ८, ९ आर्चीउष्णिक्; २, ६ निचृद्गायत्री; ३ प्रतिष्ठागायत्री; ४, १० गायत्री; ५, ७ विराड्गायत्री॥ स्वरः—१, ८, ९ ऋषभः; २-७, १० षड्जः॥

अथ विंशो वर्गः॥ २०॥

वसिष्वा हि मियेध्य वस्त्राण्यूर्जां पते। सेमं नो अध्वरं यज॥ १॥
नि नो होता वरेण्यः सदा यविष्ठ मन्मभिः। अग्ने दिवित्मता वचः॥ २॥
आ हि ष्मा सूनवे पितापिर्यजत्यापये। सखा सख्ये वरेण्यः॥ ३॥
आ नो बर्ही रिशादसो वरुणो मित्रो अर्यमा। सीदन्तु मनुषो यथा॥ ४॥

पूर्व्यं होतरस्य नो मन्दस्व सख्यस्य च। इमा उ षु श्रुधी गिरः ॥ ५ ॥

अथ एकविंशो वर्गः ॥ २१ ॥

यच्चिद्धि शश्वता तना देवंदेवं यजामहे। त्वे इद्धूयते हविः ॥ ६ ॥
प्रियो नो अस्तु विश्पतिर्होता मन्द्रो वरेण्यः। प्रियाः स्वग्नयो वयम् ॥ ७ ॥
स्वग्नयो हि वार्यं देवासो दधिरे च नः। स्वग्नयो मनामहे ॥ ८ ॥
अथा न उभयेषाममृत मर्त्यानाम्। मिथः सन्तु प्रशस्तयः ॥ ९ ॥
विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिमं यज्ञमिदं वचः। चनो धाः सहसो यहो ॥ १० ॥

[२७] सप्तविंशं सूक्तम्

ऋषिः—शुनःशेप आजीगर्तिः ॥ देवता—१-१२ अग्निः; १३ विश्वेदेवाः ॥ छन्दः—१-१२ गायत्री; १३ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१-१२ षड्जः; १३ धैवतः ॥

अथ द्वाविंशो वर्गः ॥ २२ ॥

अश्वं न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निं नमोभिः। सम्राजन्तमध्वराणाम् ॥ १ ॥
स घा नः सूनुः शवसा पृथुप्रगामा सुशेवः। मीढ्वाँ अस्माकं बभूयात् ॥ २ ॥
स नो दूराच्चासाच्च नि मर्त्यादघायोः। पाहि सदमिद्विश्वायुः ॥ ३ ॥
इममू षु त्वमस्माकं सनिं गायत्रं नव्यांसम्। अग्ने देवेषु प्र वोचः ॥ ४ ॥
आ नो भज परमेष्वा वाजेषु मध्यमेषु। शिक्षा वस्वो अन्तमस्य ॥ ५ ॥

अथ त्रयोविंशो वर्गः ॥ २३ ॥

विभक्तासि चित्रभानो सिन्धोरूर्मा उपाक आ। सद्यो दाशुषे क्षरसि ॥ ६ ॥
यमग्ने पृत्सु मर्त्यमवा वाजेषु यं जुनाः। स यन्ता शश्वतीरिषः ॥ ७ ॥
नकिरस्य सहन्त्य पर्येता कयस्य चित्। वाजो अस्ति श्रवाय्यः ॥ ८ ॥
स वाजं विश्वचर्षणिरर्वद्भिरस्तु तरुता। विप्रेभिरस्तु सनिता ॥ ९ ॥
जराबोध तद्विविड्ढि विशेविशे यज्ञियाय। स्तोमं रुद्राय दृशीकम् ॥ १० ॥

अथ चतुर्विंशो वर्गः ॥ २४ ॥

स नो महाँ अनिमानो धूमकेतुः पुरुश्चन्द्रः। धिये वाजाय हिन्वतु ॥ ११ ॥
स रेवाँइव विश्पतिर्दैव्यः केतुः शृणोतु नः। उक्थैरग्निर्बृहद्भानुः ॥ १२ ॥
नमो महद्भ्यो नमो अर्भकेभ्यो नमो युवभ्यो नम आशिनेभ्यः।
यजाम देवान्यदि शक्नवाम मा ज्यायसः शंसमा वृक्षि देवाः ॥ १३ ॥

[२८] अष्टाविंशं सूक्तम्

ऋषिः—शुनःशेप आजीगर्तिः ॥ देवता—इन्द्रयज्ञसोमाः ॥ छन्दः—१-६ अनुष्टुप्; ७-९ गायत्री ॥ स्वरः—१-६ गान्धारः; ७-९ षड्जः ॥

अथ पञ्चविंशो वर्गः ॥ २५ ॥

यत्र ग्रावा पृथुबुध्न ऊर्ध्वो भवति सोतवे ।
उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः ॥ १ ॥
यत्र द्वाविव जघनाधिषवण्या कृता ।
उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः ॥ २ ॥
यत्र नार्यपच्यवमुपच्यवं च शिक्षते ।
उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः ॥ ३ ॥
यत्र मन्थां विबध्नते रश्मीन्यमितवाइव ।
उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः ॥ ४ ॥
यच्चिद्धि त्वं गृहेगृह उलूखलक युज्यसे ।
इह द्युमत्तमं वद जयतामिव दुन्दुभिः ॥ ५ ॥

अथ षड्विंशो वर्गः ॥ २६ ॥

उत स्म ते वनस्पते वातो वि वात्यग्रमित् ।
अथो इन्द्राय पातवे सुनु सोममुलूखल ॥ ६ ॥
आयजी वाजसातमा ता ह्युच्चा विजर्भृतः। हरीइवान्धांसि बप्सता ॥ ७ ॥
ता नो अद्य वनस्पती ऋष्वावृष्वेभिः सोतृभिः। इन्द्राय मधुमत्सुतम् ॥ ८ ॥
उच्छिष्टं चम्वोर्भर सोमं पवित्र आ सृज। नि धेहि गोरधि त्वचि ॥ ९ ॥

[२९] एकोनत्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—शुनःशेप आजीगर्तिः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—पङ्क्तिः ॥ स्वरः—पञ्चमः ॥

अथ सप्तविंशो वर्गः ॥ २७ ॥

यच्चिद्धि सत्य सोमपा अनाशस्ताइव स्मसि ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ १ ॥
शिप्रिन्वाजानां पते शचीवस्तव दंसना ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ २ ॥

नि ष्वापया मिथूदृशा सस्तामबुध्यमाने ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ३ ॥
ससन्तु त्या अरातयो बोधन्तु शूर रातयः ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ४ ॥
समिन्द्र गर्दभं मृण नुवन्तं पापयामुया ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ५ ॥
पताति कुण्डृणाच्या दूरं वातो वनादधि ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ६ ॥
सर्वं परिक्रोशं जहि जम्भया कृकदाश्वम् ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ७ ॥

[३०] त्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—शुनःशेप आजीगर्तिः ॥ देवता—१-१६ इन्द्रः; १७-१९ अश्विनौ; २०, २१, २२ उषाः ॥ छन्दः—१-१०, १२-१५, १७-२२ गायत्री; ११ पादनिचृद्गायत्री; १६ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१-१५, १७-२२ षड्जः; १६ धैवतः ॥

अथ अष्टाविंशो वर्गः ॥ २८ ॥

आ व इन्द्रं क्रिविं यथा वाजयन्तः शतक्रतुम् । मंहिष्ठं सिञ्च इन्दुभिः ॥ १ ॥
शतं वा यः शुचीनां सहस्रं वा समाशिराम् । एदु निम्नं न रीयते ॥ २ ॥
सं यन्मदाय शुष्मिण एना ह्यस्योदरे । समुद्रो न व्यचो दधे ॥ ३ ॥
अयमु ते समतसि कपोतइव गर्भधिम् । वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥ ४ ॥
स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते । विभूतिरस्तु सूनृता ॥ ५ ॥

अथ एकोनत्रिंशो वर्गः ॥ २९ ॥

ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतयेऽस्मिन्वाजे शतक्रतो । समन्येषु ब्रवावहै ॥ ६ ॥
योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे । सखाय इन्द्रमूतये ॥ ७ ॥
आ घा गमद्यदि श्रवत्सहस्रिणीभिरूतिभिः । वाजेभिरुप नो हवम् ॥ ८ ॥
अनु प्रत्नस्यौकसो हुवे तुविप्रतिं नरम् । यं ते पूर्वं पिता हुवे ॥ ९ ॥
तं त्वा वयं विश्ववारा शास्महे पुरुहूत । सखे वसो जरितृभ्यः ॥ १० ॥

अथ त्रिंशो वर्गः ॥ ३० ॥

अस्माकं शिप्रिणीनां सोमपाः सोमपाव्नाम् । सखे वज्रिन्त्सखीनाम् ॥ ११ ॥
तथा तदस्तु सोमपाः सखे वज्रिन्तथा कृणु । यथा त उश्मसीष्टये ॥ १२ ॥
रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः । क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥ १३ ॥
आ घ त्वावान्त्मनाप्तः स्तोतृभ्यो धृष्णवियानः । ऋणोरक्षं न चक्र्योः ॥ १४ ॥
आ यद्दुवः शतक्रतवा कामं जरितृणाम् । ऋणोरक्षं न शचीभिः ॥ १५ ॥

अथ एकत्रिंशो वर्गः ॥ ३१ ॥

शश्वदिन्द्रः पोप्रुथद्भिर्जिगाय नानदद्भिः शाश्वसद्भिर्धनानि ।
स नो हिरण्यरथं दंसनावान्त्स नः सनिता सनये स नोऽदात् ॥ १६ ॥
आश्विनावश्वावत्येषा यातं शवीरया । गोमद्दस्रा हिरण्यवत् ॥ १७ ॥
समानयोजनो हि वां रथो दस्रावमर्त्यः । समुद्रे अश्विनेयते ॥ १८ ॥
न्य१घ्न्यस्य मूर्धनि चक्रं रथस्य येमथुः । परि द्यामन्यदीयते ॥ १९ ॥
कस्त उषः कधप्रिये भुजे मर्तो अमर्त्ये । कं नक्षसे विभावरि ॥ २० ॥
वयं हि ते अमन्मह्यान्तादा पराकात् । अश्वे न चित्रे अरुषि ॥ २१ ॥
त्वं त्येभिरा गहि वाजेभिर्दुहितर्दिवः । अस्मे रयिं नि धारय ॥ २२ ॥

सप्तमोऽनुवाकः

[३१] एकत्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१-७, ९-१५, १७ जगती; ८, १६, १८ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१-७, ९-१५, १७ निषादः; ८, १६, १८ धैवतः ॥

अथ द्वात्रिंशो वर्गः ॥ ३२ ॥

त्वमग्ने प्रथमो अङ्गिरा ऋषिर्देवो देवानामभवः शिवः सखा ।
तव व्रते कवयो विद्मनापसोऽजायन्त मरुतो भ्राजदृष्टयः ॥ १ ॥
त्वमग्ने प्रथमो अङ्गिरस्तमः कविर्देवानां परि भूषसि व्रतम् ।
विभुर्विश्वस्मै भुवनाय मेधिरो द्विमाता शयुः कतिधा चिदायवे ॥ २ ॥
त्वमग्ने प्रथमो मातरिश्वन आविर्भव सुक्रतूया विवस्वते ।
अरेजेतां रोदसी होतृवूर्येऽसघ्नोर्भारमयजो महो वसो ॥ ३ ॥

त्वमग्ने मनवे द्यामवाशयः पुरूरवसे सुकृते सुकृत्तरः ।
श्वात्रेण यत्पित्रोर्मुच्यसे पर्या त्वा पूर्वमनयन्नापरं पुनः ॥ ४ ॥
त्वमग्ने वृषभः पुष्टिवर्धन उद्यतस्रुचे भवसि श्रवाय्यः ।
य आहुतिं परि वेदा वषट्कृतिमेकायुरग्रे विश आविवाससि ॥ ५ ॥

अथ त्रयस्त्रिंशो वर्गः ॥ ३३ ॥

त्वमग्ने वृजिनवर्तनिं नरं सक्मन्पिपर्षि विदथे विचर्षणे ।
यः शूरसाता परितक्म्ये धने दभ्रेभिश्चित्समृता हंसि भूयसः ॥ ६ ॥
त्वं तमग्ने अमृतत्व उत्तमे मर्तं दधासि श्रवसे दिवेदिवे ।
यस्तातृषाण उभयाय जन्मने मयः कृणोषि प्रय आ च सूरये ॥ ७ ॥
त्वं नो अग्ने सनये धनानां यशसं कारुं कृणुहि स्तवानः ।
ऋध्याम कर्मापसा नवेन देवैर्द्यावापृथिवी प्रावतं नः ॥ ८ ॥
त्वं नो अग्ने पित्रोरुपस्थ आ देवो देवेष्वनवद्य जागृविः ।
तनूकृद् बोधि प्रमतिश्च कारवे त्वं कल्याण वसु विश्वमोपिषे ॥ ९ ॥
त्वमग्ने प्रमतिस्त्वं पितासि नस्त्वं वयस्कृत्तव जामयो वयम् ।
सं त्वा रायः शतिनः सं सहस्रिणः सुवीरं यन्ति व्रतपामदाभ्य ॥ १० ॥

अथ चतुस्त्रिंशो वर्गः ॥ ३४ ॥

त्वामग्ने प्रथममायुमायवे देवा अकृण्वन्नहुषस्य विश्पतिम् ।
इळामकृण्वन्मनुषस्य शासनीं पितुर्यत्पुत्रो ममकस्य जायते ॥ ११ ॥
त्वं नो अग्ने तव देव पायुभिर्मघोनो रक्ष तन्वश्च वन्द्य ।
त्राता तोकस्य तनये गवामस्यनिमेषं रक्षमाणस्तव व्रते ॥ १२ ॥
त्वमग्ने यज्यवे पायुरन्तरोऽनिषङ्गाय चतुरक्ष इध्यसे ।
यो रातहव्योऽवृकाय धायसे कीरेश्चिन्मन्त्रं मनसा वनोषि तम् ॥ १३ ॥
त्वमग्न उरुशंसाय वाघते स्पार्हं यद्रेक्णः परमं वनोषि तत् ।
आध्रस्य चित्प्रमतिरुच्यसे पिता प्र पाकं शास्सि प्रदिशो विदुष्टरः ॥ १४ ॥
त्वमग्ने प्रयतदक्षिणं नरं वर्मेव स्यूतं परि पासि विश्वतः ।
स्वादुक्षद्मा यो वसतौ स्योनकृज्जीवयाजं यजते सोपमा दिवः ॥ १५ ॥

अथ पञ्चत्रिंशो वर्गः ॥ ३५ ॥

इममग्ने शरणिं मीमृषो न इममध्वानं यमगाम दूरात् ।
आपिः पिता प्रमतिः सोम्यानां भृमिरस्यृषिकृन्मर्त्यानाम् ॥ १६ ॥
मनुष्वदग्ने अङ्गिरस्वदङ्गिरो ययातिवत्सदने पूर्ववच्छुचे ।
अच्छ याह्या वहा दैव्यं जनमा सादय बर्हिषि यक्षि च प्रियम् ॥ १७ ॥
एतेनाग्ने ब्रह्मणा वावृधस्व शक्ती वा यत्ते चकृमा विदा वा ।
उत प्र णेष्यभि वस्यो अस्मान्त्सं नः सृज सुमत्या वाजवत्या ॥ १८ ॥

[३२] द्वात्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

अथ षट्त्रिंशो वर्गः ॥ ३६ ॥

इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्र वोचं यानि चकार प्रथमानि वज्री ।
अहन्नहिमन्वपस्ततर्द प्र वक्षणा अभिनत्पर्वतानाम् ॥ १ ॥
अहन्नहिं पर्वते शिश्रियाणं त्वष्टास्मै वज्रं स्वर्यं ततक्ष ।
वाश्राइव धेनवः स्यन्दमाना अञ्जः समुद्रमव जग्मुरापः ॥ २ ॥
वृषायमाणोऽवृणीत सोमं त्रिकद्रुकेष्वपिबत्सुतस्य ।
आ सायकं मघवादत्त वज्रमहन्नेनं प्रथमजामहीनाम् ॥ ३ ॥
यदिन्द्राहन्प्रथमजामहीनामान्मायिनाममिनाः प्रोत मायाः ।
आत्सूर्यं जनयन्द्यामुषासं तादीत्ना शत्रुं न किला विवित्से ॥ ४ ॥
अहन्वृत्रं वृत्रतरं व्यंसमिन्द्रो वज्रेण महता वधेन ।
स्कन्धांसीव कुलिशेना विवृक्णाहिः शयत उपपृक्पृथिव्याः ॥ ५ ॥

अथ सप्तत्रिंशो वर्गः ॥ ३७ ॥

अयोद्धेव दुर्मद आ हि जुह्वे महावीरं तुविबाधमृजीषम् ।
नातारीदस्य समृतिं वधानां सं रुजानाः पिपिष इन्द्रशत्रुः ॥ ६ ॥
अपादहस्तो अपृतन्यदिन्द्रमास्य वज्रमधि सानौ जघान ।
वृष्णो वध्रिः प्रतिमानं बुभूषन्पुरुत्रा वृत्रो अशयद्व्यस्तः ॥ ७ ॥

नदं न भिन्नममुया शयानं मनो रुहाणा अति यन्त्यापः।
याश्चिद् वृत्रो महिना पर्यतिष्ठत्तासामहिः पत्सुतःशीर्बभूव॥ ८॥
नीचावया अभवद् वृत्रपुत्रेन्द्रो अस्या अव वधर्जभार।
उत्तरा सूरधरः पुत्र आसीद्दानुः शये सहवत्सा न धेनुः॥ ९॥
अतिष्ठन्तीनामनिवेशनानां काष्ठानां मध्ये निहितं शरीरम्।
वृत्रस्य निण्यं वि चरन्त्यापो दीर्घं तम आशयदिन्द्रशत्रुः॥ १०॥

अथ अष्टात्रिंशो वर्गः॥ ३८॥

दासपत्नीरहिगोपा अतिष्ठन्निरुद्धा आपः पणिनेव गावः।
अपां बिलमपिहितं यदासीद् वृत्रं जघन्वाँ अप तद्ववार॥ ११॥
अश्व्यो वारो अभवस्तदिन्द्र सृके यत्त्वा प्रत्यहन्देव एकः।
अजयो गा अजयः शूर सोममवासृजः सर्तवे सप्त सिन्धून्॥ १२॥
नास्मै विद्युन्न तन्यतुः सिषेध न यां मिहमकिरद्ध्रादुनिं च।
इन्द्रश्च यद्युयुधाते अहिश्चोतापरीभ्यो मघवा वि जिग्ये॥ १३॥
अहेर्यातारं कमपश्य इन्द्र हृदि यत्ते जघ्नुषो भीरगच्छत्।
नव च यन्नवतिं च स्रवन्तीः श्येनो न भीतो अतरो रजांसि॥ १४॥
इन्द्रो यातोऽवसितस्य राजा शमस्य च शृङ्गिणो वज्रबाहुः।
सेदु राजा क्षयति चर्षणीनामरान्न नेमिः परि ता बभूव॥ १५॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

[३३] त्रयस्त्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१, २, ४, ८, ९, १२, १३ निचृत्त्रिष्टुप्; ३, ६, १० त्रिष्टुप्; ५, ७, ११ विराट्त्रिष्टुप्; १४, १५ भुरिक्पङ्क्तिः॥ स्वरः—१-१३ धैवतः; १४, १५ पञ्चमः॥

अथ प्रथमो वर्गः॥ १॥

एतायामोप गव्यन्त इन्द्रमस्माकं सु प्रमतिं वावृधाति।
अनामृणः कुविदादस्य रायो गवां केतं परमावर्जते नः॥ १॥

उपेदहं धनदामप्रतीतं जुष्टां न श्येनो वसतिं पतामि।
इन्द्रं नमस्यन्नुपमेभिरर्कैर्यः स्तोतृभ्यो हव्यो अस्ति यामन्॥ २॥
नि सर्वसेन इषुधीँरसक्त समर्यो गा अजति यस्य वष्टि।
चोष्कूयमाण इन्द्र भूरि वामं मा पणिर्भूरस्मदधि प्रवृद्ध॥ ३॥
वधीर्हि दस्युं धनिनं घनेनँ एकश्चरन्नुपशाकेभिरिन्द्र।
धनोरधि विषुणक्ते व्यायन्नयज्वानः सनकाः प्रेतिमीयुः॥ ४॥
परा चिच्छीर्षा ववृजुस्त इन्द्रायज्वानो यज्वभिः स्पर्धमानाः।
प्र यद्दिवो हरिवः स्थातरुग्र निरव्रताँ अधमो रोदस्योः॥ ५॥

अथ द्वितीयो वर्गः॥ २॥

अयुयुत्सन्ननवद्यस्य सेनामयातयन्त क्षितयो नवग्वाः।
वृषायुधो न वध्रयो निरष्टाः प्रवद्भिरिन्द्राच्चितयन्त आयन्॥ ६॥
त्वमेतान् रुदतो जक्षतश्चायोधयो रजस इन्द्र पारे।
अवादहो दिव आ दस्युमुच्चा प्र सुन्वतः स्तुवतः शंसमावः॥ ७॥
चक्राणासः परीणहं पृथिव्या हिरण्येन मणिना शुम्भमानाः।
न हिन्वानासस्तितिरुस्त इन्द्रं परि स्पशो अदधात्सूर्येण॥ ८॥
परि यदिन्द्र रोदसी उभे अबुभोजीर्महिना विश्वतः सीम्।
अमन्यमानाँ अभि मन्यमानैर्निर्ब्रह्मभिरधमो दस्युमिन्द्र॥ ९॥
न ये दिवः पृथिव्या अन्तमापुर्न मायाभिर्धनदां पर्यभूवन्।
युजं वज्रं वृषभश्चक्र इन्द्रो निर्ज्योतिषा तमसो गा अदुक्षत्॥ १०॥

अथ तृतीयो वर्गः॥ ३॥

अनु स्वधामक्षरन्नापो अस्यावर्धत मध्य आ नाव्यानाम्।
सध्रीचीनेन मनसा तमिन्द्र ओजिष्ठेन हन्मनाहन्नभि द्यून्॥ ११॥
न्याविध्यदिलीबिशस्य दृळ्हा वि शृङ्गिणमभिनच्छुष्णमिन्द्रः।
यावत्तरो मघवन्यावदोजो वज्रेण शत्रुमवधीः पृतन्युम्॥ १२॥
अभि सिध्मो अजिगादस्य शत्रून्वि तिग्मेन वृषभेणा पुरोऽभेत्।
सं वज्रेणासृजद् वृत्रमिन्द्रः प्र स्वां मतिमतिरच्छाशदानः॥ १३॥

आवः कुत्समिन्द्र यस्मिञ्चाकन्प्रावो युध्यन्तं वृषभं दशद्युम्।
शफच्युतो रेणुर्नक्षत द्यामुच्छ्वैत्रेयो नृषाह्याय तस्थौ॥१४॥
आवः शमं वृषभं तुग्र्यासु क्षेत्रजेषे मघवञ्छ्वित्र्यं गाम्।
ज्योक्चिदत्र तस्थिवांसो अक्रञ्छत्रूयतामधरा वेदनाकः॥१५॥

[३४] चतुस्त्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः॥ देवता—अश्विनौ॥ छन्दः—१, ६ विराड्जगती; २, ३, ७, ८ निचृज्जगती; ५, १०, ११ जगती; ४ भुरिक्त्रिष्टुप्; १२ निचृत्त्रिष्टुप्; ९ भुरिक्पङ्क्तिः॥ स्वरः—१-३, ५-८, १०, ११ निषादः; ४, १२ धैवतः; ९ पञ्चमः॥

अथ चतुर्थो वर्गः॥४॥

त्रिश्चिन्नो अद्या भवतं नवेदसा विभुर्वां याम उत रातिरश्विना।
युवोर्हि यन्त्रं हिम्येव वाससोऽभ्यायंसेन्या भवतं मनीषिभिः॥१॥
त्रयः पवयो मधुवाहने रथे सोमस्य वेनामनु विश्व इद्विदुः।
त्रयः स्कम्भासः स्कभितास आरभे त्रिर्नक्तं याथस्त्रिर्वश्विना दिवा॥२॥
समाने अहन्त्रिरवद्यगोहना त्रिरद्य यज्ञं मधुना मिमिक्षतम्।
त्रिर्वाजवतीरिषो अश्विना युवं दोषा अस्मभ्यमुषसश्च पिन्वतम्॥३॥
त्रिर्वर्तिर्यातं त्रिरनुव्रते जने त्रिः सुप्राव्ये त्रेधेव शिक्षतम्।
त्रिर्नान्द्यं वहतमश्विना युवं त्रिः पृक्षो अस्मे अक्षरेव पिन्वतम्॥४॥
त्रिर्नो रयिं वहतमश्विना युवं त्रिर्देवताता त्रिरुतावतं धियः।
त्रिः सौभगत्वं त्रिरुत श्रवांसि नस्त्रिष्ठं वां सूरे दुहिता रुहद्रथम्॥५॥
त्रिर्नो अश्विना दिव्यानि भेषजा त्रिः पार्थिवानि त्रिरु दत्तमद्भ्यः।
ओमानं शंयोर्ममकाय सूनवे त्रिधातु शर्म वहतं शुभस्पती॥६॥

अथ पञ्चमो वर्गः॥५॥

त्रिर्नो अश्विना यजता दिवेदिवे परि त्रिधातु पृथिवीमशायतम्।
तिस्रो नासत्या रथ्या परावत आत्मेव वातः स्वसराणि गच्छतम्॥७॥
त्रिरश्विना सिन्धुभिः सप्तमातृभिस्त्रय आहावास्त्रेधा हविष्कृतम्।
तिस्रः पृथिवीरुपरि प्रवा दिवो नाकं रक्षेथे द्युभिरक्तुभिर्हितम्॥८॥

क्व१ त्री चक्रा त्रिवृतो रथस्य क्व१ त्रयो वन्धुरो ये सनीळाः।
कदा योगो वाजिनो रासभस्य येन यज्ञं नासत्योपयाथः॥९॥
आ नासत्या गच्छतं हूयते हविर्मध्वः पिबतं मधुपेभिरासभिः।
युवोर्हि पूर्वं सवितोषसो रथमृताय चित्रं घृतवन्तमिष्यति॥१०॥
आ नासत्या त्रिभिरेकादशैरिह देवेभिर्यातं मधुपेयमश्विना।
प्रायुस्तारिष्टं नी रपांसि मृक्षतं सेधतं द्वेषो भवतं सचाभुवा॥११॥
आ नो अश्विना त्रिवृता रथेनार्वाञ्चं रयिं वहतं सुवीरम्।
शृण्वन्ता वामवसे जोहवीमि वृधे च नो भवतं वाजसातौ॥१२॥

[३५] पञ्चत्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः॥ देवता—१ अग्निर्मित्रावरुणौ, रात्रिः, सविता; २-११ सविता॥ छन्दः—१ विराड्जगती; २, ५, १०, ११ विराट्त्रिष्टुप्; ३, ४, ६ त्रिष्टुप्; ७, ८ भुरिक्पङ्क्तिः; ९ निचृज्जगती॥ स्वरः—१, ९ निषादः; २-६, १०, ११ धैवतः; ७, ८ पञ्चमः॥

अथ षष्ठो वर्गः॥६॥

ह्वयाम्यग्निं प्रथमं स्वस्तये ह्वयामि मित्रावरुणाविहावसे।
ह्वयामि रात्रीं जगतो निवेशनीं ह्वयामि देवं सवितारमूतये॥१॥
आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्॥२॥
याति देवः प्रवता यात्युद्वता याति शुभ्राभ्यां यजतो हरिभ्याम्।
आ देवो याति सविता परावतोऽप विश्वा दुरिता बाधमानः॥३॥
अभीवृतं कृशनैर्विश्वरूपं हिरण्यशम्यं यजतो बृहन्तम्।
आस्थाद्रथं सविता चित्रभानुः कृष्णा रजांसि तविषीं दधानः॥४॥
वि जनाञ्छ्यावाः शितिपादो अख्यन्रथं हिरण्यप्रउगं वहन्तः।
शश्वद्विशः सवितुर्दैव्यस्योपस्थे विश्वा भुवनानि तस्थुः॥५॥
तिस्रो द्यावः सवितुर्द्वा उपस्थाँ एका यमस्य भुवने विराषाट्।
आणिं न रथ्यममृताधि तस्थुरिह ब्रवीतु य उ तच्चिकेतत्॥६॥

अथ सप्तमो वर्गः ॥ ७ ॥

वि सुपर्णो अन्तरिक्षाण्यख्यद् गभीरवेपा असुरः सुनीथः ।
क्वे३दानीं सूर्यः कश्चिकेत कतमां द्यां रश्मिरस्या ततान ॥ ७ ॥
अष्टौ व्यख्यत्ककुभः पृथिव्यास्त्री धन्व योजना सप्त सिन्धून् ।
हिरण्याक्षः सविता देव आगाद्दधद्रत्ना दाशुषे वार्याणि ॥ ८ ॥
हिरण्यपाणिः सविता विचर्षणिरुभे द्यावापृथिवी अन्तरीयते ।
अपामीवां बाधते वेति सूर्यमभि कृष्णेन रजसा द्यामृणोति ॥ ९ ॥
हिरण्यहस्तो असुरः सुनीथः सुमृळीकः स्ववाँ यात्वर्वाङ् ।
अपसेधन्रक्षसो यातुधानानस्थाद्देवः प्रतिदोषं गृणानः ॥ १० ॥
ये ते पन्थाः सवितः पूर्व्यासोऽरेणवः सुकृता अन्तरिक्षे ।
तेभिर्नो अद्य पथिभिः सुगेभी रक्षा च नो अधि च ब्रूहि देव ॥ ११ ॥

अष्टमोऽनुवाकः

[३६] षट्त्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—घौरः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१, १२ भुरिगनुष्टुप्; २ निचृत्सतः पङ्क्तिः; ३, ११ निचृत् पथ्याबृहती; ४ निचृत्पङ्क्तिः; ५, १६ निचृद्बृहती; ६ भुरिग्बृहती; ७ बृहती; ८ स्वराड् बृहती; ९ निचृदुपरिष्टाद् बृहती; १०, १४ निचृद्विष्टारपङ्क्तिः; १३ उपरिष्टाद् बृहती; १५ विराट् पथ्याबृहती; १७ विराडुपरिष्टाद् बृहती; १८ विष्टारपङ्क्तिः; १९ पथ्याबृहती; २० सतः-पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१, १२ गान्धारः; २, ४, १०, १४, १८, २० पञ्चमः; ३, ५-९, ११-१३, १५-१७, १९ मध्यमः ॥

अथ अष्टमो वर्गः ॥ ८ ॥

प्र वो यह्वं पुरूणां विशां देवयतीनाम् ।
अग्निं सूक्तेभिर्वचोभिरीमहे यं सीमिदन्य ईळते ॥ १ ॥
जनासो अग्निं दधिरे सहोवृधं हविष्मन्तो विधेम ते ।
स त्वं नो अद्य सुमना इहाविता भवा वाजेषु सन्त्य ॥ २ ॥
प्र त्वा दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् ।
महस्ते सतो वि चरन्त्यर्चयो दिवि स्पृशन्ति भानवः ॥ ३ ॥
देवासस्त्वा वरुणो मित्रो अर्यमा सं दूतं प्रत्नमिन्धते ।
विश्वं सो अग्ने जयति त्वया धनं यस्ते ददाश मर्त्यः ॥ ४ ॥

मन्द्रो होता गृहपतिरग्ने दूतो विशामसि ।
त्वे विश्वा संगतानि व्रता ध्रुवा यानि देवा अकृण्वत ॥ ५ ॥

अथ नवमो वर्गः ॥ ९ ॥

त्वे इदग्ने सुभगे यविष्ठ्य विश्वमा हूयते हविः ।
स त्वं नो अद्य सुमना उतापरं यक्षि देवान्त्सुवीर्या ॥ ६ ॥
तं घेमित्था नमस्विन उप स्वराजमासते ।
होत्राभिरग्निं मनुषः समिन्धते तितिर्वांसो अति स्रिधः ॥ ७ ॥
घ्नन्तो वृत्रमतरन्रोदसी अप उरु क्षयाय चक्रिरे ।
भुवत्कण्वे वृषा द्युम्न्याहुतः क्रन्ददश्वो गविष्टिषु ॥ ८ ॥
सं सीदस्व महाँ असि शोचस्व देववीतमः ।
वि धूममग्ने अरुषं मियेध्य सृज प्रशस्त दर्शतम् ॥ ९ ॥
यं त्वा देवासो मनवे दधुरिह यजिष्ठं हव्यवाहन ।
यं कण्वो मेध्यातिथिर्धनस्पृतं यं वृषा यमुपस्तुतः ॥ १० ॥

अथ दशमो वर्गः ॥ १० ॥

यमग्निं मेध्यातिथिः कण्व ईध ऋतादधि ।
तस्य प्रेषो दीदियुस्तमिमा ऋचस्तमग्निं वर्धयामसि ॥ ११ ॥
रायस्पूर्धि स्वधावोऽस्ति हि तेऽग्ने देवेष्वाप्यम् ।
त्वं वाजस्य श्रुत्यस्य राजसि स नो मृळ महाँ असि ॥ १२ ॥
ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये तिष्ठा देवो न सविता ।
ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदञ्जिभिर्वाघद्भिर्विह्वयामहे ॥ १३ ॥
ऊर्ध्वो नः पाह्यंहसो नि केतुना विश्वं समत्रिणं दह ।
कृधी न ऊर्ध्वाञ्चरथाय जीवसे विदा देवेषु नो दुवः ॥ १४ ॥
पाहि नो अग्ने रक्षसः पाहि धूर्तेरराव्णः ।
पाहि रीषत उत वा जिघांसतो बृहद्भानो यविष्ठ्य ॥ १५ ॥

अथ एकादशो वर्गः ॥ ११ ॥

घनेव विष्वग्वि जह्यराव्णस्तपुर्जम्भ यो अस्मध्रुक् ।
यो मर्त्यः शिशीते अत्यक्तुभिर्मा नः स रिपुरीशत ॥ १६ ॥
अग्निर्वव्ने सुवीर्यमग्निः कण्वाय सौभगम् ।
अग्निः प्रावन्मित्रोत मेध्यातिथिमग्निः साता उपस्तुतम् ॥ १७ ॥
अग्निना तुर्वशं यदुं परावत उग्रादेवं हवामहे ।
अग्निर्नयन्नववास्त्वं बृहद्रथं तुर्वीतिं दस्यवे सहः ॥ १८ ॥
नि त्वामग्ने मनुर्दधे ज्योतिर्जनाय शश्वते ।
दीदेथ कण्व ऋतजात उक्षितो यं नमस्यन्ति कृष्टयः ॥ १९ ॥
त्वेषासो अग्नेरमवन्तो अर्चयो भीमासो न प्रतीतये ।
रक्षस्विनः सदमिद्यातुमावतो विश्वं समत्रिणं दह ॥ २० ॥

[३७] सप्तत्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—कण्वो घौरः ॥ देवता—मरुतः ॥ छन्दः—१, २, ४, ६-८, १२ गायत्री; ३, ९, ११, १४ निचृद्गायत्री; ५ विराड्गायत्री; १०, १५ पिपीलिका-मध्यानिचृद्गायत्री; १३ पादनिचृद्गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

अथ द्वादशो वर्गः ॥ १२ ॥

क्रीळं वः शर्धो मारुतमनर्वाणं रथेशुभम् । कण्वा अभि प्र गायत ॥ १ ॥
ये पृषतीभिर्ऋष्टिभिः साकं वाशीभिरञ्जिभिः । अजायन्त स्वभानवः ॥ २ ॥
इहेव शृण्व एषां कशा हस्तेषु यद्वदान् । नि यामञ्चित्रमृञ्जते ॥ ३ ॥
प्र वः शर्धाय घृष्वये त्वेषद्युम्नाय शुष्मिणे । देवत्तं ब्रह्म गायत ॥ ४ ॥
प्र शंसा गोष्वघ्न्यं क्रीळं यच्छर्धो मारुतम् । जम्भे रसस्य वावृधे ॥ ५ ॥

अथ त्रयोदशो वर्गः ॥ १३ ॥

को वो वर्षिष्ठ आ नरो दिवश्च ग्मश्च धूतयः । यत्सीमन्तं न धूनुथ ॥ ६ ॥
नि वो यामाय मानुषो दध्र उग्राय मन्यवे । जिहीत पर्वतो गिरिः ॥ ७ ॥
येषामज्मेषु पृथिवी जुजुर्वाँइव विश्पतिः । भिया यामेषु रेजते ॥ ८ ॥
स्थिरं हि जानमेषां वयो मातुर्निरेतवे । यत्सीमनु द्विता शवः ॥ ९ ॥

उदु त्ये सूनवो गिरः काष्ठा अज्मेष्वत्नत । वाश्रा अभिज्ञु यातवे ॥ १० ॥

अथ चतुर्दशो वर्गः ॥ १४ ॥

त्यं चिद् घा दीर्घं पृथुं मिहो नपातममृध्रम् । प्र च्यावयन्ति यामभिः ॥ ११ ॥
मरुतो यद्ध वो बलं जनाँ अचुच्यवीतन । गिरीँरचुच्यवीतन ॥ १२ ॥
यद्ध यान्ति मरुतः सं ह ब्रुवतेऽध्वन्ना । शृणोति कश्चिदेषाम् ॥ १३ ॥
प्र यात शीभमाशुभिः सन्ति कण्वेषु वो दुवः । तत्रो षु मादयाध्वै ॥ १४ ॥
अस्ति हि ष्मा मदाय वः स्मसि ष्मा वयमेषाम् । विश्वं चिदायुर्जीवसे ॥ १५ ॥

[३८] अष्टात्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—कण्वो घौरः ॥ देवता—मरुतः ॥ छन्दः—१, ४, ८, ११, १३, १५ गायत्री; २, ६, ७, ९, १० निचृद्गायत्री; ३ पादनिचृद्गायत्री; ५, १२ पिपीलिका-मध्यानिचृद्गायत्री; १४ यवमध्याविराड्गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

अथ पञ्चदशो वर्गः ॥ १५ ॥

कद्ध नूनं कधप्रियः पिता पुत्रं न हस्तयोः । दधिध्वे वृक्तबर्हिषः ॥ १ ॥
क्व नूनं कद्वो अर्थं गन्ता दिवो न पृथिव्याः । क्व वो गावो न रण्यन्ति ॥ २ ॥
क्व वः सुम्ना नव्यांसि मरुतः क्व सुविता । क्वो३ विश्वानि सौभगा ॥ ३ ॥
यद्यूयं पृश्निमातरो मर्तासः स्यातन । स्तोता वो अमृतः स्यात् ॥ ४ ॥
मा वो मृगो न यवसे जरिता भूदजोष्यः । पथा यमस्य गादुप ॥ ५ ॥

अथ षोडशो वर्गः ॥ १६ ॥

मो षु णः परापरा निर्ऋतिर्दुर्हणा वधीत् । पदीष्ट तृष्णया सह ॥ ६ ॥
सत्यं त्वेषा अमवन्तो धन्वञ्चिदा रुद्रियासः । मिहं कृण्वन्त्यवाताम् ॥ ७ ॥
वाश्रेव विद्युन्मिमाति वत्सं न माता सिषक्ति । यदेषां वृष्टिरसर्जि ॥ ८ ॥
दिवा चित्तमः कृण्वन्ति पर्जन्येनोदवाहेन । यत्पृथिवीं व्युन्दन्ति ॥ ९ ॥
अध स्वनान्मरुतां विश्वमा सद्म पार्थिवम् । अरेजन्त प्र मानुषाः ॥ १० ॥

अथ सप्तदशो वर्गः ॥ १७ ॥

मरुतो वीळुपाणिभिश्चित्रा रोधस्वतीरनु । यातेमखिद्रयामभिः ॥ ११ ॥
स्थिरा वः सन्तु नेमयो रथा अश्वास एषाम् । सुसंस्कृता अभीशवः ॥ १२ ॥
अच्छा वदा तना गिरा जरायै ब्रह्मणस्पतिम् । अग्निं मित्रं न दर्शतम् ॥ १३ ॥

मिमीहि श्लोकमास्ये पर्जन्यइव ततनः । गाय गायत्रमुक्थ्यम् ॥ १४ ॥
वन्दस्व मारुतं गणं त्वेषं पनस्युमर्किणम् । अस्मे वृद्धा असन्निह ॥ १५ ॥

[३९] एकोनचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—कण्वो घौरः ॥ देवता—मरुतः ॥ छन्दः—१, ५, ९ पथ्याबृहती; २, ८, १० विराट्सतःपङ्क्तिः; ३ अनुष्टुप्; ४, ६ निचृत्सतःपङ्क्तिः; ७ उपरिष्टाद्विराड् बृहती ॥ स्वरः—१, ५, ७, ९ मध्यमः; २, ४, ६, ८, १० पञ्चमः; ३ गान्धारः ॥

अथ अष्टादशो वर्गः ॥ १८ ॥

प्र यदित्था परावतः शोचिर्न मानमस्यथ ।
कस्य क्रत्वा मरुतः कस्य वर्पसा कं याथ कं ह धूतयः ॥ १ ॥
स्थिरा वः सन्त्वायुधा पराणुदे वीळू उत प्रतिष्कभे ।
युष्माकमस्तु तविषी पनीयसी मा मर्त्यस्य मायिनः ॥ २ ॥
परा ह यत्स्थिरं हथ नरो वर्तयथा गुरु ।
वि याथन वनिनः पृथिव्या व्याशाः पर्वतानाम् ॥ ३ ॥
नहि वः शत्रुर्विविदे अधि द्यवि न भूम्यां रिशादसः ।
युष्माकमस्तु तविषी तना युजा रुद्रासो नू चिदाधृषे ॥ ४ ॥
प्र वेपयन्ति पर्वतान्वि विञ्चन्ति वनस्पतीन् ।
प्रो आरत मरुतो दुर्मदाइव देवासः सर्वया विशा ॥ ५ ॥

अथ एकोनविंशो वर्गः ॥ १९ ॥

उपो रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं प्रष्टिर्वहति रोहितः ।
आ वो यामाय पृथिवी चिदश्रोदबीभयन्त मानुषाः ॥ ६ ॥
आ वो मक्षू तनाय कं रुद्रा अवो वृणीमहे ।
गन्ता नूनं नोऽवसा यथा पुरेत्था कण्वाय बिभ्युषे ॥ ७ ॥
युष्मेषितो मरुतो मर्त्येषित आ यो नो अभ्व ईषते ।
वि तं युयोत शवसा व्योजसा वि युष्माकाभिरूतिभिः ॥ ८ ॥
असामि हि प्रयज्यवः कण्वं दद प्रचेतसः ।
असामिभिर्मरुत आ न ऊतिभिर्गन्ता वृष्टिं न विद्युतः ॥ ९ ॥

असाम्योजो बिभृथा सुदानवोऽसामि धूतयः शवः ।
ऋषिद्विषे मरुतः परिमन्यव इषुं न सृजत द्विषम् ॥ १० ॥

[४०] चत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—कण्वो घौरः ॥ देवता—बृहस्पतिः ॥ छन्दः—१, २, ८ निचृदुपरिष्टाद्बृहती; ३, ७ आर्चीत्रिष्टुप्; ४, ६ सतः पङ्क्तिर्निचृत्पङ्क्तिः; ५ पथ्याबृहती ॥ स्वरः—१, २, ५, ८, मध्यमः; ३, ७ धैवतः; ४, ६ पञ्चमः ॥

अथ विंशो वर्गः ॥ २० ॥

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे ।
उप प्र यन्तु मरुतः सुदानव इन्द्र प्राशूर्भवा सचा ॥ १ ॥
त्वामिद्धि सहसस्पुत्र मर्त्य उपब्रूते धने हिते ।
सुवीर्यं मरुत आ स्वश्व्यं दधीत यो व आचके ॥ २ ॥
प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता ।
अच्छा वीरं नर्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः ॥ ३ ॥
यो वाघते ददाति सूनरं वसु स धत्ते अक्षिति श्रवः ।
तस्मा इळां सुवीरामा यजामहे सुप्रतूर्तिमनेहसम् ॥ ४ ॥
प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं वदत्युक्थ्यम् ।
यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा देवा ओकांसि चक्रिरे ॥ ५ ॥

अथ एकविंशो वर्गः ॥ २१ ॥

तमिद्वोचेमा विदथेषु शम्भुवं मन्त्रं देवा अनेहसम् ।
इमां च वाचं प्रतिहर्यथा नरो विश्वेद्वामा वो अश्नवत् ॥ ६ ॥
को देवयन्तमश्नवज्जनं को वृक्तबर्हिषम् ।
प्रप्र दाश्वान्पस्त्याभिरस्थितान्तर्वावत्क्षयं दधे ॥ ७ ॥
उप क्षत्रं पृञ्चीत हन्ति राजभिर्भये चित्सुक्षितिं दधे ।
नास्य वर्ता न तरुता महाधने नार्भे अस्ति वज्रिणः ॥ ८ ॥

[४१] एकचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—कण्वो घौरः ॥ देवता—१-३, ७-९ वरुणमित्रार्यमणः; ४-६ आदित्याः ॥ छन्दः—१, ४, ५, ८ गायत्री; २, ३, ६ विराड्गायत्री; ७, ९ निचृद्गायत्री ॥ स्वरः—१-९ षड्जः ॥

अथ द्वाविंशो वर्गः ॥ २२ ॥

यं रक्षन्ति प्रचेतसो वरुणो मित्रो अर्यमा। नू चित्स दभ्यते जनः ॥ १ ॥
यं बाहुतेव पिप्रति पान्ति मर्त्यं रिषः। अरिष्टः सर्व एधते ॥ २ ॥
वि दुर्गा वि द्विषः पुरो घ्नन्ति राजान एषाम्। नयन्ति दुरिता तिरः ॥ ३ ॥
सुगः पन्था अनृक्षर आदित्यास ऋतं यते। नात्रावखादो अस्ति वः ॥ ४ ॥
यं यज्ञं नयथा नर आदित्या ऋजुना पथा। प्र वः स धीतये नशत् ॥ ५ ॥

अथ त्रयोविंशो वर्गः ॥ २३ ॥

स रत्नं मर्त्यो वसु विश्वं तोकमुत त्मना। अच्छा गच्छत्यस्तृतः ॥ ६ ॥
कथा राधाम सखायः स्तोमं मित्रस्यार्यम्णः। महि प्सरो वरुणस्य ॥ ७ ॥
मा वो घ्नन्तं मा शपन्तं प्रति वोचे देवयन्तम्। सुम्नैरिद्व आ विवासे ॥ ८ ॥
चतुरश्चिद्ददमानाद्बिभीयादा निधातोः। न दुरुक्ताय स्पृहयेत् ॥ ९ ॥

[४२] द्वाचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—कण्वो घौरः ॥ देवता—पूषा ॥ छन्दः—१, ९ निचृद्गायत्री; २, ३, ५-८, १० गायत्री; ४ विराड्गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

अथ चतुर्विंशो वर्गः ॥ २४ ॥

सं पूषन्नध्वनस्तिर व्यंहो विमुचो नपात्। सक्ष्वा देव प्र णस्पुरः ॥ १ ॥
यो नः पूषन्नघो वृको दुःशेव आदिदेशति। अप स्म तं पथो जहि ॥ २ ॥
अप त्यं परिपन्थिनं मुषीवाणं हुरश्चितम्। दूरमधि स्रुतेरज ॥ ३ ॥
त्वं तस्य द्वयाविनोऽघशंसस्य कस्य चित्। पदाभि तिष्ठ तपुषिम् ॥ ४ ॥
आ तत्ते दस्र मन्तुमः पूषन्नवो वृणीमहे। येन पितॄनचोदयः ॥ ५ ॥

अथ पञ्चविंशो वर्गः ॥ २५ ॥

अधा नो विश्वसौभग हिरण्यवाशीमत्तम। धनानि सुषणा कृधि ॥ ६ ॥
अति नः सश्चतो नय सुगा नः सुपथा कृणु। पूषन्निह क्रतुं विदः ॥ ७ ॥
अभि सूयवसं नय न नवज्वारो अध्वने। पूषन्निह क्रतुं विदः ॥ ८ ॥
शग्धि पूर्धि प्र यंसि च शिशीहि प्रास्युदरम्। पूषन्निह क्रतुं विदः ॥ ९ ॥
न पूषणं मेथामसि सूक्तैरभि गृणीमसि। वसूनि दस्ममीमहे ॥ १० ॥

[४३] त्रिचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—कण्वो घौरः ॥ देवता—१, २, ४-६ रुद्रः; ३ मित्रावरुणौ; ७-९ सोमः ॥ छन्दः—१-४, ७, ८ गायत्री; ५ विराड्गायत्री; ६ पादनिचृद्गायत्री; ९ अनुष्टुप् ॥ स्वरः—१-८ षड्जः; ९ गान्धारः ॥

अथ षड्विंशो वर्गः ॥ २६ ॥

कद्रुद्राय प्रचेतसे मीळ्हुष्टमाय तव्यसे। वोचेम शन्तमं हृदे ॥ १ ॥
यथा नो अदितिः करत्पश्वे नृभ्यो यथा गवे। यथा तोकाय रुद्रियम् ॥ २ ॥
यथा नो मित्रो वरुणो यथा रुद्रश्चिकेतति। यथा विश्वे सजोषसः ॥ ३ ॥
गाथपतिं मेधपतिं रुद्रं जलाषभेषजम्। तच्छंयोः सुम्नमीमहे ॥ ४ ॥
यः शुक्रइव सूर्यो हिरण्यमिव रोचते। श्रेष्ठो देवानां वसुः ॥ ५ ॥

अथ सप्तविंशो वर्गः ॥ २७ ॥

शं नः करत्यर्वते सुगं मेषाय मेष्ये। नृभ्यो नारिभ्यो गवे ॥ ६ ॥
अस्मे सोम श्रियमधि नि धेहि शतस्य नृणाम्। महि श्रवस्तुविनृम्णम् ॥ ७ ॥
मा नः सोमपरिबाधो मारातयो जुहुरन्त। आ न इन्दो वाजे भज ॥ ८ ॥
यास्ते प्रजा अमृतस्य परस्मिन्धामन्नृतस्य ।
मूर्धा नाभा सोम वेन आभूषन्तीः सोम वेदः ॥ ९ ॥

नवमोऽनुवाकः

[४४] चतुश्चत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—प्रस्कण्वः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१, ५ उपरिष्टाद्विराड्बृहती; ३ निचृदुपरिष्टाद्बृहती; ७, ११ निचृत्पथ्याबृहती; १२ भुरिग्बृहती; १३ पथ्याबृहती; २, ४, ६, ८, १४ विराट्-सतःपङ्क्तिः; ९ आर्चीत्रिष्टुप्; १० विराड्विस्तारपङ्क्तिः ॥ स्वरः—१, ३, ५, ७, ११-१३ मध्यमः; २, ४, ६, ८, १०, १४ पञ्चमः; ९ धैवतः ॥

अथाष्टाविंशो वर्गः ॥ २८ ॥

अग्ने विवस्वदुषसश्चित्रं राधो अमर्त्य ।
आ दाशुषे जातवेदो वहा त्वमद्या देवाँ उषर्बुधः ॥ १ ॥
जुष्टो हि दूतो असि हव्यवाहनोऽग्ने रथीरध्वराणाम् ।
सजूरश्विभ्यामुषसा सुवीर्यमस्मे धेहि श्रवो बृहत् ॥ २ ॥
अद्या दूतं वृणीमहे वसुमग्निं पुरुप्रियम् ।
धूमकेतुं भाऋजीकं व्युष्टिषु यज्ञानामध्वरश्रियम् ॥ ३ ॥
श्रेष्ठं यविष्ठमतिथिं स्वाहुतं जुष्टं जनाय दाशुषे ।
देवाँ अच्छा यातवे जातवेदसमग्निमीळे व्युष्टिषु ॥ ४ ॥

स्तविष्यामि त्वामहं विश्वस्यामृत भोजन ।
अग्ने त्रातारममृतं मियेध्य यजिष्ठं हव्यवाहन ॥ ५ ॥

अथ एकोनत्रिंशो वर्गः ॥ २९ ॥

सुशंसो बोधि गृणते यविष्ठ्य मधुजिह्वः स्वाहुतः ।
प्रस्कण्वस्य प्रतिरन्नायुर्जीवसे नमस्या दैव्यं जनम् ॥ ६ ॥
होतारं विश्ववेदसं सं हि त्वा विश इन्धते ।
स आ वह पुरुहूत प्रचेतसोऽग्ने देवाँ इह द्रवत् ॥ ७ ॥
सवितारमुषसमश्विना भगमग्निं व्युष्टिषु क्षपः ।
कण्वासस्त्वा सुतसोमास इन्धते हव्यवाहं स्वध्वर ॥ ८ ॥
पतिर्ह्यध्वराणामग्ने दूतो विशामसि ।
उषर्बुध आ वह सोमपीतये देवाँ अद्य स्वर्दृशः ॥ ९ ॥
अग्ने पूर्वा अनूषसो विभावसो दीदेथ विश्वदर्शतः ।
असि ग्रामेष्ववितो पुरोहितोऽसि यज्ञेषु मानुषः ॥ १० ॥

अथ त्रिंशो वर्गः ॥ ३० ॥

नि त्वा यज्ञस्य साधनमग्ने होतारमृत्विजम् ।
मनुष्वद्देव धीमहि प्रचेतसं जीरं दूतममर्त्यम् ॥ ११ ॥
यद्देवानां मित्रमहः पुरोहितोऽन्तरो यासि दूत्यम् ।
सिन्धोरिव प्रस्वनितास ऊर्मयोऽग्नेर्भ्राजन्ते अर्चयः ॥ १२ ॥
श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिर्देवैरग्ने सयावभिः ।
आ सीदन्तु बर्हिषि मित्रो अर्यमा प्रातर्यावाणो अध्वरम् ॥ १३ ॥
शृण्वन्तु स्तोमं मरुतः सुदानवोऽग्निजिह्वा ऋतावृधः ।
पिबन्तु सोमं वरुणो धृतव्रतोऽश्विभ्यामुषसा सजूः ॥ १४ ॥

[४५] पञ्चचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—प्रस्कण्वः काण्वः ॥ देवता—अग्निर्देवाः ॥ छन्दः—१ भुरिगुष्णिक्; २, ३, ७, ८ अनुष्टुप्; ४ निचृदनुष्टुप्; ५ उष्णिक्; ६, ९, १० विराडनुष्टुप् ॥ स्वरः—१, ५ ऋषभः; २-४, ६-१० गान्धारः ॥

अथ एकत्रिंशो वर्गः ॥ ३१ ॥

त्वमग्ने वसूँरिह रुद्राँ आदित्याँ उत ।
यजा स्वध्वरं जनं मनुजातं घृतप्रुषम् ॥ १ ॥
श्रुष्टीवानो हि दाशुषे देवा अग्ने विचेतसः ।
तान् रोहिदश्व गिर्वणस्त्रयस्त्रिंशतमा वह ॥ २ ॥
प्रियमेधवदत्रिवज्जातवेदो विरूपवत् ।
अङ्गिरस्वन्महिव्रत प्रस्कण्वस्य श्रुधी हवम् ॥ ३ ॥
महिकेरव ऊतये प्रियमेधा अहूषत ।
राजन्तमध्वराणामग्निं शुक्रेण शोचिषा ॥ ४ ॥
घृताहवन सन्त्येमा उ षु श्रुधी गिरः ।
याभिः कण्वस्य सूनवो हवन्तेऽवसे त्वा ॥ ५ ॥

अथ द्वात्रिंशो वर्गः ॥ ३२ ॥

त्वां चित्रश्रवस्तम हवन्ते विक्षु जन्तवः ।
शोचिष्केशं पुरुप्रियाग्ने हव्याय वोळ्हवे ॥ ६ ॥
नि त्वा होतारमृत्विजं दधिरे वसुवित्तमम् ।
श्रुत्कर्णं सप्रथस्तमं विप्रा अग्ने दिविष्टिषु ॥ ७ ॥
आ त्वा विप्रा अचुच्यवुः सुतसोमा अभि प्रयः ।
बृहद्भा बिभ्रतो हविरग्ने मर्ताय दाशुषे ॥ ८ ॥
प्रातर्याव्णः सहस्कृत सोमपेयाय सन्त्य ।
इहाद्य दैव्यं जनं बर्हिरा सादया वसो ॥ ९ ॥
अर्वाञ्चं दैव्यं जनमग्ने यक्ष्व सहूतिभिः ।
अयं सोमः सुदानवस्तं पात तिरोअह्न्यम् ॥ १० ॥

[४६] षट्चत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—प्रस्कण्वः काण्वः ॥ देवता—अश्विनौ ॥ छन्दः—१, १० विराड्गायत्री; २, ४, ५, ७, ८, ९, १३, १५ निचृद्गायत्री; ३, ६, ११, १२, १४ गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

अथ त्रयस्त्रिंशो वर्गः ॥ ३३ ॥

एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः । स्तुषे वामश्विना बृहत् ॥ १ ॥

या दस्रा सिन्धुमातरा मनोतरा रयीणाम्। धिया देवा वसुविदा ॥ २ ॥
वच्यन्ते वां ककुहासो जूर्णायामधि विष्टपि। यद्वां रथो विभिष्पतात् ॥ ३ ॥
हविषा जारो अपां पिपर्ति पपुरिर्नरा। पिता कुटस्य चर्षणिः ॥ ४ ॥
आदारो वां मतीनां नासत्या मतवचसा। पातं सोमस्य धृष्णुया ॥ ५ ॥

अथ चतुस्त्रिंशो वर्गः ॥ ३४ ॥

या नः पीपरदश्विना ज्योतिष्मती तमस्तिरः। तामस्मे रासाथामिषम् ॥ ६ ॥
आ नो नावा मतीनां यातं पाराय गन्तवे। युञ्जाथामश्विना रथम् ॥ ७ ॥
अरित्रं वां दिवस्पृथु तीर्थे सिन्धूनां रथः। धिया युयुज्र इन्दवः ॥ ८ ॥
दिवस्कण्वास इन्दवो वसु सिन्धूनां पदे। स्वं वव्रिं कुह धित्सथः ॥ ९ ॥
अभूदु भा उ अंशवे हिरण्यं प्रति सूर्यः। व्यख्यज्जिह्वयासितः ॥ १० ॥

अथ पञ्चत्रिंशो वर्गः ॥ ३५ ॥

अभूदु पारमेतवे पन्था ऋतस्य साधुया। अदर्शि वि स्रुतिर्दिवः ॥ ११ ॥
तत्तदिदश्विनोरवो जरिता प्रति भूषति। मदे सोमस्य पिप्रतोः ॥ १२ ॥
वावसाना विवस्वति सोमस्य पीत्या गिरा। मनुष्वच्छंभू आ गतम् ॥ १३ ॥
युवोरुषा अनु श्रियं परिज्मनोरुपाचरत्। ऋता वनथो अक्तुभिः ॥ १४ ॥
उभा पिबतमश्विनोभा नः शर्म यच्छतम्। अविद्रियाभिरूतिभिः ॥ १५ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

[४७] सप्तचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—प्रस्कण्वः काण्वः ॥ देवता—अश्विनौ ॥ छन्दः—१, ५ निचृत्पथ्याबृहती; २, ६, ८ निचृत्सतःपङ्क्तिः; ४, १० सतःपङ्क्तिः; ३, ७ पथ्याबृहती; ९ विराट्पथ्याबृहती ॥ स्वरः—१, ३, ५, ७, ९ मध्यमः; २, ४, ६, ८, १० पञ्चमः ॥

अथ प्रथमो वर्गः ॥ १ ॥

अयं वां मधुमत्तमः सुतः सोम ऋतावृधा ।
तमश्विना पिबतं तिरोअह्न्यं धत्तं रत्नानि दाशुषे ॥ १ ॥
त्रिवन्धुरेण त्रिवृता सुपेशसा रथेना यातमश्विना ।
कण्वासो वां ब्रह्म कृण्वन्त्यध्वरे तेषां सु शृणुतं हवम् ॥ २ ॥

अश्विना मधुमत्तमं पातं सोममृतावृधा ।
अथाद्य दस्रा वसु बिभ्रता रथे दाश्वांसमुप गच्छतम् ॥ ३ ॥
त्रिषधस्थे बर्हिषि विश्ववेदसा मध्वा यज्ञं मिमिक्षतम् ।
कण्वासो वां सुतसोमा अभिद्यवो युवां हवन्ते अश्विना ॥ ४ ॥
याभिः कण्वमभिष्टिभिः प्रावतं युवमश्विना ।
ताभिः ष्व१स्माँ अवतं शुभस्पती पातं सोममृतावृधा ॥ ५ ॥

अथ द्वितीयो वर्गः ॥ २ ॥

सुदासे दस्रा वसु बिभ्रता रथे पृक्षो वहतमश्विना ।
रयिं समुद्रादुत वा दिवस्पर्यस्मे धत्तं पुरुस्पृहम् ॥ ६ ॥
यन्नासत्या परावति यद्वा स्थो अधि तुर्वशे ।
अतो रथेन सुवृता न आ गतं साकं सूर्यस्य रश्मिभिः ॥ ७ ॥
अर्वाञ्चा वां सप्तयोऽध्वरश्रियो वहन्तु सवनेदुप ।
इषं पृञ्चन्ता सुकृते सुदानव आ बर्हिः सीदतं नरा ॥ ८ ॥
तेन नासत्या गतं रथेन सूर्यत्वचा ।
येन शश्वदूहथुर्दाशुषे वसु मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ९ ॥
उक्थेभिरर्वागवसे पुरूवसू अर्कैश्च नि ह्वयामहे ।
शश्वत्कण्वानां सदसि प्रिये हि कं सोमं पपथुरश्विना ॥ १० ॥

[४८] अष्टचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—प्रस्कण्वः ॥ देवता—उषाः ॥ छन्दः—१, ३, ७, ९ विराट्पथ्याबृहती; २, १०, १६ निचृत्सतःपङ्क्तिः; ४, ६, १४ विराट्सतःपङ्क्तिः; ५, ११, १३ निचृत्पथ्याबृहती; ८ पङ्क्तिः; १२ बृहती; १५ पथ्याबृहती ॥ स्वरः—१, ३, ५, ७, ९, ११, १२, १३, १५ मध्यमः; २, ४, ६, ८, १०, १४, १६ पञ्चमः ॥

अथ तृतीयो वर्गः ॥ ३ ॥

सह वामेन न उषो व्युच्छा दुहितर्दिवः ।
सह द्युम्नेन बृहता विभावरि राया देवि दास्वती ॥ १ ॥
अश्वावतीर्गोमतीर्विश्वसुविदो भूरि च्यवन्त वस्तवे ।
उदीरय प्रति मा सूनृता उषश्चोद राधो मघोनाम् ॥ २ ॥

उवासोषा उच्छाच्च नु देवी जीरा रथानाम् ।
ये अस्या आचरणेषु दध्रिरे समुद्रे न श्रवस्यवः ॥ ३ ॥
उषो ये ते प्र यामेषु युञ्जते मनो दानाय सूरयः ।
अत्राह तत्कण्व एषां कण्वतमो नाम गृणाति नृणाम् ॥ ४ ॥
आ घा योषेव सूनर्युषा याति प्रभुञ्जती ।
जरयन्ती वृजनं पद्वदीयत उत्पातयति पक्षिणः ॥ ५ ॥

अथ चतुर्थो वर्गः ॥ ४ ॥

वि या सृजति समनं व्य१र्थिनः पदं न वेत्योदती ।
वयो नकिष्टे पप्तिवांस आसते व्युष्टौ वाजिनीवति ॥ ६ ॥
एषायुक्त परावतः सूर्यस्योदयनादधि ।
शतं रथेभिः सुभगोषा इयं वि यात्यभि मानुषान् ॥ ७ ॥
विश्वमस्या नानाम चक्षसे जगज्ज्योतिष्कृणोति सूनरी ।
अप द्वेषो मघोनी दुहिता दिव उषा उच्छदप स्रिधः ॥ ८ ॥
उष आ भाहि भानुना चन्द्रेण दुहितर्दिवः ।
आवहन्ती भूर्यस्मभ्यं सौभगं व्युच्छन्ती दिविष्टिषु ॥ ९ ॥
विश्वस्य हि प्राणनं जीवनं त्वे वि यदुच्छसि सूनरि ।
सा नो रथेन बृहता विभावरि श्रुधि चित्रामघे हवम् ॥ १० ॥

अथ पञ्चमो वर्गः ॥ ५ ॥

उषो वाजं हि वंस्व यश्चित्रो मानुषे जने ।
तेना वह सुकृतो अध्वराँ उप ये त्वा गृणन्ति वह्नयः ॥ ११ ॥
विश्वान्देवाँ आ वह सोमपीतयेऽन्तरिक्षादुषस्त्वम् ।
सास्मासु धा गोमदश्वावदुक्थ्य१मुषो वाजं सुवीर्यम् ॥ १२ ॥
यस्या रुशन्तो अर्चयः प्रति भद्रा अदृक्षत ।
सा नो रयिं विश्ववारं सुपेशसमुषा ददातु सुग्म्यम् ॥ १३ ॥
ये चिद्धि त्वामृषयः पूर्व ऊतये जुहूरेऽवसे महि ।
सा नः स्तोमाँ अभि गृणीहि राधसोषः शुक्रेण शोचिषा ॥ १४ ॥

उषो यदद्य भानुना वि द्वारावृणवो दिवः ।
प्र नो यच्छतादवृकं पृथु च्छर्दिः प्र देवि गोमतीरिषः ॥ १५ ॥
सं नो राया बृहता विश्वपेशसा मिमिक्ष्वा समिळाभिरा ।
सं द्युम्नेन विश्वतुरोषो महि सं वाजैर्वाजिनीवति ॥ १६ ॥

[४९] एकोनपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—प्रस्कण्वः काण्वः ॥ देवता—उषाः ॥ छन्दः—निचृदनुष्टुप् ॥
स्वरः—गान्धारः ॥

अथ षष्ठो वर्गः ॥ ६ ॥

उषो भद्रेभिरा गहि दिवश्चिद्रोचनादधि ।
वहन्त्वरुणप्सव उप त्वा सोमिनो गृहम् ॥ १ ॥
सुपेशसं सुखं रथं यमध्यस्था उषस्त्वम् ।
तेना सुश्रवसं जनं प्रावाद्य दुहितर्दिवः ॥ २ ॥
वयश्चित्ते पतत्रिणो द्विपच्चतुष्पदर्जुनि ।
उषः प्रारन्नृतूँरनु दिवो अन्तेभ्यस्परि ॥ ३ ॥
व्युच्छन्ती हि रश्मिभिर्विश्वमाभासि रोचनम् ।
तां त्वामुषर्वसूयवो गीर्भिः कण्वा अहूषत ॥ ४ ॥

[५०] पञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—प्रस्कण्वः काण्वः ॥ देवता—सूर्यः ॥ छन्दः—१, ६ निचृद्गायत्री; २, ४, ८, ९ पिपीलिकामध्यानिचृद्गायत्री; ३ गायत्री; ५ यवमध्याविराड्गायत्री; ७ विराड्गायत्री १०, ११ निचृदनुष्टुप्; १२, १३ अनुष्टुप् ॥
स्वरः—१-९ षड्जः; १०-१३ गान्धारः ॥

अथ सप्तमो वर्गः ॥ ७ ॥

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥ १ ॥
अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः । सूराय विश्वचक्षसे ॥ २ ॥
अदृश्रमस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु । भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥ ३ ॥
तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य । विश्वमा भासि रोचनम् ॥ ४ ॥
प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषान् । प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दृशे ॥ ५ ॥

अथाष्टमो वर्गः ॥ ८ ॥

येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनु । त्वं वरुण पश्यसि ॥ ६ ॥
वि द्यामेषि रजस्पृथ्वहा मिमानो अक्तुभिः । पश्यञ्जन्मानि सूर्य ॥ ७ ॥
सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य । शोचिष्केशं विचक्षण ॥ ८ ॥
अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः । ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः ॥ ९ ॥
उद्वयं तमसस्परि ज्योतिष्पश्यन्त उत्तरम् ।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ १० ॥
उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम् ।
हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय ॥ ११ ॥
शुकेषु मे हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि ।
अथो हारिद्रवेषु मे हरिमाणं नि दध्मसि ॥ १२ ॥
उदगादयमादित्यो विश्वेन सहसा सह ।
द्विषन्तं मह्यं रन्धयन्मो अहं द्विषते रधम् ॥ १३ ॥

दशमोऽनुवाकः [५१] एकपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—सव्य आङ्गिरसः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१, ९, १० जगती; २, ५, ८ विराड्जगती; ३, ४ भुरिक्त्रिष्टुप्; ६, ७ त्रिष्टुप्; ११-१३ निचृज्जगती; १४, १५ विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१, २, ५, ८-१३ निषादः; ३, ४, ६, ७, १४, १५ धैवतः ॥

अथ नवमो वर्गः ॥ ९ ॥

अभि त्यं मेषं पुरुहूतमृग्मियमिन्द्रं गीर्भिर्मदता वस्वो अर्णवम् ।
यस्य द्यावो न विचरन्ति मानुषा भुजे मंहिष्ठमभि विप्रमर्चत ॥ १ ॥
अभीमवन्वन्त्स्वभिष्टिमूतयोऽन्तरिक्षप्रां तविषीभिरावृतम् ।
इन्द्रं दक्षास ऋभवो मदच्युतं शतक्रतुं जवनी सूनृतारुहत् ॥ २ ॥
त्वं गोत्रमङ्गिरोभ्योऽवृणोरपोतात्रये शतदुरेषु गातुवित् ।
ससेन चिद्विमदायावहो वस्वाजावद्रिं वावसानस्य नर्तयन् ॥ ३ ॥
त्वमपामपिधानावृणोरपाधारयः पर्वते दानुमद्वसु ।
वृत्रं यदिन्द्र शवसावधीरहिमादित्सूर्यं दिव्यारोहयो दृशे ॥ ४ ॥

त्वं मायाभिरप मायिनोऽधमः स्वधाभिर्ये अधि शुप्तावजुह्वत ।
त्वं पिप्रोर्नृमणः प्रारुजः पुरः प्र ऋजिश्वानं दस्युहत्येष्वाविथ ॥ ५ ॥

अथ दशमो वर्गः ॥ १० ॥

त्वं कुत्सं शुष्णहत्येष्वाविथारन्धयोऽतिथिग्वाय शम्बरम् ।
महान्तं चिदर्बुदं नि क्रमीः पदा सनादेव दस्युहत्याय जज्ञिषे ॥ ६ ॥
त्वे विश्वा तविषी सध्र्यग्घिता तव राधः सोमपीथाय हर्षते ।
तव वज्रश्चिकिते बाह्वोर्हितो वृश्चा शत्रोरव विश्वानि वृष्ण्या ॥ ७ ॥
वि जानीह्यार्यान्ये च दस्यवो बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान् ।
शाकी भव यजमानस्य चोदिता विश्वेत्ता ते सधमादेषु चाकन ॥ ८ ॥
अनुव्रताय रन्धयन्नपव्रतानाभूभिरिन्द्रः श्नथयन्ननाभुवः ।
वृद्धस्य चिद्वर्धतो द्यामिनक्षतः स्तवानो वम्रो वि जघान सन्दिहः ॥ ९ ॥
तक्षद्यत्त उशना सहसा सहो वि रोदसी मज्मना बाधते शवः ।
आ त्वा वातस्य नृमणो मनोयुज आ पूर्यमाणमवहन्नभि श्रवः ॥ १० ॥

अथ एकादशो वर्गः ॥ ११ ॥

मन्दिष्ट यदुशने काव्ये सचाँ इन्द्रो वङ्कू वङ्कुतराधि तिष्ठति ।
उग्रो ययिं निरपः स्रोतसासृजद्वि शुष्णस्य दृंहिता ऐरयत्पुरः ॥ ११ ॥
आ स्मा रथं वृषपाणेषु तिष्ठसि शार्यातस्य प्रभृता येषु मन्दसे ।
इन्द्र यथा सुतसोमेषु चाकनोऽनर्वाणं श्लोकमा रोहसे दिवि ॥ १२ ॥
अददा अर्भां महते वचस्यवे कक्षीवते वृचयामिन्द्र सुन्वते ।
मेनाभवो वृषणश्वस्य सुक्रतो विश्वेत्ता ते सवनेषु प्रवाच्या ॥ १३ ॥
इन्द्रो अश्रायि सुध्यो निरेके पज्रेषु स्तोमो दुर्यो न यूपः ।
अश्वयुर्गव्यू रथयुर्वसूयुरिन्द्र इद्रायः क्षयति प्रयन्ता ॥ १४ ॥
इदं नमो वृषभाय स्वराजे सत्यशुष्माय तवसेऽवाचि ।
अस्मिन्निन्द्र वृजने सर्ववीराः स्मत्सूरिभिस्तव शर्मन्त्स्याम ॥ १५ ॥

[५२] द्विपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—सव्य आङ्गिरसः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१, ८ भुरिक्त्रिष्टुप्; २, ३, ४ निचृज्जगती; ५, १४ जगती; ६, ११ विराड्जगती; ७ त्रिष्टुप्; ९, १० स्वराट्त्रिष्टुप्; १२, १३, १५ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१, ७, ९, १०, १२, १३, १५ धैवतः; २-६, ११, १४ निषादः ॥

अथ द्वादशो वर्गः ॥ १२ ॥

त्यं सु मेषं महया स्वर्विदं शतं यस्य सुभ्वः साकमीरते।
अत्यं न वाजं हवनस्यदं रथमेन्द्रं ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः ॥ १ ॥
स पर्वतो न धरुणेष्वच्युतः सहस्रमूतिस्तविषीषु वावृधे।
इन्द्रो यद् वृत्रमवधीन्नदीवृतमुब्जन्नर्णांसि जर्हृषाणो अन्धसा ॥ २ ॥
स हि द्वरो द्वरिषु वव्र ऊधनि चन्द्रबुध्नो मदवृद्धो मनीषिभिः।
इन्द्रं तमह्वे स्वपस्यया धिया मंहिष्ठरातिं स हि पप्रिरन्धसः ॥ ३ ॥
आ यं पृणन्ति दिवि सद्मबर्हिषः समुद्रं न सुभ्व१ः स्वा अभिष्टयः।
तं वृत्रहत्ये अनु तस्थुरूतयः शुष्मा इन्द्रमवाता अह्रुतप्सवः ॥ ४ ॥
अभि स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यतो रघ्वीरिव प्रवणे सस्रुरूतयः।
इन्द्रो यद्वज्री धृषमाणो अन्धसा भिनद् वलस्य परिधींरिव त्रितः ॥ ५ ॥

अथ त्रयोदशो वर्गः ॥ १३ ॥

परीं घृणा चरति तित्विषे शवोऽपो वृत्वी रजसो बुध्नमाशयत्।
वृत्रस्य यत्प्रवणे दुर्गृभिश्वनो निजघन्थ हन्वोरिन्द्र तन्यतुम् ॥ ६ ॥
ह्रदं न हि त्वा न्यृषन्त्यूर्मयो ब्रह्माणीन्द्र तव यानि वर्धना।
त्वष्टा चित्ते युज्यं वावृधे शवस्ततक्ष वज्रमभिभूत्योजसम् ॥ ७ ॥
जघन्वाँ उ हरिभिः संभृतक्रतविन्द्र वृत्रं मनुषे गातुयन्नपः।
अयच्छथा बाह्वोर्वज्रमायसमधारयो दिव्या सूर्यं दृशे ॥ ८ ॥
बृहत्स्वश्चन्द्रममवद्यदुक्थ्य१मकृण्वत भियसा रोहणं दिवः।
यन्मानुषप्रधना इन्द्रमूतयः स्वर्नृषाचो मरुतोऽमदन्ननु ॥ ९ ॥
द्यौश्चिदस्यामवाँ अहेः स्वनादयोयवीद्भियसा वज्र इन्द्र ते।
वृत्रस्य यद्बद्बधानस्य रोदसी मदे सुतस्य शवसाभिनच्छिरः ॥ १० ॥

अथ चतुर्दशो वर्गः ॥ १४ ॥

यदिन्न्विन्द्र पृथिवी दशभुजिरहानि विश्वा ततनन्त कृष्टयः।
अत्राह ते मघवन्विश्रुतं सहो द्यामनु शवसा बर्हणा भुवत् ॥ ११ ॥
त्वमस्य पारे रजसो व्योमनः स्वभूत्योजा अवसे धृषन्मनः।
चकृषे भूमिं प्रतिमानमोजसोऽपः स्वः परिभूरेष्या दिवम् ॥ १२ ॥
त्वं भुवः प्रतिमानं पृथिव्या ऋष्ववीरस्य बृहतः पतिर्भूः।
विश्वमाप्रा अन्तरिक्षं महित्वा सत्यमद्धा नकिरन्यस्त्वावान् ॥ १३ ॥
न यस्य द्यावापृथिवी अनु व्यचो न सिन्धवो रजसो अन्तमानशुः।
नोत स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यत एको अन्यच्चकृषे विश्वमानुषक् ॥ १४ ॥
आर्चन्नत्र मरुतः सस्मिन्नाजौ विश्वे देवासो अमदन्ननु त्वा।
वृत्रस्य यद्भृष्टिमता वधेन नि त्वमिन्द्र प्रत्यानं जघन्थ ॥ १५ ॥

[५३] त्रिपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—सव्य आङ्गिरसः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१, ३ निचृज्जगती; २ भुरिग्जगती; ४ जगती; ५, ७ विराड्जगती; ६, ८, ९ त्रिष्टुप्; १० भुरिक्त्रिष्टुप्; ११ सतःपङ्क्तिः ॥ स्वरः—१-५, ७ निषादः; ६, ८-१० धैवतः; ११ पञ्चमः ॥

अथ पञ्चदशो वर्गः ॥ १५ ॥

न्यू३ षु वाचं प्र महे भरामहे गिर इन्द्राय सदने विवस्वतः।
नू चिद्धि रत्नं ससतामिवाविदन्न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु शस्यते ॥ १ ॥
दुरो अश्वस्य दुर इन्द्र गोरसि दुरो यवस्य वसुन इनस्पतिः।
शिक्षानरः प्रदिवो अकामकर्शनः सखा सखिभ्यस्तमिदं गृणीमसि ॥ २ ॥
शचीव इन्द्र पुरुकृद् द्युमत्तम तवेदिदमभितश्चेकिते वसु।
अतः संगृभ्याभिभूत आ भर मा त्वायतो जरितुः काममूनयीः ॥ ३ ॥
एभिर्द्युभिः सुमना एभिरिन्दुभिर्निरुन्धानो अमतिं गोभिरश्विना।
इन्द्रेण दस्युं दरयन्त इन्दुभिर्युतद्वेषसः समिषा रभेमहि ॥ ४ ॥
समिन्द्र राया समिषा रभेमहि सं वाजेभिः पुरुश्चन्द्रैरभिद्युभिः।
सं देव्या प्रमत्या वीरशुष्मया गोअग्रयाश्वावत्या रभेमहि ॥ ५ ॥

अथ षोडशो वर्गः ॥ १६ ॥

ते त्वा मदा अमदन्तानि वृष्ण्या ते सोमासो वृत्रहत्येषु सत्पते।
यत्कारवे दश वृत्राण्यप्रति बर्हिष्मते नि सहस्राणि बर्हयः ॥ ६ ॥
युधा युधमुप घेदेषि धृष्णुया पुरा पुरं समिदं हंस्योजसा।
नम्या यदिन्द्र सख्या परावति निबर्हयो नमुचिं नाम मायिनम् ॥ ७ ॥
त्वं करञ्जमुत पर्णयं वधीस्तेजिष्ठयातिथिग्वस्य वर्तनी।
त्वं शता वङ्गृदस्याभिनत्पुरोऽनानुदः परिषूता ऋजिश्वना ॥ ८ ॥
त्वमेताञ्जनराज्ञो द्विर्दशाबन्धुना सुश्रवसोपजग्मुषः ।
षष्टिं सहस्रा नवतिं नव श्रुतो नि चक्रेण रथ्या दुष्पदावृणक् ॥ ९ ॥
त्वमाविथ सुश्रवसं तवोतिभिस्तव त्रामभिरिन्द्र तूर्वयाणम्।
त्वमस्मै कुत्समतिथिग्वमायुं महे राज्ञे यूने अरन्धनायः ॥ १० ॥
य उदृचीन्द्र देवगोपाः सखायस्ते शिवतमा असाम ।
त्वां स्तोषाम त्वया सुवीरा द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ॥ ११ ॥

[५४] चतुःपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—सव्य आङ्गिरसः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१, ४, १० विराड्जगती; २, ३, ५ निचृज्जगती; ६ विराट्त्रिष्टुप्; ७ जगती; ८, ९, ११ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१-५, ७, १० निषादः; ६, ८, ९, ११ धैवतः ॥

अथ सप्तदशो वर्गः ॥ १७ ॥

मा नो अस्मिन्मघवन्पृत्स्वंहसि नहि ते अन्तः शवसः परीणशे।
अक्रन्दयो नद्यो३ रोरुवद्वना कथा न क्षोणीर्भियसा समारत ॥ १ ॥
अर्चा शक्राय शाकिने शचीवते शृण्वन्तमिन्द्रं महयन्नभि ष्टुहि।
यो धृष्णुना शवसा रोदसी उभे वृषा वृषत्वा वृषभो न्यृञ्जते ॥ २ ॥
अर्चा दिवे बृहते शूष्यं१ वचः स्वक्षत्रं यस्य धृषतो धृषन्मनः।
बृहच्छ्रवा असुरो बर्हणा कृतः पुरो हरिभ्यां वृषभो रथो हि षः ॥ ३ ॥
त्वं दिवो बृहतः सानु कोपयोऽव त्मना धृषता शम्बरं भिनत्।
यन्मायिनो व्रन्दिनो मन्दिना धृषच्छितां गभस्तिमशनिं पृतन्यसि ॥ ४ ॥

नि यद् वृणक्षि श्वसनस्य मूर्धनि शुष्णस्य चिद् व्रन्दिनो रोरुवद्वना।
प्राचीनेन मनसा बर्हणावता यदद्या चित्कृणवः कस्त्वा परि ॥ ५ ॥

अथ अष्टादशो वर्गः ॥ १८ ॥

त्वमाविथ नर्यं तुर्वशं यदुं त्वं तुर्वीतिं वय्यं शतक्रतो।
त्वं रथमेतशं कृत्व्ये धने त्वं पुरो नवतिं दम्भयो नव ॥ ६ ॥
स घा राजा सत्पतिः शूशुवज्जनो रातहव्यः प्रति यः शासमिन्वति।
उक्था वा यो अभिगृणाति राधसा दानुरस्मा उपरा पिन्वते दिवः ॥ ७ ॥
असमं क्षत्रमसमा मनीषा प्र सोमपा अपसा सन्तु नेमे।
ये त इन्द्र ददुषो वर्धयन्ति महि क्षत्रं स्थविरं वृष्ण्यं च ॥ ८ ॥
तुभ्येदेते बहुला अद्रिदुग्धाश्चमूषदश्चमसा इन्द्रपानाः ।
व्यश्नुहि तर्पया काममेषामथा मनो वसुदेयाय कृष्व ॥ ९ ॥
अपामतिष्ठद्धरुणह्वरं तमोऽन्तर्वृत्रस्य जठरेषु पर्वतः ।
अभीमिन्द्रो नद्यो वव्रिणा हिता विश्वा अनुष्ठाः प्रवणेषु जिघ्नते ॥ १० ॥
स शेवृधमधि धा द्युम्नमस्मे महि क्षत्रं जनाषाळिन्द्र तव्यम्।
रक्षा च नो मघोनः पाहि सूरीन्राये च नः स्वपत्या इषे धाः ॥ ११ ॥

[५५] पञ्चपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—सव्य आङ्गिरसः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१, ४ जगती; २, ५-७ निचृज्जगती; ३, ८ विराड्जगती ॥ स्वरः—निषादः ॥

अथ एकोनविंशो वर्गः ॥ १९ ॥

दिवश्चिदस्य वरिमा वि पप्रथ इन्द्रं न मह्ना पृथिवी चन प्रति।
भीमस्तुविष्माञ्चर्षणिभ्य आतपः शिशीते वज्रं तेजसे न वंसगः ॥ १ ॥
सो अर्णवो न नद्यः समुद्रियः प्रति गृभ्णाति विश्रिता वरीमभिः।
इन्द्रः सोमस्य पीतये वृषायते सनात्स युध्म ओजसा पनस्यते ॥ २ ॥
त्वं तमिन्द्र पर्वतं न भोजसे महो नृम्णस्य धर्मणामिरज्यसि।
प्र वीर्येण देवताति चेकिते विश्वस्मा उग्रः कर्मणे पुरोहितः ॥ ३ ॥
स इद्वने नमस्युभिर्वचस्यते चारु जनेषु प्रब्रुवाण इन्द्रियम्।
वृषा छन्दुर्भवति हर्यतो वृषा क्षेमेण धेनां मघवा यदिन्वति ॥ ४ ॥

स इन्महानि समिथानि मज्मना कृणोति युध्म ओजसा जनेभ्यः ।
अधा चन श्रद्दधति त्विषीमत इन्द्राय वज्रं निघनिघ्नते वधम् ॥ ५ ॥

अथ विंशो वर्गः ॥ २० ॥

स हि श्रवस्युः सदनानि कृत्रिमा क्ष्मया वृधान ओजसा विनाशयन् ।
ज्योतींषि कृण्वन्नवृकाणि यज्यवेऽव सुक्रतुः सर्तवा अपः सृजत् ॥ ६ ॥
दानाय मनः सोमपावन्नस्तु तेऽर्वाञ्चा हरी वन्दनश्रुदा कृधि ।
यमिष्ठासः सारथयो य इन्द्र ते न त्वा केता आ दभ्नुवन्ति भूर्णयः ॥ ७ ॥
अप्रक्षितं वसु बिभर्षि हस्तयोरषाळ्हं सहस्तन्वि श्रुतो दधे ।
आवृतासोऽवतासो न कर्तृभिस्तनूषु ते क्रतव इन्द्र भूरयः ॥ ८ ॥

[५६] षट्पञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—सव्य आङ्गिरसः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१, ३, ४ निचृज्जगती; २ जगती; ५ त्रिष्टुप्; ६ भुरिक्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१-४ निषादः; ५, ६ धैवतः ॥

अथ एकविंशो वर्गः ॥ २१ ॥

एष प्र पूर्वीरव तस्य चम्रिषोऽत्यो न योषामुदयंस्त भुर्वणिः ।
दक्षं महे पाययते हिरण्ययं रथमावृत्या हरियोगमृभ्वसम् ॥ १ ॥
तं गूर्तयो नेमन्निषः परीणसः समुद्रं न संचरणे सनिष्यवः ।
पतिं दक्षस्य विदथस्य नू सहो गिरिं न वेना अधि रोह तेजसा ॥ २ ॥
स तुर्वणिर्महाँ अरेणु पौंस्ये गिरेर्भृष्टिर्न भ्राजते तुजा शवः ।
येन शुष्णं मायिनमायसो मदे दुध्र आभूषु रामयन्नि दामनि ॥ ३ ॥
देवी यदि तविषी त्वावृधोतय इन्द्रं सिषक्त्युषसं न सूर्यः ।
यो धृष्णुना शवसा बाधते तम इयर्ति रेणुं बृहदर्हरिष्वणिः ॥ ४ ॥
वि यत्तिरो धरुणमच्युतं रजोऽतिष्ठिपो दिव आतासु बर्हणा ।
स्वर्मीळ्हे यन्मद इन्द्र हर्ष्याहन्वृत्रं निरपामौब्जो अर्णवम् ॥ ५ ॥
त्वं दिवो धरुणं धिष ओजसा पृथिव्या इन्द्र सदनेषु माहिनः ।
त्वं सुतस्य मदे अरिणा अपो वि वृत्रस्य समया पाष्यारुजः ॥ ६ ॥

[५७] सप्तपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—सव्य आङ्गिरसः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१, २, ४ जगती; ३ विराड्जगती; ५ भुरिक्त्रिष्टुप्; ६ निचृज्जगती ॥ स्वरः—१-४, ६ निषादः; ५ धैवतः ॥

अथ द्वाविंशो वर्गः ॥ २२ ॥

प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये सत्यशुष्माय तवसे मतिं भरे ।
अपामिव प्रवणे यस्य दुर्धरं राधो विश्वायु शवसे अपावृतम् ॥ १ ॥
अध ते विश्वमनु हासदिष्टय आपो निम्नेव सवना हविष्मतः ।
यत्पर्वते न समशीत हर्यत इन्द्रस्य वज्रः श्नथिता हिरण्ययः ॥ २ ॥
अस्मै भीमाय नमसा समध्वर उषो न शुभ्र आ भरा पनीयसे ।
यस्य धाम श्रवसे नामेन्द्रियं ज्योतिरकारि हरितो नायसे ॥ ३ ॥
इमे त इन्द्र ते वयं पुरुष्टुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो ।
नहि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत्क्षोणीरिव प्रति नो हर्य तद्वचः ॥ ४ ॥
भूरि त इन्द्र वीर्यं१ तव स्मस्यस्य स्तोतुर्मघवन्काममा पृण ।
अनु ते द्यौर्बृहती वीर्यं मम इयं च ते पृथिवी नेम ओजसे ॥ ५ ॥
त्वं तमिन्द्र पर्वतं महामुरुं वज्रेण वज्रिन्पर्वशश्चकर्तिथ ।
अवासृजो निवृताः सर्तवा अपः सत्रा विश्वं दधिषे केवलं सहः ॥ ६ ॥

एकादशोऽनुवाकः

[५८] अष्टपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—नोधा गौतमः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१, ५ जगती; २ विराड्जगती; ३ त्रिष्टुप्; ४ निचृज्जगती; ६, ७, ९ निचृत्त्रिष्टुप्; ८ विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१, २, ४, ५ निषादः; ३, ६-९ धैवतः ॥

अथ त्रयोविंशो वर्गः ॥ २३ ॥

नू चित्सहोजा अमृतो नि तुन्दते होता यद्दूतो अभवद्विवस्वतः ।
वि साधिष्ठेभिः पथिभी रजो मम आ देवताता हविषा विवासति ॥ १ ॥
आ स्वमद्म युवमानो अजरस्तृष्वविष्यन्नतसेषु तिष्ठति ।
अत्यो न पृष्ठं प्रुषितस्य रोचते दिवो न सानु स्तनयन्नचिक्रदत् ॥ २ ॥
क्राणा रुद्रेभिर्वसुभिः पुरोहितो होता निषत्तो रयिषाळमर्त्यः ।
रथो न विक्ष्वृञ्जसान आयुषु व्यानुषग्वार्या देव ऋण्वति ॥ ३ ॥

वि वातजूतो अतसेषु तिष्ठते वृथा जुहूभिः सृण्या तुविष्वणिः ।
तृषु यदग्ने वनिनो वृषायसे कृष्णं त एम रुशदूर्मे अजर ॥ ४ ॥
तपुर्जम्भो वन आ वातचोदितो यूथे न साह्वाँ अव वाति वंसगः ।
अभिव्रजन्नक्षितं पाजसा रजः स्थातुश्चरथं भयते पतत्रिणः ॥ ५ ॥

अथ चतुर्विंशो वर्गः ॥ २४ ॥

दधुष्ट्वा भृगवो मानुषेष्वा रयिं न चारुं सुहवं जनेभ्यः ।
होतारमग्ने अतिथिं वरेण्यं मित्रं न शेवं दिव्याय जन्मने ॥ ६ ॥
होतारं सप्त जुह्वो३ यजिष्ठं यं वाघतो वृणते अध्वरेषु ।
अग्निं विश्वेषामरतिं वसूनां सपर्यामि प्रयसा यामि रत्नम् ॥ ७ ॥
अच्छिद्रा सूनो सहसो नो अद्य स्तोतृभ्यो मित्रमहः शर्म यच्छ ।
अग्ने गृणन्तमंहस उरुष्योर्जो नपात्पूर्भिरायसीभिः ॥ ८ ॥
भवा वरूथं गृणते विभावो भवा मघवन्मघवद्भ्यः शर्म ।
उरुष्याग्ने अंहसो गृणन्तं प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ ९ ॥

[५९] एकोनषष्टितमं सूक्तम्

ऋषिः—नोधा गौतमः ॥ देवता—अग्निर्वैश्वानरः ॥ छन्दः—१ निचृत्त्रिष्टुप्; २, ४ विराट्त्रिष्टुप्; ३ पङ्क्तिः; ५-७ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१, २, ४-७ धैवतः; ३ पञ्चमः ॥

अथ पञ्चविंशो वर्गः ॥ २५ ॥

वया इदग्ने अग्नयस्ते अन्ये त्वे विश्वे अमृता मादयन्ते ।
वैश्वानर नाभिरसि क्षितीनां स्थूणेव जनाँ उपमिद्ययन्थ ॥ १ ॥
मूर्धा दिवो नाभिरग्निः पृथिव्या अथाभवदरती रोदस्योः ।
तं त्वा देवासोऽजनयन्त देवं वैश्वानर ज्योतिरिदार्याय ॥ २ ॥
आ सूर्ये न रश्मयो ध्रुवासो वैश्वानरे दधिरेऽग्ना वसूनि ।
या पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु या मानुषेष्वसि तस्य राजा ॥ ३ ॥
बृहतीइव सूनवे रोदसी गिरो होता मनुष्यो३ न दक्षः ।
स्वर्वते सत्यशुष्माय पूर्वीर्वैश्वानराय नृतमाय यह्वीः ॥ ४ ॥

दिवश्चित्ते बृहतो जातवेदो वैश्वानर प्र रिरिचे महित्वम् ।
राजा कृष्टीनामसि मानुषीणां युधा देवेभ्यो वरिवश्चकर्थ ॥ ५ ॥
प्र नू महित्वं वृषभस्य वोचं यं पूरवो वृत्रहणं सचन्ते ।
वैश्वानरो दस्युमग्निर्जघन्वाँ अधूनोत्काष्ठा अव शम्बरं भेत् ॥ ६ ॥
वैश्वानरो महिम्ना विश्वकृष्टिर्भरद्वाजेषु यजतो विभावा ।
शातवनेये शतिनीभिरग्निः पुरुणीथे जरते सूनृतावान् ॥ ७ ॥

[६०] षष्टितमं सूक्तम्

ऋषिः—नोधा गौतमः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१ विराट्त्रिष्टुप्; २, ४ भुरिक्पङ्क्तिः; ३, ५ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१, ३, ५ धैवतः; २, ४ पञ्चमः ॥

अथ षड्विंशो वर्गः ॥ २६ ॥

वह्निं यशसं विदथस्य केतुं सुप्राव्यं दूतं सद्योअर्थम् ।
द्विजन्मानं रयिमिव प्रशस्तं रातिं भरद् भृगवे मातरिश्वा ॥ १ ॥
अस्य शासुरुभयासः सचन्ते हविष्मन्त उशिजो ये च मर्ताः ।
दिवश्चित्पूर्वो न्यसादि होतापृच्छ्यो विश्पतिर्विक्षु वेधाः ॥ २ ॥
तं नव्यसी हृद आ जायमानमस्मत्सुकीर्तिर्मधुजिह्वमश्याः ।
यमृत्विजो वृजने मानुषासः प्रयस्वन्त आयवो जीजनन्त ॥ ३ ॥
उशिक्पावको वसुर्मानुषेषु वरेण्यो होताधायि विक्षु ।
दमूना गृहपतिर्दम आँ अग्निर्भुवद्रयिपती रयीणाम् ॥ ४ ॥
तं त्वा वयं पतिमग्ने रयीणां प्र शंसामो मतिभिर्गोतमासः ।
आशुं न वाजम्भरं मर्जयन्तः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ ५ ॥

[६१] एकषष्टितमं सूक्तम्

ऋषिः—नोधा गौतमः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१, १४, १६ विराट्त्रिष्टुप्; २, ७, ९ निचृत्त्रिष्टुप्; ३, ४, ६, ८, १०, १२ पङ्क्तिः; ५, १५ विराट्पङ्क्तिः; ११ भुरिक्पङ्क्तिः; १३ निचृत्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१, २, ७, ९, १४, १६ धैवतः; ३-६, ८, १०-१३, १५ पञ्चमः ॥

अथ सप्तविंशो वर्गः ॥ २७ ॥

अस्मा इदु प्र तवसे तुराय प्रयो न हर्मि स्तोमं माहिनाय ।
ऋचीषमायाध्रिगव ओहमिन्द्राय ब्रह्माणि राततमा ॥ १ ॥

अस्मा इदु प्रयइव प्र यंसि भराम्याङ्गूषं बाधे सुवृक्ति।
इन्द्राय हृदा मनसा मनीषा प्रत्नाय पत्ये धियो मर्जयन्त॥ २॥
अस्मा इदु त्यमुपमं स्वर्षां भराम्याङ्गूषमास्येन।
मंहिष्ठमच्छोक्तिभिर्मतीनां सुवृक्तिभिः सूरिं वावृधध्यै॥ ३॥
अस्मा इदु स्तोमं सं हिनोमि रथं न तष्टेव तत्सिनाय।
गिरश्च गिर्वाहसे सुवृक्तीन्द्राय विश्वमिन्वं मेधिराय॥ ४॥
अस्मा इदु सप्तिमिव श्रवस्येन्द्रायार्कं जुह्वा३ समञ्जे।
वीरं दानौकसं वन्दध्यै पुरां गूर्तश्रवसं दर्माणम्॥ ५॥

अथ अष्टाविंशो वर्गः॥ २८॥

अस्मा इदु त्वष्टा तक्षद्वज्रं स्वपस्तमं स्वर्यं१ रणाय।
वृत्रस्य चिद्विदद्येन मर्म तुजन्नीशानस्तुजता कियेधाः॥ ६॥
अस्येदु मातुः सवनेषु सद्यो महः पितुं पपिवाञ्चार्वन्ना।
मुषायद्विष्णुः पचतं सहीयान्विध्यद्वराहं तिरो अद्रिमस्ता॥ ७॥
अस्मा इदु ग्नाश्चिद्देवपत्नीरिन्द्रायार्कमहिहत्य ऊवुः।
परि द्यावापृथिवी जभ्र उर्वी नास्य ते महिमानं परि ष्टः॥ ८॥
अस्येदेव प्र रिरिचे महित्वं दिवस्पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात्।
स्वराळिन्द्रो दम आ विश्वगूर्तः स्वरिरमत्रो ववक्षे रणाय॥ ९॥
अस्येदेव शवसा शुषन्तं वि वृश्चद्वज्रेण वृत्रमिन्द्रः।
गा न व्राणा अवनीरमुञ्चदभि श्रवो दावने सचेताः॥ १०॥

अथ एकोनत्रिंशो वर्गः॥ २९॥

अस्येदु त्वेषसा रन्त सिन्धवः परि यद्वज्रेण सीमयच्छत्।
ईशानकृद्दाशुषे दशस्यन्तुर्वीतये गाधं तुर्वणिः कः॥ ११॥
अस्मा इदु प्र भरा तूतुजानो वृत्राय वज्रमीशानः कियेधाः।
गोर्न पर्व वि रदा तिरश्चेष्यन्नर्णांस्यपां चरध्यै॥ १२॥

अस्येदु प्र ब्रूहि पूर्व्याणि तुरस्य कर्माणि नव्य उक्थैः।
युधे यदिष्णान आयुधान्यृघायमाणो निरिणाति शत्रून्॥ १३॥
अस्येदु भिया गिरयश्च दृळ्हा द्यावा च भूमा जनुषस्तुजेते।
उपो वेनस्य जोगुवान ओणिं सद्यो भुवद्वीर्याय नोधाः॥ १४॥
अस्मा इदु त्यदनु दाय्येषामेको यद्वव्ने भूरेरीशानः।
प्रैतशं सूर्ये पस्पृधानं सौवश्व्ये सुष्विमावदिन्द्रः॥ १५॥
एवा ते हारियोजना सुवृक्तीन्द्र ब्रह्माणि गोतमासो अक्रन्।
ऐषु विश्वपेशसं धियं धाः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात्॥ १६॥

इति प्रथमाष्टके चतुर्थोऽध्यायः॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

[६२] द्विषष्टितमं सूक्तम्

ऋषिः—नोधा गौतमः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१, ४, ६ विराडार्षीत्रिष्टुप्; २, ५, ९ निचृदार्षीत्रिष्टुप्; ३, ७, ८ भुरिगार्षीपङ्क्तिः; १०-१३ आर्षीत्रिष्टुप्॥ स्वरः—१, २, ४-६, ९-१३ धैवतः; ३, ७, ८ पञ्चमः॥

अथ प्रथमो वर्गः॥ १॥

प्र मन्महे शवसानाय शूषमाङ्गूषं गिर्वणसे अङ्गिरस्वत्।
सुवृक्तिभिः स्तुवत ऋग्मियायार्चामार्कं नरे विश्रुताय॥ १॥
प्र वो महे महि नमो भरध्वमाङ्गूष्यं शवसानाय साम।
येना नः पूर्वे पितरः पदज्ञा अर्चन्तो अङ्गिरसो गा अविन्दन्॥ २॥
इन्द्रस्याङ्गिरसां चेष्टौ विदत्सरमा तनयाय धासिम्।
बृहस्पतिर्भिनदद्रिं विदद्गाः समुस्रियाभिर्वावशन्त नरः॥ ३॥
स सुष्टुभा स स्तुभा सप्त विप्रैः स्वरेणाद्रिं स्वर्यो३ नवग्वैः।
सरण्युभिः फलिगमिन्द्र शक्र वलं रवेण दरयो दशग्वैः॥ ४॥
गृणानो अङ्गिरोभिर्दस्म वि वरुषसा सूर्येण गोभिरन्धः।
वि भूम्या अप्रथय इन्द्र सानु दिवो रज उपरमस्तभायः॥ ५॥

अथ द्वितीयो वर्गः ॥ २ ॥

तदु प्रयक्षतममस्य कर्म दस्मस्य चारुतममस्ति दंसः।
उपह्वरे यदुपरा अपिन्वन्मध्वर्णसो नद्य१श्चतस्रः ॥ ६ ॥
द्विता वि वव्रे सनजा सनीळे अयास्यः स्तवमानेभिरर्कैः।
भगो न मेने परमे व्योमन्नधारयद्रोदसी सुदंसाः ॥ ७ ॥
सनाद्दिवं परि भूमा विरूपे पुनर्भुवा युवती स्वेभिरेवैः।
कृष्णेभिरक्तोषा रुशद्भिर्वपुर्भिरा चरतो अन्यान्या ॥ ८ ॥
सनेमि सख्यं स्वपस्यमानः सूनुर्दाधार शवसा सुदंसाः।
आमासु चिद्दधिषे पक्वमन्तः पयः कृष्णासु रुशद्रोहिणीषु ॥ ९ ॥
सनात्सनीळा अवनीरवाता व्रता रक्षन्ते अमृताः सहोभिः।
पुरू सहस्रा जनयो न पत्नीर्दुवस्यन्ति स्वसारो अह्रयाणम् ॥ १० ॥

अथ तृतीयो वर्गः ॥ ३ ॥

सनायुवो नमसा नव्यो अर्कैर्वसूयवो मतयो दस्म दद्रुः।
पतिं न पत्नीरुशतीरुशन्तं स्पृशन्ति त्वा शवसावन्मनीषाः ॥ ११ ॥
सनादेव तव रायो गभस्तौ न क्षीयन्ते नोप दस्यन्ति दस्म।
द्युमाँ असि क्रतुमाँ इन्द्र धीरः शिक्षा शचीवस्तव नः शचीभिः ॥ १२ ॥
सनायते गोतम इन्द्र नव्यमतक्षद्ब्रह्म हरियोजनाय ।
सुनीथाय नः शवसान नोधाः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ १३ ॥

[६३] त्रिषष्टितमं सूक्तम्

ऋषिः—नोधा गौतमः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१, ७-९ भुरिगार्षीपङ्क्तिः; २, ४ विराट्त्रिष्टुप्; ३ विराट्पङ्क्तिः; ५ भुरिगार्षीजगती; ६ स्वराडार्षीबृहती ॥ स्वरः—१, ३, ७-९ पञ्चमः; २, ४ धैवतः; ५ निषादः; ६ मध्यमः ॥

अथ चतुर्थो वर्गः ॥ ४ ॥

त्वं महाँ इन्द्र यो ह शुष्मैर्द्यावा जज्ञानः पृथिवी अमे धाः।
यद्ध ते विश्वा गिरयश्चिदभ्वा भिया दृळ्हासः किरणा नैजन् ॥ १ ॥

आ यद्धरी इन्द्र विव्रता वेरा ते वज्रं जरिता बाह्वोर्धात्।
येनाविहर्यतक्रतो अमित्रान्पुर इष्णासि पुरुहूत पूर्वीः ॥ २ ॥
त्वं सत्य इन्द्र धृष्णुरेतान्त्वमृभुक्षा नर्यस्त्वं षाट् ।
त्वं शुष्णं वृजने पृक्ष आणौ यूने कुत्साय द्युमते सचाहन् ॥ ३ ॥
त्वं ह त्यदिन्द्र चोदीः सखा वृत्रं यद्वज्रिन्वृषकर्मन्नुभ्नाः।
यद्ध शूर वृषमणः पराचैर्वि दस्यूँर्योनावकृतो वृथाषाट् ॥ ४ ॥
त्वं ह त्यदिन्द्रारिषण्यन्दृळ्हस्य चिन्मर्तानामजुष्टौ ।
व्य१स्मदा काष्ठा अर्वते वर्घनेव वज्रिञ्छ्नथिह्यमित्रान् ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमो वर्गः ॥ ५ ॥

त्वां ह त्यदिन्द्रार्णसातौ स्वर्मीळ्हे नर आजा हवन्ते ।
तव स्वधाव इयमा समर्य ऊतिर्वाजेष्वतसाय्या भूत् ॥ ६ ॥
त्वं ह त्यदिन्द्र सप्त युध्यन्पुरो वज्रिन्पुरुकुत्साय दर्दः ।
बर्हिर्न यत्सुदासे वृथा वर्गंहो राजन्वरिवः पूरवे कः ॥ ७ ॥
त्वं त्यां न इन्द्र देव चित्रामिषमापो न पीपयः परिज्मन् ।
यया शूर प्रत्यस्मभ्यं यंसि त्मनमूर्जं न विश्वध क्षरध्यै ॥ ८ ॥
अकारि त इन्द्र गोतमेभिर्ब्रह्माण्योक्ता नमसा हरिभ्याम् ।
सुपेशसं वाजमा भरा नः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ ९ ॥

[६४] चतुःषष्टितमं सूक्तम्

ऋषिः—नोधा गौतमः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१, ४, ६, ९ विराड्जगती; २, ३, ५, ७, १०-१३ निचृज्जगती; ८, १४ जगती; १५ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१-१४ निषादः; १५ धैवतः ॥

अथ षष्ठो वर्गः ॥ ६ ॥

वृष्णे शर्धाय सुमखाय वेधसे नोधः सुवृक्तिं प्र भरा मरुद्भ्यः।
अपो न धीरो मनसा सुहस्त्यो गिरः समञ्जे विदथेष्वाभुवः ॥ १ ॥
ते जज्ञिरे दिव ऋष्वास उक्षणो रुद्रस्य मर्या असुरा अरेपसः।
पावकासः शुचयः सूर्याइव सत्वानो न द्रप्सिनो घोरवर्पसः ॥ २ ॥

युवानो रुद्रा अजरा अभोग्घनो ववक्षुरध्रिगावः पर्वताइव ।
दृळ्हा चिद्विश्वा भुवनानि पार्थिवा प्र च्यावयन्ति दिव्यानि मज्मना ॥ ३ ॥
चित्रैरञ्जिभिर्वपुषे व्यञ्जते वक्षःसु रुक्माँ अधि येतिरे शुभे ।
अंसेष्वेषां नि मिमृक्षुर्ऋष्टयः साकं जज्ञिरे स्वधया दिवो नरः ॥ ४ ॥
ईशानकृतो धुनयो रिशादसो वातान्विद्युतस्तविषीभिरक्रत ।
दुहन्त्यूधर्दिव्यानि धूतयो भूमिं पिन्वन्ति पयसा परिज्रयः ॥ ५ ॥

अथ सप्तमो वर्गः ॥ ७ ॥

पिन्वन्त्यपो मरुतः सुदानवः पयो घृतवद्विदथेष्वाभुवः ।
अत्यं न मिहे वि नयन्ति वाजिनमुत्सं दुहन्ति स्तनयन्तमक्षितम् ॥ ६ ॥
महिषासो मायिनश्चित्रभानवो गिरयो न स्वतवसो रघुष्यदः ।
मृगाइव हस्तिनः खादथा वना यदारुणीषु तविषीरयुग्ध्वम् ॥ ७ ॥
सिंहाइव नानदति प्रचेतसः पिशाइव सुपिशो विश्ववेदसः ।
क्षपो जिन्वन्तः पृषतीभिर्ऋष्टिभिः समित्सबाधः शवसाहिमन्यवः ॥ ८ ॥
रोदसी आ वदता गणश्रियो नृषाचः शूराः शवसाहिमन्यवः ।
आ वन्धुरेष्वमतिर्न दर्शता विद्युन्न तस्थौ मरुतो रथेषु वः ॥ ९ ॥
विश्ववेदसो रयिभिः समोकसः संमिश्लासस्तविषीभिर्विरप्शिनः ।
अस्तार इषुं दधिरे गभस्त्योरनन्तशुष्मा वृषखादयो नरः ॥ १० ॥

अथ अष्टमो वर्गः ॥ ८ ॥

हिरण्ययेभिः पविभिः पयोवृध उज्जिघ्नन्त आपथ्यो३ न पर्वतान् ।
मखा अयासः स्वसृतो ध्रुवच्युतो दुध्रकृतो मरुतो भ्राजदृष्टयः ॥ ११ ॥
घृषुं पावकं वनिनं विचर्षणिं रुद्रस्य सूनुं हवसा गृणीमसि ।
रजस्तुरं तवसं मारुतं गणमृजीषिणं वृषणं सश्चत श्रिये ॥ १२ ॥
प्र नू स मर्तः शवसा जनाँ अति तस्थौ व ऊती मरुतो यमावत ।
अर्वद्भिर्वाजं भरते धना नृभिरापृच्छ्यं क्रतुमा क्षेति पुष्यति ॥ १३ ॥
चर्कृत्यं मरुतः पृत्सु दुष्टरं द्युमन्तं शुष्मं मघवत्सु धत्तन ।
धनस्पृतमुक्थ्यं विश्वचर्षणिं तोकं पुष्येम तनयं शतं हिमाः ॥ १४ ॥

नू ष्ठिरं मरुतो वीरवन्तमृतीषाहं रयिमस्मासु धत्त ।
सहस्रिणं शतिनं शूशुवांसं प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ १५ ॥

द्वादशोऽनुवाकः

[६५] पञ्चषष्टितमं सूक्तम्

ऋषिः—पराशरः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१-३, ५ निचृत्पङ्क्तिः; ४ विराट्पङ्क्तिः ॥
स्वरः—पञ्चमः ॥

अथ नवमो वर्गः ॥ ९ ॥

पश्वा न तायुं गुहा चतन्तं नमो युजानं नमो वहन्तम् ।
सजोषा धीराः पदैरनु ग्मन्नुप त्वा सीदन्विश्वे यजत्राः ॥ १ ॥
ऋतस्य देवा अनु व्रता गुर्भुवत्परिष्टिर्द्यौर्न भूम ।
वर्धन्तीमापः पन्वा सुशिश्विमृतस्य योना गर्भे सुजातम् ॥ २ ॥
पुष्टिर्न रण्वा क्षितिर्न पृथ्वी गिरिर्न भुज्म क्षोदो न शंभु ।
अत्यो नाज्मन्त्सर्गप्रतक्तः सिन्धुर्न क्षोदः क ईं वराते ॥ ३ ॥
जामिः सिन्धूनां भ्रातेव स्वस्रामिभ्यान्न राजा वनान्यत्ति ।
यद्वातजूतो वना व्यस्थादग्निर्ह दाति रोमा पृथिव्याः ॥ ४ ॥
श्वसित्यप्सु हंसो न सीदन्क्रत्वा चेतिष्ठो विशामुषर्भुत् ।
सोमो न वेधा ऋतप्रजातः पशुर्न शिश्वा विभुर्दूरेभाः ॥ ५ ॥

[६६] षट्षष्टितमं सूक्तम्

ऋषिः—पराशरः शाक्त्यः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१ पङ्क्तिः; २ भुरिक्पङ्क्तिः;
३ निचृत्पङ्क्तिः; ४, ५ विराट्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—पञ्चमः ॥

अथ दशमो वर्गः ॥ १० ॥

रयिर्न चित्रा सूरो न संदृगायुर्न प्राणो नित्यो न सूनुः ।
तक्वा न भूर्णिर्वना सिषक्ति पयो न धेनुः शुचिर्विभावा ॥ १ ॥
दाधार क्षेममोको न रण्वो यवो न पक्वो जेता जनानाम् ।
ऋषिर्न स्तुभ्वा विक्षु प्रशस्तो वाजी न प्रीतो वयो दधाति ॥ २ ॥
दुरोकशोचिः क्रतुर्न नित्यो जायेव योनावरं विश्वस्मै ।
चित्रो यदभ्राट् छ्वेतो न विक्षु रथो न रुक्मी त्वेषः समत्सु ॥ ३ ॥

सेनेव सृष्टामं दधात्यस्तुर्न दिद्युत्त्वेषप्रतीका ।
यमो ह जातो यमो जनित्वं जारः कनीनां पतिर्जनीनाम् ॥ ४ ॥
तं वश्चराथा वयं वसत्यास्तं न गावो नक्षन्त इद्धम् ।
सिन्धुर्न क्षोदः प्र नीचीरैनोन्नवन्त गावः स्व१र्दृशीके ॥ ५ ॥

[६७] सप्तषष्टितमं सूक्तम्

ऋषिः—पराशरः शाक्त्यः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१ पङ्क्तिः; २ भुरिक्पङ्क्तिः; ३ निचृत्पङ्क्तिः; ४, ५ विराट्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—पञ्चमः ॥

अथ एकादशो वर्गः ॥ ११ ॥

वनेषु जायुर्मर्तेषु मित्रो वृणीते श्रुष्टिं राजेवाजुर्यम् ।
क्षेमो न साधुः क्रतुर्न भद्रो भुवत्स्वाधीर्होता हव्यवाट् ॥ १ ॥
हस्ते दधानो नृम्णा विश्वान्यमे देवान्धाद् गुहा निषीदन् ।
विदन्तीमत्र नरो धियंधा हृदा यत्तष्टान्मन्त्राँ अशंसन् ॥ २ ॥
अजो न क्षां दाधार पृथिवीं तस्तम्भ द्यां मन्त्रेभिः सत्यैः ।
प्रिया पदानि पश्वो नि पाहि विश्वायुरग्ने गुहा गुहं गाः ॥ ३ ॥
य ईं चिकेत गुहा भवन्तमा यः ससाद धारामृतस्य ।
वि ये चृतन्त्यृता सपन्त आदिद्वसूनि प्र ववाचास्मै ॥ ४ ॥
वि यो वीरुत्सु रोधन्महित्वोत प्रजा उत प्रसूष्वन्तः ।
चित्तिरपां दमे विश्वायुः सद्मेव धीराः संमाय चक्रुः ॥ ५ ॥

[६८] अष्टषष्टितमं सूक्तम्

ऋषिः—पराशरः शाक्त्यः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१, ४ निचृत्पङ्क्तिः; २, ३, ५ पङ्क्तिः ॥ स्वरः—पञ्चमः ॥

अथ द्वादशो वर्गः ॥ १२ ॥

श्रीणन्नुप स्थाद्दिवं भुरण्युः स्थातुश्चरथमक्तून्व्यूर्णोत् ।
परि यदेषामेको विश्वेषां भुवद्देवो देवानां महित्वा ॥ १ ॥
आदित्ते विश्वे क्रतुं जुषन्त शुष्काद्यद्देव जीवो जनिष्ठाः ।
भजन्त विश्वे देवत्वं नाम ऋतं सपन्तो अमृतमेवैः ॥ २ ॥

ऋतस्य प्रेषा ऋतस्य धीतिर्विश्वायुर्विश्वे अपांसि चक्रुः ।
यस्तुभ्यं दाशाद्यो वा ते शिक्षात्तस्मै चिकित्वान्रयिं दयस्व ॥ ३ ॥
होता निषत्तो मनोरपत्ये स चिन्न्वासां पती रयीणाम् ।
इच्छन्त रेतो मिथस्तनूषु सं जानत स्वैर्दक्षैरमूराः ॥ ४ ॥
पितुर्न पुत्राः क्रतुं जुषन्त श्रोषन्ये अस्य शासं तुरासः ।
वि राय और्णोद्दुरः पुरुक्षुः पिपेश नाकं स्तृभिर्दमूनाः ॥ ५ ॥

[६९] एकोनसप्ततितमं सूक्तम्

ऋषिः—पराशरः शक्तिपुत्रः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१ पङ्क्तिः; २, ३ निचृत्पङ्क्तिः; ४ भुरिक्पङ्क्तिः; ५ विराड्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—पञ्चमः ॥

अथ त्रयोदशो वर्गः ॥ १३ ॥

शुक्रः शुशुक्वाँ उषो न जारः पप्रा समीची दिवो न ज्योतिः ।
परि प्रजातः क्रत्वा बभूथ भुवो देवानां पिता पुत्रः सन् ॥ १ ॥
वेधा अदृप्तो अग्निर्विजानन्नूधर्न गोनां स्वाद्मा पितूनाम् ।
जने न शेव आहूर्यः सन्मध्ये निषत्तो रण्वो दुरोणे ॥ २ ॥
पुत्रो न जातो रण्वो दुरोणे वाजी न प्रीतो विशो वि तारीत् ।
विशो यदह्वे नृभिः सनीळा अग्निर्देवत्वा विश्वान्यश्याः ॥ ३ ॥
नकिष्ट एता व्रता मिनन्ति नृभ्यो यदेभ्यः श्रुष्टिं चकर्थ ।
तत्तु ते दंसो यदहन्त्समानैर्नृभिर्यद्युक्तो विवे रपांसि ॥ ४ ॥
उषो न जारो विभावोस्रः संज्ञातरूपश्चिकेतदस्मै ।
त्मना वहन्तो दुरो व्यृण्वन्नवन्त विश्वे स्व१र्दृशीके ॥ ५ ॥

[७०] सप्ततितमं सूक्तम्

ऋषिः—पराशरः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१, ४ विराट्पङ्क्तिः; २ पङ्क्तिः; ३, ५ निचृत्पङ्क्तिः; ६ याजुषीपङ्क्तिः ॥ स्वरः—पञ्चमः ॥

अथ चतुर्दशो वर्गः ॥ १४ ॥

वनेम पूर्वीरर्यो मनीषा अग्निः सुशोको विश्वान्यश्याः ।
आ दैव्यानि व्रता चिकित्वाना मानुषस्य जनस्य जन्म ॥ १ ॥

गर्भो यो अपां गर्भो वनानां गर्भश्च स्थातां गर्भश्चरथाम्।
अद्रौ चिदस्मा अन्तर्दुरोणे विशां न विश्वो अमृतः स्वाधीः ॥ २ ॥
स हि क्षपावाँ अग्नी रयीणां दाशद्यो अस्मा अरं सूक्तैः।
एता चिकित्वो भूमा नि पाहि देवानां जन्म मर्तांश्च विद्वान् ॥ ३ ॥
वर्धान्यं पूर्वीः क्षपो विरूपाः स्थातुश्च रथमृतप्रवीतम्।
अराधि होता स्व१र्निषत्तः कृण्वन्विश्वान्यपांसि सत्या ॥ ४ ॥
गोषु प्रशस्तिं वनेषु धिषे भरन्त विश्वे बलिं स्वर्णः।
वि त्वा नरः पुरुत्रा सपर्यन्पितुर्न जिव्रेर्वि वेदो भरन्त ॥ ५ ॥
साधुर्न गृध्नुरस्तेव शूरो यातेव भीमस्त्वेषः समत्सु ॥ ६ ॥

[७१] एकसप्ततितमं सूक्तम्

ऋषिः—पराशरः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१, ६, ७ त्रिष्टुप्; २, ५ निचृत्त्रिष्टुप्; ३, ४, ८, १० विराट्त्रिष्टुप्; ९ भुरिक्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१-८, १० धैवतः; ९ पञ्चमः ॥

अथ पञ्चदशो वर्गः ॥ १५ ॥

उप प्र जिन्वन्नुशतीरुशन्तं पतिं न नित्यं जनयः सनीळाः।
स्वसारः श्यावीमरुषीमजुष्रञ्चित्रमुच्छन्तीमुषसं न गावः ॥ १ ॥
वीळु चिद् दृळ्हा पितरो न उक्थैरद्रिं रुजन्नङ्गिरसो रवेण।
चक्रुर्दिवो बृहतो गातुमस्मे अहः स्वर्विविदुः केतुमुस्राः ॥ २ ॥
दधन्नृतं धनयन्नस्य धीतिमादिदर्यो दिधिष्वो३ विभृत्राः।
अतृष्यन्तीरपसो यन्त्यच्छा देवाञ्जन्म प्रयसा वर्धयन्तीः ॥ ३ ॥
मथीद्यदीं विभृतो मातरिश्वा गृहेगृहे श्येतो जेन्यो भूत्।
आदीं राज्ञे न सहीयसे सचा सन्ना दूत्यं१ भृगवाणो विवाय ॥ ४ ॥
महे यत्पित्र ईं रसं दिवे करव त्सरत्पृशन्यश्चिकित्वान्।
सृजदस्ता धृषता दिद्युमस्मै स्वायां देवो दुहितरि त्विषिं धात् ॥ ५ ॥

अथ षोडशो वर्गः ॥ १६ ॥

स्व आ यस्तुभ्यं दम आ विभाति नमो वा दाशादुशतो अनु द्यून्।
वर्धो अग्ने वयो अस्य द्विबर्हा यासद्राया सरथं यं जुनासि ॥ ६ ॥

अग्निं विश्वा अभि पृक्षः सचन्ते समुद्रं न स्रवतः सप्त यह्वीः।
न जामिभिर्वि चिकिते वयो नो विदा देवेषु प्रमतिं चिकित्वान् ॥ ७ ॥
आ यदिषे नृपतिं तेज आनट् छुचि रेतो निषिक्तं द्यौरभीके।
अग्निः शर्धमनवद्यं युवानं स्वाध्यं जनयत्सूदयच्च ॥ ८ ॥
मनो न योऽध्वनः सद्य एत्येकः सत्रा सूरो वस्व ईशे।
राजाना मित्रावरुणा सुपाणी गोषु प्रियममृतं रक्षमाणा ॥ ९ ॥
मा नो अग्ने सख्या पित्र्याणि प्र मर्षिष्ठा अभि विदुष्कविः सन्।
नभो न रूपं जरिमा मिनाति पुरा तस्या अभिशस्तेरधीहि ॥ १० ॥

[७२] द्विसप्ततितमं सूक्तम्

ऋषिः—पराशरः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१, २, ५, ६, ९ विराट्त्रिष्टुप्; ४, १० त्रिष्टुप्; ७ निचृत्त्रिष्टुप्; ३, ८ भुरिक्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१, २, ४-७, ९, १० धैवतः; ३, ८ पञ्चमः ॥

अथ सप्तदशो वर्गः ॥ १७ ॥

नि काव्या वेधसः शश्वतस्कर्हस्ते दधानो नर्या पुरूणि।
अग्निर्भुवद्रयिपती रयीणां सत्रा चक्राणो अमृतानि विश्वा ॥ १ ॥
अस्मे वत्सं परि षन्तं न विन्दन्निच्छन्तो विश्वे अमृता अमूराः।
श्रमयुवः पदव्यो धियंधास्तस्थुः पदे परमे चार्वग्नेः ॥ २ ॥
तिस्रो यदग्ने शरदस्त्वामिच्छुचिं घृतेन शुचयः सपर्यान्।
नामानि चिद्दधिरे यज्ञियान्यसूदयन्त तन्वः१ सुजाताः ॥ ३ ॥
आ रोदसी बृहती वेविदानाः प्र रुद्रिया जभ्रिरे यज्ञियासः।
विदन्मर्तो नेमधिता चिकित्वानग्निं पदे परमे तस्थिवांसम् ॥ ४ ॥
संजानाना उप सीदन्नभिज्ञु पत्नीवन्तो नमस्यं नमस्यन्।
रिरिक्वांसस्तन्वः कृण्वत स्वाः सखा सख्युर्निमिषि रक्षमाणाः ॥ ५ ॥

अथ अष्टादशो वर्गः ॥ १८ ॥

त्रिः सप्त यद् गुह्यानि त्वे इत्पदाविदन्निहिता यज्ञियासः।
तेभी रक्षन्ते अमृतं सजोषाः पशूञ्च स्थातॄञ्चरथं च पाहि ॥ ६ ॥

विद्वाँ अग्ने वयुनानि क्षितीनां व्यानुषक्छुरुधो जीवसे धाः।
अन्तर्विद्वाँ अध्वनो देवयानानतन्द्रो दूतो अभवो हविर्वाट्॥ ७॥
स्वाध्यो दिव आ सप्त यह्वी रायो दुरो व्यृतज्ञा अजानन्।
विदद् गव्यं सरमा दृळ्हमूर्वं येना नु कं मानुषी भोजते विट्॥ ८॥
आ ये विश्वा स्वपत्यानि तस्थुः कृण्वानासो अमृतत्वाय गातुम्।
मह्ना महद्भिः पृथिवी वि तस्थे माता पुत्रैरदितिर्धायसे वेः॥ ९॥
अधि श्रियं नि दधुश्चारुमस्मिन्दिवो यदक्षी अमृता अकृण्वन्।
अध क्षरन्ति सिन्धवो न सृष्टाः प्र नीचीरग्ने अरुषीरजानन्॥ १०॥

[७३] त्रिसप्ततितमं सूक्तम्

ऋषिः—पराशरः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—१, २, ४, ५, ७, ९, १० निचृत्त्रिष्टुप्; ३, ६ त्रिष्टुप्; ८ विराट्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

अथ एकोनविंशो वर्गः॥ १९॥

रयिर्न यः पितृवित्तो वयोधाः सुप्रणीतिश्चिकितुषो न शासुः।
स्योनशीरतिथिर्न प्रीणानो होतेव सद्म विधतो वि तारीत्॥ १॥
देवो न यः सविता सत्यमन्मा क्रत्वा निपाति वृजनानि विश्वा।
पुरुप्रशस्तो अमतिर्न सत्य आत्मेव शेवो दिधिषाय्यो भूत्॥ २॥
देवो न यः पृथिवीं विश्वधाया उपक्षेति हितमित्रो न राजा।
पुरःसदः शर्मसदो न वीरा अनवद्या पतिजुष्टेव नारी॥ ३॥
तं त्वा नरो दम आ नित्यमिद्धमग्ने सचन्त क्षितिषु ध्रुवासु।
अधि द्युम्नं नि दधुर्भूर्यस्मिन्भवा विश्वायुर्धरुणो रयीणाम्॥ ४॥
वि पृक्षो अग्ने मघवानो अश्युर्वि सूरयो ददतो विश्वमायुः।
सनेम वाजं समिथेष्वर्यो भागं देवेषु श्रवसे दधानाः॥ ५॥

अथ विंशो वर्गः॥ २०॥

ऋतस्य हि धेनवो वावशानाः स्मदूध्नीः पीपयन्त द्युभक्ताः।
परावतः सुमतिं भिक्षमाणा वि सिन्धवः समया सस्रुरद्रिम्॥ ६॥

त्वे अग्ने सुमतिं भिक्षमाणा दिवि श्रवो दधिरे यज्ञियासः।
नक्ता च चक्रुरुषसा विरूपे कृष्णं च वर्णमरुणं च सं धुः॥ ७॥
यान्राये मर्तान्त्सुषूदो अग्ने ते स्याम मघवानो वयं च।
छायेव विश्वं भुवनं सिसक्ष्यापप्रिवान्रोदसी अन्तरिक्षम्॥ ८॥
अर्वद्भिरग्ने अर्वतो नृभिर्नॄन्वीरैर्वीरान्वनुयामा त्वोताः।
ईशानासः पितृवित्तस्य रायो वि सूरयः शतहिमा नो अश्युः॥ ९॥
एता ते अग्न उचथानि वेधो जुष्टानि सन्तु मनसे हृदे च।
शकेम रायः सुधुरो यमं तेऽधि श्रवो देवभक्तं दधानाः॥ १०॥

त्रयोदशोऽनुवाकः [७४] चतुःसप्ततितमं सूक्तम्

ऋषिः—गोतमो राहूगणः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—१, २, ८, ९ निचृद्गायत्री; ३, ५, ६ गायत्री; ४, ७ विराड्गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

अथ एकविंशो वर्गः॥ २१॥

उपप्रयन्तो अध्वरं मन्त्रं वोचेमाग्नये। आरे अस्मे च शृण्वते॥ १॥
यः स्नीहितीषु पूर्व्यः संजग्मानासु कृष्टिषु। अरक्षद्दाशुषे गयम्॥ २॥
उत ब्रुवन्तु जन्तव उदग्निर्वृत्रहाजनि। धनंजयो रणेरणे॥ ३॥
यस्य दूतो असि क्षये वेषि हव्यानि वीतये। दस्मत्कृणोष्यध्वरम्॥ ४॥
तमित्सुहव्यमङ्गिरः सुदेवं सहसो यहो। जना आहुः सुबर्हिषम्॥ ५॥

अथ द्वाविंशो वर्गः॥ २२॥

आ च वहासि ताँ इह देवाँ उप प्रशस्तये। हव्या सुश्चन्द्र वीतये॥ ६॥
न योरुपब्दिरश्व्यः शृण्वे रथस्य कच्चन। यदग्ने यासि दूत्यम्॥ ७॥
त्वोतो वाज्यह्रयोऽभि पूर्वस्मादपरः। प्र दाश्वाँ अग्ने अस्थात्॥ ८॥
उत द्युमत्सुवीर्यं बृहदग्ने विवाससि। देवेभ्यो देव दाशुषे॥ ९॥

[७५] पञ्चसप्ततितमं सूक्तम्

ऋषिः—गोतमो राहूगणः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—१ गायत्री; २, ४, ५ निचृद्गायत्री; ३ विराड्गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

अथ त्रयोविंशो वर्गः॥ २३॥

जुषस्व सप्रथस्तमं वचो देवप्सरस्तमम्। हव्या जुह्वान आसनि॥ १॥

अथा ते अङ्गिरस्तमाग्ने वेधस्तम प्रियम्। वोचेम ब्रह्म सानसि ॥ २ ॥
कस्ते जामिर्जनानामग्ने को दाश्वध्वरः। को ह कस्मिन्नसि श्रितः ॥ ३ ॥
त्वं जामिर्जनानामग्ने मित्रो असि प्रियः। सखा सखिभ्य ईड्यः ॥ ४ ॥
यजा नो मित्रावरुणा यजा देवाँ ऋतं बृहत्। अग्ने यक्षि स्वं दमम् ॥ ५ ॥

[७६] षट्सप्ततितमं सूक्तम्

ऋषिः—गोतमो राहूगणः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—१, ३, ४ निचृत्त्रिष्टुप्; २, ५ विराट्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

अथ चतुर्विंशो वर्गः ॥ २४॥

का त उपेतिर्मनसो वराय भुवदग्ने शन्तमा का मनीषा।
को वा यज्ञैः परि दक्षं त आप केन वा ते मनसा दाशेम ॥ १ ॥
एह्यग्न इह होता नि षीदादब्धः सु पुरएता भवा नः।
अवतां त्वा रोदसी विश्वमिन्वे यजा महे सौमनसाय देवान् ॥ २ ॥
प्र सु विश्वान्रक्षसो धक्ष्यग्ने भवा यज्ञानामभिशस्तिपावा।
अथा वह सोमपतिं हरिभ्यामातिथ्यमस्मै चकृमा सुदाव्ने ॥ ३ ॥
प्रजावता वचसा वह्निरासा च हुवे नि च सत्सीह देवैः।
वेषि होत्रमुत पोत्रं यजत्र बोधि प्रयन्तर्जनितर्वसूनाम् ॥ ४ ॥
यथा विप्रस्य मनुषो हविर्भिर्देवाँ अयजः कविभिः कविः सन्।
एवा होतः सत्यतर त्वमद्याग्ने मन्द्रया जुह्वा यजस्व ॥ ५ ॥

[७७] सप्तसप्ततितमं सूक्तम्

ऋषिः—गोतमो राहूगणः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—१ निचृत्पङ्क्तिः; २ निचृत्त्रिष्टुप्; ३-५ विराट्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—१ पञ्चमः; २-५ धैवतः॥

अथ पञ्चविंशो वर्गः ॥ २५ ॥

कथा दाशेमाग्नये कास्मै देवजुष्टोच्यते भामिने गीः।
यो मर्त्येष्वमृत ऋतावा होता यजिष्ठ इत्कृणोति देवान् ॥ १ ॥
यो अध्वरेषु शन्तम ऋतावा होता तमू नमोभिरा कृणुध्वम्।
अग्निर्यद्वेर्मर्ताय देवान्त्स चा बोधाति मनसा यजाति ॥ २ ॥

स हि क्रतुः स मर्यः स साधुर्मित्रो न भूदद्भुतस्य रथीः।
तं मेधेषु प्रथमं देवयन्तीर्विश उप ब्रुवते दस्ममारीः ॥ ३ ॥
स नो नृणां नृतमो रिशादा अग्निर्गिरोऽवसा वेतु धीतिम्।
तना च ये मघवानः शविष्ठा वाजप्रसूता इषयन्त मन्म ॥ ४ ॥
एवाग्निर्गोतमेभिर्ऋतावा विप्रेभिरस्तोष्ट जातवेदाः।
स एषु द्युम्नं पीपयत्स वाजं स पुष्टिं याति जोषमा चिकित्वान् ॥ ५ ॥

[७८] अष्टसप्ततितमं सूक्तम्

ऋषिः—गोतमो राहूगणः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

अथ षड्विंशो वर्गः ॥ २६ ॥

अभि त्वा गोतमा गिरा जातवेदो विचर्षणे। द्युम्नैरभि प्र णोनुमः ॥ १ ॥
तमु त्वा गोतमो गिरा रायस्कामो दुवस्यति। द्युम्नैरभि प्र णोनुमः ॥ २ ॥
तमु त्वा वाजसातममङ्गिरस्वद्धवामहे। द्युम्नैरभि प्र णोनुमः ॥ ३ ॥
तमु त्वा वृत्रहन्तमं यो दस्यूँरवधूनुषे। द्युम्नैरभि प्र णोनुमः ॥ ४ ॥
अवोचाम रहूगणा अग्नये मधुमद्वचः। द्युम्नैरभि प्र णोनुमः ॥ ५ ॥

[७९] एकोनाशीतितमं सूक्तम्

ऋषिः—गोतमो राहूगणः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—१ विराट्त्रिष्टुप्; २, ३ निचृत्त्रिष्टुप्; ४ आर्च्युष्णिक्; ५, ६ निचृदार्च्युष्णिक्; ७, ८, १०, ११ निचृद्गायत्री; ९, १२ गायत्री॥ स्वरः—१-३ धैवतः; ४-६ ऋषभः; ७-१२ षड्जः॥

अथ सप्तविंशो वर्गः ॥ २७॥

हिरण्यकेशो रजसो विसारेऽहिर्धुनिर्वातइव ध्रजीमान्।
शुचिभ्राजा उषसो नवेदा यशस्वतीरपस्युवो न सत्याः ॥ १ ॥
आ ते सुपर्णा अमिनन्तँ एवैः कृष्णो नोनाव वृषभो यदीदम्।
शिवाभिर्न स्मयमानाभिरागात्पतन्ति मिहः स्तनयन्त्यभ्रा ॥ २ ॥
यदीमृतस्य पयसा पियानो नयन्नृतस्य पथिभी रजिष्ठैः।
अर्यमा मित्रो वरुणः परिज्मा त्वचं पृञ्चन्त्युपरस्य योनौ ॥ ३ ॥
अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो।
अस्मे धेहि जातवेदो महि श्रवः ॥ ४ ॥

स इधानो वसुष्कविरग्निरीळेन्यो गिरा। रेवदस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि ॥ ५ ॥
क्षपो राजन्नुत त्मनाग्ने वस्तोरुतोषसः। स तिग्मजम्भ रक्षसो दह प्रति ॥ ६ ॥

अथ अष्टाविंशो वर्गः ॥ २८ ॥

अवा नो अग्न ऊतिभिर्गायत्रस्य प्रभर्मणि। विश्वासु धीषु वन्द्य ॥ ७ ॥
आ नो अग्ने रयिं भर सत्रासाहं वरेण्यम्। विश्वासु पृत्सु दुष्टरम् ॥ ८ ॥
आ नो अग्ने सुचेतुना रयिं विश्वायुपोषसम्। मार्डीकं धेहि जीवसे ॥ ९ ॥
प्र पूतास्तिग्मशोचिषे वाचो गोतमाग्नये। भरस्व सुम्नयुर्गिरः ॥ १० ॥
यो नो अग्नेऽभिदासत्यन्ति दूरे पदीष्ट सः। अस्माकमिद् वृधे भव ॥ ११ ॥
सहस्राक्षो विचर्षणिरग्नी रक्षांसि सेधति। होता गृणीत उक्थ्यः ॥ १२ ॥

[८०] अशीतितमं सूक्तम्

ऋषिः—गोतमो राहूगणः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१, ११ निचृदास्तारपङ्क्तिः; ५, ६, ९, १०, १३, १४ विराट्पङ्क्तिः; २-४, ७, १२, १५ भुरिग्बृहती; ८, १६ बृहती ॥ स्वरः—१, ५, ६, ९-११, १३, १४ पञ्चमः; २-४, ७, ८, १२, १५, १६ मध्यमः ॥

अथ एकोनत्रिंशो वर्गः ॥ २९ ॥

इत्था हि सोम इन्मदे ब्रह्मा चकार वर्धनम् ।
शविष्ठ वज्रिन्नोजसा पृथिव्या निः शशा अहिमर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ १ ॥
स त्वामदद् वृषा मदः सोमः श्येनाभृतः सुतः ।
येना वृत्रं निरद्भ्यो जघन्थ वज्रिन्नोजसार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ २ ॥
प्रेह्यभीहि धृष्णुहि न ते वज्रो नि यंसते ।
इन्द्र नृम्णं हि ते शवो हनो वृत्रं जया अपोऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ३ ॥
निरिन्द्र भूम्या अधि वृत्रं जघन्थ निर्दिवः ।
सृजा मरुत्वतीरव जीवधन्या इमा अपोऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ४ ॥
इन्द्रो वृत्रस्य दोधतः सानुं वज्रेण हीळितः ।
अभिक्रम्याव जिघ्नतेऽपः समीय चोदयन्नर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ५ ॥

अथ त्रिंशो वर्गः ॥ ३० ॥

अधि सानौ नि जिघ्नते वज्रेण शतपर्वणा ।
मन्दान इन्द्रो अन्धसः सखिभ्यो गातुमिच्छत्यर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ६ ॥

इन्द्र तुभ्यमिदद्रिवोऽनुत्तं वज्रिन्वीर्यम् ।
यद्ध त्यं मायिनं मृगं तमु त्वं माययावधीरर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ७ ॥
वि ते वज्रासो अस्थिरन्नवतिं नाव्या३ अनु ।
महत्त इन्द्र वीर्यं बाह्वोस्ते बलं हितमर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ८ ॥
सहस्रं साकमर्चत परि ष्टोभत विंशतिः ।
शतैनमन्वनोनवुरिन्द्राय ब्रह्मोद्यतमर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ९ ॥
इन्द्रो वृत्रस्य तविषीं निरहन्त्सहसा सहः ।
महत्तदस्य पौंस्यं वृत्रं जघन्वाँ असृजदर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ १० ॥

अथ एकत्रिंशो वर्गः ॥ ३१ ॥

इमे चित्तव मन्यवे वेपेते भियसा मही ।
यदिन्द्र वज्रिन्नोजसा वृत्रं मरुत्वाँ अवधीरर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ११ ॥
न वेपसा न तन्यतेन्द्रं वृत्रो वि बीभयत् ।
अभ्येनं वज्र आयसः सहस्रभृष्टिरायतार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ १२ ॥
यद् वृत्रं तव चाशनिं वज्रेण समयोधयः ।
अहिमिन्द्र जिघांसतो दिवि ते बद्बधे शवोऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ १३ ॥
अभिष्टने ते अद्रिवो यत्स्था जगच्च रेजते ।
त्वष्टा चित्तव मन्यव इन्द्र वेविज्यते भियार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ १४ ॥
नहि नु यादधीमसीन्द्रं को वीर्या परः ।
तस्मिन्नृम्णमुत क्रतुं देवा ओजांसि सं दधुरर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ १५ ॥
यामथर्वा मनुष्पिता दध्यङ् धियमत्नत ।
तस्मिन्ब्रह्माणि पूर्वथेन्द्र उक्था समग्मतार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ १६ ॥

इति प्रथमाष्टके पञ्चमोऽध्यायः ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

[८१] एकाशीतितमं सूक्तम्

ऋषिः—गोतमो राहूगणः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१, ७, ८ विराट्पङ्क्तिः; २ भुरिग्बृहती; ३-६, ९ निचृदास्तारपङ्क्तिः॥ स्वरः—१, ३-९ पञ्चमः; २ मध्यमः॥

अथ प्रथमो वर्गः॥ १॥

इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः।
तमिन्महत्स्वाजिषूतेमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत्॥ १॥
असि हि वीर सेन्योऽसि भूरि पराददिः।
असि दभ्रस्य चिद् वृधो यजमानाय शिक्षसि सुन्वते भूरि ते वसु॥ २॥
यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धना।
युक्ष्वा मदच्युता हरी कं हनः कं वसौ दधोऽस्माँ इन्द्र वसौ दधः॥ ३॥
क्रत्वा महाँ अनुष्वधं भीम आ वावृधे शवः।
श्रिय ऋष्व उपाकयोर्नि शिप्री हरिवान्दधे हस्तयोर्वज्रमायसम्॥ ४॥
आ पप्रौ पार्थिवं रजो बद्बधे रोचना दिवि।
न त्वावाँ इन्द्र कश्चन न जातो न जनिष्यतेऽति विश्वं ववक्षिथ॥ ५॥

अथ द्वितीयो वर्गः॥ २॥

यो अर्यो मर्तभोजनं पराददाति दाशुषे।
इन्द्रो अस्मभ्यं शिक्षतु वि भजा भूरि ते वसु भक्षीय तव राधसः॥ ६॥
मदेमदे हि नो ददिर्यूथा गवामृजुक्रतुः।
सं गृभाय पुरू शतोभयाहस्त्या वसु शिशीहि राय आ भर॥ ७॥
मादयस्व सुते सचा शवसे शूर राधसे।
विद्मा हि त्वा पुरूवसुमुप कामान्त्ससृज्महेऽथा नोऽविता भव॥ ८॥
एते त इन्द्र जन्तवो विश्वं पुष्यन्ति वार्यम्।
अन्तर्हि ख्यो जनानामर्यो वेदो अदाशुषां तेषां नो वेद आ भर॥ ९॥

[८२] द्व्यशीतितमं सूक्तम्

ऋषिः—गोतमो राहूगणः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१, ४ निचृदास्तारपङ्क्तिः; २, ३, ५ विराडास्तारपङ्क्तिः; ६ विराड्जगती॥ स्वरः—१-५ पञ्चमः; ६ निषादः॥

अथ तृतीयो वर्गः॥ ३॥

उपो षु शृणुही गिरो मघवन्मातथाइव।
यदा नः सूनृतावतः कर आदर्थयास इद्योजा न्विन्द्र ते हरी॥ १॥
अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया अधूषत।
अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती योजा न्विन्द्र ते हरी॥ २॥
सुसंदृशं त्वा वयं मघवन्वन्दिषीमहि।
प्र नूनं पूर्णवन्धुरः स्तुतो याहि वशाँ अनु योजा न्विन्द्र ते हरी॥ ३॥
स घा तं वृषणं रथमधि तिष्ठाति गोविदम्।
यः पात्रं हारियोजनं पूर्णमिन्द्र चिकेतति योजा न्विन्द्र ते हरी॥ ४॥
युक्तस्ते अस्तु दक्षिण उत सव्यः शतक्रतो।
तेन जायामुप प्रियां मन्दानो याह्यन्धसो योजा न्विन्द्र ते हरी॥ ५॥
युनज्मि ते ब्रह्मणा केशिना हरी उप प्र याहि दधिषे गभस्त्योः।
उत्त्वा सुतासो रभसा अमन्दिषुः पूषण्वान्वज्रिन्त्समु पत्न्यामदः॥ ६॥

[८३] त्र्यशीतितमं सूक्तम्

ऋषिः—गोतमो राहूगणः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१, ३, ४, ५ निचृज्जगती; २ जगती; ६ त्रिष्टुप्॥ स्वरः—१-५ निषादः; ६ धैवतः॥

अथ चतुर्थो वर्गः॥ ४॥

अश्वावति प्रथमो गोषु गच्छति सुप्रावीरिन्द्र मर्त्यस्तवोतिभिः।
तमित्पृणक्षि वसुना भवीयसा सिन्धुमापो यथाभितो विचेतसः॥ १॥
आपो न देवीरुप यन्ति होत्रियमवः पश्यन्ति विततं यथा रजः।
प्राचैर्देवासः प्र णयन्ति देवयुं ब्रह्मप्रियं जोषयन्ते वराइव॥ २॥
अधि द्वयोरदधा उक्थ्यं१ वचो यतस्रुचा मिथुना या सपर्यतः।
असंयत्तो व्रते ते क्षेति पुष्यति भद्रा शक्तिर्यजमानाय सुन्वते॥ ३॥

आदङ्गिराः प्रथमं दधिरे वय इद्धाग्नयः शम्या ये सुकृत्यया।
सर्वं पणेः समविन्दन्त भोजनमश्वावन्तं गोमन्तमा पशुं नरः ॥ ४ ॥
यज्ञैरथर्वा प्रथमः पथस्तते ततः सूर्यो व्रतपा वेन आजनि।
आ गा आजदुशना काव्यः सचा यमस्य जातममृतं यजामहे ॥ ५ ॥
बर्हिर्वा यत्स्वपत्याय वृज्यतेऽर्को वा श्लोकमाघोषते दिवि।
ग्रावा यत्र वदति कारुरुक्थ्य१स्तस्येदिन्द्रो अभिपित्वेषु रण्यति ॥ ६ ॥

[८४] चतुरशीतितमं सूक्तम्

ऋषिः—गोतमो राहूगणः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१, ३-५ निचृदनुष्टुप्; २ विराडनुष्टुप्; ६ भुरिगुष्णिक्; ७-९ उष्णिक्; १०, १२ विराडास्तारपङ्क्तिः; ११ आस्तारपङ्क्तिः; १३-१५ निचृद्गायत्री; १६ निचृत्त्रिष्टुप्; १७ विराट्त्रिष्टुप्; १८ त्रिष्टुप्; १९ आर्चीत्रिष्टुप्; २० पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१-५ गान्धारः; ६-९ ऋषभः; १०-१२, २० पञ्चमः; १३-१५ षड्जः; १६-१९ धैवतः ॥

अथ पञ्चमो वर्गः ॥ ५ ॥

असावि सोम इन्द्र ते शविष्ठ धृष्णवा गहि ।
आ त्वा पृणक्त्विन्द्रियं रजः सूर्यो न रश्मिभिः ॥ १ ॥
इन्द्रमिद्धरी वहतोऽप्रतिधृष्टशवसम् ।
ऋषीणां च स्तुतीरुप यज्ञं च मानुषाणाम् ॥ २ ॥
आ तिष्ठ वृत्रहन्रथं युक्ता ते ब्रह्मणा हरी ।
अर्वाचीनं सु ते मनो ग्रावा कृणोतु वग्नुना ॥ ३ ॥
इममिन्द्र सुतं पिब ज्येष्ठममर्त्यं मदम् ।
शुक्रस्य त्वाभ्यक्षरन्धारा ऋतस्य सादने ॥ ४ ॥
इन्द्राय नूनमर्चतोक्थानि च ब्रवीतन ।
सुता अमत्सुरिन्दवो ज्येष्ठं नमस्यता सहः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठो वर्गः ॥ ६ ॥

नकिष्ट्वद्रथीतरो हरी यदिन्द्र यच्छसे ।
नकिष्ट्वानु मज्मना नकिः स्वश्व आनशे ॥ ६ ॥

य एक इद्विदयते वसु मर्ताय दाशुषे ।
ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ॥ ७ ॥
कदा मर्तमराधसं पदा क्षुम्पमिव स्फुरत् ।
कदा नः शुश्रवद्गिर इन्द्रो अङ्ग ॥ ८ ॥
यश्चिद्धि त्वा बहुभ्य आ सुतावाँ आविवासति ।
उग्रं तत्पत्यते शव इन्द्रो अङ्ग ॥ ९ ॥
स्वादोरित्था विषूवतो मध्वः पिबन्ति गौर्यः ।
या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभसे वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥ १० ॥

अथ सप्तमो वर्गः ॥ ७ ॥

ता अस्य पृशनायुवः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः ।
प्रिया इन्द्रस्य धेनवो वज्रं हिन्वन्ति सायकं वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥ ११ ॥
ता अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेतसः ।
व्रतान्यस्य सश्चिरे पुरूणि पूर्वचित्तये वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥ १२ ॥
इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः। जघान नवतीर्नव ॥ १३ ॥
इच्छन्नश्वस्य यच्छिरः पर्वतेष्वपश्रितम्। तद्विदच्छर्यणावति ॥ १४ ॥
अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम्। इत्था चन्द्रमसो गृहे ॥ १५ ॥

अथ अष्टमो वर्गः ॥ ८ ॥

को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो दुर्हृणायून् ।
आसन्निषून्हृत्स्वसो मयोभून्य एषां भृत्यामृणधत्स जीवात् ॥ १६ ॥
क ईषते तुज्यते को बिभाय को मंसते सन्तमिन्द्रं को अन्ति।
कस्तोकाय क इभायोत रायेऽधि ब्रवत्तन्वे३ को जनाय ॥ १७ ॥
को अग्निमीट्टे हविषा घृतेन स्रुचा यजाता ऋतुभिर्ध्रुवेभिः ।
कस्मै देवा आ वहानाशु होम को मंसते वीतिहोत्रः सुदेवः ॥ १८ ॥
त्वमङ्ग प्र शंसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम् ।
न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः ॥ १९ ॥

मा ते राधांसि मा त ऊतयो वसोऽस्मान्कदा चना दभन् ।
विश्वा च न उपमिमीहि मानुष वसूनि चर्षणिभ्य आ ॥ २० ॥

चतुर्दशोनुवाकः [८५] पञ्चाशीतितमं सूक्तम्

ऋषिः—गोतमो राहूगणः ॥ देवता—मरुतः ॥ छन्दः—१, २, ६, ११ जगती; ३, ७, ८ निचृज्जगती; ४, ९, १० विराड्जगती; ५ विराट्त्रिष्टुप्; १२ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१-४, ६-११ निषादः; ५, १२ धैवतः ॥

अथ नवमो वर्गः ॥ ९ ॥

प्र ये शुम्भन्ते जनयो न सप्तयो यामन्रुद्रस्य सूनवः सुदंससः ।
रोदसी हि मरुतश्चक्रिरे वृधे मदन्ति वीरा विदथेषु घृष्वयः ॥ १ ॥
त उक्षितासो महिमानमाशत दिवि रुद्रासो अधि चक्रिरे सदः ।
अर्चन्तो अर्कं जनयन्त इन्द्रियमधि श्रियो दधिरे पृश्निमातरः ॥ २ ॥
गोमातरो यच्छुभयन्ते अञ्जिभिस्तनूषु शुभ्रा दधिरे विरुक्मतः ।
बाधन्ते विश्वमभिमातिनमप वर्त्मान्येषामनु रीयते घृतम् ॥ ३ ॥
वि ये भ्राजन्ते सुमखास ऋष्टिभिः प्रच्यावयन्तो अच्युता चिदोजसा ।
मनोजुवो यन्मरुतो रथेष्वा वृषव्रातासः पृषतीरयुग्ध्वम् ॥ ४ ॥
प्र यद्रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं वाजे अद्रिं मरुतो रंहयन्तः ।
उतारुषस्य वि ष्यन्ति धाराश्चर्मेवोदभिर्व्युन्दन्ति भूम ॥ ५ ॥
आ वो वहन्तु सप्तयो रघुष्यदो रघुपत्वानः प्र जिगात बाहुभिः ।
सीदता बर्हिरुरु वः सदस्कृतं मादयध्वं मरुतो मध्वो अन्धसः ॥ ६ ॥

अथ दशमो वर्गः ॥ १० ॥

तेऽवर्धन्त स्वतवसो महित्वना नाकं तस्थुरुरु चक्रिरे सदः ।
विष्णुर्यद्धावद् वृषणं मदच्युतं वयो न सीदन्नधि बर्हिषि प्रिये ॥ ७ ॥
शूराइवेद्युयुधयो न जग्मयः श्रवस्यवो न पृतनासु येतिरे ।
भयन्ते विश्वा भुवना मरुद्भ्यो राजानइव त्वेषसंदृशो नरः ॥ ८ ॥
त्वष्टा यद्वज्रं सुकृतं हिरण्ययं सहस्रभृष्टिं स्वपा अवर्तयत् ।
धत्त इन्द्रो नर्यपांसि कर्तवेऽहन्वृत्रं निरपामौब्जदर्णवम् ॥ ९ ॥

ऊर्ध्वं नुनुद्रेऽवतं त ओजसा दादृहाणं चिद्बिभिदुर्वि पर्वतम् ।
धमन्तो वाणं मरुतः सुदानवो मदे सोमस्य रण्यानि चक्रिरे ॥ १० ॥
जिह्मं नुनुद्रेऽवतं तया दिशासिञ्चन्नुत्सं गोतमाय तृष्णजे ।
आ गच्छन्तीमवसा चित्रभानवः कामं विप्रस्य तर्पयन्त धामभिः ॥ ११ ॥
या वः शर्म शशमानाय सन्ति त्रिधातूनि दाशुषे यच्छताधि ।
अस्मभ्यं तानि मरुतो वि यन्त रयिं नो धत्त वृषणः सुवीरम् ॥ १२ ॥

[८६] षडशीतितमं सूक्तम्

ऋषिः—गोतमो राहूगणः ॥ देवता—मरुतः ॥ छन्दः—१, ४, ८, ९ गायत्री; २, ३, ७ पिपीलिकामध्यानिचृद्गायत्री; ५, ६, १० निचृद्गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

अथ एकादशो वर्गः ॥ ११ ॥

मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमहसः । स सुगोपातमो जनः ॥ १ ॥
यज्ञैर्वा यज्ञवाहसो विप्रस्य वा मतीनाम् । मरुतः शृणुता हवम् ॥ २ ॥
उत वा यस्य वाजिनोऽनु विप्रमतक्षत । स गन्ता गोमति व्रजे ॥ ३ ॥
अस्य वीरस्य बर्हिषि सुतः सोमो दिविष्टिषु । उक्थं मदश्च शस्यते ॥ ४ ॥
अस्य श्रोषन्त्वा भुवो विश्वा यश्चर्षणीरभि । सूरं चित्सस्रुषीरिषः ॥ ५ ॥

अथ द्वादशो वर्गः ॥ १२ ॥

पूर्वीभिर्हि ददाशिम शरद्भिर्मरुतो वयम् । अवोभिश्चर्षणीनाम् ॥ ६ ॥
सुभगः स प्रयज्यवो मरुतो अस्तु मर्त्यः । यस्य प्रयांसि पर्षथ ॥ ७ ॥
शशमानस्य वा नरः स्वेदस्य सत्यशवसः । विदा कामस्य वेनतः ॥ ८ ॥
यूयं तत्सत्यशवस आविष्कर्त महित्वना । विध्यता विद्युता रक्षः ॥ ९ ॥
गूहता गुह्यं तमो वि यात विश्वमत्रिणम् । ज्योतिष्कर्ता यदुश्मसि ॥ १० ॥

[८७] सप्ताशीतितमं सूक्तम्

ऋषिः—गोतमो राहूगणपुत्रः ॥ देवता—मरुतः ॥ छन्दः—१, २, ५ विराड्जगती; ३ जगती; ४ त्रिष्टुप्; ६ निचृज्जगती ॥ स्वरः—१-३, ५, ६ निषादः; ४ धैवतः ॥

अथ त्रयोदशो वर्गः ॥ १३ ॥

प्रत्वक्षसः प्रतवसो विरप्शिनोऽनानता अविथुरा ऋजीषिणः ।
जुष्टतमासो नृतमासो अञ्जिभिर्व्यानज्रे के चिदुस्राइव स्तृभिः ॥ १ ॥

उपह्वरेषु यदचिध्वं ययिं वयइव मरुतः केनं चित्पथा ।

श्चोतन्ति कोशा उप वो रथेष्वा घृतमुक्षता मधुवर्णमर्चते ॥ २ ॥

प्रैषामज्मेषु विथुरेव रेजते भूमिर्यामेषु यद्ध युञ्जते शुभे ।

ते क्रीळयो धुनयो भ्राजदृष्टयः स्वयं महित्वं पनयन्त धूतयः ॥ ३ ॥

स हि स्वसृत्पृषदश्वो युवा गणोऽ३ऽया ईशानस्तविषीभिरावृतः ।

असि सत्य ऋणयावानेद्योऽस्या धियः प्राविताथा वृषा गणः ॥ ४ ॥

पितुः प्रत्नस्य जन्मना वदामसि सोमस्य जिह्वा प्र जिगाति चक्षसा ।

यदीमिन्द्रं शम्यृक्वाण आशतादिन्नामानि यज्ञियानि दधिरे ॥ ५ ॥

श्रियसे कं भानुभिः सं मिमिक्षिरे ते रश्मिभिस्त ऋक्वभिः सुखादयः ।

ते वाशीमन्त इष्मिणो अभीरवो विद्रे प्रियस्य मारुतस्य धाम्नः ॥ ६ ॥

[८८] अष्टाशीतितमं सूक्तम्

ऋषिः—गोतमो राहूगणपुत्रः ॥ देवता—मरुतः ॥ छन्दः—१ पङ्क्तिः; २ भुरिक्पङ्क्तिः; ३ निचृत्त्रिष्टुप्; ४ विराट्त्रिष्टुप्; ५ निचृत्पङ्क्तिः; ६ निचृद्बृहती ॥ स्वरः—१, २, ५ पञ्चमः; ३, ४ धैवतः; ६ मध्यमः ॥

अथ चतुर्दशो वर्गः ॥ १४ ॥

आ विद्युन्मद्भिर्मरुतः स्वर्कै रथेभिर्यात ऋष्टिमद्भिरश्वपर्णैः ।

आ वर्षिष्ठया न इषा वयो न पप्तता सुमायाः ॥ १ ॥

तेऽरुणेभिर्वरमा पिशङ्गैः शुभे कं यान्ति रथतूर्भिरश्वैः ।

रुक्मो न चित्रः स्वधितीवान् पव्या रथस्य जङ्घनन्त भूम ॥ २ ॥

श्रिये कं वो अधि तनूषु वाशीर्मेधा वना न कृणवन्त ऊर्ध्वा ।

युष्मभ्यं कं मरुतः सुजातास्तुविद्युम्नासो धनयन्ते अद्रिम् ॥ ३ ॥

अहानि गृध्राः पर्या व आगुरिमां धियं वार्कार्यां च देवीम् ।

ब्रह्म कृण्वन्तो गोतमासो अर्कैरूर्ध्वं नुनुद्र उत्सधिं पिबध्यै ॥ ४ ॥

एतत्त्यन्न योजनमचेति सस्वर्ह यन्मरुतो गोतमो वः ।

पश्यन् हिरण्यचक्रानयोदंष्ट्रान्विधावतो वराहून् ॥ ५ ॥

एषा स्या वो मरुतोऽनुभर्त्री प्रति ष्टोभति वाघतो न वाणी ।

अस्तोभयद् वृथासामनु स्वधां गभस्त्योः ॥ ६ ॥

[८९] एकोननवतितमं सूक्तम्

ऋषिः—गोतमो राहूगणपुत्रः ॥ देवता—विश्वेदेवाः ॥ छन्दः—१, ५ निचृज्जगती; २, ३, ७ जगती; ४ भुरिक्त्रिष्टुप्; ६ स्वराड्बृहती; ८ विराट्त्रिष्टुप्; ९, १० त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१-३, ५, ७ निषादः; ४, ८-१० धैवतः; ६ मध्यमः ॥

अथ पञ्चदशो वर्गः ॥ १५ ॥

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः ।

देवा नो यथा सदमिद् वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे ॥ १ ॥

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानां रातिरभि नो नि वर्तताम् ।

देवानां सख्यमुप सेदिमा वयं देवा न आयुः प्र तिरन्तु जीवसे ॥ २ ॥

तान्पूर्वया निविदा हूमहे वयं भगं मित्रमदितिं दक्षमस्त्रिधम् ।

अर्यमणं वरुणं सोममश्विना सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ॥ ३ ॥

तन्नो वातो मयोभु वातु भेषजं तन्माता पृथिवी तत्पिता द्यौः ।

तद् ग्रावाणः सोमसुतो मयोभुवस्तदश्विना शृणुतं धिष्ण्या युवम् ॥ ४ ॥

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियंजिन्वमवसे हूमहे वयम् ।

पूषा नो यथा वेदसामसद् वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥ ५ ॥

अथ षोडशो वर्गः ॥ १६ ॥

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।

स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥ ६ ॥

पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभंयावानो विदथेषु जग्मयः ।

अग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवा अवसा गमन्निह ॥ ७ ॥

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।

स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥ ८ ॥

शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम् ।

पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः ॥ ९ ॥

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः ।
विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ॥१०॥

[९०] नवतितमं सूक्तम्

ऋषिः—गोतमो राहूगणपुत्रः॥ देवता—विश्वे देवाः॥ छन्दः—१, ८ पिपीलिकामध्यानिचृद्गायत्री; २, ७ गायत्री; ३ पिपीलिकामध्याविराड्गायत्री; ४ विराड्गायत्री; ५, ६ निचृद्गायत्री; ९ निचृदनुष्टुप्॥ स्वरः—१-८ षड्जः; ९ गान्धारः॥

अथ सप्तदशो वर्गः॥ १७॥

ऋजुनीती नो वरुणो मित्रो नयतु विद्वान्। अर्यमा देवैः सजोषाः॥१॥
ते हि वस्वो वसवानास्ते अप्रमूरा महोभिः। व्रता रक्षन्ते विश्वाहा॥२॥
ते अस्मभ्यं शर्म यंसन्नमृता मर्त्येभ्यः। बाधमाना अप द्विषः॥३॥
वि नः पथः सुविताय चियन्त्विन्द्रो मरुतः। पूषा भगो वन्द्यासः॥४॥
उत नो धियो गोअग्राः पूषन्विष्णवेवयावः। कर्ता नः स्वस्तिमतः॥५॥

अथ अष्टादशो वर्गः॥१८॥

मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः॥६॥
मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवं रजः। मधु द्यौरस्तु नः पिता॥७॥
मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ अस्तु सूर्यः। माध्वीर्गावो भवन्तु नः॥८॥
शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्यमा ।
शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः ॥९॥

[९१] एकनवतितमं सूक्तम्

ऋषिः—गोतमो राहूगणपुत्रः॥ देवता—सोमः॥ छन्दः—१, ३, ४ स्वराट्पङ्क्तिः; २ पङ्क्तिः; ५ पादनिचृद्गायत्री; ६, ८, ९, ११ निचृद्गायत्री; ७ वर्धमानागायत्री; १०, १२ गायत्री; १३, १४ विराड्गायत्री; १५, १६ पिपीलिकामध्यानिचृद्गायत्री; १७ परोष्णिक्; १८, २० भुरिक्पङ्क्तिः; २२ विराट्पङ्क्तिः; १९, २१, २३ निचृत्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—१-४, १८, २०, २२ पञ्चमः; ५-१६ षड्जः; १७ ऋषभः; १९, २१, २३ धैवतः॥

अथ एकोनविंशो वर्गः॥१९॥

त्वं सोम प्र चिकितो मनीषा त्वं रजिष्ठमनु नेषि पन्थाम्।
तव प्रणीती पितरो न इन्दो देवेषु रत्नमभजन्त धीराः॥१॥

त्वं सोम क्रतुभिः सुक्रतुर्भूस्त्वं दक्षैः सुदक्षो विश्ववेदाः।
त्वं वृषा वृषत्वेभिर्महित्वा द्युम्नेभिर्द्युम्न्यभवो नृचक्षाः॥२॥
राज्ञो नु ते वरुणस्य व्रतानि बृहद् गभीरं तव सोम धाम।
शुचिष्ट्वमसि प्रियो न मित्रो दक्षाय्यो अर्यमेवासि सोम॥३॥
या ते धामानि दिवि या पृथिव्यां या पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु।
तेभिर्नो विश्वैः सुमना अहेळन्राजन्त्सोम प्रति हव्या गृभाय॥४॥
त्वं सोमासि सत्पतिस्त्वं राजोत वृत्रहा। त्वं भद्रो असि क्रतुः॥५॥

अथ विंशो वर्गः॥२०॥

त्वं च सोम नो वशो जीवातुं न मरामहे। प्रियस्तोत्रो वनस्पतिः॥६॥
त्वं सोम महे भगं त्वं यून ऋतायते। दक्षं दधासि जीवसे॥७॥
त्वं नः सोम विश्वतो रक्षा राजन्नघायतः। न रिष्येत्त्वावतः सखा॥८॥
सोम यास्ते मयोभुव ऊतयः सन्ति दाशुषे। ताभिर्नोऽविता भव॥९॥
इमं यज्ञमिदं वचो जुजुषाण उपागहि। सोम त्वं नो वृधे भव॥१०॥

अथ एकविंशो वर्गः॥२१॥

सोम गीर्भिष्ट्वा वयं वर्धयामो वचोविदः। सुमृळीको न आ विश॥११॥
गयस्फानो अमीवहा वसुवित्पुष्टिवर्धनः। सुमित्रः सोम नो भव॥१२॥
सोम रारन्धि नो हृदि गावो न यवसेष्वा। मर्य इव स्व ओक्ये॥१३॥
यः सोम सख्ये तव रारणद्देव मर्त्यः। तं दक्षः सचते कविः॥१४॥
उरुष्या णो अभिशस्तेः सोम नि पाह्यंहसः। सखा सुशेव एधि नः॥१५॥

अथ द्वाविंशो वर्गः॥२२॥

आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् ।
भवा वाजस्य संगथे ॥१६॥
आ प्यायस्व मदिन्तम सोम विश्वेभिरंशुभिः ।
भवा नः सुश्रवस्तमः सखा वृधे ॥१७॥

सं ते पयांसि समु यन्तु वाजाः सं वृष्ण्यान्यभिमातिषाहः।
आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि श्रवांस्युत्तमानि धिष्व॥ १८॥
या ते धामानि हविषा यजन्ति ता ते विश्वा परिभूरस्तु यज्ञम्।
गयस्फानः प्रतरणः सुवीरोऽवीरहा प्र चरा सोम दुर्यान्॥ १९॥
सोमो धेनुं सोमो अर्वन्तमाशुं सोमो वीरं कर्मण्यं ददाति।
सादन्यं विदथ्यं सभेयं पितृश्रवणं यो ददाशदस्मै॥ २०॥

अथ त्रयोविंशो वर्गः॥ २३॥

अषाळ्हं युत्सु पृतनासु पप्रिं स्वर्षामप्सां वृजनस्य गोपाम्।
भरेषुजां सुक्षितिं सुश्रवसं जयन्तं त्वामनु मदेम सोम॥ २१॥
त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपो अजनयस्त्वं गाः।
त्वमा ततन्थोर्व१न्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ॥ २२॥
देवेन नो मनसा देव सोम रायो भागं सहसावन्नभि युध्य।
मा त्वा तनदीशिषे वीर्यस्योभयेभ्यः प्र चिकित्सा गविष्टौ॥ २३॥

[९२] द्विनवतितमं सूक्तम्

ऋषिः—गोतमो राहूगणपुत्रः॥ देवता—उषाः॥ छन्दः—१, २ निचृज्जगती; ३ जगती; ४ विराड्जगती; ५, ७, १२ विराट्त्रिष्टुप्; ६, १० निचृत्त्रिष्टुप्; ८, ९ त्रिष्टुप्; ११ भुरिक्पङ्क्तिः; १३ निचृत्परोष्णिक्; १४, १५ विराट्परोष्णिक्; १६, १७, १८ उष्णिक्॥
स्वरः—१-४ निषादः; ५-१०, १२ धैवतः; ११ पञ्चमः; १३-१८ ऋषभः॥

अथ चतुर्विंशो वर्गः॥ २४॥

एता उ त्या उषसः केतुमक्रत पूर्वे अर्धे रजसो भानुमञ्जते।
निष्कृण्वाना आयुधानीव धृष्णवः प्रति गावोऽरुषीर्यन्ति मातरः॥ १॥
उदपप्तन्नरुणा भानवो वृथा स्वायुजो अरुषीर्गा अयुक्षत।
अक्रन्नुषासो वयुनानि पूर्वथा रुशन्तं भानुमरुषीरशिश्रयुः॥ २॥
अर्चन्ति नारीरपसो न विष्टिभिः समानेन योजनेना परावतः।
इषं वहन्तीः सुकृते सुदानवे विश्वेदह यजमानाय सुन्वते॥ ३॥
अधि पेशांसि वपते नृतूरिवापोर्णुते वक्ष उस्रेव बर्जहम्।
ज्योतिर्विश्वस्मै भुवनाय कृण्वती गावो न व्रजं व्यु१षा आवर्तमः॥ ४॥

प्रत्यर्ची रुशदस्या अदर्शि वि तिष्ठते बाधते कृष्णमभ्वम्।
स्वरुं न पेशो विदथेष्वञ्जञ्चित्रं दिवो दुहिता भानुमश्रेत्॥ ५॥

अथ पञ्चविंशो वर्गः॥ २५॥

अतारिष्म तमसस्पारमस्योषा उच्छन्ती वयुना कृणोति।
श्रिये छन्दो न स्मयते विभाती सुप्रतीका सौमनसायाजीगः॥ ६॥
भास्वती नेत्री सूनृतानां दिवः स्तवे दुहिता गोतमेभिः।
प्रजावतो नृवतो अश्वबुध्यानुषो गोअग्राँ उप मासि वाजान्॥ ७॥
उषस्तमश्यां यशसं सुवीरं दासप्रवर्गं रयिमश्वबुध्यम्।
सुदंससा श्रवसा या विभासि वाजप्रसूता सुभगे बृहन्तम्॥ ८॥
विश्वानि देवी भुवनाभिचक्ष्या प्रतीची चक्षुरुर्विया वि भाति।
विश्वं जीवं चरसे बोधयन्ती विश्वस्य वाचमविदन्मनायोः॥ ९॥
पुनः पुनर्जायमाना पुराणी समानं वर्णमभि शुम्भमाना।
श्वघ्नीव कृत्नुर्विज आमिनाना मर्तस्य देवी जरयन्त्यायुः॥ १०॥

अथ षड्विंशो वर्गः॥ २६॥

व्यूर्ण्वती दिवो अन्ताँ अबोध्यप स्वसारं सनुतर्युयोति।
प्रमिनती मनुष्या युगानि योषा जारस्य चक्षसा वि भाति॥ ११॥
पशून्न चित्रा सुभगा प्रथाना सिन्धुर्न क्षोद उर्विया व्यश्वैत्।
अमिनती दैव्यानि व्रतानि सूर्यस्य चेति रश्मिभिर्दृशाना॥ १२॥
उषस्तच्चित्रमा भरास्मभ्यं वाजिनीवति।
येन तोकं च तनयं च धामहे॥ १३॥
उषो अद्येह गोमत्यश्वावति विभावरि।
रेवदस्मे व्युच्छ सूनृतावति॥ १४॥
युक्ष्वा हि वाजिनीवत्यश्वाँ अद्यारुणाँ उषः।
अथा नो विश्वा सौभगान्या वह॥ १५॥

अथ सप्तविंशो वर्गः ॥ २७ ॥

अश्विना वर्तिरस्मदा गोमद्दस्रा हिरण्यवत् ।
अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतम् ॥ १६ ॥
यावित्था श्लोकमा दिवो ज्योतिर्जनाय चक्रथुः ।
आ न ऊर्जं वहतमश्विना युवम् ॥ १७ ॥
एह देवा मयोभुवा दस्रा हिरण्यवर्तनी ।
उषर्बुधो वहन्तु सोमपीतये ॥ १८ ॥

[९३] त्रिनवतितमं सूक्तम्

ऋषिः—गोतमो राहूगणपुत्रः ॥ देवता—अग्नीषोमौ ॥ छन्दः—१ अनुष्टुप्; २ भुरिग् उष्णिक्; ३ विराडनुष्टुप्; ४ स्वराट्पङ्क्तिः; ५, ७ निचृत्त्रिष्टुप्; ६ विराट्त्रिष्टुप्; ८ स्वराट्त्रिष्टुप्; ९-११ गायत्री; १२ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१, ३ गान्धारः; २ ऋषभः; ४ पञ्चमः; ५-८, १२ धैवतः; ९-११ षड्जः ॥

अथ अष्टाविंशो वर्गः ॥ २८ ॥

अग्नीषोमाविमं सु मे शृणुतं वृषणा हवम् ।
प्रति सूक्तानि हर्यतं भवतं दाशुषे मयः ॥ १ ॥
अग्नीषोमा यो अद्य वामिदं वचः सपर्यति ।
तस्मै धत्तं सुवीर्यं गवां पोषं स्वश्व्यम् ॥ २ ॥
अग्नीषोमा य आहुतिं यो वां दाशाद्धविष्कृतिम् ।
स प्रजया सुवीर्यं विश्वमायुर्व्यश्नवत् ॥ ३ ॥
अग्नीषोमा चेति तद्वीर्यं वां यदमुष्णीतमवसं पणिं गाः ।
अवातिरतं बृसयस्य शेषोऽविन्दतं ज्योतिरेकं बहुभ्यः ॥ ४ ॥
युवमेतानि दिवि रोचनान्यग्निश्च सोम सक्रतू अधत्तम् ।
युवं सिन्धूँरभिशस्तेरवद्यादग्नीषोमावमुञ्चतं गृभीतान् ॥ ५ ॥
आन्यं दिवो मातरिश्वा जभारामथ्नादन्यं परि श्येनो अद्रेः ।
अग्नीषोमा ब्रह्मणा वावृधानोरुं यज्ञाय चक्रथुरु लोकम् ॥ ६ ॥

अथ एकोनत्रिंशो वर्गः ॥ २९ ॥

अग्नीषोमा हविषः प्रस्थितस्य वीतं हर्यतं वृषणा जुषेथाम् ।
सुशर्माणा स्ववसा हि भूतमथा धत्तं यजमानाय शं योः ॥ ७ ॥

यो अग्नीषोमा हविषा सपर्याद्देवद्रीचा मनसा यो घृतेन ।
तस्य व्रतं रक्षतं पातमंहसो विशे जनाय महि शर्म यच्छतम् ॥ ८ ॥
अग्नीषोमा सवेदसा सहूती वनतं गिरः । सं देवत्रा बभूवथुः ॥ ९ ॥
अग्नीषोमावनेन वां यो वां घृतेन दाशति । तस्मै दीदयतं बृहत् ॥ १० ॥
अग्नीषोमाविमानि नो युवं हव्या जुजोषतम् । आ यातमुप नः सचा ॥ ११ ॥
अग्नीषोमा पिपृतमर्वतो न आ प्यायन्तामुस्रिया हव्यसूदः ।
अस्मे बलानि मघवत्सु धत्तं कृणुतं नो अध्वरं श्रुष्टिमन्तम् ॥ १२ ॥

पञ्चदशोऽनुवाकः

[९४] चतुर्नवतितमं सूक्तम्

ऋषिः—कुत्स आङ्गिरसः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१, ४, ५, ७, ९, १० निचृज्जगती; २, ३, १६ त्रिष्टुप्; ६ स्वराट्त्रिष्टुप्; ८ निचृत्त्रिष्टुप्; ११ भुरिक्त्रिष्टुप्; १२-१४ विराड्जगती; १५ भुरिक्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१, ४, ५, ७, ९, १०, १२-१४ निषादः; २, ३, ६, ८, ११, १६ धैवतः; १५ पञ्चमः ॥

अथ त्रिंशो वर्गः ॥ ३० ॥

इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया ।
भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसद्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ १ ॥
यस्मै त्वमायजसे स साधत्यनर्वा क्षेति दधते सुवीर्यम् ।
स तूताव नैनमश्नोत्यंहतिरग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ २ ॥
शकेम त्वा समिधं साधया धियस्त्वे देवा हविरदन्त्याहुतम् ।
त्वमादित्याँ आ वह तान् ह्यु१श्मस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ३ ॥
भरामेध्मं कृणवामा हवींषि ते चितयन्तः पर्वणापर्वणा वयम् ।
जीवातवे प्रतरं साधया धियोऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ४ ॥
विशां गोपा अस्य चरन्ति जन्तवो द्विपच्च यदुत चतुष्पदक्तुभिः ।
चित्रः प्रकेत उषसो महाँ अस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ५ ॥

अथ एकत्रिंशो वर्गः ॥ ३१ ॥

त्वमध्वर्युरुत होतासि पूर्व्यः प्रशास्ता पोता जनुषा पुरोहितः ।
विश्वा विद्वाँ आर्त्विज्या धीर पुष्यस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ६ ॥

यो विश्वतः सुप्रतीकः सदृङ्ङसि दूरे चित्सन्तळिदिवाति रोचसे ।
रात्र्याश्चिदन्धो अति देव पश्यस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ७ ॥
पूर्वो देवा भवतु सुन्वतो रथोऽस्माकं शंसो अभ्यस्तु दूढ्यः ।
तदा जानीतोत पुष्यता वचोऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ८ ॥
वधैर्दुःशंसाँ अप दूढ्यो जहि दूरे वा ये अन्ति वा के चिदत्रिणः ।
अथा यज्ञाय गृणते सुगं कृध्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ९ ॥
यदयुक्था अरुषा रोहिता रथे वातजूता वृषभस्येव ते रवः ।
आदिन्वसि वनिनो धूमकेतुनाग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ १० ॥

अथ द्वात्रिंशो वर्गः ॥ ३२ ॥

अध स्वनादुत बिभ्युः पतत्रिणो द्रप्सा यत्ते यवसादो व्यस्थिरन् ।
सुगं तत्ते तावकेभ्यो रथेभ्योऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ११ ॥
अयं मित्रस्य वरुणस्य धायसेऽवयातां मरुतां हेळो अद्भुतः ।
मृळा सु नो भूत्वेषां मनः पुनरग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ १२ ॥
देवो देवानामसि मित्रो अद्भुतो वसुर्वसूनामसि चारुरध्वरे ।
शर्मन्त्स्याम तव सप्रथस्तमेऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ १३ ॥
तत्ते भद्रं यत्समिद्धः स्वे दमे सोमाहुतो जरसे मृळयत्तमः ।
दधासि रत्नं द्रविणं च दाशुषेऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ १४ ॥
यस्मै त्वं सुद्रविणो ददाशोऽनागास्त्वमदिते सर्वताता ।
यं भद्रेण शवसा चोदयासि प्रजावता राधसा ते स्याम ॥ १५ ॥
स त्वमग्ने सौभगत्वस्य विद्वानस्माकमायुः प्र तिरेह देव ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ १६ ॥

इति प्रथमाष्टके षष्ठोध्यायः ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

[९५] पञ्चनवतितमं सूक्तम्

ऋषिः—कुत्स आङ्गिरसः ॥ देवता—सत्यगुणविशिष्टोऽग्निः शुद्धोऽग्निर्वा ॥ छन्दः—१, ३ विराट्त्रिष्टुप्; २, ७, ८, ११ त्रिष्टुप्; ४-६, १० निचृत्त्रिष्टुप्; ९ भुरिक्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१-८, १०, ११ धैवतः; ९ पञ्चमः ॥

अथ प्रथमो वर्गः ॥ १ ॥

द्वे विरूपे चरतः स्वर्थे अन्यान्या वत्समुप धापयेते ।
हरिरन्यस्यां भवति स्वधावाञ्छुक्रो अन्यस्यां ददृशे सुवर्चाः ॥ १ ॥
दशेमं त्वष्टुर्जनयन्त गर्भमतन्द्रासो युवतयो विभृत्रम् ।
तिग्मानीकं स्वयशसं जनेषु विरोचमानं परि षीं नयन्ति ॥ २ ॥
त्रीणि जाना परि भूषन्त्यस्य समुद्र एकं दिव्येकमप्सु ।
पूर्वामनु प्र दिशं पार्थिवानामृतून्प्रशासद्वि दधावनुष्ठु ॥ ३ ॥
क इमं वो निण्यमा चिकेत वत्सो मातृर्जनयत स्वधाभिः ।
बह्वीनां गर्भो अपसामुपस्थान्महान्कविर्निश्चरति स्वधावान् ॥ ४ ॥
आविष्ट्यो वर्धते चारुरासु जिह्मानामूर्ध्वः स्वयशा उपस्थे ।
उभे त्वष्टुर्बिभ्यतुर्जायमानात्प्रतीची सिंहं प्रति जोषयेते ॥ ५ ॥

अथ द्वितीयो वर्गः ॥ २ ॥

उभे भद्रे जोषयेते न मेने गावो न वाश्रा उप तस्थुरेवैः ।
स दक्षाणां दक्षपतिर्बभूवाञ्जन्ति यं दक्षिणतो हविर्भिः ॥ ६ ॥
उद्यंयमीति सवितेव बाहू उभे सिचौ यतते भीम ऋञ्जन् ।
उच्छुक्रमत्कमजते सिमस्मान्नवा मातृभ्यो वसना जहाति ॥ ७ ॥
त्वेषं रूपं कृणुत उत्तरं यत्संपृञ्चानः सदने गोभिरद्भिः ।
कविर्बुध्नं परि मर्मृज्यते धीः सा देवताता समितिर्बभूव ॥ ८ ॥
उरु ते ज्रयः पर्येति बुध्नं विरोचमानं महिषस्य धाम ।
विश्वेभिरग्ने स्वयशोभिरिद्धोऽदब्धेभिः पायुभिः पाह्यस्मान् ॥ ९ ॥

धन्वन्त्स्रोतः कृणुते गातुमूर्मिं शुक्रैरूर्मिभिरभि नक्षति क्षाम्।
विश्वा सनानि जठरेषु धत्तेऽन्तर्नवासु चरति प्रसूषु ॥ १० ॥
एवा नो अग्ने समिधा वृधानो रेवत्पावक श्रवसे वि भाहि।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ११ ॥

[९६] षण्णवतितमं सूक्तम्

ऋषिः—कुत्स आङ्गिरसः ॥ देवता—द्रविणोदा अग्निः शुद्धोऽग्निर्वा ॥
छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

अथ तृतीयो वर्गः ॥ ३ ॥

स प्रत्नथा सहसा जायमानः सद्यः काव्यानि बळधत्त विश्वा।
आपश्च मित्रं धिषणा च साधन्देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥ १ ॥
स पूर्वया निविदा कव्यतायोरिमाः प्रजा अजनयन्मनूनाम्।
विवस्वता चक्षसा द्यामपश्च देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥ २ ॥
तमीळत प्रथमं यज्ञसाधं विश आरीराहुतमृञ्जसानम् ।
ऊर्जः पुत्रं भरतं सृप्रदानुं देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥ ३ ॥
स मातरिश्वा पुरुवारपुष्टिर्विदद्गातुं तनयाय स्वर्वित् ।
विशां गोपा जनिता रोदस्योर्देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥ ४ ॥
नक्तोषासा वर्णमामेम्याने धापयेते शिशुमेकं समीची ।
द्यावाक्षामा रुक्मो अन्तर्वि भाति देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥ ५ ॥

अथ चतुर्थो वर्गः ॥ ४ ॥

रायो बुध्नः संगमनो वसूनां यज्ञस्य केतुर्मन्मसाधनो वेः।
अमृतत्वं रक्षमाणास एनं देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥ ६ ॥
नू च पुरा च सदनं रयीणां जातस्य च जायमानस्य च क्षाम्।
सतश्च गोपां भवतश्च भूरेर्देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥ ७ ॥
द्रविणोदा द्रविणसस्तुरस्य द्रविणोदाः सनरस्य प्र यंसत्।
द्रविणोदा वीरवतीमिषं नो द्रविणोदा रासते दीर्घमायुः ॥ ८ ॥
एवा नो अग्ने समिधा वृधानो रेवत्पावक श्रवसे वि भाहि।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ९ ॥

[९७] सप्तनवतितमं सूक्तम्

ऋषिः—कुत्स आङ्गिरसः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१, ७, ८ पिपीलिकामध्या निचृद्गायत्री; २, ४, ५ गायत्री; ३, ६ निचृद्गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

अथ पञ्चमो वर्गः ॥ ५ ॥

अप नः शोशुचदघमग्ने शुशुग्ध्या रयिम्। अप नः शोशुचदघम् ॥ १ ॥
सुक्षेत्रिया सुगातुया वसूया च यजामहे। अप नः शोशुचदघम् ॥ २ ॥
प्र यद्भन्दिष्ठ एषां प्रास्माकासश्च सूरयः। अप नः शोशुचदघम् ॥ ३ ॥
प्र यत्ते अग्ने सूरयो जायेमहि प्र ते वयम्। अप नः शोशुचदघम् ॥ ४ ॥
प्र यदग्नेः सहस्वतो विश्वतो यन्ति भानवः। अप नः शोशुचदघम् ॥ ५ ॥
त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि। अप नः शोशुचदघम् ॥ ६ ॥
द्विषो नो विश्वतोमुखाति नावेव पारय। अप नः शोशुचदघम् ॥ ७ ॥
स नः सिन्धुमिव नावयाति पर्षा स्वस्तये। अप नः शोशुचदघम् ॥ ८ ॥

[९८] अष्टनवतितमं सूक्तम्

ऋषिः—कुत्स आङ्गिरसः ॥ देवता—अग्निर्वैश्वानरः ॥ छन्दः—१ विराट्त्रिष्टुप्; २ त्रिष्टुप्; ३ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

अथ षष्ठो वर्गः ॥ ६ ॥

वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः।
इतो जातो विश्वमिदं वि चष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण ॥ १ ॥
पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः पृथिव्यां पृष्टो विश्वा ओषधीरा विवेश।
वैश्वानरः सहसा पृष्टो अग्निः स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम् ॥ २ ॥
वैश्वानर तव तत्सत्यमस्त्वस्मान् रायो मघवानः सचन्ताम्।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ३ ॥

[९९] नवनवतितमं सूक्तम्

ऋषिः—कश्यपो मरीचिपुत्रः ॥ देवता—अग्निर्जातवेदाः ॥ छन्दः—निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

अथ सप्तमो वर्गः ॥ ७ ॥

जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो नि दहाति वेदः।
स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॥ १ ॥

[१००] शततमं सूक्तम्

ऋषिः—वृषागिरो महाराजस्य पुत्रभूता वार्षागिरा ऋज्राश्वाम्बरीषसहदेव भयमानसुराधसः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१, ५ पङ्क्तिः; २, १३, १७ स्वराट्पङ्क्तिः; ३, ४, ११, १८ विराट्त्रिष्टुप्; ६, १०, १६ भुरिक्पङ्क्तिः; ७, ८, ९, १२, १४, १५, १९ निचृत्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—१, २, ५, ६, १०, १३, १६, १७ पञ्चमः; ३, ४, ७-९, ११, १२, १४, १५, १८, १९ धैवतः॥

अथ अष्टमो वर्गः॥ ८॥

स यो वृषा वृष्ण्येभिः समोका महो दिवः पृथिव्याश्च सम्राट्।
सतीनसत्वा हव्यो भरेषु मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ १ ॥
यस्यानाप्तः सूर्यस्येव यामो भरेभरे वृत्रहा शुष्मो अस्ति।
वृषन्तमः सखिभिः स्वेभिरेवैर्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती॥ २॥
दिवो न यस्य रेतसो दुघानाः पन्थासो यन्ति शवसापरीताः।
तरद् द्वेषाः सासहिः पौंस्येभिर्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती॥ ३॥
सो अङ्गिरोभिरङ्गिरस्तमो भूद् वृषा वृषभिः सखिभिः सखा सन्।
ऋग्मिभिर्ऋग्मी गातुभिर्ज्येष्ठो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती॥ ४॥
स सूनुभिर्न रुद्रेभिर्ऋभ्वा नृषाह्ये सासह्वाँ अमित्रान् ।
सनीळेभिः श्रवस्यानि तूर्वन्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ५ ॥

अथ नवमो वर्गः॥ ९॥

स मन्युमीः समदनस्य कर्तास्माकेभिर्नृभिः सूर्यं सनत् ।
अस्मिन्नहन्त्सत्पतिः पुरुहूतो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती॥ ६॥
तमूतयो रणयञ्छूरसातौ तं क्षेमस्य क्षितयः कृण्वत त्राम्।
स विश्वस्य करुणस्येश एको मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती॥ ७॥
तमप्सन्त शवस उत्सवेषु नरो नरमवसे तं धनाय ।
सो अन्धे चित्तमसि ज्योतिर्विदन्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती॥ ८॥
स सव्येन यमति व्राधतश्चित्स दक्षिणे संगृभीता कृतानि।
स कीरिणा चित्सनिता धनानि मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती॥ ९॥
स ग्रामेभिः सनिता स रथेभिर्विदे विश्वाभिः कृष्टिभिर्न्वद्य।
स पौंस्येभिरभिभूरशस्तीर्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ १० ॥

अथ दशमो वर्गः॥ १०॥

स जामिभिर्यत्समजाति मीळ्हेऽजामिभिर्वा पुरुहूत एवैः।
अपां तोकस्य तनयस्य जेषे मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती॥ ११॥
स वज्रभृद्दस्युहा भीम उग्रः सहस्रचेताः शतनीथ ऋभ्वा।
चम्रीषो न शवसा पाञ्चजन्यो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती॥ १२॥
तस्य वज्रः क्रन्दति स्मत्स्वर्षा दिवो न त्वेषो रवथः शिमीवान्।
तं सचन्ते सनयस्तं धनानि मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती॥ १३॥
यस्याजस्रं शवसा मानमुक्थं परिभुजद्रोदसी विश्वतः सीम्।
स पारिषत्क्रतुभिर्मन्दसानो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती॥ १४॥
न यस्य देवा देवता न मर्ता आपश्चन शवसो अन्तमापुः।
स प्ररिक्वा त्वक्षसा क्ष्मो दिवश्च मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती॥ १५॥

अथ एकादशो वर्गः॥ ११॥

रोहिच्छ्यावा सुमदंशुर्ललामीर्द्युक्षा राय ऋज्राश्वस्य ।
वृषण्वन्तं बिभ्रती धूर्षु रथं मन्द्रा चिकेत नाहुषीषु विक्षु॥ १६॥
एतत्त्यत्त इन्द्र वृष्ण उक्थं वार्षागिरा अभि गृणन्ति राधः।
ऋज्राश्वः प्रष्टिभिरम्बरीषः सहदेवो भयमानः सुराधाः॥ १७॥
दस्यूञ्छिम्यूँश्च पुरुहूत एवैर्हत्वा पृथिव्यां शर्वा नि बर्हीत्।
सनत्क्षेत्रं सखिभिः श्वित्न्येभिः सनत्सूर्यं सनदपः सुवज्रः॥ १८॥
विश्वाहेन्द्रो अधिवक्ता नो अस्त्वपरिह्वृताः सनुयाम वाजम्।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः॥ १९॥

[१०१] एकोत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—कुत्स आङ्गिरसः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१, ४ निचृज्जगती; २, ५, ७ विराड्जगती; ३ भुरिक्त्रिष्टुप्; ६ स्वराट्त्रिष्टुप्; ८, १० निचृत्त्रिष्टुप्; ९, ११ त्रिष्टुप्॥ स्वरः—१, २, ४, ५, ७ निषादः; ३, ६, ८-११ धैवतः॥

अथ द्वादशो वर्गः॥ १२॥

प्र मन्दिने पितुमदर्चता वचो यः कृष्णगर्भा निरहन्नृजिश्वना।
अवस्यवो वृषणं वज्रदक्षिणं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे॥ १॥

यो व्यंसं जाहृषाणेन मन्युना यः शम्बरं यो अहन्पिप्रुमव्रतम् ।
इन्द्रो यः शुष्णमशुषं न्यावृणङ्मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ २ ॥
यस्य द्यावापृथिवी पौंस्यं महद्यस्य व्रते वरुणो यस्य सूर्यः ।
यस्येन्द्रस्य सिन्धवः सश्चति व्रतं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ ३ ॥
यो अश्वानां यो गवां गोपतिर्वशी य आरितः कर्मणिकर्मणि स्थिरः ।
वीळोश्चिदिन्द्रो यो असुन्वतो वधो मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ ४ ॥
यो विश्वस्य जगतः प्राणतस्पतिर्यो ब्रह्मणे प्रथमो गा अविन्दत् ।
इन्द्रो यो दस्यूँरधराँ अवातिरन् मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ ५ ॥
यः शूरेभिर्हव्यो यश्च भीरुभिर्यो धावद्भिर्हूयते यश्च जिग्युभिः ।
इन्द्रं यं विश्वा भुवनाभि सन्दधुर्मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ ६ ॥

अथ त्रयोदशो वर्गः ॥ १३ ॥

रुद्राणामेति प्रदिशा विचक्षणो रुद्रेभिर्योषा तनुते पृथु ज्रयः ।
इन्द्रं मनीषा अभ्यर्चति श्रुतं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ ७ ॥
यद् वा मरुत्वः परमे सधस्थे यद्वावमे वृजने मादयासे ।
अत आ याह्यध्वरं नो अच्छा त्वाया हविश्चकृमा सत्यराधः ॥ ८ ॥
त्वायेन्द्र सोमं सुषुमा सुदक्ष त्वाया हविश्चकृमा ब्रह्मवाहः ।
अधा नियुत्वः सगणो मरुद्भिरस्मिन् यज्ञे बर्हिषि मादयस्व ॥ ९ ॥
मादयस्व हरिभिर्ये त इन्द्र वि ष्यस्व शिप्रे वि सृजस्व धेने ।
आ त्वा सुशिप्र हरयो वहन्तूशन् हव्यानि प्रति नो जुषस्व ॥ १० ॥
मरुत्स्तोत्रस्य वृजनस्य गोपा वयमिन्द्रेण सनुयाम वाजम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ११ ॥

[१०२] द्व्युत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—कुत्स आङ्गिरसः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१ जगती; २, ४, ९ स्वराट्त्रिष्टुप्; ३, ५-८ निचृज्जगती; १०, ११ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१, ३, ५-८ निषादः; २, ४, ९-११ धैवतः ॥

अथ चतुर्दशो वर्गः ॥ १४ ॥

इमां ते धियं प्र भरे महो महीमस्य स्तोत्रे धिषणा यत्त आनजे ।
तमुत्सवे च प्रसवे च सासहिमिन्द्रं देवासः शवसामदन्ननु ॥ १ ॥
अस्य श्रवो नद्यः सप्त बिभ्रति द्यावाक्षामा पृथिवी दर्शतं वपुः ।
अस्मे सूर्याचन्द्रमसाभिचक्षे श्रद्धे कमिन्द्र चरतो वितर्तुरम् ॥ २ ॥
तं स्मा रथं मघवन् प्राव सातये जैत्रं यं ते अनुमदाम संगमे ।
आजा न इन्द्र मनसा पुरुष्टुत त्वायद्भ्यो मघवञ्छर्म यच्छ नः ॥ ३ ॥
वयं जयेम त्वया युजा वृतमस्माकमंशमुदवा भरेभरे ।
अस्मभ्यमिन्द्र वरिवः सुगं कृधि प्र शत्रूणां मघवन् वृष्ण्या रुज ॥ ४ ॥
नाना हि त्वा हवमाना जना इमे धनानां धर्तरवसा विपन्यवः ।
अस्माकं स्मा रथमा तिष्ठ सातये जैत्रं हीन्द्र निभृतं मनस्तव ॥ ५ ॥

अथ पञ्चदशो वर्गः ॥ १५ ॥

गोजिता बाहू अमितक्रतुः सिमः कर्मन्कर्मञ्छतमूतिः खजंकरः ।
अकल्प इन्द्रः प्रतिमानमोजसाथा जना वि ह्वयन्ते सिषासवः ॥ ६ ॥
उत्ते शतान्मघवन्नुच्च भूयस उत्सहस्राद्रिरिचे कृष्टिषु श्रवः ।
अमात्रं त्वा धिषणा तित्विषे मह्यधा वृत्राणि जिघ्नसे पुरन्दर ॥ ७ ॥
त्रिविष्टिधातु प्रतिमानमोजसस्तिस्रो भूमीर्नृपते त्रीणि रोचना ।
अतीदं विश्वं भुवनं ववक्षिथाशत्रुरिन्द्र जनुषा सनादसि ॥ ८ ॥
त्वां देवेषु प्रथमं हवामहे त्वं बभूथ पृतनासु सासहिः ।
सेमं नः कारुमुपमन्युमुद्भिदमिन्द्रः कृणोतु प्रसवे रथं पुरः ॥ ९ ॥
त्वं जिगेथ न धना रुरोधिथार्भेष्वाजा मघवन्महत्सु च ।
त्वामुग्रमवसे सं शिशीमस्यथा न इन्द्र हवनेषु चोदय ॥ १० ॥
विश्वाहेन्द्रो अधिवक्ता नो अस्त्वपरिह्वृताः सनुयाम वाजम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ११ ॥

[१०३] त्र्युत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—कुत्स आङ्गिरसः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१, ३, ५, ६ निचृत्त्रिष्टुप्; २, ४ विराट्त्रिष्टुप्; ७, ८ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

अथ षोडशो वर्गः ॥ १६ ॥

तत्त इन्द्रियं परमं पराचैरधारयन्त कवयः पुरेदम् ।
क्षमेदमन्यद्दिव्य१न्यदस्य समी पृच्यते समनेव केतुः ॥ १ ॥
स धारयत्पृथिवीं पप्रथच्च वज्रेण हत्वा निरपः ससर्ज ।
अहन्नहिमभिनद्रौहिणं व्यहन्व्यंसं मघवा शचीभिः ॥ २ ॥
स जातूभर्मा श्रद्दधान ओजः पुरो विभिन्दन्नचरद्वि दासीः ।
विद्वान्वज्रिन्दस्यवे हेतिमस्यार्यं सहो वर्धया द्युम्नमिन्द्र ॥ ३ ॥
तदूचुषे मानुषेमा युगानि कीर्तेन्यं मघवा नाम बिभ्रत् ।
उपप्रयन्दस्युहत्याय वज्री यद्ध सूनुः श्रवसे नाम दधे ॥ ४ ॥
तदस्येदं पश्यता भूरि पुष्टं श्रदिन्द्रस्य धत्तन वीर्याय ।
स गा अविन्दत्सो अविन्ददश्वान्त्स ओषधीः सो अपः स वनानि ॥ ५ ॥

अथ सप्तदशो वर्गः ॥ १७ ॥

भूरिकर्मणे वृषभाय वृष्णे सत्यशुष्माय सुनवाम सोमम् ।
य आदृत्या परिपन्थीव शूरोऽयज्वनो विभजन्नेति वेदः ॥ ६ ॥
तदिन्द्र प्रेव वीर्यं चकर्थ यत्ससन्तं वज्रेणाबोधयोऽहिम् ।
अनु त्वा पत्नीर्हृषितं वयश्च विश्वे देवासो अमदन्ननु त्वा ॥ ७ ॥
शुष्णं पिप्रुं कुयवं वृत्रमिन्द्र यदावधीर्वि पुरः शम्बरस्य ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ८ ॥

[१०४] चतुरुत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—कुत्स आङ्गिरसः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१ पङ्क्तिः; २, ४, ५ स्वराट्पङ्क्तिः; ३, ७ त्रिष्टुप्; ६ भुरिक्पङ्क्तिः; ८, ९ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१, २, ४-६ पञ्चमः; ३, ७-९ धैवतः ॥

अथ अष्टादशो वर्गः ॥ १८ ॥

योनिष्ट इन्द्र निषदे अकारि तमा नि षीद स्वानो नार्वा ।
विमुच्या वयोऽवसायाश्वान्दोषा वस्तोर्वहीयसः प्रपित्वे ॥ १ ॥

ओ त्ये नर इन्द्रमूतये गुर्नू चित्तान्त्सद्यो अध्वनो जगम्यात् ।
देवासो मन्युं दासस्य श्चम्नन्ते न आ वक्षन्त्सुविताय वर्णम् ॥ २ ॥
अव त्मना भरते केतवेदा अव त्मना भरते फेनमुदन् ।
क्षीरेण स्नातः कुयवस्य योषे हते ते स्यातां प्रवणे शिफायाः ॥ ३ ॥
युयोप नाभिरुपरस्यायोः प्र पूर्वाभिस्तिरते राष्टि शूरः ।
अञ्जसी कुलिशी वीरपत्नी पयो हिन्वाना उदभिर्भरन्ते ॥ ४ ॥
प्रति यत्स्या नीथादर्शि दस्योरोको नाच्छा सदनं जानती गात् ।
अध स्मा नो मघवञ्चर्कृतादिन्मा नो मघेव निष्षपी परा दाः ॥ ५ ॥

अथ एकोनविंशो वर्गः ॥ १९ ॥

स त्वं न इन्द्र सूर्ये सो अप्स्वनागास्त्व आ भज जीवशंसे ।
मान्तरां भुजमा रीरिषो नः श्रद्धितं ते महत इन्द्रियाय ॥ ६ ॥
अधा मन्ये श्रत्ते अस्मा अधायि वृषा चोदस्व महते धनाय ।
मा नो अकृते पुरुहूत योनाविन्द्र क्षुध्यद्भ्यो वय आसुतिं दाः ॥ ७ ॥
मा नो वधीरिन्द्र मा परा दा मा नः प्रिया भोजनानि प्र मोषीः ।
आण्डा मा नो मघवञ्छक्र निर्भेन्मा नः पात्रा भेत्सहजानुषाणि ॥ ८ ॥
अर्वाङेहि सोमकामं त्वाहुरयं सुतस्तस्य पिबा मदाय ।
उरुव्यचा जठर आ वृषस्व पितेव नः शृणुहि हूयमानः ॥ ९ ॥

[१०५] पञ्चोत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—आप्त्यस्त्रित आङ्गिरसः कुत्सो वा ॥ देवता—विश्वे देवाः ॥ छन्दः—१, २, १२, १६, १७ निचृत्पङ्क्तिः; ३, ४, ६, ९, १५, १८ विराट्पङ्क्तिः; ८, १० स्वराट्पङ्क्तिः; ११, १४ पङ्क्तिः; ५ निचृद्बृहती; ७ भुरिग्बृहती; १३ महाबृहती; १९ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१-४, ६, ८-१२, १४-१८ पञ्चमः; ५, ७, १३ मध्यमः; १९ धैवतः ॥

अथ विंशो वर्गः ॥ २० ॥

चन्द्रमा अप्स्व१न्तरा सुपर्णो धावते दिवि ।
न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १ ॥

अर्थमिद्वा उ अर्थिन आ जाया युवते पतिम् ।
तुञ्जाते वृष्ण्यं पयः परिदाय रसं दुहे वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ २ ॥
मो षु देवा अदः स्व१रव पादि दिवस्परि ।
मा सोम्यस्य शंभुवः शूने भूम कदा चन वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ३ ॥
यज्ञं पृच्छाम्यवमं स तद् दूतो वि वोचति ।
क्व ऋतं पूर्व्यं गतं कस्तद्बिभर्ति नूतनो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ४ ॥
अमी ये देवाः स्थन त्रिष्वा रोचने दिवः ।
कद्व ऋतं कदनृतं क्व प्रत्ना व आहुतिर्वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ५ ॥

अथ एकविंशो वर्गः ॥ २१ ॥

कद्व ऋतस्य धर्णसि कद्वरुणस्य चक्षणम् ।
कदर्यम्णो महस्पथाति क्रामेम दूढ्यो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ६ ॥
अहं सो अस्मि यः पुरा सुते वदामि कानि चित् ।
तं मा व्यन्त्याध्यो३ वृको न तृष्णजं मृगं वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ७ ॥
सं मा तपन्त्यभितः सपत्नीरिव पर्शवः । मूषो न शिश्ना
व्यदन्ति माध्यः स्तोतारं ते शतक्रतो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ८ ॥
अमी ये सप्त रश्मयस्तत्रा मे नाभिरातता ।
त्रितस्तद्वेदाप्त्यः स जामित्वाय रेभति वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ९ ॥
अमी ये पञ्चोक्षणो मध्ये तस्थुर्महो दिवः ।
देवत्रा नु प्रवाच्यं सध्रीचीना नि वावृतुर्वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १० ॥

अथ द्वाविंशो वर्गः ॥ २२ ॥

सुपर्णा एत आसते मध्य आरोधने दिवः ।
ते सेधन्ति पथो वृकं तरन्तं यह्वतीरपो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ११ ॥
नव्यं तदुक्थ्यं हितं देवासः सुप्रवाचनम् ।
ऋतमर्षन्ति सिन्धवः सत्यं तातान सूर्यो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १२ ॥

अग्ने तव त्यदुक्थ्यं देवेष्वस्त्याप्यम् ।
स नः सत्तो मनुष्वदा देवान्यक्षि विदुष्टरो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १३ ॥
सत्तो होता मनुष्वदा देवाँ अच्छा विदुष्टरः ।
अग्निर्हव्या सुषूदति देवो देवेषु मेधिरो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १४ ॥
ब्रह्मा कृणोति वरुणो गातुविदं तमीमहे ।
व्यूर्णोति हृदा मतिं नव्यो जायतामृतं वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १५ ॥

अथ त्रयोविंशो वर्गः ॥ २३ ॥

असौ यः पन्था आदित्यो दिवि प्रवाच्यं कृतः ।
न स देवा अतिक्रमे तं मर्तासो न पश्यथ वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १६ ॥
त्रितः कूपेऽ वहितो देवान्हवत ऊतये ।
तच्छुश्राव बृहस्पतिः कृण्वन्नंहूरणादुरु वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १७ ॥
अरुणो मा सकृद् वृकः पथा यन्तं ददर्श हि ।
उज्जिहीते निचाय्या तष्टेव पृष्ट्यामयी वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १८ ॥
एनाङ्गूषेण वयमिन्द्रवन्तोऽभि ष्याम वृजने सर्ववीराः ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ १९ ॥

षोडशोऽनुवाकः [१०६] षडुत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—कुत्स आङ्गिरसः ॥ देवता—विश्वे देवाः ॥ छन्दः—१-६ जगती;
७ निचृत्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—१-६ निषादः; ७ धैवतः ॥

अथ चतुर्विंशो वर्गः ॥ २४ ॥

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमूतये मारुतं शर्धो अदितिं हवामहे ।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥ १ ॥
त आदित्या आ गता सर्वतातये भूत देवा वृत्रतूर्येषु शंभुवः ।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥ २ ॥
अवन्तु नः पितरः सुप्रवाचना उत देवी देवपुत्रे ऋतावृधा ।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥ ३ ॥

नराशंसं वाजिनं वाजयन्निह क्षयद्वीरं पूषणं सुम्नैरीमहे।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥ ४ ॥
बृहस्पते सदमिन्नः सुगं कृधि शं योर्यत्ते मनुर्हितं तदीमहे।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥ ५ ॥
इन्द्रं कुत्सो वृत्रहणं शचीपतिं काटे निबाळ्ह ऋषिरह्वदूतये।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥ ६ ॥
देवैर्नो देव्यदितिर्नि पातु देवस्त्राता त्रायतामप्रयुच्छन्।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ७ ॥

[१०७] सप्तोत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—कुत्स आङ्गिरसः ॥ देवता—विश्वे देवाः ॥ छन्दः—१ विराट्त्रिष्टुप्; २ निचृत्त्रिष्टुप्; ३ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

अथ पञ्चविंशो वर्गः ॥ २५ ॥

यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवता मृळयन्तः ।
आ वोऽर्वाची सुमतिर्ववृत्यादंहोश्चिद्या वरिवोवित्तरासत् ॥ १ ॥
उप नो देवा अवसा गमन्त्वङ्गिरसां सामभिः स्तूयमानाः ।
इन्द्र इन्द्रियैर्मरुतो मरुद्भिरादित्यैर्नो अदितिः शर्म यंसत् ॥ २ ॥
तन्न इन्द्रस्तद्वरुणस्तदग्निस्तदर्यमा तत्सविता चनो धात् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ३ ॥

[१०८] अष्टोत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—कुत्स आङ्गिरसः ॥ देवता—इन्द्राग्नी ॥ छन्दः—१, ८, १२ निचृत्त्रिष्टुप्; २, ३, ६, ११ विराट्त्रिष्टुप्; ४ भुरिक्पङ्क्तिः; ५ पङ्क्तिः; ७, ९, १०, १३ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१-३, ६-१३ धैवतः; ४, ५ पञ्चमः ॥

अथ षड्विंशो वर्गः ॥ २६ ॥

य इन्द्राग्नी चित्रतमो रथो वामभि विश्वानि भुवनानि चष्टे।
तेना यातं सरथं तस्थिवांसाथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ १ ॥
यावदिदं भुवनं विश्वमस्त्युरुव्यचा वरिमता गभीरम् ।
तावाँ अयं पातवे सोमो अस्त्वरमिन्द्राग्नी मनसे युवभ्याम् ॥ २ ॥

चक्राथे हि सध्र्य१ङ् नाम भद्रं सध्रीचीना वृत्रहणा उत स्थः।
ताविन्द्राग्नी सध्र्यञ्चा निषद्या वृष्णः सोमस्य वृषणा वृषेथाम् ॥ ३ ॥
समिद्धेष्वग्निष्वानजाना यतस्रुचा बर्हिरु तिस्तिराणा ।
तीव्रैः सोमैः परिषिक्तेभिरर्वागेन्द्राग्नी सौमनसाय यातम् ॥ ४ ॥
यानीन्द्राग्नी चक्रथुर्वीर्याणि यानि रूपाण्युत वृष्ण्यानि ।
या वां प्रत्नानि सख्या शिवानि तेभिः सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ ५ ॥

अथ सप्तविंशो वर्गः ॥ २७ ॥

यदब्रवं प्रथमं वां वृणानो३ऽयं सोमो असुरैर्नो विहव्यः।
तां सत्यां श्रद्धामभ्या हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ ६ ॥
यदिन्द्राग्नी मदथः स्वे दुरोणे यद् ब्रह्मणि राजनि वा यजत्रा।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ ७ ॥
यदिन्द्राग्नी यदुषु तुर्वशेषु यद् द्रुह्युष्वनुषु पूरुषु स्थः।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ ८ ॥
यदिन्द्राग्नी अवमस्यां पृथिव्यां मध्यमस्यां परमस्यामुत स्थः।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ ९ ॥
यदिन्द्राग्नी परमस्यां पृथिव्यां मध्यमस्यामवमस्यामुत स्थः।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ १० ॥
यदिन्द्राग्नी दिवि ष्ठो यत्पृथिव्यां यत्पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ ११ ॥
यदिन्द्राग्नी उदिता सूर्यस्य मध्ये दिवः स्वधया मादयेथे।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ १२ ॥
एवेन्द्राग्नी पपिवांसा सुतस्य विश्वास्मभ्यं सं जयतं धनानि।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ १३ ॥

[१०९] नवोत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—कुत्स आङ्गिरसः ॥ देवता—इन्द्राग्नी ॥ छन्दः—१, ३, ४, ६, ८ निचृत्त्रिष्टुप्; २, ५, त्रिष्टुप्; ७ विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

अथ अष्टाविंशो वर्गः ॥ २८ ॥

वि ह्यख्यं मनसा वस्य इच्छन्निन्द्राग्नी ज्ञास उत वा सजातान् ।
नान्या युवत्प्रमतिरस्ति मह्यं स वां धियं वाजयन्तीमतक्षम् ॥ १ ॥
अश्रवं हि भूरिदावत्तरा वां विजामातुरुत वा घा स्यालात् ।
अथा सोमस्य प्रयती युवभ्यामिन्द्राग्नी स्तोमं जनयामि नव्यम् ॥ २ ॥
मा च्छेद्म रश्मीँरिति नाधमानाः पितॄणां शक्तीरनुयच्छमानाः ।
इन्द्राग्निभ्यां कं वृषणो मदन्ति ता ह्यद्री धिषणाया उपस्थे ॥ ३ ॥
युवाभ्यां देवी धिषणा मदायेन्द्राग्नी सोममुशती सुनोति ।
तावश्विना भद्रहस्ता सुपाणी आ धावतं मधुना पृङ्क्तमप्सु ॥ ४ ॥
युवामिन्द्राग्नी वसुनो विभागे तवस्तमा शुश्रव वृत्रहत्ये ।
तावासद्या बर्हिषि यज्ञे अस्मिन्प्र चर्षणी मादयेथां सुतस्य ॥ ५ ॥

अथ एकोनत्रिंशो वर्गः ॥ २९ ॥

प्र चर्षणिभ्यः पृतनाहवेषु प्र पृथिव्या रिरिचाथे दिवश्च ।
प्र सिन्धुभ्यः प्र गिरिभ्यो महित्वा प्रेन्द्राग्नी विश्वा भुवनात्यन्या ॥ ६ ॥
आ भरतं शिक्षतं वज्रबाहू अस्माँ इन्द्राग्नी अवतं शचीभिः ।
इमे नु ते रश्मयः सूर्यस्य येभिः सपित्वं पितरो न आसन् ॥ ७ ॥
पुरंदरा शिक्षतं वज्रहस्तास्माँ इन्द्राग्नी अवतं भरेषु ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ८ ॥

[११०] दशोत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—कुत्स आङ्गिरसः॥ देवता—ऋभवः॥ छन्दः—१, ४ जगती; २, ३, ७ विराड्जगती; ५ निचृत्त्रिष्टुप्; ६, ८ निचृज्जगती; ९ त्रिष्टुप्॥ स्वरः—१-४, ६-८ निषादः; ५, ९ धैवतः॥

अथ त्रिंशो वर्गः ॥ ३० ॥

ततं मे अपस्तदु तायते पुनः स्वादिष्ठा धीतिरुचथाय शस्यते ।
अयं समुद्र इह विश्वदेव्यः स्वाहाकृतस्य समु तृण्णुत ऋभवः ॥ १ ॥
आभोगयं प्र यदिच्छन्त ऐतनापाकाः प्राञ्चो मम के चिदापयः ।
सौधन्वनासश्चरितस्य भूमनागच्छत सवितुर्दाशुषो गृहम् ॥ २ ॥

तत्सविता वोऽ मृतत्वमासुवदगोह्यं यच्छ्रवयन्त ऐतन ।
त्यं चिच्चमसमसुरस्य भक्षणमेकं सन्तमकृणुता चतुर्वयम् ॥ ३ ॥
विष्ट्वी शमी तरणित्वेन वाघतो मर्तासः सन्तो अमृतत्वमानशुः ।
सौधन्वना ऋभवः सूरचक्षसः संवत्सरे समपृच्यन्त धीतिभिः ॥ ४ ॥
क्षेत्रमिव वि ममुस्तेजनेनँ एकं पात्रमृभवो जेहमानम् ।
उपस्तुता उपमं नाधमाना अमर्त्येषु श्रव इच्छमानाः ॥ ५ ॥

अथ एकत्रिंशो वर्गः ॥ ३१ ॥

आ मनीषामन्तरिक्षस्य नृभ्यः स्रुचेव घृतं जुहवाम विद्मना ।
तरणित्वा ये पितुरस्य सश्चिर ऋभवो वाजमरुहन्दिवो रजः ॥ ६ ॥
ऋभुर्न इन्द्रः शवसा नवीयानृभुर्वाजेभिर्वसुभिर्वसुर्ददिः ।
युष्माकं देवा अवसाहनि प्रिये३ऽ भि तिष्ठेम पृत्सुतीरसुन्वताम् ॥ ७ ॥
निश्चर्मण ऋभवो गामपिंशत सं वत्सेनासृजता मातरं पुनः ।
सौधन्वनासः स्वपस्यया नरो जिव्री युवाना पितराकृणोतन ॥ ८ ॥
वाजेभिर्नो वाजसातावविड्ढ्यृभुमाँ इन्द्र चित्रमा दर्षि राधः ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ९ ॥

[१११] एकादशोत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—कुत्स आङ्गिरसः॥ देवता—ऋभवः॥ छन्दः—१-४ जगती; ५ त्रिष्टुप्॥ स्वरः—१-४ निषादः; ५ धैवतः॥

अथ द्वात्रिंशो वर्गः ॥ ३२ ॥

तक्षन्रथं सुवृतं विद्मनापसस्तक्षन्हरी इन्द्रवाहा वृषण्वसू ।
तक्षन्पितृभ्यामृभवो युवद्वयस्तक्षन्वत्साय मातरं सचाभुवम् ॥ १ ॥
आ नो यज्ञाय तक्षत ऋभुमद्वयः क्रत्वे दक्षाय सुप्रजावतीमिषम् ।
यथा क्षयाम सर्ववीरया विशा तन्नः शर्धाय धासथा स्विन्द्रियम् ॥ २ ॥
आ तक्षत सातिमस्मभ्यमृभवः सातिं रथाय सातिमर्वते नरः ।
सातिं नो जैत्रीं सं महेत विश्वहा जामिमजामिं पृतनासु सक्षणिम् ॥ ३ ॥

ऋभुक्षणमिन्द्रमा हुव ऊतय ऋभून्वाजान्मरुतः सोमपीतये।
उभा मित्रावरुणा नूनमश्विना ते नो हिन्वन्तु सातये धिये जिषे॥ ४॥
ऋभुर्भराय सं शिशातु सातिं समर्यजिद्वाजो अस्माँ अविष्टु।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः॥ ५॥

[११२] द्वादशोत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—कुत्स आङ्गिरसः॥ देवता—आदिमे मन्त्रे प्रथमपादस्य द्यावापृथिव्यौ, द्वितीयस्य अग्निः, शिष्टस्य सूक्तस्याश्विनौ॥ छन्दः—१, २, ६, ७, १३, १५, १७, १८, २०-२२ निचृत् जगती; ३, ५, २४ विराट्त्रिष्टुप्; ४, ८, ९, ११, १२, १४, १६, २३ जगती; १० भुरिक्त्रिष्टुप्; १९ विराड्जगती; २५ त्रिष्टुप्॥ स्वरः—१, २, ४, ६-९, ११-२३ निषादः; ३, ५, १०, २४, २५ धैवतः॥

अथ त्रयस्त्रिंशो वर्गः॥ ३३॥

ईळे द्यावापृथिवी पूर्वचित्तयेऽग्निं घर्मं सुरुचं यामन्निष्टये।
याभिर्भरे कारमंशाय जिन्वथस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥ १॥
युवोर्दानाय सुभरा असश्चतो रथमा तस्थुर्वचसं न मन्तवे।
याभिर्धियोऽवथः कर्मन्निष्टये ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥ २॥
युवं तासां दिव्यस्य प्रशासने विशां क्षयथो अमृतस्य मज्मना।
याभिर्धेनुमस्वं१ पिन्वथो नरा ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥ ३॥
याभिः परिज्मा तनयस्य मज्मना द्विमाता तूर्षु तरणिर्विभूषति।
याभिस्त्रिमन्तुरभवद्विचक्षणस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥ ४॥
याभी रेभं निवृतं सितमद्भ्य उद्वन्दनमैरयतं स्वर्दृशे।
याभिः कण्वं प्र सिषासन्तमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥ ५॥

अथ चतुस्त्रिंशो वर्गः॥ ३४॥

याभिरन्तकं जसमानमारणे भुज्युं याभिरव्यथिभिर्जिजिन्वथुः।
याभिः कर्कन्धुं वय्यं च जिन्वथस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥ ६॥
याभिः शुचन्तिं धनसां सुषंसदं तप्तं घर्ममोम्यावन्तमत्रये ।
याभिः पृश्निगुं पुरुकुत्समावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥ ७॥

याभिः शचीभिर्वृषणा परावृजं प्रान्धं श्रोणं चक्षस एतवे कृथः।
याभिर्वर्तिकां ग्रसिताममुञ्चतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥ ८॥
याभिः सिन्धुं मधुमन्तमसश्चतं वसिष्ठं याभिरजरावजिन्वतम्।
याभिः कुत्सं श्रुतर्यं नर्यमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥ ९॥
याभिर्विश्पलां धनसामथर्व्यं सहस्रमीळ्ह आजावजिन्वतम्।
याभिर्वशमश्व्यं प्रेणिमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥ १०॥

अथ पञ्चत्रिंशो वर्गः॥ ३५॥

याभिः सुदानू औशिजाय वणिजे दीर्घश्रवसे मधु कोशो अक्षरत्।
कक्षीवन्तं स्तोतारं याभिरावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥ ११॥
याभी रसां क्षोदसोद्नः पिपिन्वथुरनश्वं याभी रथमावतं जिषे।
याभिस्त्रिशोक उस्रिया उदाजत ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥ १२॥
याभिः सूर्यं परियाथः परावति मन्धातारं क्षैत्रपत्येष्वावतम्।
याभिर्विप्रं प्र भरद्वाजमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥ १३॥
याभिर्महामतिथिग्वं कशोजुवं दिवोदासं शम्बरहत्य आवतम्।
याभिः पूर्भिद्ये त्रसदस्युमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥ १४॥
याभिर्वम्रं विपिपानमुपस्तुतं कलिं याभिर्वित्तजानिं दुवस्यथः।
याभिर्व्यश्वमुत पृथिमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥ १५॥

अथ षट्त्रिंशो वर्गः॥ ३६॥

याभिर्नरा शयवे याभिरत्रये याभिः पुरा मनवे गातुमीषथुः।
याभिः शारीराजतं स्यूमरश्मये ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥ १६॥
याभिः पठर्वा जठरस्य मज्मनाग्निर्नादीदेच्चित इद्धो अज्मन्ना।
याभिः शर्यातमवथो महाधने ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥ १७॥
याभिरङ्गिरो मनसा निरण्यथोऽग्रं गच्छथो विवरे गोअर्णसः।
याभिर्मनुं शूरमिषा समावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥ १८॥
याभिः पत्नीर्विमदाय न्यूहथुरा घ वा याभिररुणीरशिक्षतम्।
याभिः सुदास ऊहथुः सुदेव्यं१ ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥ १९॥

याभिः शन्ताती भवथो ददाशुषे भुज्युं याभिरवथो याभिरध्रिगुम्।
ओम्यावतीं सुभरामृतस्तुभं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥ २०॥

अथ सप्तत्रिंशो वर्गः॥ ३७॥

याभिः कृशानुमसने दुवस्यथो जवे याभिर्यूनो अर्वन्तमावतम्।
मधु प्रियं भरथो यत्सरड्भ्यस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥ २१॥
याभिर्नरं गोषुयुधं नृषाह्ये क्षेत्रस्य साता तनयस्य जिन्वथः।
याभी रथाँ अवथो याभिरर्वतस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥ २२॥
याभिः कुत्समार्जुनेयं शतक्रतू प्र तुर्वीतिं प्र च दभीतिमावतम्।
याभिर्ध्वसन्तिं पुरुषन्तिमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥ २३॥
अप्नस्वतीमश्विना वाचमस्मे कृतं नो दस्रा वृषणा मनीषाम्।
अद्यूत्येऽवसे नि ह्वये वां वृधे च नो भवतं वाजसातौ॥ २४॥
द्युभिरक्तुभिः परि पातमस्मानरिष्टेभिरश्विना सौभगेभिः।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः॥ २५॥

इति प्रथमाष्टके सप्तमोऽध्यायः ॥

अथाष्टमोऽध्यायः

[११३] त्रयोदशोत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—कुत्स आङ्गिरसः॥ देवता—उषाः, द्वितीयस्यार्द्धर्चस्य रात्रिरपि॥ छन्दः—१, ३, ९, १२, १७ निचृत्त्रिष्टुप्; २, ५ स्वराट्पङ्क्तिः; ४, ८, १०, ११, १५, १६ भुरिक्पङ्क्तिः; ६ त्रिष्टुप्; ७, १८-२० विराट्त्रिष्टुप्; १३, १४ निचृत्पङ्क्तिः॥ स्वरः—१, ३, ६, ७, ९, १२, १७-२० धैवतः; २, ४, ५, ८, १०, ११, १३-१६ पञ्चमः॥

अथ प्रथमो वर्गः॥ १॥

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागाच्चित्रः प्रकेतो अजनिष्ट विभ्वा।
यथा प्रसूता सवितुः सवायँ एवा रात्र्युषसे योनिमारैक्॥ १॥
रुशद्वत्सा रुशती श्वेत्यागादारैगु कृष्णा सदनान्यस्याः।
समानबन्धू अमृते अनूची द्यावा वर्णं चरत आमिनाने॥ २॥

समानो अध्वा स्वस्रोरनन्तस्तमन्यान्या चरतो देवशिष्टे।
न मेथेते न तस्थतुः सुमेके नक्तोषासा समनसा विरूपे॥ ३॥
भास्वती नेत्री सूनृतानामचेति चित्रा वि दुरो न आवः।
प्रार्प्या जगद्व्यु नो रायो अख्यदुषा अजीगर्भुवनानि विश्वा॥ ४॥
जिह्मश्ये३ चरितवे मघोन्याभोगय इष्टये राय उ त्वम्।
दभ्रं पश्यद्भ्य उर्विया विचक्ष उषा अजीगर्भुवनानि विश्वा॥ ५॥

अथ द्वितीयो वर्गः॥ २॥

क्षत्राय त्वं श्रवसे त्वं महीया इष्टये त्वमर्थमिव त्वमित्यै ।
विसदृशा जीविताभिप्रचक्ष उषा अजीगर्भुवनानि विश्वा ॥ ६॥
एषा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शि व्युच्छन्ती युवतिः शुक्रवासाः ।
विश्वस्येशाना पार्थिवस्य वस्व उषो अद्येह सुभगे व्युच्छ ॥ ७॥
परायतीनामन्वेति पाथ आयतीनां प्रथमा शश्वतीनाम् ।
व्युच्छन्ती जीवमुदीरयन्त्युषा मृतं कं चन बोधयन्ती ॥ ८॥
उषो यदग्निं समिधे चकर्थ वि यदावश्चक्षसा सूर्यस्य ।
यन्मानुषान्यक्ष्यमाणाँ अजीगस्तद्देवेषु चकृषे भद्रमप्नः ॥ ९॥
कियात्या यत्समया भवाति या व्यूषुर्याश्च नूनं व्युच्छान्।
अनु पूर्वाः कृपते वावशाना प्रदीध्याना जोषमन्याभिरेति॥ १०॥

अथ तृतीयो वर्गः॥ ३॥

ईयुष्टे ये पूर्वतरामपश्यन्व्युच्छन्तीमुषसं मर्त्यासः ।
अस्माभिरू नु प्रतिचक्ष्याभूदो ते यन्ति ये अपरीषु पश्यान्॥ ११॥
यावयद्द्वेषा ऋतपा ऋतेजाः सुम्नावरी सूनृता ईरयन्ती।
सुमङ्गलीर्बिभ्रती देववीतिमिहाद्योषः श्रेष्ठतमा व्युच्छ ॥ १२॥
शश्वत्पुरोषा व्युवास देव्यथो अद्येदं व्यावो मघोनी ।
अथो व्युच्छादुत्तराँ अनु द्यूनजरामृता चरति स्वधाभिः॥ १३॥
व्य१ञ्जिभिर्दिव आतास्वद्यौदप कृष्णां निर्णिजं देव्यावः।
प्रबोधयन्त्यरुणेभिरश्वैरोषा याति सुयुजा रथेन ॥ १४॥

आवहन्ती पोष्या वार्याणि चित्रं केतुं कृणुते चेकिताना।
ईयुषीणामुपमा शश्वतीनां विभातीनां प्रथमोषा व्यश्वैत् ॥ १५ ॥

अथ चतुर्थो वर्गः ॥ ४ ॥

उदीर्ध्वं जीवो असुर्न आगादप प्रागात्तम आ ज्योतिरेति।
आरैक्पन्थां यातवे सूर्यायागन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः ॥ १६ ॥
स्यूमना वाच उदियर्ति वह्निः स्तवानो रेभ उषसो विभातीः।
अद्या तदुच्छ गृणते मघोन्यस्मे आयुर्नि दिदीहि प्रजावत् ॥ १७ ॥
या गोमतीरुषसः सर्ववीरा व्युच्छन्ति दाशुषे मर्त्याय।
वायोरिव सूनृतानामुदर्के ता अश्वदा अश्नवत्सोमसुत्वा ॥ १८ ॥
माता देवानामदितेरनीकं यज्ञस्य केतुर्बृहती वि भाहि।
प्रशस्तिकृद् ब्रह्मणे नो व्युच्छा नो जने जनय विश्ववारे ॥ १९ ॥
यच्चित्रमप्न उषसो वहन्तीजानाय शशमानाय भद्रम्।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ २० ॥

[११४] चतुर्दशोत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—कुत्स आङ्गिरसः॥ देवता—रुद्रः॥ छन्दः—१ जगती; २, ७ निचृज्जगती; ३, ६, ८, ९ विराड्जगती; ४, ५, ११ भुरिक्त्रिष्टुप्; १० निचृत्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—१-३, ६-९ निषादः; ४, ५, १०, ११ धैवतः॥

अथ पञ्चमो वर्गः ॥ ५ ॥

इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्र भरामहे मतीः।
यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम् ॥ १ ॥
मृळा नो रुद्रोत नो मयस्कृधि क्षयद्वीराय नमसा विधेम ते।
यच्छं च योश्च मनुरायेजे पिता तदश्याम तव रुद्र प्रणीतिषु ॥ २ ॥
अश्याम ते सुमतिं देवयज्यया क्षयद्वीरस्य तव रुद्र मीढ्वः।
सुम्नायन्निद्विशो अस्माकमा चरारिष्टवीरा जुहवाम ते हविः ॥ ३ ॥
त्वेषं वयं रुद्रं यज्ञसाधं वङ्कुं कविमवसे नि ह्वयामहे।
आरे अस्मद्दैव्यं हेळो अस्यतु सुमतिमिद्वयमस्या वृणीमहे ॥ ४ ॥

दिवो वराहमरुषं कपर्दिनं त्वेषं रूपं नमसा नि ह्वयामहे।
हस्ते बिभ्रद्भेषजा वार्याणि शर्म वर्म च्छर्दिरस्मभ्यं यंसत् ॥ ५ ॥

अथ षष्ठो वर्गः ॥ ६ ॥

इदं पित्रे मरुतामुच्यते वचः स्वादोः स्वादीयो रुद्राय वर्धनम्।
रास्वा च नो अमृत मर्तभोजनं त्मने तोकाय तनयाय मृळ ॥ ६ ॥
मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम्।
मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः ॥ ७ ॥
मा नस्तोके तनये मा न आयौ मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः।
वीरान्मा नो रुद्र भामितो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे ॥ ८ ॥
उप ते स्तोमान्पशुपाइवाकरं रास्वा पितर्मरुतां सुम्नमस्मे।
भद्रा हि ते सुमतिर्मृळयत्तमाथा वयमव इत्ते वृणीमहे ॥ ९ ॥
आरे ते गोघ्नमुत पूरुषघ्नं क्षयद्वीर सुम्नमस्मे ते अस्तु।
मृळा च नो अधि च ब्रूहि देवाधा च नः शर्म यच्छ द्विबर्हाः ॥ १० ॥
अवोचाम नमो अस्मा अवस्यवः शृणोतु नो हवं रुद्रो मरुत्वान्।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ११ ॥

[११५] पञ्चदशोत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—कुत्स आङ्गिरसः॥ देवता—सूर्यः॥ छन्दः—१, २, ६ निचृत्त्रिष्टुप्; ३ विराट्त्रिष्टुप्; ४, ५ त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

अथ सप्तमो वर्गः ॥ ७ ॥

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥ १ ॥
सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां मर्यो न योषामभ्येति पश्चात्।
यत्रा नरो देवयन्तो युगानि वितन्वते प्रति भद्राय भद्रम् ॥ २ ॥
भद्रा अश्वा हरितः सूर्यस्य चित्रा एतग्वा अनुमाद्यासः।
नमस्यन्तो दिव आ पृष्ठमस्थुः परि द्यावापृथिवी यन्ति सद्यः ॥ ३ ॥

तत्सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तोर्विततं सं जभार।
यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै ॥ ४ ॥
तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे।
अनन्तमन्यद्रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सं भरन्ति ॥ ५ ॥
अद्या देवा उदिता सूर्यस्य निरंहसः पिपृता निरवद्यात्।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ६ ॥

सप्तदशोऽनुवाकः [११६] षोडशोत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—कक्षीवान्॥ देवता—अश्विनौ॥ छन्दः—१, १०, २२, २३ विराट्त्रिष्टुप्; २, ८, ९, १२-१५, १८, २०, २४, २५ निचृत्त्रिष्टुप्; ३-५ ७, २१ त्रिष्टुप्; ६, १६, १९, भुरिक्पङ्क्तिः; ११ पङ्क्तिः; १७ स्वराट्पङ्क्तिः॥ स्वरः—१-५, ७-१०, १२-१५, १८, २०-२५ धैवतः; ६, ११, १६, १७, १९ पञ्चमः॥

अथ अष्टमो वर्गः ॥ ८ ॥

नासत्याभ्यां बर्हिरिव प्र वृञ्जे स्तोमाँ इयर्म्यभ्रियेव वातः ।
यावर्भगाय विमदाय जायां सेनाजुवा न्यूहतू रथेन ॥ १ ॥
वीळुपत्मभिराशुहेमभिर्वा देवानां वा जूतिभिः शाशदाना ।
तद्रासभो नासत्या सहस्रमाजा यमस्य प्रधने जिगाय ॥ २ ॥
तुग्रो ह भुज्युमश्विनोदमेघे रयिं न कश्चिन्ममृवाँ अवाहाः ।
तमूहथुर्नौभिरात्मन्वतीभिरन्तरिक्षप्रुद्भिरपोदकाभिः ॥ ३ ॥
तिस्रः क्षपस्त्रिरहातिव्रजद्भिर्नासत्या भुज्युमूहथुः पतङ्गैः ।
समुद्रस्य धन्वन्नार्द्रस्य पारे त्रिभी रथैः शतपद्भिः षळश्वैः ॥ ४ ॥
अनारम्भणे तदवीरयेथामनास्थाने अग्रभणे समुद्रे ।
यदश्विना ऊहथुर्भुज्युमस्तं शतारित्रां नावमातस्थिवांसम् ॥ ५ ॥

अथ नवमो वर्गः ॥ ९ ॥

यमश्विना ददथुः श्वेतमश्वमघाश्वाय शश्वदित्स्वस्ति ।
तद्वां दात्रं महि कीर्तेन्यं भूत्पैद्वो वाजी सदमिद्धव्यो अर्यः ॥ ६ ॥
युवं नरा स्तुवते पज्रियाय कक्षीवते अरदतं पुरन्धिम् ।
कारोतराच्छफादश्वस्य वृष्णः शतं कुम्भाँ असिञ्चतं सुरायाः ॥ ७ ॥

हिमेनाग्निं घ्रंसमवारयेथां पितुमतीमूर्जमस्मा अधत्तम् ।
ऋबीसे अत्रिमश्विनावनीतमुन्निन्यथुः सर्वगणं स्वस्ति ॥ ८ ॥
परावतं नासत्यानुदेथामुच्चाबुध्नं चक्रथुर्जिह्मबारम् ।
क्षरन्नापो न पायनाय राये सहस्राय तृष्यते गोतमस्य ॥ ९ ॥
जुजुरुषो नासत्योत वव्रिं प्रामुञ्चतं द्रापिमिव च्यवानात्।
प्रातिरतं जहितस्यायुर्दस्रादित्पतिमकृणुतं कनीनाम् ॥ १० ॥

अथ दशमो वर्गः ॥ १० ॥

तद्वां नरा शंस्यं राध्यं चाभिष्टिमन्नासत्या वरूथम् ।
यद्विद्वांसा निधिमिवापगूळ्हमुद्दर्शतादूपथुर्वन्दनाय ॥ ११ ॥
तद्वां नरा सनये दंस उग्रमाविष्कृणोमि तन्यतुर्न वृष्टिम्।
दध्यङ् ह यन्मध्वाथर्वणो वामश्वस्य शीर्ष्णा प्र यदीमुवाच ॥ १२ ॥
अजोहवीन्नासत्या करा वां महे यामन्पुरुभुजा पुरन्धिः।
श्रुतं तच्छासुरिव वध्रिमत्या हिरण्यहस्तमश्विनावदत्तम् ॥ १३ ॥
आस्नो वृकस्य वर्तिकामभीके युवं नरा नासत्यामुमुक्तम्।
उतो कविं पुरुभुजा युवं ह कृपमाणमकृणुतं विचक्षे ॥ १४ ॥
चरित्रं हि वेरिवाच्छेदि पर्णमाजा खेलस्य परितक्म्यायाम्।
सद्यो जङ्घामायसीं विश्पलायै धने हिते सर्तवे प्रत्यधत्तम् ॥ १५ ॥

अथ एकादशो वर्गः ॥ ११ ॥

शतं मेषान्वृक्ये चक्षदानमृज्राश्वं तं पितान्धं चकार ।
तस्मा अक्षी नासत्या विचक्ष आधत्तं दस्रा भिषजावनर्वन् ॥ १६ ॥
आ वां रथं दुहिता सूर्यस्य कार्ष्मेवातिष्ठदर्वता जयन्ती।
विश्वे देवा अन्वमन्यन्त हृद्भिः समु श्रिया नासत्या सचेथे ॥ १७ ॥
यदयातं दिवोदासाय वर्तिर्भरद्वाजायाश्विना हयन्ता ।
रेवदुवाह सचनो रथो वां वृषभश्च शिंशुमारश्च युक्ता ॥ १८ ॥
रयिं सुक्षत्रं स्वपत्यमायुः सुवीर्यं नासत्या वहन्ता ।
आ जह्नावीं समनसोप वाजैस्त्रिरह्नो भागं दधतीमयातम् ॥ १९ ॥

परिविष्टं जाहुषं विश्वतः सीं सुगेभिर्नक्तमूहथू रजोभिः ।
विभिन्दुना नासत्या रथेन वि पर्वताँ अजरयू अयातम् ॥ २० ॥

अथ द्वादशो वर्गः ॥ १२ ॥

एकस्या वस्तोरावतं रणाय वशमश्विना सनये सहस्रा ।
निरहतं दुच्छुना इन्द्रवन्ता पृथुश्रवसो वृषणावरातीः ॥ २१ ॥
शरस्य चिदार्चत्कस्यावतादा नीचादुच्चा चक्रथुः पातवे वाः ।
शयवे चिन्नासत्या शचीभिर्जसुरये स्तर्यं पिप्यथुर्गाम् ॥ २२ ॥
अवस्यते स्तुवते कृष्णियाय ऋजूयते नासत्या शचीभिः ।
पशुं न नष्टमिव दर्शनाय विष्णाप्वं ददथुर्विश्वकाय ॥ २३ ॥
दश रात्रीरशिवेना नव द्यूनवनद्धं श्नथितमप्स्वन्तः ।
विप्रुतं रेभमुदनि प्रवृक्तमुन्निन्यथुः सोममिव स्रुवेण ॥ २४ ॥
प्र वां दंसांस्यश्विनाववोचमस्य पतिः स्यां सुगवः सुवीरः ।
उत पश्यन्नश्नुवन्दीर्घमायुरस्तमिवेज्जरिमाणं जगम्याम् ॥ २५ ॥

[११७] सप्तदशोत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—कक्षीवान् ॥ देवता—अश्विनौ ॥ छन्दः—१ निचृत्पङ्क्तिः; २, ४, ७, १२, १६-१९ निचृत् त्रिष्टुप्; ३, ५, २४ त्रिष्टुप्; ६, २२ विराट्पङ्क्तिः; ८-१०, १३-१५, २०, २३ विराट् त्रिष्टुप्; ११, २१, २५ भुरिक्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१, ६, ११, २१, २२, २५ पञ्चमः; २-५, ७-१०, १२-२०, २३, २४ धैवतः ॥

अथ त्रयोदशो वर्गः ॥ १३ ॥

मध्वः सोमस्याश्विना मदाय प्रत्नो होता विवासते वाम् ।
बर्हिष्मती रातिर्विश्रिता गीरिषा यातं नासत्योप वाजैः ॥ १ ॥
यो वामश्विना मनसो जवीयान्रथः स्वश्वो विश आजिगाति ।
येन गच्छथः सुकृतो दुरोणं तेन नरा वर्तिरस्मभ्यं यातम् ॥ २ ॥
ऋषिं नरावंहसः पाञ्चजन्यमृबीसादत्रिं मुञ्चथो गणेन ।
मिनन्ता दस्योरशिवस्य माया अनुपूर्वं वृषणा चोदयन्ता ॥ ३ ॥
अश्वं न गूळ्हमश्विना दुरेवैर्ऋषिं नरा वृषणा रेभमप्सु ।
सं तं रिणीथो विप्रुतं दंसोभिर्न वां जूर्यन्ति पूर्व्या कृतानि ॥ ४ ॥

सुषुप्वांसं न निर्ऋतेरुपस्थे सूर्यं न दस्रा तमसि क्षियन्तम् ।
शुभे रुक्मं न दर्शतं निखातमुदूपथुरश्विना वन्दनाय ॥ ५ ॥

अथ चतुर्दशो वर्गः ॥ १४ ॥

तद्वां नरा शंस्यं पज्रियेण कक्षीवता नासत्या परिज्मन् ।
शफादश्वस्य वाजिनो जनाय शतं कुम्भाँ असिञ्चतं मधूनाम् ॥ ६ ॥
युवं नरा स्तुवते कृष्णियाय विष्णाप्वं ददथुर्विश्वकाय ।
घोषायै चित्पितृषदे दुरोणे पतिं जूर्यन्त्या अश्विनावदत्तम् ॥ ७ ॥
युवं श्यावाय रुशतीमदत्तं महः क्षोणस्याश्विना कण्वाय ।
प्रवाच्यं तद् वृषणा कृतं वां यन्नार्षदाय श्रवो अध्यधत्तम् ॥ ८ ॥
पुरू वर्पांस्यश्विना दधाना नि पेदव ऊहथुराशुमश्वम् ।
सहस्रसां वाजिनमप्रतीतमहिहनं श्रवस्यं तरुत्रम् ॥ ९ ॥
एतानि वां श्रवस्या सुदानू ब्रह्माङ्गूषं सदनं रोदस्योः ।
यद्वां पज्रासो अश्विना हवन्ते यातमिषा च विदुषे च वाजम् ॥ १० ॥

अथ पञ्चदशो वर्गः ॥ १५ ॥

सूनोर्मानेनाश्विना गृणाना वाजं विप्राय भुरणा रदन्ता ।
अगस्त्ये ब्रह्मणा वावृधाना सं विश्पलां नासत्यारिणीतम् ॥ ११ ॥
कुह यान्ता सुष्टुतिं काव्यस्य दिवो नपाता वृषणा शयुत्रा ।
हिरण्यस्येव कलशं निखातमुदूपथुर्दशमे अश्विनाहन् ॥ १२ ॥
युवं च्यवानमश्विना जरन्तं पुनर्युवानं चक्रथुः शचीभिः ।
युवो रथं दुहिता सूर्यस्य सह श्रिया नासत्यावृणीत ॥ १३ ॥
युवं तुग्राय पूर्व्येभिरेवैः पुनर्मन्यावभवतं युवाना ।
युवं भुज्युमर्णसो निः समुद्राद्विभिरूहथुर्ऋज्रेभिरश्वैः ॥ १४ ॥
अजोहवीदश्विना तौग्र्यो वां प्रोळ्हः समुद्रमव्यथिर्जगन्वान् ।
निष्टमूहथुः सुयुजा रथेन मनोजवसा वृषणा स्वस्ति ॥ १५ ॥

अथ षोडशो वर्गः ॥ १६ ॥

अजोहवीदश्विना वर्तिका वामास्नो यत्सीममुञ्चतं वृकस्य ।
वि जयुषा ययथुः सान्वद्रेर्जातं विष्वाचो अहतं विषेण ॥ १६ ॥
शतं मेषान्वृक्ये मामहानं तमः प्रणीतमशिवेन पित्रा ।
आक्षी ऋज्राश्वे अश्विनावधत्तं ज्योतिरन्धाय चक्रथुर्विचक्षे ॥ १७ ॥
शुनमन्धाय भरमह्वयत्सा वृकीरश्विना वृषणा नरेति ।
जारः कनीनइव चक्षदान ऋज्राश्वः शतमेकं च मेषान् ॥ १८ ॥
मही वामूतिरश्विना मयोभूरुत स्रामं धिष्ण्या सं रिणीथः ।
अथा युवामिदह्वयत्पुरन्धिरागच्छतं सीं वृषणाववोभिः ॥ १९ ॥
अधेनुं दस्रा स्तर्यं१ विषक्तामपिन्वतं शयवे अश्विना गाम् ।
युवं शचीभिर्विमदाय जायां न्यूहथुः पुरुमित्रस्य योषाम् ॥ २० ॥

अथ सप्तदशो वर्गः ॥ १७ ॥

यवं वृकेणाश्विना वपन्तेषं दुहन्ता मनुषाय दस्रा ।
अभि दस्युं बकुरेणा धमन्तोरु ज्योतिश्चक्रथुरार्याय ॥ २१ ॥
आथर्वणायाश्विना दधीचेऽश्व्यं शिरः प्रत्यैरयतम् ।
स वां मधु प्र वोचदृतायन्त्वाष्ट्रं यद्दस्रावपिकक्ष्यं वाम् ॥ २२ ॥
सदा कवी सुमतिमा चके वां विश्वा धियो अश्विना प्रावतं मे ।
अस्मे रयिं नासत्या बृहन्तमपत्यसाचं श्रुत्यं रराथाम् ॥ २३ ॥
हिरण्यहस्तमश्विना रराणा पुत्रं नरा वध्रिमत्या अदत्तम् ।
त्रिधा ह श्यावमश्विना विकस्तमुज्जीवस ऐरयतं सुदानू ॥ २४ ॥
एतानि वामश्विना वीर्याणि प्र पूर्व्याण्यायवोऽवोचन् ।
ब्रह्म कृण्वन्तो वृषणा युवभ्यां सुवीरासो विदथमा वदेम ॥ २५ ॥

[११८] अष्टादशोत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—कक्षीवान् ॥ देवता—अश्विनौ ॥ छन्दः—१-११, भुरिक्पङ्क्तिः; २, ५, ७ त्रिष्टुप्; ३, ६, ९, १० निचृत्त्रिष्टुप्; ४, ८ विराट्त्रिष्टुप् ॥
स्वरः—१, ११ पञ्चमः; २-१० धैवतः ॥

अथ अष्टादशो वर्गः ॥ १८ ॥

आ वां रथो अश्विना श्येनपत्वा सुमृळीकः स्ववाँ यात्वर्वाङ् ।
यो मर्त्यस्य मनसो जवीयान्त्रिवन्धुरो वृषणा वातरंहाः ॥ १ ॥
त्रिवन्धुरेण त्रिवृता रथेन त्रिचक्रेण सुवृता यातमर्वाक् ।
पिन्वतं गा जिन्वतमर्वतो नो वर्धयतमश्विना वीरमस्मे ॥ २ ॥
प्रवद्यामना सुवृता रथेन दस्राविमं शृणुतं श्लोकमद्रेः ।
किमङ्ग वां प्रत्यवर्तिं गमिष्ठाहुर्विप्रासो अश्विना पुराजाः ॥ ३ ॥
आ वां श्येनासो अश्विना वहन्तु रथे युक्तास आशवः पतङ्गाः ।
ये अप्तुरो दिव्यासो न गृध्रा अभि प्रयो नासत्या वहन्ति ॥ ४ ॥
आ वां रथं युवतिस्तिष्ठदत्र जुष्ट्वी नरा दुहिता सूर्यस्य ।
परि वामश्वा वपुषः पतङ्गा वयो वहन्त्वरुषा अभीके ॥ ५ ॥

अथ एकोनविंशो वर्गः ॥ १९ ॥

उद्वन्दनमैरतं दंसनाभिरुद्रेभं दस्रा वृषणा शचीभिः ।
निष्टौग्र्यं पारयथः समुद्रात् पुनश्च्यवानं चक्रथुर्युवानम् ॥ ६ ॥
युवमत्रयेऽवनीताय तप्तमूर्जमोमानमश्विनावधत्तम् ।
युवं कण्वायापिरिप्ताय चक्षुः प्रत्यधत्तं सुष्टुतिं जुजुषाणा ॥ ७ ॥
युवं धेनुं शयवे नाधितायापिन्वतमश्विना पूर्व्याय ।
अमुञ्चतं वर्तिकामंहसो निः प्रति जङ्घां विश्पलाया अधत्तम् ॥ ८ ॥
युवं श्वेतं पेदव इन्द्रजूतमहिहनमश्विनादत्तमश्वम् ।
जोहूत्रमर्यो अभिभूतिमुग्रं सहस्रसां वृषणं वीड्वङ्गम् ॥ ९ ॥
ता वां नरा स्ववसे सुजाता हवामहे अश्विना नाधमानाः ।
आ न उप वसुमता रथेन गिरो जुषाणा सुविताय यातम् ॥ १० ॥
आ श्येनस्य जवसा नूतनेनास्मे यातं नासत्या सजोषाः ।
हवे हि वामश्विना रातहव्यः शश्वत्तमाया उषसो व्युष्टौ ॥ ११ ॥

[११९] एकोनविंशत्युत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—कक्षीवान् दैर्घतमसः॥ देवता—अश्विनौ॥ छन्दः—१, ४, ६ निचृज्जगती; २, ५, ९ भुरिक् त्रिष्टुप्; ३, ७, १० जगती; ८ विराड्जगती॥ स्वरः—१, ३, ४, ६-८, १० निषादः; २, ५, ९ धैवतः॥

अथ विंशो वर्गः॥ २०॥

आ वां रथं पुरुमायं मनोजुवं जीराश्वं यज्ञियं जीवसे हुवे।
सहस्रकेतुं वनिनं शतद्वसुं श्रुष्टीवानं वरिवोधामभि प्रयः॥ १॥
ऊर्ध्वा धीतिः प्रत्यस्य प्रयामन्यधायि शस्मन्त्समयन्त आ दिशः।
स्वदामि घर्मं प्रति यन्त्यूतय आ वामूर्जानी रथमश्विनारुहत्॥ २॥
सं यन्मिथः पस्पृधानासो अग्मत शुभे मखा अमिता जायवो रणे।
युवोरह प्रवणे चेकिते रथो यदश्विना वहथः सूरिमा वरम्॥ ३॥
युवं भुज्युं भुरमाणं विभिर्गतं स्वयुक्तिभिर्निवहन्ता पितृभ्य आ।
यासिष्टं वर्तिर्वृषणा विजेन्यं१ दिवोदासाय महि चेति वामवः॥ ४॥
युवोरश्विना वपुषे युवायुजं रथं वाणी येमतुरस्य शर्ध्यम्।
आ वां पतित्वं सख्याय जग्मुषी योषावृणीत जेन्या युवां पती॥ ५॥

अथ एकविंशो वर्गः॥ २१॥

युवं रेभं परिषूतेरुरुष्यथो हिमेन घर्मं परितप्तमत्रये ।
युवं शयोरवसं पिप्यथुर्गवि प्र दीर्घेण वन्दनस्तार्यायुषा ॥ ६॥
युवं वन्दनं निर्ऋतं जरण्यया रथं न दस्रा करणा समिन्वथः।
क्षेत्रादा विप्रं जनथो विपन्यया प्र वामत्र विधते दंसना भुवत्॥ ७॥
अगच्छतं कृपमाणं परावति पितुः स्वस्य त्यजसा निबाधितम्।
स्वर्वतीरित ऊतीर्युवोरह चित्रा अभीके अभवन्नभिष्टयः॥ ८॥
उत स्या वां मधुमन्मक्षिकारपन्मदे सोमस्यौशिजो हुवन्यति।
युवं दधीचो मन आ विवासथोऽथा शिरः प्रति वामश्व्यं वदत्॥ ९॥
युवं पेदवे पुरुवारमश्विना स्पृधां श्वेतं तरुतारं दुवस्यथः।
शर्यैरभिद्युं पृतनासु दुष्टरं चर्कृत्यमिन्द्रमिव चर्षणीसहम्॥ १०॥

[१२०] विंशत्युत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—उशिक्पुत्रः कक्षीवान्॥ देवता—अश्विनौ॥ छन्दः—१, १२ पिपीलिकामध्यानिचृद्गायत्री; २ भुरिग्गायत्री; ३ स्वराट्ककुबुष्णिक्; ४ आर्च्यनुष्टुप्; ५ आर्च्युष्णिक्; ६ विराडार्च्युष्णिक्; ७ स्वराडार्च्यनुष्टुप्; ८ भुरिगुष्णिक्; ९ भुरिगनुष्टुप्; १० गायत्री; ११ पिपीलिकामध्या-विराड्गायत्री॥ स्वरः—१, २, १०-१२ षड्जः; ३, ५, ६, ८ ऋषभः; ४, ७, ९ गान्धारः॥

अथ द्वाविंशो वर्गः॥ २२॥

का राधद्धोत्राश्विना वां को वां जोष उभयोः। कथा विधात्यप्रचेताः॥ १॥
विद्वांसाविद्दुरः पृच्छेदविद्वानित्थापरो अचेताः। नू चिन्नु मर्ते अक्रौ॥ २॥
ता विद्वांसा हवामहे वां ता नो विद्वांसा मन्म वोचेतमद्य ।
प्रार्चद्दयमानो युवाकुः ॥ ३॥
वि पृच्छामि पाक्या३ न देवान्वषट्कृतस्याद्भुतस्य दस्रा ।
पातं च सह्यसो युवं च रभ्यसो नः ॥ ४॥
प्र या घोषे भृगवाणे न शोभे यया वाचा यजति पज्रियो वाम्।
प्रैषयुर्न विद्वान् ॥ ५॥

अथ त्रयोविंशो वर्गः॥ २३॥

श्रुतं गायत्रं तकवानस्याहं चिद्धि रिरेभाश्विना वाम् ।
आक्षी शुभस्पती दन् ॥ ६॥
युवं ह्यास्तं महो रन् युवं वा यन्निरततंसतम् ।
ता नो वसू सुगोपा स्यातं पातं नो वृकादघायोः ॥ ७॥
मा कस्मै धातमभ्यमित्रिणे नो माकुत्रा नो गृहेभ्यो धेनवो गुः ।
स्तनाभुजो अशिश्वीः ॥ ८॥
दुहीयन्मित्रधितये युवाकु राये च नो मिमीतं वाजवत्यै ।
इषे च नो मिमीतं धेनुमत्यै ॥ ९॥
अश्विनोरसनं रथमनश्वं वाजिनीवतोः। तेनाहं भूरि चाकन ॥ १०॥
अयं समह मा तनूह्याते जनाँ अनु। सोमपेयं सुखो रथः ॥ ११॥
अध स्वप्नस्य निर्विदेऽभुञ्जतश्च रेवतः। उभा ता बस्रि नश्यतः॥ १२॥

अष्टादशोऽनुवाकः [१२१] एकविंशत्युत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—औशिजः दैर्घतमसः कक्षीवान्॥ देवता—विश्वे देवा इन्द्रश्च॥ छन्दः—१, ७, १३ भुरिक्पङ्क्तिः; २, ८, १० त्रिष्टुप्; ३, ४, ६, १२, १४, १५ विराट्त्रिष्टुप्; ५, ९, ११ निचृत्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—१, ७, १३ पञ्चमः; २-६, ८-१२, १४, १५ धैवतः॥

अथ चतुर्विंशो वर्गः॥ २४॥

कदित्था नॄँः पात्रं देवयतां श्रवद् गिरो अङ्गिरसां तुरण्यन्।
प्र यदानड्विश आ हर्म्यस्योरु क्रंसते अध्वरे यजत्रः॥ १॥
स्तम्भीद्ध द्यां स धरुणं प्रुषायदृभुर्वाजाय द्रविणं नरो गोः।
अनु स्वजां महिषश्चक्षत व्रां मेनामश्वस्य परि मातरं गोः॥ २॥
नक्षद्धवमरुणीः पूर्व्यं राट् तुरो विशामङ्गिरसामनु द्यून्।
तक्षद्वज्रं नियुतं तस्तम्भद् द्यां चतुष्पदे नर्याय द्विपादे॥ ३॥
अस्य मदे स्वर्यं दा ऋतायापीवृतमुस्रियाणामनीकम्।
यद्ध प्रसर्गे त्रिककुम्निवर्तदप द्रुहो मानुषस्य दुरो वः॥ ४॥
तुभ्यं पयो यत्पितरावनीतां राधः सुरेतस्तुरणे भुरण्यू।
शुचि यत्ते रेक्ण आयजन्त सबर्दुघायाः पय उस्रियायाः॥ ५॥

अथ पञ्चविंशो वर्गः॥ २५॥

अध प्र जज्ञे तरणिर्ममत्तु प्र रोच्यस्या उषसो न सूरः।
इन्दुर्येभिराष्ट स्वेदुहव्यैः स्रुवेण सिञ्चञ्जरणाभि धाम॥ ६॥
स्विध्मा यद् वनधितिरपस्यात्सूरो अध्वरे परि रोधना गोः।
यद्ध प्रभासि कृत्व्याँ अनु द्यूननर्विशे पश्विषे तुराय॥ ७॥
अष्टा महो दिव आदो हरी इह द्युम्नासाहमभि योधान उत्सम्।
हरिं यत्ते मन्दिनं दुक्षन्वृधे गोरभसमद्रिभिर्वाताप्यम्॥ ८॥
त्वमायसं प्रति वर्तयो गोर्दिवो अश्मानमुपनीतमृभ्वा।
कुत्साय यत्र पुरुहूत वन्वञ्छुष्णमनन्तैः परियासि वधैः॥ ९॥
पुरा यत्सूरस्तमसो अपीतेस्तमद्रिवः फलिगं हेतिमस्य।
शुष्णस्य चित्परिहितं यदोजो दिवस्परि सुग्रथितं तदादः॥ १०॥

अथ षड्विंशो वर्गः॥ २६॥

अनु त्वा मही पाजसी अचक्रे द्यावाक्षामा मदतामिन्द्र कर्मन्।
त्वं वृत्रमाशयानं सिरासु महो वज्रेण सिष्वपो वराहुम्॥ ११॥
त्वमिन्द्र नर्यो याँ अवो नॄन्तिष्ठा वातस्य सुयुजो वहिष्ठान्।
यं ते काव्य उशना मन्दिनं दाद् वृत्रहणं पार्यं ततक्ष वज्रम्॥ १२॥
त्वं सूरो हरितो रामयो नॄन्भरच्चक्रमेतशो नायमिन्द्र।
प्रास्य पारं नवतिं नाव्यानामपि कर्तमवर्तयोऽ यज्यून्॥ १३॥
त्वं नो अस्या इन्द्र दुर्हणायाः पाहि वज्रिवो दुरितादभीके।
प्र नो वाजान्रथ्यो३ अश्वबुध्यानिषे यन्धि श्रवसे सूनृतायै॥ १४॥
मा सा ते अस्मत्सुमतिर्वि दसद्वाजप्रमहः समिषो वरन्त।
आ नो भज मघवन्गोष्वर्यो मंहिष्ठास्ते सधमादः स्याम॥ १५॥

इति प्रथमाष्टकेऽष्टमोऽध्यायः॥

इति प्रथमोऽष्टकः॥

अथ द्वितीयोऽष्टकः

अथ द्वितीयाष्टके प्रथमोऽध्यायः

[१२२] द्वाविंशत्युत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—कक्षीवान्॥ देवता—विश्वे देवाः॥ छन्दः—१, ५, १४ भुरिक्पङ्क्तिः; ३, १५ स्वराट्पङ्क्तिः; २, ९, १०, १३ विराट्त्रिष्टुप्; ४ निचृत्पङ्क्तिः; ६ विराट्पङ्क्तिः; ७, ११ त्रिष्टुप्; ८, १२ निचृत् त्रिष्टुप्॥ स्वरः—१, ३-६, १४, १५ पञ्चमः; २, ७-१३ धैवतः॥

अथ प्रथमो वर्गः॥ १॥

प्र वः पान्तं रघुमन्यवोऽन्धो यज्ञं रुद्राय मीळ्हुषे भरध्वम्।
दिवो अस्तोष्यसुरस्य वीरैरिषुध्येव मरुतो रोदस्योः॥ १॥
पत्नीव पूर्वहूतिं वावृधध्या उषासानक्ता पुरुधा विदाने।
स्तरीर्नात्कं व्युतं वसाना सूर्यस्य श्रिया सुदृशी हिरण्यैः॥ २॥
ममत्तु नः परिज्मा वसर्हा ममत्तु वातो अपां वृषण्वान्।
शिशीतमिन्द्रापर्वता युवं नस्तन्नो विश्वे वरिवस्यन्तु देवाः॥ ३॥

उत त्या मे यशसा श्वेतनायै व्यन्ता पान्तौशिजो हुवध्यै।
प्र वो नपातमपां कृणुध्वं प्र मातरा रास्पिनस्यायोः॥४॥
आ वो रुवण्युमौशिजो हुवध्यै घोषेव शंसमर्जुनस्य नंशे।
प्र वः पूष्णे दावन आँ अच्छा वोचेय वसुतातिमग्नेः॥५॥

अथ द्वितीयो वर्गः॥२॥

श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमोत श्रुतं सदने विश्वतः सीम्।
श्रोतु नः श्रोतुरातिः सुश्रोतुः सुक्षेत्रा सिन्धुरद्भिः॥६॥
स्तुषे सा वां वरुण मित्र रातिर्गवां शता पृक्षयामेषु पज्रे।
श्रुतरथे प्रियरथे दधानाः सद्यः पुष्टिं निरुन्धानासो अग्मन्॥७॥
अस्य स्तुषे महिमघस्य राधः सचा सनेम नहुषः सुवीराः।
जनो यः पज्रेभ्यो वाजिनीवानश्वावतो रथिनो मह्यं सूरिः॥८॥
जनो यो मित्रावरुणावभिध्रुगपो न वां सुनोत्यक्ष्णयाध्रुक्।
स्वयं स यक्ष्मं हृदये नि धत्त आप यदीं होत्राभिर्ऋतावा॥९॥
स व्राधतो नहुषो दंसुजूतः शर्धस्तरो नरां गूर्तश्रवाः।
विसृष्टरातिर्याति बाळ्हसृत्वा विश्वासु पृत्सु सदमिच्छूरः॥१०॥

अथ तृतीयो वर्गः॥३॥

अध ग्मन्ता नहुषो हवं सूरेः श्रोता राजानो अमृतस्य मन्द्राः।
नभोजुवो यन्निरवस्य राधः प्रशस्तये महिना रथवते॥११॥
एतं शर्धं धाम यस्य सूरेरित्यवोचन् दशतयस्य नंशे।
द्युम्नानि येषु वसुताती रारन्विश्वे सन्वन्तु प्रभृथेषु वाजम्॥१२॥
मन्दामहे दशतयस्य धासेर्द्विर्यत्पञ्च बिभ्रतो यन्त्यन्ना।
किमिष्टाश्व इष्टरश्मिरेत ईशानासस्तरुष ऋञ्जते नॄन्॥१३॥
हिरण्यकर्णं मणिग्रीवमर्णस्तन्नो विश्वे वरिवस्यन्तु देवाः।
अर्यो गिरः सद्य आ जग्मुषीरोस्राश्चाकन्तूभयेष्वस्मे॥१४॥
चत्वारो मा मशर्शारस्य शिश्वस्त्रयो राज्ञ आयवसस्य जिष्णोः।
रथो वां मित्रावरुणा दीर्घाप्साः स्यूमगभस्तिः सूरो नाद्यौत्॥१५॥

[१२३] त्रयोविंशत्युत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—दीर्घतमसः पुत्रः कक्षीवान्॥ देवता—उषाः॥ छन्दः—१, ३, ६, ७, ९, १०, १३ विराट्त्रिष्टुप्; २, ४, ८, १२ निचृत्त्रिष्टुप्; ५ त्रिष्टुप्; ११ भुरिक्पङ्क्तिः॥
स्वरः—१-१०, १२, १३ धैवतः; ११ पञ्चमः॥

अथ चतुर्थो वर्गः॥४॥

पृथू रथो दक्षिणाया अयोज्यैनं देवासो अमृतासो अस्थुः।
कृष्णादुदस्थादर्या३ विहायाश्चिकित्सन्ती मानुषाय क्षयाय॥१॥
पूर्वा विश्वस्माद् भुवनादबोधि जयन्ती वाजं बृहती सनुत्री।
उच्चा व्यख्यद्युवतिः पुनर्भूरोषा अगन्प्रथमा पूर्वहूतौ॥२॥
यदद्य भागं विभजासि नृभ्य उषो देवि मर्त्यत्रा सुजाते।
देवो नो अत्र सविता दमूना अनागसो वोचति सूर्याय॥३॥
गृहंगृहमहना यात्यच्छा दिवेदिवे अधि नामा दधाना।
सिषासन्ती द्योतना शश्वदागादग्रमग्रमिद्भजते वसूनाम्॥४॥
भगस्य स्वसा वरुणस्य जामिरुषः सूनृते प्रथमा जरस्व।
पश्चा स दघ्या यो अघस्य धाता जयेम तं दक्षिणया रथेन॥५॥

अथ पञ्चमो वर्गः॥५॥

उदीरतां सूनृता उत्पुरन्धीरुदग्नयः शुशुचानासो अस्थुः ।
स्पार्हा वसूनि तमसापगूळ्हाविष्कृण्वन्त्युषसो विभातीः ॥६॥
अपान्यदेत्यभ्य१न्यदेति विषुरूपे अहनी सं चरेते ।
परिक्षितोस्तमो अन्या गुहाकरद्यौदुषाः शोशुचता रथेन ॥७॥
सदृशीरद्य सदृशीरिदु श्वो दीर्घं सचन्ते वरुणस्य धाम ।
अनवद्यास्त्रिंशतं योजनान्येकैका क्रतुं परि यन्ति सद्यः ॥८॥
जानत्यह्नः प्रथमस्य नाम शुक्रा कृष्णादजनिष्ट श्वितीची ।
ऋतस्य योषा न मिनाति धामाहरहर्निष्कृतमाचरन्ती ॥९॥
कन्येव तन्वा३ शाशदानाँ एषि देवि देवमियक्षमाणम्।
संस्मयमाना युवतिः पुरस्तादाविर्वक्षांसि कृणुषे विभाती॥१०॥

अथ षष्ठो वर्गः ॥ ६ ॥

सुसंकाशा मातृमृष्टेव योषाविस्तन्वं कृणुषे दृशे कम् ।
भद्रा त्वमुषो वितरं व्युच्छ न तत्ते अन्या उषसो नशन्त ॥ ११ ॥
अश्वावतीर्गोमतीर्विश्ववारा यतमाना रश्मिभिः सूर्यस्य ।
परा च यन्ति पुनरा च यन्ति भद्रा नाम वहमाना उषासः ॥ १२ ॥
ऋतस्य रश्मिमनुयच्छमाना भद्रंभद्रं क्रतुमस्मासु धेहि ।
उषो नो अद्य सुहवा व्युच्छास्मासु रायो मघवत्सु च स्युः ॥ १३ ॥

[१२४] चतुर्विंशत्युत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—कक्षीवान् दैर्घतमसः ॥ देवता—उषाः ॥ छन्दः—१, ३, ६, ९, १० निचृत्त्रिष्टुप्; २, १३ भुरिक्पङ्क्तिः; ४, ७, ११ त्रिष्टुप्; ५ पङ्क्तिः; ८ विराट्पङ्क्तिः; १२ विराट् त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१, ३, ४, ६, ७, ९-१२ धैवतः; २, ५, ८, १३ पञ्चमः ॥

अथ सप्तमो वर्गः ॥ ७ ॥

उषा उच्छन्ती समिधाने अग्ना उद्यन्त्सूर्य उर्विया ज्योतिरश्रेत् ।
देवो नो अत्र सविता न्वर्थं प्रासावीद् द्विपत्प्र चतुष्पदित्यै ॥ १ ॥
अमिनती दैव्यानि व्रतानि प्रमिनती मनुष्या युगानि ।
ईयुषीणामुपमा शश्वतीनामायतीनां प्रथमोषा व्यद्यौत् ॥ २ ॥
एषा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शि ज्योतिर्वसाना समना पुरस्तात् ।
ऋतस्य पन्थामन्वेति साधु प्रजानतीव न दिशो मिनाति ॥ ३ ॥
उपो अदर्शि शुन्ध्युवो न वक्षो नोधाइवाविरकृत प्रियाणि ।
अद्मसन्न ससतो बोधयन्ती शश्वत्तमागात्पुनरेयुषीणाम् ॥ ४ ॥
पूर्वे अर्धे रजसो अप्त्यस्य गवां जनित्र्यकृत प्र केतुम् ।
व्यु प्रथते वितरं वरीय ओभा पृणन्ती पित्रोरुपस्था ॥ ५ ॥

अथ अष्टमो वर्गः ॥ ८ ॥

एवेदेषा पुरुतमा दृशे कं नाजामिं न परि वृणक्ति जामिम् ।
अरेपसा तन्वा३ शाशदाना नार्भादीषते न महो विभाती ॥ ६ ॥
अभ्रातेव पुंस एति प्रतीची गर्तारुगिव सनये धनानाम् ।
जायेव पत्य उशती सुवासा उषा हस्रेव नि रिणीते अप्सः ॥ ७ ॥

स्वसा स्वस्रे ज्यायस्यै योनिमारैगपैत्यस्याः प्रतिचक्ष्येव ।
व्युच्छन्ती रश्मिभिः सूर्यस्याञ्ज्यङ्क्ते समनगाइव व्राः ॥ ८ ॥
आसां पूर्वासामहसु स्वसॄणामपरा पूर्वामभ्येति पश्चात् ।
ताः प्रत्नवन्नव्यसीर्नूनमस्मे रेवदुच्छन्तु सुदिना उषासः ॥ ९ ॥
प्र बोधयोषः पृणतो मघोन्यबुध्यमानाः पणयः ससन्तु ।
रेवदुच्छ मघवद्भ्यो मघोनि रेवत्स्तोत्रे सूनृते जारयन्ती ॥ १० ॥

अथ नवमो वर्गः ॥ ९ ॥

अवेयमश्वैद्युवतिः पुरस्ताद्युङ्क्ते गवामरुणानामनीकम् ।
वि नूनमुच्छादसति प्र केतुर्गृहंगृहमुप तिष्ठाते अग्निः ॥ ११ ॥
उत्ते वयश्चिद्वसतेरपप्तन्नरश्च ये पितुभाजो व्युष्टौ ।
अमा सते वहसि भूरि वाममुषो देवि दाशुषे मर्त्याय ॥ १२ ॥
अस्तोढ्वं स्तोम्या ब्रह्मणा मेऽवीवृधध्वमुशतीरुषासः ।
युष्माकं देवीरवसा सनेम सहस्रिणं च शतिनं च वाजम् ॥ १३ ॥

[१२५] पञ्चविंशत्युत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—कक्षीवान् दैर्घतमसः ॥ देवता—दम्पती ॥ छन्दः—१, ३, ७ त्रिष्टुप्; २, ६ निचृत्त्रिष्टुप्; ४, ५ जगती ॥ स्वरः—१-३, ६, ७ धैवतः; ४, ५ निषादः ॥

अथ दशमो वर्गः ॥ १० ॥

प्राता रत्नं प्रातरित्वा दधाति तं चिकित्वान्प्रतिगृह्या नि धत्ते ।
तेन प्रजां वर्धयमान आयू रायस्पोषेण सचते सुवीरः ॥ १ ॥
सुगुरसत्सुहिरण्यः स्वश्वो बृहदस्मै वय इन्द्रो दधाति ।
यस्त्वायन्तं वसुना प्रातरित्वो मुक्षीजयेव पदिमुत्सिनाति ॥ २ ॥
आयमद्य सुकृतं प्रातरिच्छन्निष्टेः पुत्रं वसुमता रथेन ।
अंशोः सुतं पायय मत्सरस्य क्षयद्वीरं वर्धय सूनृताभिः ॥ ३ ॥
उप क्षरन्ति सिन्धवो मयोभुव ईजानं च यक्ष्यमाणं च धेनवः ।
पृणन्तं च पपुरिं च श्रवस्यवो घृतस्य धारा उप यन्ति विश्वतः ॥ ४ ॥

नाकस्य पृष्ठे अधि तिष्ठति श्रितो यः पृणाति स ह देवेषु गच्छति।
तस्मा आपो घृतमर्षन्ति सिन्धवस्तस्मा इयं दक्षिणा पिन्वते सदा ॥५॥
दक्षिणावतामिदिमानि चित्रा दक्षिणावतां दिवि सूर्यासः।
दक्षिणावन्तो अमृतं भजन्ते दक्षिणावन्तः प्र तिरन्त आयुः ॥६॥
मा पृणन्तो दुरितमेन आरन्मा जारिषुः सूरयः सुव्रतासः।
अन्यस्तेषां परिधिरस्तु कश्चिदपृणन्तमभि सं यन्तु शोकाः ॥७॥

[१२६] षड्विंशत्युत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—१-५ कक्षीवान्; ६ भावयव्यः; ७ रोमशा ब्रह्मवादिनी ॥ देवता—विद्वांसः ॥
छन्दः—१, २, ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप्; ३ त्रिष्टुप्; ६, ७ अनुष्टुप् ॥
स्वरः—१-५ धैवतः; ६, ७ गान्धारः ॥

अथ एकादशो वर्गः ॥ ११ ॥

अमन्दान्त्स्तोमान्प्र भरे मनीषा सिन्धावधि क्षियतो भाव्यस्य।
यो मे सहस्रममिमीत सवानतूर्तो राजा श्रव इच्छमानः ॥१॥
शतं राज्ञो नाधमानस्य निष्काञ्छतमश्वान्प्रयतान्त्सद्य आदम्।
शतं कक्षीवाँ असुरस्य गोनां दिवि श्रवोऽजरमा ततान ॥२॥
उप मा श्यावाः स्वनयेन दत्ता वधूमन्तो दश रथासो अस्थुः।
षष्टिः सहस्रमनु गव्यमागात्सनत्कक्षीवाँ अभिपित्वे अह्नाम् ॥३॥
चत्वारिंशद्दशरथस्य शोणाः सहस्रस्याग्रे श्रेणिं नयन्ति।
मदच्युतः कृशनावतो अत्यान्कक्षीवन्त उदमृक्षन्त पज्राः ॥४॥
पूर्वामनु प्रयतिमा ददे वस्त्रीन् युक्ताँ अष्टावरिधायसो गाः।
सुबन्धवो ये विश्या इव व्रा अनस्वन्तः श्रव ऐषन्त पज्राः ॥५॥
आगधिता परिगधिता या कशीकेव जङ्गहे।
ददाति मह्यं यादुरी याशूनां भोज्या शता ॥६॥
उपोप मे परा मृश मा मे दभ्राणि मन्यथाः।
सर्वाहमस्मि रोमशा गन्धारीणामिवाविका ॥७॥

एकोनविंशोऽनुवाकः [१२७] सप्तविंशत्युत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—परुच्छेपः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१-३, ८, ९ अष्टिः; ४, ७, ११ भुरिगष्टिः;
५, ६ अत्यष्टिः; १० भुरिगतिशक्वरी ॥ स्वरः—१-९, ११ मध्यमः;
१० पञ्चमः ॥

अथ द्वादशो वर्गः ॥ १२ ॥

अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसुं सूनुं सहसो जातवेदसं विप्रं न
जातवेदसम्। य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा ।
घृतस्य विभ्राष्टिमनु वष्टि शोचिषाजुह्वानस्य सर्पिषः ॥१॥
यजिष्ठं त्वा यजमाना हुवेम ज्येष्ठमङ्गिरसां विप्र मन्मभिर्विप्रेभिः
शुक्र मन्मभिः। परिज्मानमिव द्यां होतारं चर्षणीनाम् ।
शोचिष्केशं वृषणं यमिमा विशः प्रावन्तु जूतये विशः ॥२॥
स हि पुरू चिदोजसा विरुक्मता दीद्यानो भवति द्रुहन्तरः
परशुर्न द्रुहन्तरः। वीळु चिद्यस्य समृतौ श्रुवद्वनेव यत्स्थिरम् ।
निष्षहमाणो यमते नायते धन्वासहा नायते ॥३॥
दृळ्हा चिदस्मा अनु दुर्यथा विदे तेजिष्ठाभिररणिभिर्दाष्ट्यवसेऽग्नये
दाष्ट्यवसे। प्र यः पुरूणि गाहते तक्षद्वनेव शोचिषा ।
स्थिरा चिदन्ना नि रिणात्योजसा नि स्थिराणि चिदोजसा ॥४॥
तमस्य पृक्षमुपरासु धीमहि नक्तं यः सुदर्शतरो दिवातरादप्रायुषे
दिवातरात्। आदस्यायुर्ग्रभणवद्वीळु शर्म न सूनवे ।
भक्तमभक्तमवो व्यन्तो अजरा अग्नयो व्यन्तो अजराः ॥५॥

अथ त्रयोदशो वर्गः ॥ १३ ॥

स हि शर्धो न मारुतं तुविष्वणिरप्नस्वतीषूर्वरास्विष्टनिरार्तनास्विष्टनिः।
आदद्धव्यान्याददिर्यज्ञस्य केतुरर्हणा ।
अध स्मास्य हर्षतो हृषीवतो विश्वे जुषन्त पन्थां नरः शुभे न पन्थाम् ॥६॥
द्विता यदीं कीस्तासो अभिद्यवो नमस्यन्त उपवोचन्त भृगवो
मथ्नन्तो दाशा भृगवः। अग्निरीशे वसूनां शुचिर्यो धर्णिरेषाम् ।
प्रियाँ अपिधीँर्वनिषीष्ट मेधिर आ वनिषीष्ट मेधिरः ॥७॥

विश्वासां त्वा विशां पतिं हवामहे सर्वासां समानं दम्पतिं भुजे
सत्यगिर्वाहसं भुजे। अतिथिं मानुषाणां पितुर्न यस्यासया ।
अमी च विश्वे अमृतास आ वयो हव्या देवेष्वा वयः ॥८॥
त्वमग्ने सहसा सहन्तमः शुष्मिन्तमो जायसे देवतातये रयिर्न देवतातये।
शुष्मिन्तमो हि ते मदो द्युम्निन्तम उत क्रतुः ।
अध स्मा ते परि चरन्त्यजर श्रुष्टीवानो नाजर ॥९॥
प्र वो महे सहसा सहस्वत उषर्बुधे पशुषे नाग्नये स्तोमो बभूत्वग्नये।
प्रति यदीं हविष्मान् विश्वासु क्षासु जोगुवे ।
अग्रे रेभो न जरत ऋषूणां जूर्णिर्होत ऋषूणाम् ॥१०॥
स नो नेदिष्ठं ददृशान आ भराग्ने देवेभिः सचनाः सुचेतुना महो
रायः सुचेतुना। महि शविष्ठ नस्कृधि सञ्चक्षे भुजे अस्यै ।
महि स्तोतृभ्यो मघवन्त्सुवीर्यं मथीरुग्रो न शवसा ॥११॥

[१२८] अष्टाविंशत्युत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—परुच्छेपः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१ निचृदत्यष्टिः; २ भुरिगष्टिः; ३, ४, ६, ८ विराडत्यष्टिः; ५, ७ निचृदष्टिः ॥ स्वरः—मध्यमः ॥

अथ चतुर्दशो वर्गः ॥ १४ ॥

अयं जायत मनुषो धरीमणि होता यजिष्ठ उशिजामनु व्रतमग्निः
स्वमनु व्रतम्। विश्वश्रुष्टिः सखीयते रयिरिव श्रवस्यते।
अदब्धो होता नि षददिळस्पदे परिवीत इळस्पदे ॥१॥
तं यज्ञसाधमपि वातयामस्यृतस्य पथा नमसा हविष्मता देवताता
हविष्मता। स न ऊर्जामुपाभृत्यया कृपा न जूर्यति ।
यं मातरिश्वा मनवे परावतो देवं भाः परावतः ॥२॥
एवेन सद्यः पर्येति पार्थिवं मुहुर्गी रेतो वृषभः कनिक्रदद्दधद्रेतः
कनिक्रदत्। शतं चक्षाणो अक्षभिर्देवो वनेषु तुर्वणिः ।
सदो दधान उपरेषु सानुष्वग्निः परेषु सानुषु ॥३॥

स सुक्रतुः पुरोहितो दमेदमेऽग्निर्यज्ञस्याध्वरस्य चेतति क्रत्वा
यज्ञस्य चेतति। क्रत्वा वेधा इषूयते विश्वा जातानि पस्पशे ।
यतो घृतश्रीरतिथिरजायत वह्निर्वेधा अजायत ॥४॥
क्रत्वा यदस्य तविषीषु पृञ्चतेऽग्नेरवेण मरुतां न भोज्येषिराय
न भोज्या। स हि ष्मा दानमिन्वति वसूनां च मज्मना ।
स नस्त्रासते दुरितादभिह्रुतः शंसादघादभिह्रुतः ॥५॥

अथ पञ्चदशो वर्गः ॥ १५ ॥

विश्वो विहाया अरतिर्वसुर्दधे हस्ते दक्षिणे तरणिर्न शिश्रथच्छ्रवस्यया
न शिश्रथत्। विश्वस्मा इदिषुध्यते देवत्रा हव्यमोहिषे ।
विश्वस्मा इत्सुकृते वारमृण्वत्यग्निर्द्वारा व्यृण्वति ॥६॥
स मानुषे वृजने शन्तमो हितो३ऽग्निर्यज्ञेषु जेन्यो न विश्पतिः प्रियो
यज्ञेषु विश्पतिः। स हव्या मानुषाणामिळा कृतानि पत्यते ।
स नस्त्रासते वरुणस्य धूर्तेर्महो देवस्य धूर्तेः ॥७॥
अग्निं होतारमीळते वसुधितिं प्रियं चेतिष्ठमरतिं न्येरिरे
हव्यवाहं न्येरिरे। विश्वायुं विश्ववेदसं होतारं यजतं कविम् ।
देवासो रण्वमवसे वसूयवो गीर्भी रण्वं वसूयवः ॥८॥

[१२९] एकोनत्रिंशदुत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—परुच्छेपः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१, २ निचृदत्यष्टिः; ३ विराडत्यष्टिः; ४ अष्टिः; ६, ११ भुरिगष्टिः; १० निचृदष्टिः; ५ भुरिगतिशक्वरी; ७ स्वराडतिशक्वरी; ८, ९ स्वराट् शक्वरी ॥ स्वरः—१-४, ६, १०, ११ मध्यमः; ५, ७-९ पञ्चमः ॥

अथ षोडशो वर्गः ॥ १६ ॥

यं त्वं रथमिन्द्र मेधसातयेऽपाका सन्तमिषिर प्रणयसि
प्रानवद्य नयसि। सद्यश्चित्तमभिष्टये करो वशश्च वाजिनम् ।
सास्माकमनवद्य तूतुजान वेधसामिमां वाचं न वेधसाम् ॥१॥
स श्रुधि यः स्मा पृतनासु कासु चिद्दक्षाय्य इन्द्र भरहूतये नृभिरसि
प्रतूर्तये नृभिः। यः शूरैः स्व१ः सनिता यो विप्रैर्वाजं तरुता ।
तमीशानास इरधन्त वाजिनं पृक्षमत्यं न वाजिनम् ॥२॥

दस्मो हि ष्मा वृषणं पिन्वसि त्वचं कं चिद्यावीररुं शूर मर्त्यं
परिवृणक्षि मर्त्यम्। इन्द्रोत तुभ्यं तद्दिवे तद् रुद्राय स्वयशसे ।
मित्राय वोचं वरुणाय सप्रथः सुमृळीकाय सप्रथः ॥ ३ ॥
अस्माकं व इन्द्रमुश्मसीष्टये सखायं विश्वायुं प्रासहं युजं वाजेषु
प्रासहं युजम्। अस्माकं ब्रह्मोतयेऽवा पृत्सुषु कासु चित् ।
नहि त्वा शत्रुः स्तरते स्तृणोषि यं विश्वं शत्रुं स्तृणोषि यम् ॥ ४ ॥
नि षू नमातिमतिं कयस्य चित्तेजिष्ठाभिररणिभिर्नोति-
भिरुग्राभिरुग्रोतिभिः। नेषि णो यथा पुरानेनाः शूर मन्यसे ।
विश्वानि पूरोरप पर्षि वह्निरासा वह्निर्नो अच्छ ॥ ५ ॥

अथ सप्तदशो वर्गः ॥ १७ ॥

प्र तद्वोचेयं भव्यायेन्दवे हव्यो न य इषवान्मन्म रेजति रक्षोहा
मन्म रेजति। स्वयं सो अस्मदा निदो वधैरजेत दुर्मतिम् ।
अव स्रवेदघशंसोऽवतरमव क्षुद्रमिव स्रवेत् ॥ ६ ॥
वनेम तद्धोत्रया चितन्त्या वनेम रयिं रयिवः सुवीर्यं रण्वं
सन्तं सुवीर्यम्। दुर्मन्मानं सुमन्तुभिरेमिषा पृचीमहि ।
आ सत्याभिरिन्द्रं द्युम्नहूतिभिर्यजत्रं द्युम्नहूतिभिः ॥ ७ ॥
प्रप्रा वो अस्मे स्वयशोभिरूती परिवर्ग इन्द्रो दुर्मतीनां
दरीमन्दुर्मतीनाम्। स्वयं सा रिषयध्यै या न उपेषे अत्रैः ।
हतेमसन्न वक्षति क्षिप्ता जूर्णिर्न वक्षति ॥ ८ ॥
त्वं न इन्द्र राया परीणसा याहि पथाँ अनेहसा पुरो
याह्यरक्षसा। सचस्व नः पराक आ सचस्वास्तमीक आ ।
पाहि नो दूरादारादभिष्टिभिः सदा पाह्यभिष्टिभिः ॥ ९ ॥
त्वं न इन्द्र राया तरूषसोग्रं चित्त्वा महिमा सक्षदवसे महे
मित्रं नावसे। ओजिष्ठ त्रातरविता रथं कं चिदमर्त्य ।
अन्यमस्मद्रिरिषेः कं चिदद्रिवो रिरिक्षन्तं चिदद्रिवः ॥१०॥

पाहि न इन्द्र सुष्टुत स्रिधोऽवयाता सदमिद्दुर्मतीनां देवः
सन् दुर्मतीनाम्। हन्ता पापस्य रक्षसस्त्राता विप्रस्य मावतः ।
अधा हि त्वा जनिता जीजनद्वसो रक्षोहणं त्वा जीजनद्वसो ॥ ११ ॥

[१३०] त्रिंशदुत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—परुच्छेपः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१, ५ भुरिगष्टिः; २, ३, ६, ९ स्वराडष्टिः; ४, ८ अष्टिः; ७ निचृदत्यष्टिः; १० विराट्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—१-६-९ मध्यमः; १० धैवतः ॥

अथ अष्टादशो वर्गः ॥ १८ ॥

एन्द्र याह्युप नः परावतो नायमच्छा विदथानीव सत्पतिरस्तं
राजेव सत्पतिः। हवामहे त्वा वयं प्रयस्वन्तः सुते सचा ।
पुत्रासो न पितरं वाजसातये मंहिष्ठं वाजसातये ॥ १ ॥
पिबा सोममिन्द्र सुवानमद्रिभिः कोशेन सिक्तमवतं न वंसगस्तातृषाणो
न वंसगः। मदाय हर्यताय ते तुविष्टमाय धायसे ।
आ त्वा यच्छन्तु हरितो न सूर्यमहा विश्वेव सूर्यम् ॥ २ ॥
अविन्दद्दिवो निहितं गुहा निधिं वेर्न गर्भं परिवीतमश्मन्यनन्ते
अन्तरश्मनि। व्रजं वज्री गवामिव सिषासन्नङ्गिरस्तमः ।
अपावृणोदिष इन्द्रः परीवृता द्वार इषः परीवृताः ॥ ३ ॥
दादृहाणो वज्रमिन्द्रो गभस्त्योः क्षद्मेव तिग्ममसनाय सं श्यदहिहत्याय
सं श्यत्। संविव्यान ओजसा शवोभिरिन्द्र मज्मना ।
तष्टेव वृक्षं वनिनो नि वृश्चसि परश्वेव नि वृश्चसि ॥ ४ ॥
त्वं वृथा नद्य इन्द्र सर्तवेऽच्छा समुद्रमसृजो रथाँइव
वाजयतो रथाँइव। इत ऊतीरयुञ्जत समानमर्थमक्षितम् ।
धेनूरिव मनवे विश्वदोहसो जनाय विश्वदोहसः ॥ ५ ॥

अथ एकोनविंशो वर्गः ॥ १९ ॥

इमां ते वाचं वसूयन्त आयवो रथं न धीरः स्वपा अतक्षिषुः
सुम्नाय त्वामतक्षिषुः। शुम्भन्तो जेन्यं यथा वाजेषु विप्र वाजिनम्।
अत्यमिव शवसे सातये धना विश्वा धनानि सातये ॥ ६ ॥

भिनत्पुरो नवतिमिन्द्र पूरवे दिवोदासाय महि दाशुषे नृतो वज्रेण दाशुषे
नृतो। अतिथिग्वाय शम्बरं गिरेरुग्रो अवाभरत्।
महो धनानि दयमान ओजसा विश्वा धनान्योजसा ॥७॥
इन्द्रः समत्सु यजमानमार्यं प्रावद्विश्वेषु शतमूतिराजिषु
स्वर्मीळ्हेष्वाजिषु। मनवे शासदव्रतान्त्वचं कृष्णामरन्धयत् ।
दक्षन्न विश्वं ततृषाणमोषति न्यर्शसानमोषति ॥८॥
सूरश्चक्रं प्र वृहज्जात ओजसा प्रपित्वे वाचमरुणो मुषायतीशान
आ मुषायति। उशना यत्परावतोऽजगन्नूतये कवे ।
सुम्नानि विश्वा मनुषेव तुर्वणिरहा विश्वेव तुर्वणिः ॥९॥
स नो नव्येभिर्वृषकर्मन्नुक्थैः पुरां दर्तः पायुभिः पाहि शग्मैः ।
दिवोदासेभिरिन्द्र स्तवानो वावृधीथा अहोभिरिव द्यौः ॥१०॥

[१३१] एकत्रिंशदुत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—परुच्छेपः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१, २ निचृदत्यष्टिः; ३, ५, ६, ७ भुरिगष्टिः; ४ विराडत्यष्टिः॥ स्वरः—मध्यमः॥

अथ विंशो वर्गः॥ २०॥

इन्द्राय हि द्यौरसुरो अनम्नतेन्द्राय मही पृथिवी वरीमभिर्द्युम्नसाता
वरीमभिः। इन्द्रं विश्वे सजोषसो देवासो दधिरे पुरः ।
इन्द्राय विश्वा सवनानि मानुषा रातानि सन्तु मानुषा ॥१॥
विश्वेषु हि त्वा सवनेषु तुञ्जते समानमेकं वृषमण्यवः पृथक्
स्वः सनिष्यवः पृथक्। तं त्वा नावं न पर्षणिं शूषस्य धुरि धीमहि।
इन्द्रं न यज्ञैश्चितयन्त आयवः स्तोमेभिरिन्द्रमायवः ॥२॥
वि त्वा ततस्रे मिथुना अवस्यवो व्रजस्य साता गव्यस्य निःसृजः
सक्षन्त इन्द्र निःसृजः। यद् गव्यन्ता द्वा जना स्व१र्यन्ता समूहसि।
आविष्करिक्रद् वृषणं सचाभुवं वज्रमिन्द्र सचाभुवम् ॥३॥
विदुष्टे अस्य वीर्यस्य पूरवः पुरो यदिन्द्र शारदीरवातिरः सासहानो
अवातिरः। शासस्तमिन्द्र मर्त्यमयज्युं शवसस्पते ।
महीममुष्णाः पृथिवीमिमा अपो मन्दसान इमा अपः ॥४॥

आदित्ते अस्य वीर्यस्य चर्किरन्मदेषु वृषन्नुशिजो यदाविथ
सखीयतो यदाविथ। चकर्थ कारमेभ्यः पृतनासु प्रवन्तवे ।
ते अन्यामन्यां नद्यं सनिष्णत श्रवस्यन्तः सनिष्णत ॥५॥
उतो नो अस्या उषसो जुषेत ह्य१र्कस्य बोधि हविषो हवीमभिः
स्वर्षाता हवीमभिः। यदिन्द्र हन्तवे मृधो वृषा वज्रिञ्चिकेतसि।
आ मे अस्य वेधसो नवीयसो मन्म श्रुधि नवीयसः ॥६॥
त्वं तमिन्द्र वावृधानो अस्मयुरमित्रयन्तं तुविजात मर्त्यं वज्रेण
शूर मर्त्यम्। जहि यो नो अघायति शृणुष्व सुश्रवस्तमः ।
रिष्टं न यामन्नप भूतु दुर्मतिर्विश्वाप भूतु दुर्मतिः ॥७॥

[१३२] द्वात्रिंशदुत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—परुच्छेपः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१, ३, ५, ६ विराडत्यष्टिः; २ भुरिगतिशक्वरी; ४ निचृदष्टिः॥ स्वरः—१, ३-६ मध्यमः २ पञ्चमः;॥

अथ एकविंशो वर्गः॥ २१॥

त्वया वयं मघवन्पूर्व्ये धन इन्द्रत्वोताः सासह्याम पृतन्यतो
वनुयाम वनुष्यतः। नेदिष्ठे अस्मिन्नहन्यधि वोचा नु सुन्वते ।
अस्मिन्यज्ञे वि चयेमा भरे कृतं वाजयन्तो भरे कृतम् ॥१॥
स्वर्जेषे भर आप्रस्य वक्मन्युषर्बुधः स्वस्मिन्नञ्जसि क्राणस्य
स्वस्मिन्नञ्जसि। अहन्निन्द्रो यथा विदे शीर्ष्णाशीर्ष्णोपवाच्यः ।
अस्मत्रा ते सध्र्यक् सन्तु रातयो भद्रा भद्रस्य रातयः ॥२॥
तत्तु प्रयः प्रत्नथा ते शुशुक्वनं यस्मिन्यज्ञे वारमकृण्वत क्षयमृतस्य
वारसि क्षयम्। वि तद्वोचेरध द्वितान्तः पश्यन्ति रश्मिभिः ।
स घा विदे अन्विन्द्रो गवेषणो बन्धुक्षिद्भ्यो गवेषणः ॥३॥
नू इत्था ते पूर्वथा च प्रवाच्यं यदङ्गिरोभ्योऽवृणोरप व्रजमिन्द्र
शिक्षन्नप व्रजम्। ऐभ्यः समान्या दिशाऽस्मभ्यं जेषि योत्सि च।
सुन्वद्भ्यो रन्धया कं चिदव्रतं हृणायन्तं चिदव्रतम् ॥४॥

सं यज्जनान् क्रतुभिः शूर ईक्षयद्धने हिते तरुषन्त श्रवस्यवः प्र
यक्षन्त श्रवस्यवः। तस्मा आयुः प्रजावदिद् बाधे अर्चन्त्योजसा।
इन्द्र ओक्यं दिधिषन्त धीतयो देवाँ अच्छा न धीतयः ॥५॥
युवं तमिन्द्रापर्वता पुरोयुधा यो नः पृतन्यादप तन्तमिद्धतं वज्रेण
तन्तमिद्धतम्। दूरे चत्ताय छन्त्सद् गहनं यदिनक्षत् ।
अस्माकं शत्रून् परि शूर विश्वतो दर्मा दर्षीष्ट विश्वतः ॥६॥

[१३३] त्रयस्त्रिंशदुत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—परुच्छेपः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप्; २, ३ निचृदनुष्टुप्; ४ स्वराडनुष्टुप्;
५ आर्षीगायत्री; ६ स्वराड्ब्राह्मीजगती; ७ विराडष्टिः॥ स्वरः—१ धैवतः;
२-४ गान्धारः; ५ षड्जः; ६ निषादः; ७ मध्यमः॥

अथ द्वाविंशो वर्गः॥ २२॥

उभे पुनामि रोदसी ऋतेन द्रुहो दहामि सं महीरनिन्द्राः ।
अभिव्लग्य यत्र हता अमित्रा वैलस्थानं परि तृळ्हा अशेरन्॥१॥
अभिव्लग्या चिदद्रिवः शीर्षा यातुमतीनाम् ।
छिन्धि वटूरिणा पदा महावटूरिणा पदा ॥२॥
अवासां मघवञ्जहि शर्धो यातुमतीनाम् ।
वैलस्थानके अर्मके महावैलस्थे अर्मके ॥३॥
यासां तिस्रः पञ्चाशतोऽभिव्लङ्गैरपावपः ।
तत्सु ते मनायति तकत्सु ते मनायति ॥४॥
पिशङ्गभृष्टिमम्भृणं पिशाचिमिन्द्र सं मृण ।
सर्वं रक्षो नि बर्हय ॥५॥
अवर्मह इन्द्र दादृहि श्रुधी नः शुशोच हि द्यौः क्षा न भीषाँ अद्रिवो
घृणान्न भीषाँ अद्रिवः। शुष्मिन्तमो हि शुष्मिभिर्वधैरुग्रेभिरीयसे।
अपूरुषघ्नो अप्रतीत शूर सत्वभिस्त्रिसप्तैः शूर सत्वभिः ॥६॥
वनोति हि सुन्वन्क्षयं परीणसः सुन्वानो हि ष्मा यजत्यव द्विषो
देवानामव द्विषः। सुन्वान इत्सिषासति सहस्रा वाज्यवृतः ।
सुन्वानायेन्द्रो ददात्याभुवं रयिं ददात्याभुवम् ॥७॥

विंशोऽनुवाकः [१३४] चतुस्त्रिंशदुत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—परुच्छेपः॥ देवता—वायुः॥ छन्दः—१, ३ निचृदत्यष्टिः; २, ४ विराडत्यष्टिः;
५ अष्टिः; ६ विराडष्टिः॥ स्वरः—मध्यमः॥

अथ त्रयोविंशो वर्गः॥ २३॥

आ त्वा जुवो रारहाणा अभि प्रयो वायो वहन्त्विह पूर्वपीतये
सोमस्य पूर्वपीतये। ऊर्ध्वा ते अनु सूनृता मनस्तिष्ठतु जानती ।
नियुत्वता रथेना याहि दावने वायो मखस्य दावने ॥१॥
मन्दन्तु त्वा मन्दिनो वायविन्दवोऽस्मत्क्राणासः सुकृता अभिद्यवो
गोभिः क्राणा अभिद्यवः। यद्ध क्राणा इरध्यै दक्षं सचन्त ऊतयः।
सध्रीचीना नियुतो दावने धिय उप ब्रुवत ईं धियः ॥२॥
वायुर्युङ्क्ते रोहिता वायुररुणा वायू रथे अजिरा धुरि वोळ्हवे वहिष्ठा
धुरि वोळ्हवे। प्र बोधया पुरन्धिं जार आ ससतीमिव ।
प्र चक्षय रोदसी वासयोषसः श्रवसे वासयोषसः ॥३॥
तुभ्यमुषासः शुचयः परावति भद्रा वस्त्रा तन्वते दंसु रश्मिषु
चित्रा नव्येषु रश्मिषु। तुभ्यं धेनुः सबर्दुघा विश्वा वसूनि दोहते ।
अजनयो मरुतो वक्षणाभ्यो दिव आ वक्षणाभ्यः ॥४॥
तुभ्यं शुक्रासः शुचयस्तुरण्यवो मदेषूग्रा इषणन्त भुर्वण्यपामिषन्त
भुर्वणि। त्वां त्सारी दसमानो भगमीट्टे तक्ववीये ।
त्वं विश्वस्माद्भुवनात्पासि धर्मणासुर्यात्पासि धर्मणा ॥५॥
त्वं नो वायवेषामपूर्व्यः सोमानां प्रथमः पीतिमर्हसि ।
सुतानां पीतिमर्हसि। उतो विहुत्मतीनां विशां ववर्जुषीणाम् ।
विश्वा इत्ते धेनवो दुह्र आशिरं घृतं दुह्रत आशिरम् ॥६॥

[१३५] पञ्चत्रिंशदुत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—परुच्छेपः॥ देवता—वायुः॥ छन्दः—१, ३ निचृदत्यष्टिः; २, ४ विराडत्यष्टिः;
५, ९ भुरिगष्टिः; ६, ८ निचृदष्टिः; ७ अष्टिः॥ स्वरः—मध्यमः॥

अथ चतुर्विंशो वर्गः ॥ २४ ॥

स्तीर्णं बर्हिरुप नो याहि वीतये सहस्रेण नियुता नियुत्वते
शतिनीभिर्नियुत्वते। तुभ्यं हि पूर्वपीतये देवा देवाय येमिरे ।
प्र ते सुतासो मधुमन्तो अस्थिरन्मदाय क्रत्वे अस्थिरन् ॥ १ ॥
तुभ्यायं सोमः परिपूतो अद्रिभिः स्पार्हा वसानः परि कोशमर्षति
शुक्रा वसानो अर्षति। तवायं भाग आयुषु सोमो देवेषु हूयते ।
वह वायो नियुतो याह्यस्मयुर्जुषाणो याह्यस्मयुः ॥ २ ॥
आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरं सहस्रिणीभिरुप याहि वीतये
वायो हव्यानि वीतये। तवायं भाग ऋत्वियः सरश्मिः सूर्ये सचा।
अध्वर्युभिर्भरमाणा अयंसत वायो शुक्रा अयंसत ॥ ३ ॥
आ वां रथो नियुत्वान्वक्षदवसेऽभि प्रयांसि सुधितानि वीतये वायो
हव्यानि वीतये। पिबतं मध्वो अन्धसः पूर्वपेयं हि वां हितम् ।
वायवा चन्द्रेण राधसा गतमिन्द्रश्च राधसा गतम् ॥ ४ ॥
आ वां धियो ववृत्युरध्वराँ उपेममिन्दुं मर्मृजन्त वाजिनमाशुमत्यं
न वाजिनम्। तेषां पिबतमस्मयू आ नो गन्तमिहोत्या ।
इन्द्रवायू सुतानामद्रिभिर्युवं मदाय वाजदा युवम् ॥ ५ ॥

अथ पञ्चविंशो वर्गः ॥ २५ ॥

इमे वां सोमा अप्स्वा सुता इहाध्वर्युभिर्भरमाणा अयंसत वायो
शुक्रा अयंसत। एते वामभ्यसृक्षत तिरः पवित्रमाशवः ।
युवायवोऽति रोमाण्यव्यया सोमासो अत्यव्यया ॥ ६ ॥
अति वायो ससतो याहि शश्वतो यत्र ग्रावा वदति तत्र गच्छतं
गृहमिन्द्रश्च गच्छतम्। वि सूनृता ददृशे रीयते घृतमा पूर्णया
नियुता याथो अध्वरमिन्द्रश्च याथो अध्वरम् ॥ ७ ॥
अत्राह तद्वहेथे मध्व आहुतिं यमश्वत्थमुपतिष्ठन्त जायवोऽस्मे
ते सन्तु जायवः। साकं गावः सुवते पच्यते यवो न ते वाय
उप दस्यन्ति धेनवो नाप दस्यन्ति धेनवः ॥ ८ ॥

इमे ये ते सु वायो बाह्वोजसोऽन्तर्नदी ते पतयन्त्युक्षणो महि
व्राधन्त उक्षणः। धन्वञ्चिद् ये अनाशवो जीराश्चिदगिरौकसः।
सूर्यस्येव रश्मयो दुर्नियन्तवो हस्तयोर्दुर्नियन्तवः ॥ ९ ॥

[१३६] षट्त्रिंशदुत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—परुच्छेपः ॥ देवता—१-५ मित्रावरुणौ; ६-७ मन्त्रोक्ताः ॥ छन्दः—१, ३, ५, ६ स्वराडत्यष्टिः; २ निचृदष्टिः; ४ भुरिगष्टिः; ७ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१-६ मध्यमः; ७ धैवतः ॥

अथ षड्विंशो वर्गः ॥ २६ ॥

प्र सु ज्येष्ठं निचिराभ्यां बृहन्नमो हव्यं मतिं भरता मृळयद्भ्यां
स्वादिष्ठं मृळयद्भ्याम्। ता सम्राजा घृतासुती यज्ञेयज्ञ उपस्तुता।
अथैनोः क्षत्रं न कुतश्चनाधृषे देवत्वं नू चिदाधृषे ॥ १ ॥
अदर्शि गातुरुरवे वरीयसी पन्था ऋतस्य समयंस्त रश्मिभिश्
चक्षुर्भगस्य रश्मिभिः। द्युक्षं मित्रस्य सादनमर्यम्णो वरुणस्य च ।
अथा दधाते बृहदुक्थ्यं वय उपस्तुत्यं बृहद् वयः ॥ २ ॥
ज्योतिष्मतीमदितिं धारयत्क्षितिं स्वर्वतीमा सचेते दिवेदिवे जागृवांसा
दिवेदिवे। ज्योतिष्मत् क्षत्रमाशाते आदित्या दानुनस्पती ।
मित्रस्तयोर्वरुणो यातयज्जनोऽर्यमा यातयज्जनः ॥ ३ ॥
अयं मित्राय वरुणाय शन्तमः सोमो भूत्ववपानेष्वाभगो देवो
देवेष्वाभगः। तं देवासो जुषेरत विश्वे अद्य सजोषसः ।
तथा राजाना करथो यदीमह ऋतावाना यदीमहे ॥ ४ ॥
यो मित्राय वरुणायाविधज्जनोऽनर्वाणं तं परि पातो अंहसो
दाश्वांसं मर्तमंहसः। तमर्यमाभि रक्षत्यृजूयन्तमनु व्रतम् ।
उक्थैर्य एनोः परिभूषति व्रतं स्तोमैराभूषति व्रतम् ॥ ५ ॥
नमो दिवे बृहते रोदसीभ्यां मित्राय वोचं वरुणाय मीळ्हुषे
सुमृळीकाय मीळ्हुषे। इन्द्रमग्निमुप स्तुहि द्युक्षमर्यमणं भगम् ।
ज्योग्जीवन्तः प्रजया सचेमहि सोमस्योती सचेमहि ॥ ६ ॥

ऊती देवानां वयमिन्द्रवन्तो मंसीमहि स्वयशसो मरुद्भिः ।
अग्निर्मित्रो वरुणः शर्म यंसन् तदश्याम मघवानो वयं च ॥ ७ ॥

इति द्वितीयाष्टके प्रथमोऽध्यायः ॥

अथ द्वितीयाष्टके द्वितीयोऽध्यायः

[१३७] सप्तत्रिंशदुत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—परुच्छेपः ॥ देवता—मित्रावरुणौ ॥ छन्दः—१ निचृच्छक्वरी; २ विराट्शक्वरी; ३ भुरिगतिशक्वरी ॥ स्वरः—पञ्चमः ॥

अथ प्रथमो वर्गः ॥ १ ॥

सुषुमा यातमद्रिभिर्गोश्रीता मत्सरा इमे सोमासो मत्सरा इमे ।
आ राजाना दिविस्पृशास्मत्रा गन्तमुप नः ।
इमे वां मित्रावरुणा गवाशिरः सोमाः शुक्रा गवाशिरः ॥ १ ॥
इम आ यातमिन्दवः सोमासो दध्याशिरः सुतासो दध्याशिरः ।
उत वामुषसो बुधि साकं सूर्यस्य रश्मिभिः ।
सुतो मित्राय वरुणाय पीतये चारुर्ऋताय पीतये ॥ २ ॥
तां वां धेनुं न वासरीमंशुं दुहन्त्यद्रिभिः सोमं दुहन्त्यद्रिभिः ।
अस्मत्रा गन्तमुप नोऽर्वाञ्चा सोमपीतये ।
अयं वां मित्रावरुणा नृभिः सुतः सोम आ पीतये सुतः ॥ ३ ॥

[१३८] अष्टात्रिंशदुत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—परुच्छेपः ॥ देवता—पूषा ॥ छन्दः—१, ३ निचृदत्यष्टिः; २ विराड्त्यष्टिः; ४ भुरिगष्टिः ॥ स्वरः—मध्यमः ॥

अथ द्वितीयो वर्गः ॥ २ ॥

प्रप्र पूष्णस्तुविजातस्य शस्यते महित्वमस्य तवसो न तन्दते
स्तोत्रमस्य न तन्दते । अर्चामि सुम्नयन्नहमन्त्यूतिं मयोभुवम् ।
विश्वस्य यो मन आयुयुवे मखो देव आयुयुवे मखः ॥ १ ॥

प्र हि त्वा पूषन्नजिरं न यामनि स्तोमेभिः कृण्व ऋणवो यथा मृध
उष्ट्रो न पीपरो मृधः । हुवे यत्त्वा मयोभुवं देवं सख्याय मर्त्यः ।
अस्माकमाङ्गूषान् द्युम्निनस्कृधि वाजेषु द्युम्निनस्कृधि ॥ २ ॥
यस्य ते पूषन्त्सख्ये विपन्यवः क्रत्वा चित्सन्तोऽवसा बुभुज्रिर
इति क्रत्वा बुभुज्रिरे । तामनु त्वा नवीयसीं नियुतं राय ईमहे ।
अहेळमान उरुशंस सरी भव वाजेवाजे सरी भव ॥ ३ ॥
अस्या ऊ षु ण उप सातये भुवोऽहेळमानो ररिवाँ अजाश्व
श्रवस्यतामजाश्व । ओ षु त्वा ववृतीमहि स्तोमेभिर्दस्म साधुभिः ।
नहि त्वा पूषन्नतिमन्य आघृणे न ते सख्यमपह्नुवे ॥ ४ ॥

[१३९] एकोनचत्वारिंशदुत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—परुच्छेपः ॥ देवता—१, ११ विश्वे देवाः; २ मित्रावरुणौ; ३-५ अश्विनौ; ६ इन्द्रः; ७ अग्निः; ८ मरुतः; ९ इन्द्राग्नी; १० बृहस्पतिः ॥ छन्दः—१, १० निचृदष्टिः; २, ३ विराडष्टिः; ४, ९ भुरिगत्यष्टिः; ५ निचृद्बृहती; ६ अष्टिः; ७ अत्यष्टिः; ८ स्वराडत्यष्टिः; ११ भुरिक्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१-१० मध्यमः; ११ पञ्चमः ॥

अथ तृतीयो वर्गः ॥ ३ ॥

अस्तु श्रौषट् पुरो अग्निं धिया दध आ नु तच्छर्धो दिव्यं वृणीमह
इन्द्रवायू वृणीमहे । यद्ध क्राणा विवस्वति नाभा सन्दायि नव्यसी ।
अध प्र सू न उप यन्तु धीतयो देवाँ अच्छा न धीतयः ॥ १ ॥
यद्ध त्यन्मित्रावरुणावृतादध्याददाथे अनृतं स्वेन मन्युना दक्षस्य
स्वेन मन्युना । युवोरित्थाधि सद्मस्वपश्याम हिरण्ययम् ।
धीभिश्चन मनसा स्वेभिरक्षभिः सोमस्य स्वेभिरक्षभिः ॥ २ ॥
युवां स्तोमेभिर्देवयन्तो अश्विनाश्रावयन्तइव श्लोकमायवो युवां
हव्याभ्या३ यवः । युवोर्विश्वा अधि श्रियः पृक्षश्च विश्ववेदसा ।
प्रुषायन्ते वां पवयो हिरण्यये रथे दस्रा हिरण्यये ॥ ३ ॥

अचेति दस्रा व्यु१नाकमृण्वथो युञ्जते वां रथयुजो दिविष्टिष्व-
ध्वस्मानो दिविष्टिषु। अधि वां स्थाम वन्धुरे रथे दस्रा हिरण्यये।
पथेव यन्तावनुशासता रजोऽञ्जसा शासता रजः ॥४॥
शचीभिर्नः शचीवसू दिवा नक्तं दशस्यतम् ।
मा वां रातिरुप दसत्कदा चनास्मद्रातिः कदा चन ॥५॥

अथ चतुर्थो वर्गः ॥४॥

वृषन्निन्द्र वृषपाणास इन्दव इमे सुता अद्रिषुतास उद्भिदस्तुभ्यं
सुतास उद्भिदः। ते त्वा मन्दन्तु दावने महे चित्राय राधसे ।
गीर्भिर्गिर्वाहः स्तवमान आ गहि सुमृळीको न आ गहि ॥६॥
ओ षू णो अग्ने शृणुहि त्वमीळितो देवेभ्यो ब्रवसि यज्ञियेभ्यो
राजभ्यो यज्ञियेभ्यः। यद्ध त्यामङ्गिरोभ्यो धेनुं देवा अदत्तन ।
वि तां दुह्रे अर्यमा कर्तरी सचाँ एष तां वेद मे सचा ॥७॥
मो षु वो अस्मदभि तानि पौंस्या सना भूवन् द्युम्नानि मोत
जारिषुरस्मत्पुरोत जारिषुः। यद् वश्चित्रं युगेयुगे नव्यं घोषादमर्त्यम्।
अस्मासु तन्मरुतो यच्च दुष्टरं दिधृता यच्च दुष्टरम् ॥८॥
दध्यङ् ह मे जनुषं पूर्वो अङ्गिराः प्रियमेधः कण्वो अत्रिर्मनुर्विदुस्ते
मे पूर्वे मनुर्विदुः। तेषां देवेष्वायतिरस्माकं तेषु नाभयः ।
तेषां पदेन मह्या नमे गिरेन्द्राग्नी आ नमे गिरा ॥९॥
होता यक्षद् वनिनो वन्त वार्यं बृहस्पतिर्यजति वेन उक्षभिः
पुरुवारेभिरुक्षभिः। जगृभ्मा दूरआदिशं श्लोकमद्रेरध त्मना ।
अधारयदररिन्दानि सुक्रतुः पुरू सद्मानि सुक्रतुः ॥१०॥
ये देवासो दिव्येकादश स्थ पृथिव्यामध्येकादश स्थ ।
अप्सुक्षितो महिनैकादश स्थ ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम् ॥११॥

एकविंशोऽनुवाकः [१४०] चत्वारिंशदुत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—दीर्घतमाः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—१, ५, ८ जगती; २, ७, ११ विराड्जगती;
३, ४, ९ निचृज्जगती; ६ भुरिक्त्रिष्टुप्; १०, १२ निचृत्त्रिष्टुप्; १३ पङ्क्तिः॥
स्वरः—१-५, ७-९, ११ निषादः; ६, १०, १२ धैवतः; १३ पञ्चमः॥

अथ पञ्चमो वर्गः॥५॥

वेदिषदे प्रियधामाय सुद्युते धासिमिव प्र भरा योनिमग्नये।
वस्त्रेणेव वासया मन्मना शुचिं ज्योतीरथं शुक्रवर्णं तमोहनम्॥१॥
अभि द्विजन्मा त्रिवृदन्नमृज्यते संवत्सरे वावृधे जग्धमी पुनः।
अन्यस्यासा जिह्वया जेन्यो वृषा न्य१न्येन वनिनो मृष्ट वारणः॥२॥
कृष्णप्रुतौ वेविजे अस्य सक्षिता उभा तरेते अभि मातरा शिशुम्।
प्राचाजिह्वं ध्वसयन्तं तृषुच्युतमा साच्यं कुपयं वर्धनं पितुः॥३॥
मुमुक्ष्वो३ मनवे मानवस्यते रघुद्रुवः कृष्णसीतास ऊ जुवः।
असमना अजिरासो रघुष्यदो वातजूता उप युज्यन्त आशवः॥४॥
आदस्य ते ध्वसयन्तो वृथेरते कृष्णमभ्वं महि वर्पः करिक्रतः।
यत्सीं महीमवनिं प्राभि मर्मृशदभिश्वसन्त्स्तनयन्नेति नानदत्॥५॥

अथ षष्ठो वर्गः॥६॥

भूषन् न योऽधि बभ्रूषु नम्नते वृषेव पत्नीरभ्येति रोरुवत्।
ओजायमानस्तन्वश्च शुम्भते भीमो न शृङ्गा दविधाव दुर्गृभिः॥६॥
स संस्तिरो विष्टिरः सं गृभायति जानन्नेव जानतीर्नित्य आ शये।
पुनर्वर्धन्ते अपि यन्ति देव्यमन्यद् वर्पः पित्रोः कृण्वते सचा॥७॥
तमग्रुवः केशिनीः सं हि रेभिर ऊर्ध्वास्तस्थुर्मम्रुषीः प्रायवे पुनः।
तासां जरां प्रमुञ्चन्नेति नानददसुं परं जनयञ्जीवमस्तृतम् ॥८॥
अधीवासं परि मातू रिहन्नह तुविग्रेभिः सत्वभिर्याति वि ज्रयः।
वयो दधत् पद्वते रेरिहत् सदानु श्येनी सचते वर्तनीरह ॥९॥
अस्माकमग्ने मघवत्सु दीदिह्यध श्वसीवान् वृषभो दमूनाः।
अवास्या शिशुमतीरदीदेर्वर्मेव युत्सु परिजर्भुराणः ॥१०॥

अथ सप्तमो वर्गः ॥ ७ ॥

इदमग्ने सुधितं दुर्धितादधि प्रियादु चिन्मन्मनः प्रेयो अस्तु ते।
यत्ते शुक्रं तन्वो३ रोचते शुचि तेनास्मभ्यं वनसे रत्नमा त्वम्॥ ११ ॥
रथाय नावमुत नो गृहाय नित्यारित्रां पद्वतीं रास्यग्ने ।
अस्माकं वीराँ उत नो मघोनो जनाँश्च या पारयाच्छर्म या च॥ १२ ॥
अभी नो अग्न उक्थमिज्जुगुर्या द्यावाक्षामा सिन्धवश्च स्वगूर्ताः।
गव्यं यव्यं यन्तो दीर्घाहेषं वरमरुण्यो वरन्त ॥ १३ ॥

[१४१] एकचत्वारिंशदुत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—दीर्घतमाः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१-३, ६, ११ जगती; ४, ७, ९, १० निचृज्जगती; ५ स्वराट्त्रिष्टुप्; ८ भुरिक्त्रिष्टुप्; १२ भुरिक्पङ्क्तिः; १३ स्वराट्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१-४, ६, ७, ९-११ निषादः;५, ८ धैवतः; १२, १३ पञ्चमः ॥

अथ अष्टमो वर्गः ॥ ८ ॥

बळित्था तद् वपुषे धायि दर्शतं देवस्य भर्गः सहसो यतो जनि।
यदीमुप ह्वरते साधते मतिर्ऋतस्य धेना अनयन्त सस्रुतः॥ १ ॥
पृक्षो वपुः पितुमान्नित्य आ शये द्वितीयमा सप्तशिवासु मातृषु।
तृतीयमस्य वृषभस्य दोहसे दशप्रमतिं जनयन्त योषणः॥ २ ॥
निर्यदीं बुध्नान्महिषस्य वर्पस ईशानासः शवसा क्रन्त सूरयः।
यदीमनु प्रदिवो मध्व आधवे गुहा सन्तं मातरिश्वा मथायति॥ ३ ॥
प्र यत्पितुः परमान्नीयते पर्या पृक्षुधो वीरुधो दंसु रोहति।
उभा यदस्य जनुषं यदिन्वत आदिद्यविष्ठो अभवद् घृणा शुचिः॥ ४ ॥
आदिन्मातृराविशद्यास्वा शुचिरहिंस्यमान उर्विया वि वावृधे।
अनु यत्पूर्वा अरुहत्सनाजुवो नि नव्यसीष्ववरासु धावते ॥ ५ ॥

अथ नवमो वर्गः ॥ ९ ॥

आदिद्धोतारं वृणते दिविष्टिषु भगमिव पपृचानास ऋञ्जते।
देवान्यत्क्रत्वा मज्मना पुरुष्टुतो मर्तं शंसं विश्वधा वेति धायसे॥ ६ ॥
वि यदस्थाद्यजतो वातचोदितो ह्वारो न वक्वा जरणा अनाकृतः।
तस्य पत्मन्दक्षुषः कृष्णजंहसः शुचिजन्मनो रज आ व्यध्वनः॥ ७ ॥

रथो न यातः शिक्वभिः कृतो द्यामङ्गेभिररुषेभिरीयते ।
आदस्य ते कृष्णासो दक्षि सूरयः शूरस्येव त्वेषथादीषते वयः॥ ८ ॥
त्वया ह्यग्ने वरुणो धृतव्रतो मित्रः शाशद्रे अर्यमा सुदानवः।
यत्सीमनु क्रतुना विश्वथा विभुररान्न नेमिः परिभूरजायथाः॥ ९ ॥
त्वमग्ने शशमानाय सुन्वते रत्नं यविष्ठ देवतातिमिन्वसि।
तं त्वा नु नव्यं सहसो युवन्वयं भगं न कारे महिरत्न धीमहि॥ १० ॥
अस्मे रयिं न स्वर्थं दमूनसं भगं दक्षं न पपृचासी धर्णसिम्।
रश्मीँरिव यो यमति जन्मनी उभे देवानां शंसमृत आ च सुक्रतुः॥ ११ ॥
उत नः सुद्योत्मा जीराश्वो होता मन्द्रः शृणवच्चन्द्ररथः।
स नो नेषन्नेषतमैरमूरोऽ ग्निर्वामं सुवितं वस्यो अच्छ ॥ १२ ॥
अस्ताव्यग्निः शिमीवद्भिरर्कैः साम्राज्याय प्रतरं दधानः ।
अमी च ये मघवानो वयं च मिहं न सूरो अति निष्टतन्युः॥ १३ ॥

[१४२] द्विचत्वारिंशदुत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—दीर्घतमाः ॥ देवता—१-४ अग्निः; ५ बर्हिः; ६ देव्यो द्वारः; ७ उषासानक्ता; ८ दैव्यौ होतारौ; ९ सरस्वतीळाभारत्यः; १० त्वष्टा; ११ वनस्पतिः; १२ स्वाहाकृतिः; १३ इन्द्रः ॥ छन्दः—१, २, ५, ६, ८, ९ निचृदनुष्टुप्; ३, ७, १०-१२ अनुष्टुप्; ४ स्वराडनुष्टुप्; १३ भुरिगुष्णिक् ॥
स्वरः—१-१२ गान्धारः; १३ ऋषभः ॥

अथ दशमो वर्गः ॥ १० ॥

समिद्धो अग्न आ वह देवाँ अद्य यतस्रुचे ।
तन्तुं तनुष्व पूर्व्यं सुतसोमाय दाशुषे ॥ १ ॥
घृतवन्तमुप मासि मधुमन्तं तनूनपात् ।
यज्ञं विप्रस्य मावतः शशमानस्य दाशुषः ॥ २ ॥
शुचिः पावको अद्भुतो मध्वा यज्ञं मिमिक्षति।
नराशंसस्त्रिरा दिवो देवो देवेषु यज्ञियः ॥ ३ ॥
ईळितो अग्न आ वहेन्द्रं चित्रमिह प्रियम् ।
इयं हि त्वा मतिर्ममाच्छा सुजिह्व वच्यते ॥ ४ ॥

स्तृणानासो यतस्रुचो बर्हिर्यज्ञे स्वध्वरे ।
वृञ्जे देवव्यचस्तममिन्द्राय शर्म सप्रथः ॥ ५ ॥
वि श्रयन्तामृतावृधः प्रयै देवेभ्यो महीः ।
पावकासः पुरुस्पृहो द्वारो देवीरसश्चतः ॥ ६ ॥

अथ एकादशो वर्गः ॥ ११ ॥

आ भन्दमाने उपाके नक्तोषासा सुपेशसा ।
यह्वी ऋतस्य मातरा सीदतां बर्हिरा सुमत् ॥ ७ ॥
मन्द्रजिह्वा जुगुर्वणी होतारा दैव्या कवी ।
यज्ञं नो यक्षतामिमं सिध्रमद्य दिविस्पृशम् ॥ ८ ॥
शुचिर्देवेष्वर्पिता होत्रा मरुत्सु भारती ।
इळा सरस्वती मही बर्हिः सीदन्तु यज्ञियाः ॥ ९ ॥
तन्नस्तुरीपमद्भुतं पुरु वारं पुरु त्मना ।
त्वष्टा पोषाय वि ष्यतु राये नाभा नो अस्मयुः ॥ १० ॥
अवसृजन्नुप त्मना देवान्यक्षि वनस्पते ।
अग्निर्हव्या सुषूदति देवो देवेषु मेधिरः ॥ ११ ॥
पूषण्वते मरुत्वते विश्वदेवाय वायवे ।
स्वाहा गायत्रवेपसे हव्यमिन्द्राय कर्तन ॥ १२ ॥
स्वाहाकृतान्या गह्युप हव्यानि वीतये ।
इन्द्रा गहि श्रुधी हवं त्वां हवन्ते अध्वरे ॥ १३ ॥

[१४३] त्रिचत्वारिंशदुत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—दीर्घतमाः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१, ७ निचृज्जगती; २, ३, ५ विराड्जगती; ४, ६ जगती; ८ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१-७ निषादः; ८ धैवतः ॥

अथ द्वादशो वर्गः ॥ १२ ॥

प्र तव्यसीं नव्यसीं धीतिमग्नये वाचो मतिं सहसः सूनवे भरे ।
अपां नपाद् यो वसुभिः सह प्रियो होता पृथिव्यां न्यसीददृत्वियः ॥ १ ॥

स जायमानः परमे व्योमन्याविरग्निरभवन्मातरिश्वने ।
अस्य क्रत्वा समिधानस्य मज्मना प्र द्यावा शोचिः पृथिवी अरोचयत् ॥ २ ॥
अस्य त्वेषा अजरा अस्य भानवः सुसंदृशः सुप्रतीकस्य सुद्युतः ।
भात्वक्षसो अत्यक्तुर्न सिन्धवोऽग्ने रेजन्ते अससन्तो अजराः ॥ ३ ॥
यमेरिरे भृगवो विश्ववेदसं नाभा पृथिव्या भुवनस्य मज्मना ।
अग्निं तं गीर्भिर्हिनुहि स्व आ दमे य एको वस्वो वरुणो न राजति ॥ ४ ॥
न यो वराय मरुतामिव स्वनः सेनेव सृष्टा दिव्या यथाशनिः ।
अग्निर्जम्भैस्तिगितैरत्ति भर्वति योधो न शत्रून्त्स वना न्यृञ्जते ॥ ५ ॥
कुविन्नो अग्निरुचथस्य वीरसद्वसुष्कुविद्वसुभिः काममावरत् ।
चोदः कुवित्तुतुज्यात्सातये धियः शुचिप्रतीकं तमया धिया गृणे ॥ ६ ॥
घृतप्रतीकं व ऋतस्य धूर्षदमग्निं मित्रं न समिधान ऋञ्जते ।
इन्धानो अक्रो विदथेषु दीद्यच्छुक्रवर्णामुदु नो यंसते धियम् ॥ ७ ॥
अप्रयुच्छन्नप्रयुच्छद्भिरग्ने शिवेभिर्नः पायुभिः पाहि शग्मैः ।
अदब्धेभिरदृपितेभिरिष्टेऽनिमिषद्भिः परि पाहि नो जाः ॥ ८ ॥

[१४४] चतुश्चत्वारिंशदुत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—दीर्घतमाः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१, ३-५, ७ निचृज्जगती; २ जगती; ६ भुरिक्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१-५, ७ निषादः; ६ पञ्चमः ॥

अथ त्रयोदशो वर्गः ॥ १३ ॥

एति प्र होता व्रतमस्य माययोर्ध्वां दधानः शुचिपेशसं धियम् ।
अभि स्रुचः क्रमते दक्षिणावृतो या अस्य धाम प्रथमं ह निंसते ॥ १ ॥
अभीमृतस्य दोहना अनूषत योनौ देवस्य सदने परीवृताः ।
अपामुपस्थे विभृतो यदावसदध स्वधा अधयद्याभिरीयते ॥ २ ॥
युयूषतः सवयसा तदिद्वपुः समानमर्थं वितरित्रता मिथः ।
आदीं भगो न हव्यः समस्मदा वोळ्हुर्न रश्मीन्त्समयंस्त सारथिः ॥ ३ ॥
यमीं द्वा सवयसा सपर्यतः समाने योना मिथुना समोकसा ।
दिवा न नक्तं पलितो युवाजनि पुरू चरन्नजरो मानुषा युगा ॥ ४ ॥

तमीं हिन्वन्ति धीतयो दश व्रिशो देवं मर्तास ऊतये हवामहे।
धनोरधि प्रवत आ स ऋण्वत्यभिव्रजद्भिर्वयुना नवाधित ॥ ५ ॥
त्वं ह्यग्ने दिव्यस्य राजसि त्वं पार्थिवस्य पशुपाइव त्मना।
एनी त एते बृहती अभिश्रिया हिरण्ययी वक्वरी बर्हिराशाते ॥ ६ ॥
अग्ने जुषस्व प्रति हर्य तद्वचो मन्द्र स्वधाव ऋतजात सुक्रतो।
यो विश्वतः प्रत्यङ्ङसि दर्शतो रण्वः संदृष्टौ पितुमाँइव क्षयः ॥ ७ ॥

[१४५] पञ्चचत्वारिंशदुत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—दीर्घतमाः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१ विराड्जगती; २, ५ निचृज्जगती;
३, ४ भुरिक्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१, २, ५ निषादः; ३, ४ धैवतः ॥

अथ चतुर्दशो वर्गः ॥ १४ ॥

तं पृच्छता स जगामा स वेद स चिकित्वाँ ईयते सा न्वीयते ।
तस्मिन्त्सन्ति प्रशिषस्तस्मिन्निष्टयः स वाजस्य शवसः शुष्मिणस्पतिः ॥ १ ॥
तमित्पृच्छन्ति न सिमो वि पृच्छति स्वेनेव धीरो मनसा यदग्रभीत्।
न मृष्यते प्रथमं नापरं वचोऽस्य क्रत्वा सचते अप्रदृपितः ॥ २ ॥
तमिद्गच्छन्ति जुह्वस्तमर्वतीर्विश्वान्येकः शृणवद्वचांसि मे ।
पुरुप्रैषस्ततुरिर्यज्ञसाधनोऽच्छिद्रोतिः शिशुरादत्त सं रभः ॥ ३ ॥
उपस्थायं चरति यत्समारत सद्यो जातस्तत्सार युज्येभिः ।
अभि श्वान्तं मृशते नान्द्ये मुदे यदीं गच्छन्त्युशतीरपिष्ठितम् ॥ ४ ॥
स ईं मृगो अप्यो वनर्गुरुप त्वच्युपमस्यां नि धायि ।
व्यब्रवीद्वयुना मर्त्येभ्योऽग्निर्विद्वाँ ऋतचिद्धि सत्यः ॥ ५ ॥

[१४६] षट्चत्वारिंशदुत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—दीर्घतमाः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१, २ विराट्त्रिष्टुप्;
३, ५ त्रिष्टुप्; ४ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

अथ पञ्चदशो वर्गः ॥ १५ ॥

त्रिमूर्धानं सप्तरश्मिं गृणीषेऽनूनमग्निं पित्रोरुपस्थे ।
निषत्तमस्य चरतो ध्रुवस्य विश्वा दिवो रोचनापप्रिवांसम् ॥ १ ॥

उक्षा महाँ अभि ववक्ष एने अजरस्तस्थावितऊतिर्ऋष्वः ।
उर्व्याः पदो नि दधाति सानौ रिहन्त्यूधो अरुषासो अस्य ॥ २ ॥
समानं वत्समभि संचरन्ती विष्वग्धेनू वि चरतः सुमेके।
अनपवृज्याँ अध्वनो मिमाने विश्वान्केताँ अधि महो दधाने ॥ ३ ॥
धीरासः पदं कवयो नयन्ति नाना हृदा रक्षमाणा अजुर्यम्।
सिषासन्तः पर्यपश्यन्त सिन्धुमाविरेभ्यो अभवत्सूर्यो नॄन् ॥ ४ ॥
दिदृक्षेण्यः परि काष्ठासु जेन्य ईळेन्यो महो अर्भाय जीवसे।
पुरुत्रा यदभवत्सूरहैभ्यो गर्भेभ्यो मघवा विश्वदर्शतः ॥ ५ ॥

[१४७] सप्तचत्वारिंशदुत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—दीर्घतमाः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१, ३-५ निचृत्त्रिष्टुप्;
२ विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

अथ षोडशो वर्गः ॥ १६ ॥

कथा ते अग्ने शुचयन्त आयोर्ददाशुर्वाजेभिराशुषाणाः ।
उभे यत्तोके तनये दधाना ऋतस्य सामन्रणयन्त देवाः ॥ १ ॥
बोधा मे अस्य वचसो यविष्ठ मंहिष्ठस्य प्रभृतस्य स्वधावः।
पीयति त्वो अनु त्वो गृणाति वन्दारुस्ते तन्वं वन्दे अग्ने ॥ २ ॥
ये पायवो मामतेयं ते अग्ने पश्यन्तो अन्धं दुरितादरक्षन्।
ररक्ष तान्त्सुकृतो विश्ववेदा दिप्सन्त इद्रिपवो नाह देभुः ॥ ३ ॥
यो नो अग्ने अररिवाँ अघायुररातीवा मर्चयति द्वयेन।
मन्त्रो गुरुः पुनरस्तु सो अस्मा अनु मृक्षीष्ट तन्वं दुरुक्तैः ॥ ४ ॥
उत वा यः सहस्य प्रविद्वान् मर्तो मर्तं मर्चयति द्वयेन।
अतः पाहि स्तवमान स्तुवन्तमग्ने माकिर्नो दुरिताय धायीः ॥ ५ ॥

[१४८] अष्टचत्वारिंशदुत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—दीर्घतमाः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१, २ पङ्क्तिः; ५ स्वराट्पङ्क्तिः;
३, ४ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१, २, ५ पञ्चमः; ३, ४ धैवतः ॥

अथ सप्तदशो वर्गः ॥ १७ ॥

मथीद्यदीं विष्टो मातरिश्वा होतारं विश्वाप्सुं विश्वदेव्यम् ।
नि यं दधुर्मनुष्यासु विक्षु स्व१र्ण चित्रं वपुषे विभावम् ॥ १ ॥
ददानमिन्न ददभन्त मन्माग्निर्वरूथं मम तस्य चाकन् ।
जुषन्त विश्वान्यस्य कर्मोपस्तुतिं भरमाणस्य कारोः ॥ २ ॥
नित्ये चिन्नु यं सदने जगृभ्रे प्रशस्तिभिर्दधिरे यज्ञियासः ।
प्र सू नयन्त गृभयन्त इष्टावश्वासो न रथ्यो रारहाणाः ॥ ३ ॥
पुरूणि दस्मो नि रिणाति जम्भैराद्रोचते वन आ विभावा ।
आदस्य वातो अनु वाति शोचिरस्तुर्न शर्यामसनामनु द्यून् ॥ ४ ॥
न यं रिपवो न रिषण्यवो गर्भे सन्तं रेषणा रेषयन्ति ।
अन्धा अपश्या न दभन्नभिख्या नित्यास ईं प्रेतारो अरक्षन् ॥ ५ ॥

[१४९] एकोनपञ्चाशदुत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—दीर्घतमाः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१ भुरिगनुष्टुप्; २, ४ निचृदनुष्टुप्; ३ उष्णिक्; ५ विराडनुष्टुप् ॥ स्वरः—१, २, ४; ५ गान्धारः; ३ ऋषभः ॥

अथ अष्टादशो वर्गः ॥ १८ ॥

महः स राय एषते पतिर्दन्निन इनस्य वसुनः पद आ ।
उप ध्रजन्तमद्रयो विधन्नित् ॥ १ ॥
स यो वृषा नरां न रोदस्योः श्रवोभिरस्ति जीवपीतसर्गः ।
प्र यः सस्राणः शिश्रीत योनौ ॥ २ ॥
आ यः पुरं नार्मिणीमदीदेदत्यः कविर्नभन्यो३ नार्वा ।
सूरो न रुरुक्वाञ्छतात्मा ॥ ३ ॥
अभि द्विजन्मा त्री रोचनानि विश्वा रजांसि शुशुचानो अस्थात् ।
होता यजिष्ठो अपां सधस्थे ॥ ४ ॥
अयं स होता यो द्विजन्मा विश्वा दधे वार्याणि श्रवस्या ।
मर्तो यो अस्मै सुतुको ददाश ॥ ५ ॥

[१५०] पञ्चाशदुत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—दीर्घतमाः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१, ३ भुरिग्गायत्री; २ निचृदुष्णिक् ॥ स्वरः—१, ३ षड्जः; २ ऋषभः ॥

अथ एकोनविंशो वर्गः ॥ १९ ॥

पुरु त्वा दाश्वान्वोचेऽरिरग्ने तव स्विदा । तोदस्येव शरण आ महस्य ॥ १ ॥
व्यनिनस्य धनिनः प्रहोषे चिदररुषः । कदा चन प्रजिगतो अदेवयोः ॥ २ ॥
स चन्द्रो विप्र मर्त्यो महो व्राधन्तमो दिवि । प्रप्रेत्ते अग्ने वनुषः स्याम ॥ ३ ॥

[१५१] एकपञ्चाशदुत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—दीर्घतमाः ॥ देवता—मित्रावरुणौ ॥ छन्दः—१ भुरिक्त्रिष्टुप्; २-५ विराड्जगती; ६, ७ जगती; ८, ९ निचृज्जगती ॥ स्वरः—१ धैवतः; २-९ निषादः ॥

अथ विंशो वर्गः ॥ २० ॥

मित्रं न यं शिम्या गोषु गव्यवः स्वाध्यो विदथे अप्सु जीजनन् ।
अरेजेतां रोदसी पाजसा गिरा प्रति प्रियं यजतं जनुषामवः ॥ १ ॥
यद्ध त्यद्वां पुरुमीळ्हस्य सोमिनः प्र मित्रासो न दधिरे स्वाभुवः ।
अध क्रतुं विदतं गातुमर्चत उत श्रुतं वृषणा पस्त्यावतः ॥ २ ॥
आ वां भूषन्क्षितयो जन्म रोदस्योः प्रवाच्यं वृषणा दक्षसे महे ।
यदीमृताय भरथो यदर्वते प्र होत्रया शिम्या वीथो अध्वरम् ॥ ३ ॥
प्र सा क्षितिरसुर या महि प्रिय ऋतावानावृतमा घोषथो बृहत् ।
युवं दिवो बृहतो दक्षमाभुवं गां न धुर्युप युञ्जाथे अपः ॥ ४ ॥
मही अत्र महिना वारमृण्वथोऽरेणवस्तुज आ सद्मन्धेनवः ।
स्वरन्ति ता उपरताति सूर्यमा निम्रुच उषसस्तक्ववीरिव ॥ ५ ॥

अथ एकविंशो वर्गः ॥ २१ ॥

आ वामृताय केशिनीरनूषत मित्र यत्र वरुण गातुमर्चथः ।
अव त्मना सृजतं पिन्वतं धियो युवं विप्रस्य मन्मनामिरज्यथः ॥ ६ ॥
यो वां यज्ञैः शशमानो ह दाशति कविर्होता यजति मन्मसाधनः ।
उपाह तं गच्छथो वीथो अध्वरमच्छा गिरः सुमतिं गन्तमस्मयू ॥ ७ ॥

युवां यज्ञैः प्रथमा गोभिरञ्जत ऋतावाना मनसो न प्रयुक्तिषु ।
भरन्ति वां मन्मना संयता गिरोऽदृप्यता मनसा रेवदाशाथे ॥ ८ ॥
रेवद्वयो दधाथे रेवदाशाथे नरा मायाभिरितऊति माहिनम् ।
न वां द्यावोऽहभिर्नोत सिन्धवो न देवत्वं पणयो नानशुर्मघम् ॥ ९ ॥

[१५२] द्विपञ्चाशदुत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—दीर्घतमाः ॥ देवता—मित्रावरुणौ ॥ छन्दः—१, २, ४-६ त्रिष्टुप्; ३ विराट्त्रिष्टुप्; ७ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

अथ द्वाविंशो वर्गः ॥ २२ ॥

युवं वस्त्राणि पीवसा वसाथे युवोरच्छिद्रा मन्तवो ह सर्गाः ।
अवातिरतमनृतानि विश्व ऋतेन मित्रावरुणा सचेथे ॥ १ ॥
एतच्चन त्वो वि चिकेतदेषां सत्यो मन्त्रः कविशस्त ऋघावान् ।
त्रिरश्रिं हन्ति चतुरश्रिरुग्रो देवनिदो ह प्रथमा अजूर्यन् ॥ २ ॥
अपादेति प्रथमा पद्वतीनां कस्तद्वां मित्रावरुणा चिकेत ।
गर्भो भारं भरत्या चिदस्य ऋतं पिपर्त्यनृतं नि तारीत् ॥ ३ ॥
प्रयन्तमित्परि जारं कनीनां पश्यामसि नोपनिपद्यमानम् ।
अनवपृग्णा वितता वसानं प्रियं मित्रस्य वरुणस्य धाम ॥ ४ ॥
अनश्वो जातो अनभीशुरर्वा कनिक्रदत्पतयदूर्ध्वसानुः ।
अचित्तं ब्रह्म जुजुषुर्युवानः प्र मित्रे धाम वरुणे गृणन्तः ॥ ५ ॥
आ धेनवो मामतेयमवन्तीर्ब्रह्मप्रियं पीपयन्त्सस्मिन्नूधन् ।
पित्वो भिक्षेत वयुनानि विद्वानासाविवासन्नदितिमुरुष्येत् ॥ ६ ॥
आ वां मित्रावरुणा हव्यजुष्टिं नमसा देवाववसा ववृत्याम् ।
अस्माकं ब्रह्म पृतनासु सह्या अस्माकं वृष्टिर्दिव्या सुपारा ॥ ७ ॥

[१५३] त्रिपञ्चाशदुत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—दीर्घतमाः ॥ देवता—मित्रावरुणौ ॥ छन्दः—१, २ निचृत्त्रिष्टुप्; ३ त्रिष्टुप्; ४ भुरिक्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१-३ धैवतः; ४ पञ्चमः ॥

अथ त्रयोविंशो वर्गः ॥ २३ ॥

यजामहे वां महः सजोषा हव्येभिर्मित्रावरुणा नमोभिः ।
घृतैर्घृतस्नू अध यद्वामस्मे अध्वर्यवो न धीतिभिर्भरन्ति ॥ १ ॥
प्रस्तुतिर्वां धाम न प्रयुक्तिरयामि मित्रावरुणा सुवृक्तिः ।
अनक्ति यद्वां विदथेषु होता सुम्नं वां सूरिर्वृषणावियक्षन् ॥ २ ॥
पीपाय धेनुरदितिर्ऋताय जनाय मित्रावरुणा हविर्दे ।
हिनोति यद्वां विदथे सपर्यन्त्स रातहव्यो मानुषो न होता ॥ ३ ॥
उत वां विक्षु मद्यास्वन्धो गाव आपश्च पीपयन्त देवीः ।
उतो नो अस्य पूर्व्यः पतिर्दन्वीतं पातं पयस उस्रियायाः ॥ ४ ॥

[१५४] चतुष्पञ्चाशदुत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—दीर्घतमाः ॥ देवता—विष्णुः ॥ छन्दः—१, २ विराट्त्रिष्टुप्; ३, ४, ६ निचृत्त्रिष्टुप्; ५ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

अथ चतुर्विंशो वर्गः ॥ २४ ॥

विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्र वोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि ।
यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः ॥ १ ॥
प्र तद्विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः ।
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ॥ २ ॥
प्र विष्णवे शूषमेतु मन्म गिरिक्षित उरुगायाय वृष्णे ।
य इदं दीर्घं प्रयतं सधस्थमेको विममे त्रिभिरित्पदेभिः ॥ ३ ॥
यस्य त्री पूर्णा मधुना पदान्यक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति ।
य उ त्रिधातु पृथिवीमुत द्यामेको दाधार भुवनानि विश्वा ॥ ४ ॥
तदस्य प्रियमभि पाथो अश्यां नरो यत्र देवयवो मदन्ति ।
उरुक्रमस्य स हि बन्धुरित्था विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः ॥ ५ ॥
ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः ।
अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः परमं पदमव भाति भूरि ॥ ६ ॥

[१५५] पञ्चपञ्चाशदुत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—दीर्घतमाः॥ देवता—विष्णुः॥ छन्दः—१, ३, ६ भुरिक्त्रिष्टुप्; २ निचृज्जगती; ४ स्वराट्त्रिष्टुप्; ५ निचृत्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—१, ३-६ धैवतः; २ निषादः॥

अथ पञ्चविंशो वर्गः॥ २५॥

प्र वः पान्तमन्धसो धियायते महे शूराय विष्णवे चार्चत ।
या सानुनि पर्वतानामदाभ्या महस्तस्थतुरर्वतेव साधुना ॥ १ ॥
त्वेषमित्था समरणं शिमीवतोरिन्द्राविष्णू सुतपा वामुरुष्यति ।
या मर्त्याय प्रतिधीयमानमित्कृशानोरस्तुरसनामुरुष्यथः ॥ २ ॥
ता ईं वर्धन्ति मह्यस्य पौंस्यं नि मातरा नयति रेतसे भुजे ।
दधाति पुत्रोऽवरं परं पितुर्नाम तृतीयमधि रोचने दिवः ॥ ३ ॥
तत्तदिदस्य पौंस्यं गृणीमसीनस्य त्रातुरवृकस्य मीळ्हुषः ।
यः पार्थिवानि त्रिभिरिद्विगामभिरुरु क्रमिष्टोरुगायाय जीवसे ॥ ४ ॥
द्वे इदस्य क्रमणे स्वर्दृशोऽभिख्याय मर्त्यो भुरण्यति ।
तृतीयमस्य नकिरा दधर्षति वयश्चन पतयन्तः पतत्रिणः ॥ ५ ॥
चतुर्भिः साकं नवतिं च नामभिश्चक्रं न वृत्तं व्यतीँरवीविपत् ।
बृहच्छरीरो विमिमान ऋक्वभिर्युवाकुमारः प्रत्येत्याहवम् ॥ ६ ॥

[१५६] षट्पञ्चाशदुत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—दीर्घतमाः॥ देवता—विष्णुः॥ छन्दः—१ निचृत्त्रिष्टुप्; २ विराट्त्रिष्टुप्; ३ निचृज्जगती; ४ जगती; ५ स्वराट्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—१, २, ५ धैवतः; ३, ४ निषादः॥

अथ षड्विंशो वर्गः॥ २६॥

भवा मित्रो न शेव्यो घृतासुतिर्विभूतद्युम्न एवया उ सप्रथाः ।
अधा ते विष्णो विदुषा चिदर्ध्यः स्तोमो यज्ञश्च राध्यो हविष्मता ॥ १ ॥
यः पूर्व्याय वेधसे नवीयसे सुमज्जानये विष्णवे ददाशति ।
यो जातमस्य महतो महि ब्रवत्सेदु श्रवोभिर्युज्यं चिदभ्यसत् ॥ २ ॥
तमु स्तोतारः पूर्व्यं यथा विद ऋतस्य गर्भं जनुषा पिपर्तन ।
आस्य जानन्तो नाम चिद्विवक्तन महस्ते विष्णो सुमतिं भजामहे ॥ ३ ॥

तमस्य राजा वरुणस्तमश्विना क्रतुं सचन्त मारुतस्य वेधसः ।
दाधार दक्षमुत्तममहर्विदं व्रजं च विष्णुः सखिवाँ अपोर्णुते ॥ ४ ॥
आ यो विवाय सचथाय दैव्य इन्द्राय विष्णुः सुकृते सुकृत्तरः ।
वेधा अजिन्वत्त्रिषधस्थ आर्यमृतस्य भागे यजमानमाभजत् ॥ ५ ॥

द्वाविंशोऽनुवाकः [१५७] सप्तपञ्चाशदुत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—दीर्घतमाः॥ देवता—अश्विनौ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप्; २, ४ जगती; ३ निचृज्जगती; ५ निचृत्त्रिष्टुप्; ६ विराट्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—१, ५, ६ धैवतः; २-४ निषादः॥

अथ सप्तविंशो वर्गः॥ २७॥

अबोध्यग्निर्ज्म उदेति सूर्यो व्यु१षाश्चन्द्रा मह्यावो अर्चिषा ।
आयुक्षातामश्विना यातवे रथं प्रासावीद्देवः सविता जगत्पृथक् ॥ १ ॥
यद्युञ्जाथे वृषणमश्विना रथं घृतेन नो मधुना क्षत्रमुक्षतम् ।
अस्माकं ब्रह्म पृतनासु जिन्वतं वयं धना शूरसाता भजेमहि ॥ २ ॥
अर्वाङ् त्रिचक्रो मधुवाहनो रथो जीराश्वो अश्विनोर्यातु सुष्टुतः ।
त्रिवन्धुरो मघवा विश्वसौभगः शं न आ वक्षद् द्विपदे चतुष्पदे ॥ ३ ॥
आ न ऊर्जं वहतमश्विना युवं मधुमत्या नः कशया मिमिक्षतम् ।
प्रायुस्तारिष्टं नी रपांसि मृक्षतं सेधतं द्वेषो भवतं सचाभुवा ॥ ४ ॥
युवं ह गर्भं जगतीषु धत्थो युवं विश्वेषु भुवनेष्वन्तः ।
युवमग्निं च वृषणावपश्च वनस्पतीँरश्विनावैरयेथाम् ॥ ५ ॥
युवं ह स्थो भिषजा भेषजेभिरथो ह स्थो रथ्या३ राथ्येभिः ।
अथो ह क्षत्रमधि धत्थ उग्रा यो वां हविष्मान्मनसा ददाश ॥ ६ ॥

इति द्वितीयाष्टके द्वितीयोऽध्यायः॥

अथ द्वितीयाष्टके तृतीयोऽध्यायः

[१५८] अष्टपञ्चाशदुत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—दीर्घतमा औचथ्यः॥ देवता—अश्विनौ॥ छन्दः—१, ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप्; २ त्रिष्टुप्; ३ भुरिक्पङ्क्तिः; ६ निचृदनुष्टुप्॥ स्वरः—१, २, ४, ५ धैवतः; ३ पञ्चमः; ६ गान्धारः॥

अथ प्रथमो वर्गः ॥ १ ॥

वसू रुद्रा पुरुमन्तू वृधन्ता दशस्यतं नो वृषणावभिष्टौ ।
दस्रा ह यद्रेक्णं औचथ्यो वां प्र यत्सस्राथे अकवाभिरूती ॥ १ ॥
को वां दाशत्सुमतये चिदस्यै वसू यद्धेथे नमसा पदे गोः ।
जिगृतमस्मे रेवतीः पुरन्धीः कामप्रेणेव मनसा चरन्ता ॥ २ ॥
युक्तो ह यद्वां तौग्र्याय पेरुर्वि मध्ये अर्णसो धायि पज्रः ।
उप वामवः शरणं गमेयं शूरो नाज्म पतयद्भिरेवैः ॥ ३ ॥
उपस्तुतिरौचथ्यमुरुष्येन्मा मामिमे पतत्रिणी वि दुग्धाम् ।
मा मामेधो दशतयश्चितो धाक् प्र यद्वां बद्धस्त्मनि खादति क्षाम् ॥ ४ ॥
न मा गरन्नद्यो मातृतमा दासा यदीं सुसमुब्धमवाधुः ।
शिरो यदस्य त्रैतनो वितक्षत्स्वयं दास उरो अंसावपि ग्ध ॥ ५ ॥
दीर्घतमा मामतेयो जुजुर्वान् दशमे युगे ।
अपामर्थं यतीनां ब्रह्मा भवति सारथिः ॥ ६ ॥

[१५९] एकोनषष्ट्युत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—दीर्घतमाः ॥ देवता—द्यावापृथिव्यौ ॥ छन्दः—१ विराड्जगती;
२, ३, ५ निचृज्जगती; ४ जगती ॥ स्वरः—निषादः ॥

अथ द्वितीयो वर्गः ॥ २ ॥

प्र द्यावा यज्ञैः पृथिवी ऋतावृधा मही स्तुषे विदथेषु प्रचेतसा ।
देवेभिर्ये देवपुत्रे सुदंससेत्था धिया वार्याणि प्रभूषतः ॥ १ ॥
उत मन्ये पितुरद्रुहो मनो मातुर्महि स्वतवस्तद्धवीमभिः ।
सुरेतसा पितरा भूम चक्रतुरुरु प्रजाया अमृतं वरीमभिः ॥ २ ॥
ते सूनवः स्वपसः सुदंससो मही जज्ञुर्मातरा पूर्वचित्तये ।
स्थातुश्च सत्यं जगतश्च धर्मणि पुत्रस्य पाथः पदमद्वयाविनः ॥ ३ ॥
ते मायिनो ममिरे सुप्रचेतसो जामी सयोनी मिथुना समोकसा ।
नव्यंनव्यं तन्तुमा तन्वते दिवि समुद्रे अन्तः कवयः सुदीतयः ॥ ४ ॥

तद्राधो अद्य सवितुर्वरेण्यं वयं देवस्य प्रसवे मनामहे ।
अस्मभ्यं द्यावापृथिवी सुचेतुना रयिं धत्तं वसुमन्तं शतग्विनम् ॥ ५ ॥

[१६०] षष्ट्युत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—दीर्घतमाः ॥ देवता—द्यावापृथिव्यौ ॥ छन्दः—१ विराड्जगती;
२-५ निचृज्जगती ॥ स्वरः—निषादः ॥

अथ तृतीयो वर्गः ॥ ३ ॥

ते हि द्यावापृथिवी विश्वशंभुव ऋतावरी रजसो धारयत्कवी ।
सुजन्मनी धिषणे अन्तरीयते देवो देवी धर्मणा सूर्यः शुचिः ॥ १ ॥
उरुव्यचसा महिनी असश्चता पिता माता च भुवनानि रक्षतः ।
सुधृष्टमे वपुष्ये न रोदसी पिता यत्सीमभि रूपैरवासयत् ॥ २ ॥
स वह्निः पुत्रः पित्रोः पवित्रवान् पुनाति धीरो भुवनानि मायया ।
धेनुं च पृश्निं वृषभं सुरेतसं विश्वाहा शुक्रं पयो अस्य दुक्षत ॥ ३ ॥
अयं देवानामपसामपस्तमो यो जजान रोदसी विश्वशंभुवा ।
वि यो ममे रजसी सुक्रतूययाजरेभिः स्कम्भनेभिः समानृचे ॥ ४ ॥
ते नो गृणाने महिनी महि श्रवः क्षत्रं द्यावापृथिवी धासथो बृहत् ।
येनाभि कृष्टिस्ततनाम विश्वहा पनाय्यमोजो अस्मे समिन्वतम् ॥ ५ ॥

[१६१] एकषष्ट्युत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—दीर्घतमाः ॥ देवता—ऋभवः ॥ छन्दः—१ विराड्जगती; २, ५, ६, ८, १२ निचृज्जगती; ३
निचृत्त्रिष्टुप्; ४, १३ भुरिक्त्रिष्टुप्; ७, १० जगती; ९ स्वराट्त्रिष्टुप्;
११ त्रिष्टुप्; १४ स्वराट्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१, २, ५-८, १०, १२ निषादः;
३, ४, ९, ११, १३ धैवतः; १४ पञ्चमः ॥

अथ चतुर्थो वर्गः ॥ ३ ॥

किमु श्रेष्ठः किं यविष्ठो न आजगन्किमीयते दूत्यं कद्यदूचिम ।
न निन्दिम चमसं यो महाकुलोऽग्ने भ्रातर्द्रुण इद्भूतिमूदिम ॥ १ ॥
एकं चमसं चतुरः कृणोतन तद्वो देवा अब्रुवन्तद्व आगमम् ।
सौधन्वना यद्येवा करिष्यथ साकं देवैर्यज्ञियासो भविष्यथ ॥ २ ॥

अग्निं दूतं प्रति यदब्रवीतनाश्वः कर्त्वो रथ उतेह कर्त्वः ।
धेनुः कर्त्वा युवशा कर्त्वा द्वा तानि भ्रातरनु वः कृत्व्येमसि ॥ ३ ॥
चकृवांस ऋभवस्तदपृच्छत क्वेदभूद्यः स्य दूतो न आजगन् ।
यदावाख्यच्चमसाञ्चतुरः कृतानादित्त्वष्टा ग्नास्वन्तर्न्यानजे ॥ ४ ॥
हनामैनाँ इति त्वष्टा यदब्रवीच्चमसं ये देवपानमनिन्दिषुः ।
अन्या नामानि कृण्वते सुते सचाँ अन्यैरेनान् कन्या३ नामभिः स्परत् ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमो वर्गः ॥ ५ ॥

इन्द्रो हरी युयुजे अश्विना रथं बृहस्पतिर्विश्वरूपामुपाजत ।
ऋभुर्विभ्वा वाजो देवाँ अगच्छत स्वपसो यज्ञियं भागमैतन ॥ ६ ॥
निश्चर्मणो गामरिणीत धीतिभिर्या जरन्ता युवशा ताकृणोतन ।
सौधन्वना अश्वादश्वमतक्षत युक्त्वा रथमुप देवाँ अयातन ॥ ७ ॥
इदमुदकं पिबतेत्यब्रवीतनेदं वा घा पिबता मुञ्जनेजनम् ।
सौधन्वना यदि तन्नेव हर्यथ तृतीये घा सवने मादयाध्वै ॥ ८ ॥
आपो भूयिष्ठा इत्येको अब्रवीदग्निर्भूयिष्ठ इत्यन्यो अब्रवीत् ।
वधर्यन्तीं बहुभ्यः प्रैको अब्रवीदृता वदन्तश्चमसाँ अपिंशत ॥ ९ ॥
श्रोणामेक उदकं गामवाजति मांसमेकः पिंशति सूनयाभृतम् ।
आ निम्रुचः शकृदेको अपाभरत्किं स्वित्पुत्रेभ्यः पितरा उपावतुः ॥ १० ॥

अथ षष्ठो वर्गः ॥ ६ ॥

उद्वत्स्वस्मा अकृणोतना तृणं निवत्स्वपः स्वपस्यया नरः ।
अगोह्यस्य यदसस्तना गृहे तदद्येदमृभवो नानु गच्छथ ॥ ११ ॥
संमील्य यद्भुवना पर्यसर्पत क्व स्वित्तात्या पितरा व आसतुः ।
अशपत यः करस्नं व आददे यः प्राब्रवीत्प्रो तस्मा अब्रवीत ॥ १२ ॥
सुषुप्वांस ऋभवस्तदपृच्छतागोह्य क इदं नो अबूबुधत् ।
श्वानं बस्तो बोधयितारमब्रवीत्संवत्सर इदमद्या व्यख्यत ॥ १३ ॥
दिवा यान्ति मरुतो भूम्याग्निरयं वातो अन्तरिक्षेण याति ।
अद्भिर्याति वरुणः समुद्रैर्युष्माँ इच्छन्तः शवसो नपातः ॥ १४ ॥

[१६२] द्विषष्ट्युत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—दीर्घतमाः ॥ देवता—मित्रादयो लिङ्गोक्ताः ॥ छन्दः—१, २, ९, १०, १७, २० निचृत्त्रिष्टुप्; ३ निचृज्जगती; ४, ७, ८, १८ त्रिष्टुप्; ५ विराट्त्रिष्टुप्; ६, ११, २१ भुरिक्त्रिष्टुप्; १२ स्वराट्त्रिष्टुप्; १३, १४ भुरिक्पङ्क्तिः; १५, १९, २२ स्वराट्पङ्क्तिः; १६ विराट्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१, २, ४-१२, १७, १८, २०, २१ धैवतः; ३ निषादः; १३-१६, १९, २२ पञ्चमः ॥

अथ सप्तमो वर्गः ॥ ७ ॥

मा नो मित्रो वरुणो अर्यमायुरिन्द्र ऋभुक्षा मरुतः परि ख्यन् ।
यद्वाजिनो देवजातस्य सप्तेः प्रवक्ष्यामो विदथे वीर्याणि ॥ १ ॥
यन्निर्णिजा रेक्णसा प्रावृतस्य रातिं गृभीतां मुखतो नयन्ति ।
सुप्राङजो मेम्यद्विश्वरूप इन्द्रापूष्णोः प्रियमप्येति पाथः ॥ २ ॥
एष च्छागः पुरो अश्वेन वाजिना पूष्णो भागो नीयते विश्वदेव्यः ।
अभिप्रियं यत्पुरोळाशमर्वता त्वष्टेदेनं सौश्रवसाय जिन्वति ॥ ३ ॥
यद्धविष्यमृतुशो देवयानं त्रिर्मानुषाः पर्यश्वं नयन्ति ।
अत्रा पूष्णः प्रथमो भाग एति यज्ञं देवेभ्यः प्रतिवेदयन्नजः ॥ ४ ॥
होताध्वर्युरावया अग्निमिन्धो ग्रावग्राभ उत शंस्ता सुविप्रः ।
तेन यज्ञेन स्वरंकृतेन स्विष्टेन वक्षणा आ पृणध्वम् ॥ ५ ॥

अथ अष्टमो वर्गः ॥ ८ ॥

यूपव्रस्का उत ये यूपवाहाश्चषालं ये अश्वयूपाय तक्षति ।
ये चार्वते पचनं संभरन्त्युतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु ॥ ६ ॥
उप प्रागात्सुमन्मेऽधायि मन्म देवानामाशा उप वीतपृष्ठः ।
अन्वेनं विप्रा ऋषयो मदन्ति देवानां पुष्टे चकृमा सुबन्धुम् ॥ ७ ॥
यद्वाजिनो दाम संदानमर्वतो या शीर्षण्या रशना रज्जुरस्य ।
यद्वा घास्य प्रभृतमास्ये३ तृणं सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥ ८ ॥
यदश्वस्य क्रविषो मक्षिकाश यद्वा स्वरौ स्वधितौ रिप्तमस्ति ।
यद्धस्तयोः शमितुर्यन्नखेषु सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥ ९ ॥

यदूव॑ध्यमु॒दर॑स्यापवा॒ति य आ॒मस्य॑ क्र॒विषो॑ ग॒न्धो अस्ति॑ ।
सु॒कृ॒ता तच्छ॑मि॒तार॑: कृण्वन्तू॒त मेधं॑ शृत॒पाकं॑ पचन्तु ॥ १० ॥

अथ नवमो वर्गः ॥ ९ ॥

यत्ते॒ गात्रा॑द॒ग्निना॑ प॒च्यमा॑नाद॒भि शूलं॒ निह॑तस्याव॒धाव॑ति ।
मा तद्भूम्या॒मा श्रि॑ष॒न्मा तृणे॑षु दे॒वेभ्य॒स्तदु॒शद्भ्यो॑ रा॒तम॑स्तु ॥ ११ ॥
ये वा॒जिनं॑ परि॒पश्य॑न्ति प॒क्वं य ई॑मा॒हुः सु॑र॒भिर्निर्ह॒रेति॑ ।
ये चार्व॑तो मां॒सभि॒क्षामु॒पास॑त उ॒तो तेषा॑म॒भिगू॑र्तिर्न इन्वतु ॥ १२ ॥
यन्नीक्ष॑णं मां॒स्पच॑न्या उ॒खाया॒ या पात्रा॑णि यू॒ष्ण आ॒सेच॑नानि ।
ऊ॒ष्म॒ण्या॑पि॒धाना॑ चरू॒णाम॒ङ्काः सू॒नाः परि॑ भूष॒न्त्यश्व॑म् ॥ १३ ॥
नि॒क्रम॑णं नि॒षद॑नं वि॒वर्त॑नं॒ यच्च॒ पड्बी॑श॒मर्व॑तः ।
यच्च॑ प॒पौ यच्च॑ घा॒सिं ज॒घास॒ सर्वा॒ ता ते॒ अपि॑ दे॒वेष्व॑स्तु ॥ १४ ॥
मा त्वा॒ग्निर्ध्व॑नयीद् धू॒मग॑न्धि॒र्मोखा भ्राज॑न्त्य॒भि वि॑क्त॒ जघ्रि॑: ।
इ॒ष्टं वी॒तम॒भिगू॑र्तं॒ वष॑ट्कृतं॒ तं दे॒वास॒: प्रति॑ गृभ्ण॒न्त्यश्व॑म् ॥ १५ ॥

अथ दशमो वर्गः ॥ १० ॥

यदश्वा॑य॒ वास॑ उपस्तृ॒णन्त्य॑धीवा॒सं या हिर॑ण्यान्यस्मै ।
स॒न्दान॒मर्व॑न्तं॒ पड्बी॑शं प्रि॒या दे॒वेष्वा या॑मयन्ति ॥ १६ ॥
यत्ते॑ सा॒दे मह॑सा॒ शूकृ॑तस्य॒ पार्ष्ण्या॑ वा॒ कश॑या वा तु॒तोद॑ ।
स्रु॒चेव॒ ता ह॒विषो॑ अध्व॒रेषु॒ सर्वा॒ ता ते॒ ब्रह्म॑णा सूदयामि ॥ १७ ॥
चतु॑स्त्रिंशद्वा॒जिनो॑ दे॒वब॑न्धो॒र्वङ्क्री॒रश्व॑स्य॒ स्वधि॑ति॒: समे॑ति ।
अच्छि॑द्रा॒ गात्रा॑ व॒युना॑ कृणोत॒ परु॑ष्परुरनु॒घुष्या॒ वि श॑स्त ॥ १८ ॥
एक॒स्त्वष्टु॒रश्व॑स्या विश॒स्ता द्वा य॒न्तारा॑ भवत॒स्तथ॑ ऋ॒तुः ।
या ते॒ गात्रा॑णामृतु॒था कृ॒णोमि॒ ताता॒ पिण्डा॑नां॒ प्र जु॑होम्य॒ग्नौ ॥ १९ ॥
मा त्वा॑ तपत्प्रि॒य आ॒त्मापि॒यन्तं॒ मा स्वधि॑तिस्त॒न्व१॒॑ आ ति॑ष्ठिपत्ते ।
मा ते॑ गृ॒ध्नुर॑विश॒स्ताति॒हाय॑ छि॒द्रा गात्रा॑ण्य॒सिना॒ मिथू॑ कः ॥ २० ॥
न वा उ॑ ए॒तन्म्रि॑यसे॒ न रि॑ष्यसि दे॒वाँ इदे॑षि प॒थिभि॑: सु॒गेभि॑: ।
हरी॑ ते॒ युञ्जा॒ पृष॑ती अभूता॒मुपा॑स्थाद्वा॒जी धु॒रि रास॑भस्य ॥ २१ ॥

सु॒गव्यं॑ नो वा॒जी स्वश्व्यं॑ पुं॒सः पु॒त्राँ उ॒त वि॑श्वा॒पुषं॑ र॒यिम् ।
अ॒ना॒गा॒स्त्वं नो॒ अदि॑तिः कृणोतु क्ष॒त्रं नो॒ अश्वो॑ वनतां ह॒विष्मा॑न् ॥ २२ ॥

[१६३] त्रिषष्ट्युत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—दीर्घतमाः ॥ देवता—अश्वोऽग्निः ॥ छन्दः—१, ६, ७, १३ त्रिष्टुप्; २ भुरिक्त्रिष्टुप्; ३, ८ विराट्त्रिष्टुप्; ४, १०, १२ भुरिक्पङ्क्तिः; ५, ९, ११ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१-३, ५-९, ११, १३ धैवतः; ४, १०, १२ पञ्चमः ॥

अथ एकादशो वर्गः ॥ ११ ॥

यदक्र॑न्दः प्रथ॒मं जाय॑मान उ॒द्यन्त्स॑मु॒द्रादु॒त वा॒ पुरी॑षात् ।
श्ये॒नस्य॑ प॒क्षा ह॑रि॒णस्य॑ बा॒हू उ॑प॒स्तुत्यं॒ महि॑ जा॒तं ते॑ अर्वन् ॥ १ ॥
य॒मेन॑ द॒त्तं त्रि॒त ए॑नमायुन॒गिन्द्र॑ एणं प्रथ॒मो अध्य॑तिष्ठत् ।
ग॒न्ध॒र्वो अ॑स्य रश॒नाम॑गृभ्णा॒त्सूरा॒दश्वं॑ वसवो॒ निर॑तष्ट ॥ २ ॥
असि॑ य॒मो अस्या॑दि॒त्यो अ॑र्व॒न्नसि॑ त्रि॒तो गुह्ये॑न व्र॒तेन॑ ।
असि॒ सोमे॑न स॒मया॒ विपृ॑क्त आ॒हुस्ते॒ त्रीणि॑ दि॒वि बन्ध॑नानि ॥ ३ ॥
त्रीणि॑ त आहुर्दि॒वि बन्ध॑नानि॒ त्रीण्य॒प्सु त्रीण्य॒न्तः स॑मु॒द्रे ।
उ॒तेव॑ मे॒ वरु॑णश्छन्त्स्यर्व॒न् यत्रा॑ त आ॒हुः प॑र॒मं ज॒नित्र॑म् ॥ ४ ॥
इ॒मा ते॑ वाजिन्नव॒मार्ज॑नानी॒मा श॒फानां॑ सनि॒तुर्नि॒धाना॑ ।
अत्रा॑ ते भ॒द्रा र॑श॒ना अ॑पश्यमृ॒तस्य॒ या अ॑भि॒रक्ष॑न्ति गो॒पाः ॥ ५ ॥

अथ द्वादशो वर्गः ॥ १२ ॥

आ॒त्मानं॑ ते॒ मन॑सा॒राद॑जानाम॒वो दि॒वा प॒तय॑न्तं पत॒ङ्गम् ।
शिरो॑ अपश्यं प॒थिभि॑: सु॒गेभि॑ररे॒णुभि॒र्जेह॑मानं पत॒त्रि ॥ ६ ॥
अत्रा॑ ते रू॒पमु॑त्त॒मम॑पश्यं॒ जिगी॑षमाणमि॒ष आ प॒दे गोः ।
य॒दा ते॒ मर्तो॒ अनु॒ भोग॒मान॒ळादिद् ग्रसि॑ष्ठ॒ ओष॑धीरजीगः ॥ ७ ॥
अनु॑ त्वा॒ रथो॒ अनु॒ मर्यो॑ अर्व॒न्ननु॒ गावोऽनु॒ भग॑: क॒नीना॑म् ।
अनु॒ व्राता॑स॒स्तव॑ स॒ख्यमी॑यु॒रनु॑ दे॒वा म॑मिरे वी॒र्यं॑ ते ॥ ८ ॥
हिर॑ण्यशृ॒ङ्गोऽयो॑ अस्य॒ पादा॒ मनो॑जवा॒ अव॑र॒ इन्द्र॑ आसीत् ।
दे॒वा इद॑स्य हवि॒रद्य॑माय॒न्यो अर्व॑न्तं प्रथ॒मो अ॒ध्यति॑ष्ठत् ॥ ९ ॥

ईर्मान्तासः सिलिकमध्यमासः सं शूरणासो दिव्यासो अत्याः।
हंसाइव श्रेणिशो यतन्ते यदाक्षिषुर्दिव्यमज्ममश्वाः ॥१०॥

अथ त्रयोदशो वर्गः ॥ १३ ॥

तव शरीरं पतयिष्ण्वर्वन् तव चित्तं वातइव ध्रजीमान्।
तव शृङ्गाणि विष्ठिता पुरुत्रारण्येषु जर्भुराणा चरन्ति ॥ ११ ॥
उप प्रागाच्छसनं वाज्यर्वा देवद्रीचा मनसा दीध्यानः।
अजः पुरो नीयते नाभिरस्यानु पश्चात्कवयो यन्ति रेभाः ॥ १२ ॥
उप प्रागात्परमं यत्सधस्थमर्वाँ अच्छा पितरं मातरं च।
अद्या देवाञ्जुष्टतमो हि गम्या अथा शास्ते दाशुषे वार्याणि ॥ १३ ॥

[१६४] चतुःषष्ट्युत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—दीर्घतमाः ॥ देवता—१-४१ विश्वे देवाः; ४२ (पूर्वार्धस्य), ४२ (उत्तरार्धस्य) ४५ वाक्; आपः; ४३ (पूर्वार्धस्य) शकधूमः, (उत्तरार्धस्य) सोमः; ४४ अग्निः सूर्यो वायुश्च; ४६, ४७ सूर्यः; ४८ संवत्सरात्मा कालः; ४९ सरस्वती; ५० साध्याः; ५१ सूर्यः पर्जन्योऽअग्नयो वा; ५२ सरस्वान् सूर्यो वा ॥ छन्दः—१, ९, २७, ३५, ४०, ५० विराट्त्रिष्टुप्; २, १०, १३, १६, १७, १९, २१, २४, २८, ३२, ५२ त्रिष्टुप्; ३-८, ११, १८, २६, ३१, ३३, ३४, ३७, ४३, ४६, ४७, ४९ निचृत्त्रिष्टुप्; १२, १५, २३ जगती; १४, ३९, ४१, ४४, ४५ भुरिक्त्रिष्टुप्; २० भुरिक्पङ्क्तिः; २२, २५, ४८ स्वराट्पङ्क्तिः; २९, ३६ निचृज्जगती; ३०, ३८ पङ्क्तिः; ४२ भुरिग्बृहती; ५१ विराडनुष्टुप् ॥ स्वरः—१-११, १३, १४, १६-१९, २१, २४, २६-२८, ३१-३५, ३७, ३९-४१, ४३-४७, ४९, ५०, ५२ धैवतः; १२, १५, २३, २९, ३६ निषादः; २०, २२, २५, ३० ३८, ४८ पञ्चमः; ४२ मध्यमः; ५१ गान्धारः ॥

अथ चतुर्दशो वर्गः ॥ १४ ॥

अस्य वामस्य पलितस्य होतुस्तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः।
तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठो अस्यात्रापश्यं विश्पतिं सप्तपुत्रम् ॥ १ ॥
सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा।
त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः ॥ २ ॥
इमं रथमधि ये सप्त तस्थुः सप्तचक्रं सप्त वहन्त्यश्वाः।
सप्त स्वसारो अभि सं नवन्ते यत्र गवां निहिता सप्त नाम ॥ ३ ॥

को ददर्श प्रथमं जायमानमस्थन्वन्तं यदनस्था बिभर्ति।
भूम्या असुरसृगात्मा क्व स्वित्को विद्वांसमुप गात्प्रष्टुमेतत् ॥ ४ ॥
पाकः पृच्छामि मनसाविजानन् देवानामेना निहिता पदानि।
वत्से बष्कयेऽधि सप्त तन्तून्वि तत्निरे कवय ओतवा उ ॥ ५ ॥

अथ पञ्चदशो वर्गः ॥ १५ ॥

अचिकित्वाञ्चिकितुषश्चिदत्र कवीन्पृच्छामि विद्मने न विद्वान्।
वि यस्तस्तम्भ षळिमा रजांस्यजस्य रूपे किमपि स्विदेकम् ॥ ६ ॥
इह ब्रवीतु य ईमङ्ग वेदास्य वामस्य निहितं पदं वेः।
शीर्ष्णः क्षीरं दुह्रते गावो अस्य वव्रिं वसाना उदकं पदापुः ॥ ७ ॥
माता पितरमृत आ बभाज धीत्यग्रे मनसा सं हि जग्मे।
सा बीभत्सुर्गर्भरसा निविद्धा नमस्वन्त इदुपवाकमीयुः ॥ ८ ॥
युक्ता मातासीद् धुरि दक्षिणाया अतिष्ठद् गर्भो वृजनीष्वन्तः।
अमीमेद् वत्सो अनु गामपश्यद् विश्वरूप्यं त्रिषु योजनेषु ॥ ९ ॥
तिस्रो मातॄस्त्रीन्पितॄन्बिभ्रदेक ऊर्ध्वस्तस्थौ नेमव ग्लापयन्ति।
मन्त्रयन्ते दिवो अमुष्य पृष्ठे विश्वविदं वाचमविश्वमिन्वाम् ॥ १० ॥

अथ षोडशो वर्गः ॥ १६ ॥

द्वादशारं नहि तज्जराय वर्वर्ति चक्रं परि द्यामृतस्य।
आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थुः ॥ ११ ॥
पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्धे पुरीषिणम्।
अथेमे अन्य उपरे विचक्षणं सप्तचक्रे षळर आहुरर्पितम् ॥ १२ ॥
पञ्चारे चक्रे परिवर्तमाने तस्मिन्ना तस्थुर्भुवनानि विश्वा।
तस्य नाक्षस्तप्यते भूरिभारः सनादेव न शीर्यते सनाभिः ॥ १३ ॥
सनेमि चक्रमजरं वि वावृत उत्तानायां दश युक्ता वहन्ति।
सूर्यस्य चक्षू रजसैत्यावृतं तस्मिन्नार्पिता भुवनानि विश्वा ॥ १४ ॥
साकंजानां सप्तथमाहुरेकजं षळिद्यमा ऋषयो देवजा इति।
तेषामिष्टानि विहितानि धामशः स्थात्रे रेजन्ते विकृतानि रूपशः ॥ १५ ॥

अथ सप्तदशो वर्गः ॥ १७ ॥

स्त्रियः सतीस्ताँ उ मे पुंस आहुः पश्यदक्षण्वान्न वि चेतदन्धः ।
कविर्यः पुत्रः स ईमा चिकेत यस्ता विजानात्स पितुष्पितासत् ॥ १६ ॥
अवः परेण पर एनावरेण पदा वत्सं बिभ्रती गौरुदस्थात् ।
सा कद्रीची कं स्विदर्धं परागात् क्व स्वित्सूते नहि यूथे अन्तः ॥ १७ ॥
अवः परेण पितरं यो अस्यानुवेद पर एनावरेण ।
कवीयमानः क इह प्र वोचद् देवं मनः कुतो अधि प्रजातम् ॥ १८ ॥
ये अर्वाञ्चस्ताँ उ पराच आहुर्ये पराञ्चस्ताँ उ अर्वाच आहुः ।
इन्द्रश्च या चक्रथुः सोम तानि धुरा न युक्ता रजसो वहन्ति ॥ १९ ॥
द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति ॥ २० ॥

अथ अष्टादशो वर्गः ॥ १८ ॥

यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भागमनिमेषं विदथाभिस्वरन्ति ।
इनो विश्वस्य भुवनस्य गोपाः स मा धीरः पाकमत्रा विवेश ॥ २१ ॥
यस्मिन् वृक्षे मध्वदः सुपर्णा निविशन्ते सुवते चाधि विश्वे ।
तस्येदाहुः पिप्पलं स्वाद्वग्रे तन्नोन्नशद्यः पितरं न वेद ॥ २२ ॥
यद् गायत्रे अधि गायत्रमाहितं त्रैष्टुभाद् वा त्रैष्टुभं निरतक्षत ।
यद् वा जगज्जगत्याहितं पदं य इत्तद् विदुस्ते अमृतत्वमानशुः ॥ २३ ॥
गायत्रेण प्रति मिमीते अर्कमर्केण साम त्रैष्टुभेन वाकम् ।
वाकेन वाकं द्विपदा चतुष्पदाक्षरेण मिमते सप्त वाणीः ॥ २४ ॥
जगता सिन्धुं दिव्यस्तभायद्रथन्तरे सूर्यं पर्यपश्यत् ।
गायत्रस्य समिधस्तिस्र आहुस्ततो मह्ना प्र रिरिचे महित्वा ॥ २५ ॥

अथ एकोनविंशो वर्गः ॥ १९ ॥

उप ह्वये सुदुघां धेनुमेतां सुहस्तो गोधुगुत दोहदेनाम् ।
श्रेष्ठं सवं सविता साविषन्नोऽभीद्धो घर्मस्तदु षु प्र वोचम् ॥ २६ ॥

हिङ्कृण्वती वसुपत्नी वसूनां वत्समिच्छन्ती मनसाभ्यागात् ।
दुहामश्विभ्यां पयो अघ्न्येयं सा वर्धतां महते सौभगाय ॥ २७ ॥
गौरमीमेदनु वत्सं मिषन्तं मूर्धानं हिङ्ङकृणोन्मातवा उ ।
सृक्वाणं घर्ममभि वावशाना मिमाति मायुं पयते पयोभिः ॥ २८ ॥
अयं स शिङ्क्ते येन गौरभीवृता मिमाति मायुं ध्वसनावधि श्रिता ।
सा चित्तिभिर्नि हि चकार मर्त्यं विद्युद्भवन्ती प्रति वव्रिमौहत ॥ २९ ॥
अनच्छये तुरगातु जीवमेजद् ध्रुवं मध्य आ पस्त्यानाम् ।
जीवो मृतस्य चरति स्वधाभिरमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ॥ ३० ॥

अथ विंशो वर्गः ॥ २० ॥

अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम् ।
स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तः ॥ ३१ ॥
य ईं चकार न सो अस्य वेद य ईं ददर्श हिरुगिन्नु तस्मात् ।
स मातुर्योना परिवीतो अन्तर्बहुप्रजा निर्ऋतिमा विवेश ॥ ३२ ॥
द्यौर्मे पिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्मे माता पृथिवी महीयम् ।
उत्तानयोश्चम्वो३र्योनिरन्तरत्रा पिता दुहितुर्गर्भमाधात् ॥ ३३ ॥
पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि यत्र भुवनस्य नाभिः ।
पृच्छामि त्वा वृष्णो अश्वस्य रेतः पृच्छामि वाचः परमं व्योम ॥ ३४ ॥
इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः ।
अयं सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतो ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम ॥ ३५ ॥

अथ एकविंशो वर्गः ॥ २१ ॥

सप्तार्धगर्भा भुवनस्य रेतो विष्णोस्तिष्ठन्ति प्रदिशा विधर्मणि ।
ते धीतिभिर्मनसा ते विपश्चितः परिभुवः परि भवन्ति विश्वतः ॥ ३६ ॥
न वि जानामि यदिवेदमस्मि निण्यः संनद्धो मनसा चरामि ।
यदा मागन् प्रथमजा ऋतस्यादिद् वाचो अश्नुवे भागमस्याः ॥ ३७ ॥
अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतोऽमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ।
ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्ता न्य१न्यं चिक्युर्न नि चिक्युरन्यम् ॥ ३८ ॥

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते॥३९॥
सूयवसाद्भगवती हि भूया अथो वयं भगवन्तः स्याम।
अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती॥४०॥

अथ द्वाविंशो वर्गः॥२२॥

गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी।
अष्टापदी नवपदी बभूवुषी सहस्राक्षरा परमे व्योमन्॥४१॥
तस्याः समुद्रा अधि वि क्षरन्ति तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः।
ततः क्षरत्यक्षरं तद्विश्वमुप जीवति॥४२॥
शकमयं धूममारादपश्यं विषूवता पर एनावरेण।
उक्षाणं पृश्निमपचन्त वीरास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्॥४३॥
त्रयः केशिन ऋतुथा वि चक्षते संवत्सरे वपत एक एषाम्।
विश्वमेको अभि चष्टे शचीभिर्ध्राजिरेकस्य ददृशे न रूपम्॥४४॥
चत्वारि वाक्परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः।
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति॥४५॥
इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥४६॥

अथ त्रयोविंशो वर्गः॥२३॥

कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति।
त आववृत्रन्त्सदनादृतस्यादिद् घृतेन पृथिवी व्युद्यते॥४७॥
द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत।
तस्मिन्त्साकं त्रिशता न शङ्कवोऽर्पिताः षष्टिर्न चलाचलासः॥४८॥
यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूर्येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि।
यो रत्नधा वसुविद्यः सुदत्रः सरस्वति तमिह धातवे कः॥४९॥

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः॥५०॥
समानमेतदुदकमुच्चैत्यव चाहभिः।
भूमिं पर्जन्या जिन्वन्ति दिवं जिन्वन्त्यग्नयः॥५१॥
दिव्यं सुपर्णं वायसं बृहन्तमपां गर्भं दर्शतमोषधीनाम्।
अभीपतो वृष्टिभिस्तर्पयन्तं सरस्वन्तमवसे जोहवीमि॥५२॥

त्रयोविंशोऽनुवाकः [१६५] पञ्चषष्ट्युत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—अगस्त्यः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१, ३-५, ११, १२ विराट्त्रिष्टुप्; २, ८, ९ त्रिष्टुप्; ६, ७, १०, १४ भुरिक्पङ्क्तिः; १३ निचृत्त्रिष्टुप्; १५ पङ्क्तिः॥ स्वरः—१-५, ८, ९, ११-१३ धैवतः; ६, ७, १०, १४, १५ पञ्चमः॥

अथ चतुर्विंशो वर्गः॥२४॥

कया शुभा सवयसः सनीळाः समान्या मरुतः सं मिमिक्षुः।
कया मती कुत एतास एतेऽर्चन्ति शुष्मं वृषणो वसूया॥१॥
कस्य ब्रह्माणि जुजुषुर्युवानः को अध्वरे मरुत आ ववर्त।
श्येनाँइव ध्रजतो अन्तरिक्षे केन महा मनसा रीरमाम॥२॥
कुतस्त्वमिन्द्र माहिनः सन्नेको यासि सत्पते किं त इत्था।
सं पृच्छसे समराणः शुभानैर्वोचेस्तन्नो हरिवो यत्ते अस्मे॥३॥
ब्रह्माणि मे मतयः शं सुतासः शुष्म इयर्ति प्रभृतो मे अद्रिः।
आ शासते प्रति हर्यन्त्युक्थेमा हरी वहतस्ता नो अच्छ॥४॥
अतो वयमन्तमेभिर्युजानाः स्वक्षत्रेभिस्तन्वः शुम्भमानाः।
महोभिरेताँ उप युज्महे न्विन्द्र स्वधामनु हि नो बभूथ॥५॥

अथ पञ्चविंशो वर्गः॥२५॥

क्व स्या वो मरुतः स्वधासीद्यन्मामेकं समधत्ताहिहत्ये।
अहं ह्युग्रस्तविषस्तुविष्मान्विश्वस्य शत्रोरनमं वधस्नैः॥६॥
भूरि चकर्थ युज्येभिरस्मे समानेभिर्वृषभ पौंस्येभिः।
भूरीणि हि कृणवामा शविष्ठेन्द्र क्रत्वा मरुतो यद्वशाम॥७॥

वधीं वृत्रं मरुत इन्द्रियेण स्वेन भामेन तविषो बभूवान् ।
अहमेता मनवे विश्वश्चन्द्राः सुगा अपश्चकर वज्रबाहुः ॥ ८ ॥
अनुत्तमा ते मघवन्नकिर्नु न त्वावाँ अस्ति देवता विदानः ।
न जायमानो नशते न जातो यानि करिष्या कृणुहि प्रवृद्ध ॥ ९ ॥
एकस्य चिन्मे विभ्वस्त्वोजो या नु दधृष्वान्कृणवै मनीषा ।
अहं ह्युग्रो मरुतो विदानो यानि च्यवमिन्द्र इदीश एषाम् ॥ १० ॥

अथ षड्विंशो वर्गः ॥ २६ ॥

अमन्दन्मा मरुतः स्तोमो अत्र यन्मे नरः श्रुत्यं ब्रह्म चक्र ।
इन्द्राय वृष्णे सुमखाय मह्यं सख्ये सखायस्तन्वे तनूभिः ॥ ११ ॥
एवेदेते प्रति मा रोचमाना अनेद्यः श्रव एषो दधानाः ।
संचक्ष्या मरुतश्चन्द्रवर्णा अच्छान्त मे छदयाथा च नूनम् ॥ १२ ॥
को न्वत्र मरुतो मामहे वः प्र यातन सखीँरच्छा सखायः ।
मन्मानि चित्रा अपिवातयन्त एषां भूत नवेदा म ऋतानाम् ॥ १३ ॥
आ यद्दुवस्याद्दुवसे न कारुरस्माञ्चक्रे मान्यस्य मेधा ।
ओ षु वर्त मरुतो विप्रमच्छेमा ब्रह्माणि जरिता वो अर्चत् ॥ १४ ॥
एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ १५ ॥

इति द्वितीयाष्टके तृतीयोऽध्यायः ॥

अथ द्वितीयाष्टके चतुर्थोऽध्यायः

[१६६] षट्षष्ट्युत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—मैत्रावरुणोऽगस्त्यः ॥ देवता—मरुतः ॥ छन्दः—१, २, ८ जगती; ३, ५, ६, १२, १३ निचृज्जगती; ४ विराड्जगती; ७, ९, १० भुरिक्त्रिष्टुप्; ११ विराट् त्रिष्टुप्; १४ त्रिष्टुप्; १५ पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१-६, ८, १२, १३ निषादः; ७, ९-११, १४ धैवतः; १५ पञ्चमः ॥

अथ प्रथमो वर्गः ॥ १ ॥

तन्नु वोचाम रभसाय जन्मने पूर्वं महित्वं वृषभस्य केतवे ।
ऐधेव यामन्मरुतस्तुविष्वणो युधेव शक्रास्तविषाणि कर्तन ॥ १ ॥
नित्यं न सूनुं मधु बिभ्रत उप क्रीळन्ति क्रीळा विदथेषु घृष्वयः ।
नक्षन्ति रुद्रा अवसा नमस्विनं न मर्धन्ति स्वतवसो हविष्कृतम् ॥ २ ॥
यस्मा ऊमासो अमृता अरासत रायस्पोषं च हविषा ददाशुषे ।
उक्षन्त्यस्मै मरुतो हिताइव पुरू रजांसि पयसा मयोभुवः ॥ ३ ॥
आ ये रजांसि तविषीभिरव्यत प्र व एवासः स्वयतासो अध्रजन् ।
भयन्ते विश्वा भुवनानि हर्म्या चित्रो वो यामः प्रयतास्वृष्टिषु ॥ ४ ॥
यत्त्वेषयामा नदयन्त पर्वतान्दिवो वा पृष्ठं नर्या अचुच्यवुः ।
विश्वो वो अज्मन्भयते वनस्पती रथीयन्तीव प्र जिहीत ओषधिः ॥ ५ ॥

अथ द्वितीयो वर्गः ॥ २ ॥

यूयं न उग्रा मरुतः सुचेतुनारिष्टग्रामाः सुमतिं पिपर्तन ।
यत्रा वो दिद्युद्रदति क्रिविर्दती रिणाति पश्वः सुधितेव बर्हणा ॥ ६ ॥
प्र स्कम्भदेष्णा अनवभ्रराधसोऽलातृणासो विदथेषु सुष्टुताः ।
अर्चन्त्यर्कं मदिरस्य पीतये विदुर्वीरस्य प्रथमानि पौंस्या ॥ ७ ॥
शतभुजिभिस्तमभिह्रुतेरघात्पूर्भी रक्षता मरुतो यमावत ।
जनं यमुग्रास्तवसो विरप्शिनः पाथना शंसात्तनयस्य पुष्टिषु ॥ ८ ॥
विश्वानि भद्रा मरुतो रथेषु वो मिथस्पृध्येव तविषाण्याहिता ।
अंसेष्वा वः प्रपथेषु खादयोऽक्षो वश्चक्रा समया वि वावृते ॥ ९ ॥
भूरीणि भद्रा नर्येषु बाहुषु वक्षःसु रुक्मा रभसासो अञ्जयः ।
अंसेष्वेताः पविषु क्षुरा अधि वयो न पक्षान्व्यनु श्रियो धिरे ॥ १० ॥

अथ तृतीयो वर्गः ॥ ३ ॥

महान्तो मह्ना विभ्वो विभूतयो दूरेदृशो ये दिव्याइव स्तृभिः ।
मन्द्राः सुजिह्वाः स्वरितार आसभिः संमिश्ला इन्द्रे मरुतः परिष्टुभः ॥ ११ ॥

तद्वः सुजाता मरुतो महित्वनं दीर्घं वो दात्रमदितेरिव व्रतम्।
इन्द्रश्चन त्यजसा वि ह्रुणाति तज्जनाय यस्मै सुकृते अराध्वम्॥ १२॥
तद्वो जामित्वं मरुतः परे युगे पुरू यच्छंसममृतास आवत।
अया धिया मनवे श्रुष्टिमाव्या साकं नरो दंसनैरा चिकित्रिरे॥ १३॥
येन दीर्घं मरुतः शूशवाम युष्माकेन परीणसा तुरासः।
आ यत्ततनन्वृजने जनास एभिर्यज्ञेभिस्तदभीष्टिमश्याम्॥ १४॥
एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम्॥ १५॥

[१६७] सप्तषष्ट्युत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—अगस्त्यः॥ देवता—इन्द्रो मरुच्च॥ छन्दः—१, ४, ५ भुरिक्पङ्क्तिः; २, ३, ६, ८ निचृत्त्रिष्टुप्; ७, ९ स्वराट्पङ्क्तिः; १० निचृत्पङ्क्तिः; ११ पङ्क्तिः॥ स्वरः—१, ४, ५, ७, ९-११ पञ्चमः; २, ३, ६, ८ धैवतः॥

अथ चतुर्थो वर्गः॥ ४॥

सहस्रं त इन्द्रोतयो नः सहस्रमिषो हरिवो गूर्ततमाः।
सहस्रं रायो मादयध्यै सहस्रिण उप नो यन्तु वाजाः॥ १॥
आ नोऽवोभिर्मरुतो यान्त्वच्छा ज्येष्ठेभिर्वा बृहद्दिवैः सुमायाः।
अध यदेषां नियुतः परमाः समुद्रस्य चिद्धनयन्त पारे॥ २॥
मिम्यक्ष येषु सुधिता घृताची हिरण्यनिर्णिगुपरा न ऋष्टिः।
गुहा चरन्ती मनुषो न योषा सभावती विदथ्येव सं वाक्॥ ३॥
परा शुभ्रा अयासो यव्या साधारण्येव मरुतो मिमिक्षुः।
न रोदसी अप नुदन्त घोरा जुषन्त वृधं सख्याय देवाः॥ ४॥
जोषद्यदीमसुर्या सचध्यै विषितस्तुका रोदसी नृमणाः।
आ सूर्येव विधतो रथं गात्त्वेषप्रतीका नभसो नेत्या॥ ५॥

अथ पञ्चमो वर्गः॥ ५॥

आस्थापयन्त युवतिं युवानः शुभे निमिश्लां विदथेषु पज्राम्।
अर्को यद्वो मरुतो हविष्मान्गायद्गाथं सुतसोमो दुवस्यन्॥ ६॥

प्र तं विवक्मि वक्म्यो य एषां मरुतां महिमा सत्यो अस्ति।
सचा यदीं वृषमणा अहंयुः स्थिरा चिज्जनीर्वहते सुभागाः॥ ७॥
पान्ति मित्रावरुणाववद्याच्चयत ईमर्यमो अप्रशस्तान्।
उत च्यवन्ते अच्युता ध्रुवाणि वावृध ईं मरुतो दातिवारः॥ ८॥
नही नु वो मरुतो अन्त्यस्मे आरात्ताच्चिच्छवसो अन्तमापुः।
ते धृष्णुना शवसा शूशुवांसोऽर्णो न द्वेषो धृषता परि ष्ठुः॥ ९॥
वयमद्येन्द्रस्य प्रेष्ठा वयं श्वो वोचेमहि समर्ये।
वयं पुरा महि च नो अनु द्यून्तन्न ऋभुक्षा नरामनु ष्यात्॥ १०॥
एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम्॥ ११॥

[१६८] अष्टषष्ट्युत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—अगस्त्यः॥ देवता—मरुतः॥ छन्दः—१, ४ निचृज्जगती; २, ५ विराट्त्रिष्टुप्; ३ स्वराट्त्रिष्टुप्; ६, ७ भुरिक्त्रिष्टुप्; ८ त्रिष्टुप्; ९ निचृत्त्रिष्टुप्; १० पङ्क्तिः॥ स्वरः—१, ४ निषादः; २, ३, ५-९ धैवतः; १० पञ्चमः॥

अथ षष्ठो वर्गः॥ ६॥

यज्ञायज्ञा वः समना तुतुर्वणिर्धियंधियं वो देवया उ दधिध्वे।
आ वोऽर्वाचः सुविताय रोदस्योर्महे ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः॥ १॥
वव्रासो न ये स्वजाः स्वतवस इषं स्वरभिजायन्त धूतयः।
सहस्रियासो अपां नोर्मय आसा गावो वन्द्यासो नोक्षणः॥ २॥
सोमासो न ये सुतास्तृप्तांशवो हृत्सु पीतासो दुवसो नासते।
ऐषामंसेषु रम्भिणीव रारभे हस्तेषु खादिश्च कृतिश्च सं दधे॥ ३॥
अव स्वयुक्ता दिव आ वृथा ययुरमर्त्याः कशया चोदत त्मना।
अरेणवस्तुविजाता अचुच्यवुर्दृळ्हानि चिन्मरुतो भ्राजदृष्टयः॥ ४॥
को वोऽन्तर्मरुत ऋष्टिविद्युतो रेजति त्मना हन्वेव जिह्वया।
धन्वच्युत इषां न यामनि पुरुप्रैषा अहन्यो३ नैतशः॥ ५॥

अथ सप्तमो वर्गः ॥ ७ ॥

क्व स्विदस्य रजसो महस्परं क्वावरं मरुतो यस्मिन्नायय ।
यच्च्यावयथ विथुरेव संहितं व्यद्रिणा पतथ त्वेषमर्णवम् ॥ ६ ॥
सातिर्न वोऽमवती स्वर्वती त्वेषा विपाका मरुतः पिपिष्वती ।
भद्रा वो रातिः पृणतो न दक्षिणा पृथुज्रयी असुर्येव जञ्जती ॥ ७ ॥
प्रति ष्टोभन्ति सिन्धवः पविभ्यो यदभ्रियां वाचमुदीरयन्ति ।
अव स्मयन्त विद्युतः पृथिव्यां यदी घृतं मरुतः प्रुष्णुवन्ति ॥ ८ ॥
असूत पृश्निर्महते रणाय त्वेषमयासां मरुतामनीकम् ।
ते सप्सरासोऽजनयन्ताभ्वमादित्स्वधामिषिरां पर्यपश्यन् ॥ ९ ॥
एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ १० ॥

[१६९] एकोनसप्तत्युत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—अगस्त्यः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१, ३ भुरिक्पङ्क्तिः; २ पङ्क्तिः; ४ ब्राह्म्युष्णिक्; ५, ६ स्वराट्पङ्क्तिः; ७, ८ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१-३, ५, ६ पञ्चमः; ४ ऋषभः; ७, ८ धैवतः ॥

अथ अष्टमो वर्गः ॥ ८ ॥

महश्चित्त्वमिन्द्र यत एतान्महश्चिदसि त्यजसो वरूता ।
स नो वेधो मरुतां चिकित्वान्त्सुम्ना वनुष्व तव हि प्रेष्ठा ॥ १ ॥
अयुज्रन्त इन्द्र विश्वकृष्टीर्विदानासो निष्षिधो मर्त्यत्रा ।
मरुतां पृत्सुतिर्हासमाना स्वर्मीळ्हस्य प्रधनस्य सातौ ॥ २ ॥
अम्यक्सा त इन्द्र ऋष्टिरस्मे सनेम्यभ्वं मरुतो जुनन्ति ।
अग्निश्चिद्धि ष्मातसे शुशुक्वानापो न द्वीपं दधति प्रयांसि ॥ ३ ॥
त्वं तू न इन्द्र तं रयिं दा ओजिष्ठया दक्षिणयेव रातिम् ।
स्तुतश्च यास्ते चकनन्त वायोः स्तनं न मध्वः पीपयन्त वाजैः ॥ ४ ॥
त्वे राय इन्द्र तोशतमाः प्रणेतारः कस्य चिदृतायोः ।
ते षु णो मरुतो मृळयन्तु ये स्मा पुरा गातूयन्तीव देवाः ॥ ५ ॥

अथ नवमो वर्गः ॥ ९ ॥

प्रति प्र याहीन्द्र मीळ्हुषो नॄन्महः पार्थिवे सदने यतस्व ।
अध यदेषां पृथुबुध्नास एतास्तीर्थे नार्यः पौंस्यानि तस्थुः ॥ ६ ॥
प्रति घोराणामेतानामयासां मरुतां शृण्व आयतामुपब्दिः ।
ये मर्त्यं पृतनायन्तमूमैर्ऋणावानं न पतयन्त सर्गैः ॥ ७ ॥
त्वं मानेभ्य इन्द्र विश्वजन्या रदा मरुद्भिः शुरुधो गोअग्राः ।
स्तवानेभिः स्तवसे देव देवैर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ८ ॥

[१७०] सप्तत्युत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—अगस्त्यः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१ स्वराडनुष्टुप्; २ अनुष्टुप्; ३ विराडनुष्टुप्; ४ निचृदनुष्टुप्; ५ भुरिक्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१-४ गान्धारः; ५ पञ्चमः ॥

अथ दशमो वर्गः ॥ १० ॥

न नूनमस्ति नो श्वः कस्तद्वेद यदद्भुतम् ।
अन्यस्य चित्तमभि संचरेण्यमुताधीतं वि नश्यति ॥ १ ॥
किं न इन्द्र जिघांससि भ्रातरो मरुतस्तव ।
तेभिः कल्पस्व साधुया मा नः समरणे वधीः ॥ २ ॥
किं नो भ्रातरगस्त्य सखा सन्नति मन्यसे ।
विद्मा हि ते यथा मनोऽस्मभ्यमिन्न दित्ससि ॥ ३ ॥
अरं कृण्वन्तु वेदिं समग्निमिन्धतां पुरः ।
तत्रामृतस्य चेतनं यज्ञं ते तनवावहै ॥ ४ ॥
त्वमीशिषे वसुपते वसूनां त्वं मित्राणां मित्रपते धेष्ठः ।
इन्द्र त्वं मरुद्भिः सं वदस्वाध प्राशान ऋतुथा हवींषि ॥ ५ ॥

[१७१] एकसप्तत्युत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—अगस्त्यः ॥ देवता—मरुतः ॥ छन्दः—१, ५ निचृत्त्रिष्टुप्; २ त्रिष्टुप्; ४, ६ विराट्त्रिष्टुप्; ३ भुरिक्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१, २, ४-६ धैवतः; ३ पञ्चमः ॥

अथ एकादशो वर्गः ॥ ११ ॥

प्रति व एना नमसाहमेमि सूक्तेन भिक्षे सुमतिं तुराणाम् ।
रराणता मरुतो वेद्याभिर्नि हेळो धत्त वि मुचध्वमश्वान् ॥ १ ॥

एष वः स्तोमो मरुतो नमस्वान्हृदा तष्टो मनसा धायि देवाः।
उपेमा यात मनसा जुषाणा यूयं हि ष्ठा नमस इद् वृधासः॥ २॥
स्तुतासो नो मरुतो मृळयन्तूत स्तुतो मघवा शंभविष्ठः।
ऊर्ध्वा नः सन्तु कोम्या वनान्यहानि विश्वा मरुतो जिगीषा॥ ३॥
अस्मादहं तविषादीषमाण इन्द्राद्भिया मरुतो रेजमानः।
युष्मभ्यं हव्या निशितान्यासन्तान्यारे चकृमा मृळता नः॥ ४॥
येन मानासश्चितयन्त उस्रा व्युष्टिषु शवसा शश्वतीनाम्।
स नो मरुद्भिर्वृषभ श्रवो धा उग्र उग्रेभिः स्थविरः सहोदाः॥ ५॥
त्वं पाहीन्द्र सहीयसो नॄन्भवा मरुद्भिरवयातहेळाः ।
सुप्रकेतेभिः सासहिर्दधानो विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६॥

[१७२] द्विसप्तत्युत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—अगस्त्यः॥ देवता—मरुतः॥ छन्दः—१ विराड्गायत्री;
२, ३ गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

अथ द्वादशो वर्गः॥ १२॥

चित्रो वोऽस्तु यामश्चित्र ऊती सुदानवः। मरुतो अहिभानवः॥ १॥
आरे सा वः सुदानवो मरुत ऋञ्जती शरुः। आरे अश्मा यमस्यथ॥ २॥
तृणस्कन्दस्य नु विशः परि वृङ्क्त सुदानवः। ऊर्ध्वान्नः कर्त जीवसे॥ ३॥

[१७३] त्रिसप्तत्युत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—अगस्त्यः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१, ५, ११ पङ्क्तिः; २, ८ विराट्त्रिष्टुप्; ३ त्रिष्टुप्; ४ बृहती; ६, ९, १०, १२ भुरिक्पङ्क्तिः; ७, १३ निचृत्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—१, ५, ६, ९, १०-१२ पञ्चमः; २, ३, ७, ८, १३ धैवतः; ४ मध्यमः॥

अथ त्रयोदशो वर्गः॥ १३॥

गायत्साम नभन्यं१ यथा वेरर्चाम तद्वावृधानं स्वर्वत्।
गावो धेनवो बर्हिष्यदब्धा आ यत्सद्मानं दिव्यं विवासान्॥ १॥
अर्चद् वृषा वृषभिः स्वेदुहव्यैर्मृगो नाश्नो अति यज्जुगुर्यात्।
प्र मन्दयुर्मनां गूर्त होता भरते मर्यो मिथुना यजत्रः॥ २॥

नक्षद्धोता परि सद्म मिता यन्भरद्गर्भमा शरदः पृथिव्याः।
क्रन्ददश्वो नयमानो रुवद्गौरन्तर्दूतो न रोदसी चरद्वाक्॥ ३॥
ता कर्माषतरास्मै प्र च्यौत्नानि देवयन्तो भरन्ते ।
जुजोषदिन्द्रो दस्मवर्चा नासत्येव सुग्म्यो रथेष्ठाः ॥ ४॥
तमु ष्टुहीन्द्रं यो ह सत्वा यः शूरो मघवा यो रथेष्ठाः ।
प्रतीचश्चिद्योधीयान्वृषण्वान्ववव्रुषश्चित्तमसो विहन्ता ॥ ५॥

अथ चतुर्दशो वर्गः॥ १४॥

प्र यदित्था महिना नृभ्यो अस्त्यरं रोदसी कक्ष्ये३ नास्मै।
सं विव्य इन्द्रो वृजनं न भूमा भर्ति स्वधावाँ ओपशमिव द्याम्॥ ६॥
समत्सु त्वा शूर सतामुराणं प्रपथिन्तमं परितंसयध्यै।
सजोषस इन्द्रं मदे क्षोणीः सूरिं चिद्ये अनुमदन्ति वाजैः॥ ७॥
एवा हि ते शं सवना समुद्र आपो यत्त आसु मदन्ति देवीः।
विश्वा ते अनु जोष्या भूद् गौः सूरीँश्चिद्यदि धिषा वेषि जनान्॥ ८॥
असाम यथा सुषखाय एन स्वभिष्टयो नरां न शंसैः।
असद्यथा न इन्द्रो वन्दनेष्ठास्तुरो न कर्म नयमान उक्था॥ ९॥
विष्पर्धसो नरां न शंसैरस्माकासदिन्द्रो वज्रहस्तः ।
मित्रायुवो न पूर्पतिं सुशिष्टौ मध्यायुव उप शिक्षन्ति यज्ञैः ॥ १०॥

अथ पञ्चदशो वर्गः॥ १५॥

यज्ञो हि ष्मेन्द्रं कश्चिदृन्धञ्जुहुराणश्चिन्मनसा परियन्।
तीर्थे नाच्छा तातृषाणमोको दीर्घो न सिध्रमा कृणोत्यध्वा॥ ११॥
मो षू ण इन्द्रात्र पृत्सु देवैरस्ति हि ष्मा ते शुष्मिन्नवयाः।
महश्चिद्यस्य मीळ्हुषो यव्या हविष्मतो मरुतो वन्दते गीः॥ १२॥
एष स्तोम इन्द्र तुभ्यमस्मे एतेन गातुं हरिवो विदो नः।
आ नो ववृत्याः सुवितायं देव विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम्॥ १३॥

[१७४] चतुःसप्तत्युत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—अगस्त्यः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१ निचृत्पङ्क्तिः; २, ३, ६, ८, १० भुरिक्पङ्क्तिः; ४ स्वराट्पङ्क्तिः; ५, ७, ९ पङ्क्तिः ॥ स्वरः—पञ्चमः ॥

अथ षोडशो वर्गः ॥ १६ ॥

त्वं राजेन्द्र ये च देवा रक्षा नृन्पाह्यसुर त्वमस्मान् ।
त्वं सत्पतिर्मघवा नस्तरुत्रस्त्वं सत्यो वसवानः सहोदाः ॥ १ ॥
दनो विश इन्द्र मृध्रवाचः सप्त यत्पुरः शर्म शारदीर्दर्त् ।
ऋणोरपो अनवद्यार्णा यूने वृत्रं पुरुकुत्साय रन्धीः ॥ २ ॥
अजा वृत इन्द्र शूरपत्नीर्द्यां च येभिः पुरुहूत नूनम् ।
रक्षो अग्निमशुषं तूर्वयाणं सिंहो न दमे अपांसि वस्तोः ॥ ३ ॥
शेषन्नु त इन्द्र सस्मिन्योनौ प्रशस्तये पवीरवस्य मह्ना ।
सृजदर्णांस्यव यद्युधा गास्तिष्ठद्धरी धृषता मृष्ट वाजान् ॥ ४ ॥
वह कुत्समिन्द्र यस्मिञ्चाकन्त्स्यूमन्यू ऋज्रा वातस्याश्वा ।
प्र सूरश्चक्रं वृहतादभीकेऽभि स्पृधो यासिषद्वज्रबाहुः ॥ ५ ॥

अथ सप्तदशो वर्गः ॥ १७ ॥

जघन्वाँ इन्द्र मित्रेरूञ्चोदप्रवृद्धो हरिवो अदाशून् ।
प्र ये पश्यन्नर्यमणं सचायोस्त्वया शूर्ता वहमाना अपत्यम् ॥ ६ ॥
रपत्कविरिन्द्रार्कसातौ क्षां दासायोपबर्हणीं कः ।
करत्तिस्रो मघवा दानुचित्रा नि दुर्योणे कुयवाचं मृधि श्रेत् ॥ ७ ॥
सना ता त इन्द्र नव्या आगुः सहो नभोऽविरणाय पूर्वीः ।
भिनत्पुरो न भिदो अदेवीर्ननमो वधरदेवस्य पीयोः ॥ ८ ॥
त्वं धुनिरिन्द्र धुनिमतीर्ऋणोरपः सीरा न स्रवन्तीः ।
प्र यत्समुद्रमति शूर पर्षि पारया तुर्वशं यदुं स्वस्ति ॥ ९ ॥
त्वमस्माकमिन्द्र विश्वध स्या अवृकतमो नरां नृपाता ।
स नो विश्वासां स्पृधां सहोदा विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ १० ॥

[१७५] पञ्चसप्तत्युत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—अगस्त्यः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१ स्वराडनुष्टुप्; २ विराडनुष्टुप्; ३ निचृत्त्रिष्टुप्; ४ उष्णिक्; ५ अनुष्टुप्; ६ भुरिक्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१, २, ५ गान्धारः; ३, ६ धैवतः; ४ ऋषभः ॥

अथ अष्टादशो वर्गः ॥ १८ ॥

मत्स्यपायि ते महः पात्रस्येव हरिवो मत्सरो मदः ।
वृषा ते वृष्ण इन्दुर्वाजी सहस्रसातमः ॥ १ ॥
आ नस्ते गन्तु मत्सरो वृषा मदो वरेण्यः ।
सहावाँ इन्द्र सानसिः पृतनाषाळमर्त्यः ॥ २ ॥
त्वं हि शूरः सनिता चोदयो मनुषो रथम् ।
सहावान्दस्युमव्रतमोषः पात्रं न शोचिषा ॥ ३ ॥
मुषाय सूर्यं कवे चक्रमीशान ओजसा ।
वह शुष्णाय वधं कुत्सं वातस्याश्वैः ॥ ४ ॥
शुष्मिन्तमो हि ते मदो द्युम्निन्तम उत क्रतुः ।
वृत्रघ्ना वरिवोविदा मंसीष्ठा अश्वसातमः ॥ ५ ॥
यथा पूर्वेभ्यो जरितृभ्य इन्द्र मयइवापो न तृष्यते बभूथ ।
तामनु त्वा निविदं जोहवीमि विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६ ॥

[१७६] षट्सप्तत्युत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—अगस्त्यः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१, ४ अनुष्टुप्; २ निचृदनुष्टुप्; ३ विराडनुष्टुप्; ५ भुरिगुष्णिक्; ६ भुरिक्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१-४ गान्धारः; ५ ऋषभः; ६ धैवतः ॥

अथ एकोनविंशो वर्गः ॥ १९ ॥

मत्सि नो वस्यइष्टय इन्द्रमिन्दो वृषा विश ।
ऋघायमाण इन्वसि शत्रुमन्ति न विन्दसि ॥ १ ॥
तस्मिन्ना वेशया गिरो य एकश्चर्षणीनाम् ।
अनु स्वधा यमुप्यते यवं न चर्कृषद् वृषा ॥ २ ॥

यस्य विश्वानि हस्तयोः पञ्च क्षितीनां वसु ।
स्पाशयस्व यो अस्मध्रुग्दिव्येवाशनिर्जहि ॥ ३ ॥
असुन्वन्तं समं जहि दूणाशं यो न ते मयः ।
अस्मभ्यमस्य वेदनं दद्धि सूरिश्चिदोहते ॥ ४ ॥
आवो यस्य द्विबर्हसोऽर्केषु सानुषगसत् ।
आजाविन्द्रस्येन्दो प्रावो वाजेषु वाजिनम् ॥ ५ ॥
यथा पूर्वेभ्यो जरितृभ्य इन्द्र मयइवापो न तृष्यते बभूथ ।
तामनु त्वा निविदं जोहवीमि विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६ ॥

[१७७] सप्तसप्तत्युत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—अगस्त्यः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१, २ निचृत्त्रिष्टुप्; ३ त्रिष्टुप्; ४ भुरिक्त्रिष्टुप्; ५ भुरिक्पङ्क्तिः ॥ स्वर—१-४ धैवतः; ५ पञ्चमः ॥

अथ विंशो वर्गः ॥ २० ॥

आ चर्षणिप्रा वृषभो जनानां राजा कृष्टीनां पुरुहूत इन्द्रः ।
स्तुतः श्रवस्यन्नवसोप मद्रिग्युक्त्वा हरी वृषणा याह्यर्वाङ् ॥ १ ॥
ये ते वृषणो वृषभास इन्द्र ब्रह्मयुजो वृषरथासो अत्याः ।
ताँ आ तिष्ठ तेभिरा याह्यर्वाङ् हवामहे त्वा सुत इन्द्र सोमे ॥ २ ॥
आ तिष्ठ रथं वृषणं वृषा ते सुतः सोमः परिषिक्ता मधूनि ।
युक्त्वा वृषभ्यां वृषभ क्षितीनां हरिभ्यां याहि प्रवतोप मद्रिक् ॥ ३ ॥
अयं यज्ञो देवया अयं मियेध इमा ब्रह्माण्ययमिन्द्र सोमः ।
स्तीर्णं बर्हिरा तु शक्र प्र याहि पिबा निषद्य वि मुचा हरी इह ॥ ४ ॥
ओ सुष्टुत इन्द्र याह्यर्वाङुप ब्रह्माणि मान्यस्य कारोः ।
विद्याम वस्तोरवसा गृणन्तो विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ५ ॥

[१७८] अष्टसप्तत्युत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—अगस्त्यः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१, २ भुरिक्पङ्क्तिः; ३, ४ निचृत्त्रिष्टुप्; ५ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१, २ पञ्चमः; ३, ४, ५ धैवतः ॥

अथ एकविंशो वर्गः ॥ २१ ॥

यद्ध स्या त इन्द्र श्रुष्टिरस्ति यया बभूथ जरितृभ्य ऊती ।
मा नः कामं महयन्तमा धग्विश्वा ते अश्यां पर्याप आयोः ॥ १ ॥
न घा राजेन्द्र आ दभन्नो या नु स्वसारा कृणवन्त योनौ ।
आपश्चिदस्मै सुतुका अवेषन्गमन्न इन्द्रः सख्या वयश्च ॥ २ ॥
जेता नृभिरिन्द्रः पृत्सु शूरः श्रोता हवं नाधमानस्य कारोः ।
प्रभर्ता रथं दाशुष उपाक उद्यन्ता गिरो यदि च त्मना भूत् ॥ ३ ॥
एवा नृभिरिन्द्रः सुश्रवस्या प्रखादः पृक्षो अभि मित्रिणो भूत् ।
समर्य इषः स्तवते विवाचि सत्राकरो यजमानस्य शंसः ॥ ४ ॥
त्वया वयं मघवन्निन्द्र शत्रूनभि ष्याम महतो मन्यमानान् ।
त्वं त्राता त्वमु नो वृधे भूर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ५ ॥

[१७९] एकोनाशीत्युत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—लोपामुद्राऽगस्त्यौ ॥ देवता—दम्पती ॥ छन्दः—१, ४ त्रिष्टुप्; २, ३ निचृत्त्रिष्टुप्; ५ निचृद्बृहती; ६ विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१-४, ६ धैवतः; ५ मध्यमः ॥

अथ द्वाविंशो वर्गः ॥ २२ ॥

पूर्वीरहं शरदः शश्रमाणा दोषा वस्तोरुषसो जरयन्तीः ।
मिनाति श्रियं जरिमा तनूनामप्यू नु पत्नीर्वृषणो जगम्युः ॥ १ ॥
ये चिद्धि पूर्व ऋतसाप आसन्त्साकं देवेभिरवदन्नृतानि ।
ते चिदवासुर्नह्यन्तमापुः समू नु पत्नीर्वृषभिर्जगम्युः ॥ २ ॥
न मृषा श्रान्तं यदवन्ति देवा विश्वा इत्स्पृधो अभ्यश्नवाव ।
जयावेदत्र शतनीथमाजिं यत्सम्यञ्चा मिथुनावभ्यजाव ॥ ३ ॥
नदस्य मा रुधतः काम आगन्नित आजातो अमुतः कुतश्चित् ।
लोपामुद्रा वृषणं नी रिणाति धीरमधीरा धयति श्वसन्तम् ॥ ४ ॥
इमं नु सोममन्तितो हृत्सु पीतमुप ब्रुवे ।
यत्सीमागश्चकृमा तत्सु मृळतु पुलुकामो हि मर्त्यः ॥ ५ ॥

अगस्त्यः खनमानः खनित्रैः प्रजामपत्यं बलमिच्छमानः।
उभौ वर्णावृषिरुग्रः पुपोष सत्या देवेष्वाशिषो जगाम॥६॥

चतुर्विंशोऽनुवाकः [१८०] अशीत्युत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—अगस्त्यः॥ देवता—अश्विनौ॥ छन्दः—१, ४, ७ निचृत्त्रिष्टुप्; २, ९ भुरिक्पङ्क्तिः; ३, ५, ६, ८ विराट्त्रिष्टुप्; १० त्रिष्टुप्॥ स्वरः—१, ३-८, १० धैवतः; २, ९ पञ्चमः॥

अथ त्रयोविंशो वर्गः॥ २३॥

युवो रजांसि सुयमासो अश्वा रथो यद्वां पर्यर्णांसि दीयत्।
हिरण्यया वां पवयः प्रुषायन्मध्वः पिबन्ता उषसः सचेथे॥१॥
युवमत्यस्याव नक्षथो यद्विपत्मनो नर्यस्य प्रयज्योः।
स्वसा यद्वां विश्वगूर्ती भराति वाजायेट्टे मधुपाविषे च॥२॥
युवं पय उस्रियायामधत्तं पक्वमामायामव पूर्व्यं गोः।
अन्तर्यद्वनिनो वामृतप्सू ह्वारो न शुचिर्यजते हविष्मान्॥३॥
युवं ह घर्मं मधुमन्तमत्रयेऽपो न क्षोदोऽवृणीतमेषे।
तद्वां नरावश्विना पश्वइष्टी रथ्येव चक्रा प्रति यन्ति मध्वः॥४॥
आ वां दानाय ववृतीय दस्रा गोरोहेण तौग्र्यो न जिव्रिः।
अपः क्षोणी सचते माहिना वां जूर्णो वामक्षुरंहसो यजत्रा॥५॥

अथ चतुर्विंशो वर्गः॥ २४॥

नि यद्युवेथे नियुतः सुदानू उप स्वधाभिः सृजथः पुरन्धिम्।
प्रेषद्वेषद्वातो न सूरिरा महे ददे सुव्रतो न वाजम्॥६॥
वयं चिद्धि वां जरितारः सत्या विपन्यामहे वि पणिर्हितावान्।
अधा चिद्धि ष्माश्विनावनिन्द्या पाथो हि ष्मा वृषणावन्तिदेवम्॥७॥
युवां चिद्धि ष्माश्विनावनु द्यून्विरुद्रस्य प्रस्रवणस्य सातौ।
अगस्त्यो नरां नृषु प्रशस्तः काराधुनीव चितयत्सहस्रैः॥८॥
प्र यद्वहेथे महिना रथस्य प्र स्पन्द्रा याथो मनुषो न होता।
धत्तं सूरिभ्य उत वा स्वश्व्यं नासत्या रयिषाचः स्याम॥९॥

तं वां रथं वयमद्या हुवेम स्तोमैरश्विना सुविताय नव्यम्।
अरिष्टनेमिं परि द्यामियानं विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम्॥१०॥

[१८१] एकाशीत्युत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—अगस्त्यः॥ देवता—अश्विनौ॥ छन्दः—१, ३ विराट्त्रिष्टुप्; २, ४, ६-९ निचृत्त्रिष्टुप्; ५ त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

अथ पञ्चविंशो वर्गः॥ २५॥

कदु प्रेष्ठाविषां रयीणामध्वर्यन्ता यदुन्निनीथो अपाम्।
अयं वां यज्ञो अकृत प्रशस्तिं वसुधिती अवितारा जनानाम्॥१॥
आ वामश्वासः शुचयः पयस्पा वातरंहसो दिव्यासो अत्याः।
मनोजुवो वृषणो वीतपृष्ठा एह स्वराजो अश्विना वहन्तु॥२॥
आ वां रथोऽवनिर्न प्रवत्वान्त्सृप्रवन्धुरः सुविताय गम्याः।
वृष्णः स्थातारा मनसो जवीयानहंपूर्वो यजतो धिष्ण्या यः॥३॥
इहेह जाता समवावशीतामरेपसा तन्वा३ नामभिः स्वैः।
जिष्णुर्वामन्यः सुमखस्य सूरिर्दिवो अन्यः सुभगः पुत्र ऊहे॥४॥
प्र वां निचेरुः ककुहो वशाँ अनु पिशङ्गरूपः सदनानि गम्याः।
हरी अन्यस्य पीपयन्त वाजैर्मथ्ना रजांस्यश्विना वि घोषैः॥५॥

अथ षड्विंशो वर्गः॥ २६॥

प्र वां शरद्वान्वृषभो न निष्षाट् पूर्वीरिषश्चरति मध्व इष्णन्।
एवैरन्यस्य पीपयन्त वाजैर्वेषन्तीरूर्ध्वा नद्यो न आगुः॥६॥
असर्जि वां स्थविरा वेधसा गीर्बाळ्हे अश्विना त्रेधा क्षरन्ती।
उपस्तुताववतं नाधमानं यामन्नयामञ्छृणुतं हवं मे॥७॥
उत स्या वां रुशतो वप्ससो गीस्त्रिबर्हिषि सदसि पिन्वते नॄन्।
वृषा वां मेघो वृषणा पीपाय गोर्न सेके मनुषो दशस्यन्॥८॥
युवां पूषेवाश्विना पुरन्धिरग्निमुषां न जरते हविष्मान्।
हुवे यद्वां वरिवस्या गृणानो विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम्॥९॥

[१८२] द्व्यशीत्युत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—अगस्त्यः ॥ देवता—अश्विनौ ॥ छन्दः—१, ५, ७ निचृज्जगती; २ स्वराट्त्रिष्टुप्; ३ जगती; ४ विराड्जगती; ६, ८ स्वराट्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१, ३-५, ७ निषादः; २ धैवतः; ६, ८ पञ्चमः ॥

अथ सप्तविंशो वर्गः ॥ २७ ॥

अभूदिदं वयुनमो षु भूषता रथो वृषण्वान्मदता मनीषिणः ।
धियंजिन्वा धिष्ण्या विश्पलावसू दिवो नपाता सुकृते शुचिव्रता ॥ १ ॥
इन्द्रतमा हि धिष्ण्या मरुत्तमा दस्रा दंसिष्ठा रथ्या रथीतमा ।
पूर्णं रथं वहेथे मध्व आचितं तेन दाश्वांसमुप याथो अश्विना ॥ २ ॥
किमत्र दस्रा कृणुथः किमासाथे जनो यः कश्चिदहविर्महीयते ।
अति क्रमिष्टं जुरतं पणेरसुं ज्योतिर्विप्राय कृणुतं वचस्यवे ॥ ३ ॥
जम्भयतमभितो रायतः शुनो हतं मृधो विदथुस्तान्यश्विना ।
वाचंवाचं जरितू रत्निनीं कृतमुभा शंसं नासत्यावतं मम ॥ ४ ॥
युवमेतं चक्रथुः सिन्धुषु प्लवमात्मन्वन्तं पक्षिणं तौग्र्याय कम् ।
येन देवत्रा मनसा निरूहथुः सुपप्तनी पेतथुः क्षोदसो महः ॥ ५ ॥

अथ अष्टाविंशो वर्गः ॥ २८ ॥

अवविद्धं तौग्र्यमप्स्व१न्तरनारम्भणे तमसि प्रविद्धम् ।
चतस्रो नावो जठलस्य जुष्टा उदश्विभ्यामिषिताः पारयन्ति ॥ ६ ॥
कः स्विद्वृक्षो निष्ठितो मध्ये अर्णसो यं तौग्र्यो नाधितः पर्यषस्वजत् ।
पर्णा मृगस्य पतरोरिवारभ उदश्विना ऊहथुः श्रोमताय कम् ॥ ७ ॥
तद्वां नरा नासत्यावनु ष्याद्यद्वां मानास उचथमवोचन् ।
अस्मादद्य सदसः सोम्यादा विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ८ ॥

[१८३] त्र्यशीत्युत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—अगस्त्यः ॥ देवता—अश्विनौ ॥ छन्दः—१, ४, ६ त्रिष्टुप्; २, ३ निचृत्त्रिष्टुप्; ५ भुरिक्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१-४, ६ धैवतः; ५ पञ्चमः ॥

अथ एकोनत्रिंशो वर्गः ॥ २९ ॥

तं युञ्जाथां मनसो यो जवीयान् त्रिवन्धुरो वृषणा यस्त्रिचक्रः ।
येनोपयाथः सुकृतो दुरोणं त्रिधातुना पतथो विर्न पर्णैः ॥ १ ॥

सुवृद्रथो वर्तते यन्नभि क्षां यत्तिष्ठथः क्रतुमन्तानु पृक्षे ।
वपुर्वपुष्या सचतामियं गीर्दिवो दुहित्रोषसा सचेथे ॥ २ ॥
आ तिष्ठतं सुवृतं यो रथो वामनु व्रतानि वर्तते हविष्मान् ।
येन नरा नासत्येषयध्यै वर्तिर्याथस्तनयाय त्मने च ॥ ३ ॥
मा वां वृको मा वृकीरा दधर्षीन्मा परि वर्क्तमुत माति धक्तम् ।
अयं वां भागो निहित इयं गीर्दस्राविमे वां निधयो मधूनाम् ॥ ४ ॥
युवां गोतमः पुरुमीळ्हो अत्रिर्दस्रा हवतेऽवसे हविष्मान् ।
दिशं न दिष्टामृजूयेव यन्ता मे हवं नासत्योप यातम् ॥ ५ ॥
अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति वां स्तोमो अश्विनावधायि ।
एह यातं पथिभिर्देवयानैर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६ ॥

इति द्वितीयाष्टके चतुर्थोऽध्यायः ॥

अथ द्वितीयाष्टके पञ्चमोऽध्यायः

[१८४] चतुरशीत्युत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—अगस्त्यः ॥ देवता—अश्विनौ ॥ छन्दः—१ पङ्क्तिः; २, ३ विराट्त्रिष्टुप्; ४ भुरिक्पङ्क्तिः; ५, ६ निचृत्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१, ४-६ पञ्चमः; २, ३ धैवतः ॥

अथ प्रथमो वर्गः ॥ १ ॥

ता वामद्य तावपरं हुवेमोच्छन्त्यामुषसि वह्निरुक्थैः ।
नासत्या कुह चित्सन्तावर्यो दिवो नपाता सुदास्तराय ॥ १ ॥
अस्मे ऊ षु वृषणा मादयेथामुत्पणीँर्हतमूर्म्या मदन्ता ।
श्रुतं मे अच्छोक्तिभिर्मतीनामेष्टा नरा निचेतारा च कर्णैः ॥ २ ॥
श्रिये पूषन्निषुकृतेव देवा नासत्या वहतुं सूर्यायाः ।
वच्यन्ते वां ककुहा अप्सु जाता युगा जूर्णेव वरुणस्य भूरेः ॥ ३ ॥
अस्मे सा वां माध्वी रातिरस्तु स्तोमं हिनोतं मान्यस्य कारोः ।
अनु यद्वां श्रवस्या सुदानू सुवीर्याय चर्षणयो मदन्ति ॥ ४ ॥
एष वां स्तोमो अश्विनावकारि मानेभिर्मघवाना सुवृक्ति ।
यातं वर्तिस्तनयाय त्मने चागस्त्ये नासत्या मदन्ता ॥ ५ ॥

अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति वां स्तोमो अश्विनावधायि ।
एह यातं पथिभिर्देवयानैर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥६॥

[१८५] पञ्चाशीत्युत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—अगस्त्यः ॥ देवता—द्यावापृथिव्यौ ॥ छन्दः—१, ६-८, १०, ११ त्रिष्टुप्; २ विराट्त्रिष्टुप्; ३-५, ९ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

अथ द्वितीयो वर्गः ॥ २ ॥

कतरा पूर्वा कतरापरायोः कथा जाते कवयः को वि वेद ।
विश्वं त्मना बिभृतो यद्ध नाम वि वर्तेते अहनी चक्रियेव ॥ १ ॥
भूरिं द्वे अचरन्ती चरन्तं पद्वन्तं गर्भमपदी दधाते ।
नित्यं न सूनुं पित्रोरुपस्थे द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ २ ॥
अनेहो दात्रमदितेरनर्वं हुवे स्वर्वदवधं नमस्वत् ।
तद्रोदसी जनयतं जरित्रे द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ ३ ॥
अतप्यमाने अवसावन्ती अनु ष्याम रोदसी देवपुत्रे ।
उभे देवानामुभयेभिरह्नां द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ ४ ॥
संगच्छमाने युवती समन्ते स्वसारा जामी पित्रोरुपस्थे ।
अभिजिघ्रन्ती भुवनस्य नाभिं द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ ५ ॥

अथ तृतीयो वर्गः ॥ ३ ॥

उर्वी सद्मनी बृहती ऋतेन हुवे देवानामवसा जनित्री ।
दधाते ये अमृतं सुप्रतीके द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ ६ ॥
उर्वी पृथ्वी बहुले दूरेअन्ते उप ब्रुवे नमसा यज्ञे अस्मिन् ।
दधाते ये सुभगे सुप्रतूर्ती द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ ७ ॥
देवान्वा यच्चकृमा कच्चिदागः सखायं वा सदमिज्जास्पतिं वा ।
इयं धीर्भूया अवयानमेषां द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ ८ ॥
उभा शंसा नर्या मामविष्टामुभे मामूती अवसा सचेताम् ।
भूरि चिदर्यः सुदास्तरायेषा मदन्त इषयेम देवाः ॥ ९ ॥

ऋतं दिवे तदवोचं पृथिव्या अभिश्रावाय प्रथमं सुमेधाः ।
पातामवद्याद्दुरितादभीके पिता माता च रक्षतामवोभिः ॥ १० ॥
इदं द्यावापृथिवी सत्यमस्तु पितर्मातर्यदिहोपब्रुवे वाम् ।
भूतं देवानामवमे अवोभिर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ११ ॥

[१८६] षडशीत्युत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—अगस्त्यः ॥ देवता—विश्वे देवाः ॥ छन्दः—१, ८, ९ त्रिष्टुप्; २, ४ निचृत्त्रिष्टुप्; ११ भुरिक्त्रिष्टुप्; ३, ५, ७ भुरिक्पङ्क्तिः; ६ पङ्क्तिः; १० स्वराट्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१, २, ४, ८, ९, ११ धैवतः; ३, ५-७, १० पञ्चमः ॥

अथ चतुर्थो वर्गः ॥ ४ ॥

आ न इळाभिर्विदथे सुशस्ति विश्वानरः सविता देव एतु ।
अपि यथा युवानो मत्सथा नो विश्वं जगदभिपित्वे मनीषा ॥ १ ॥
आ नो विश्व आस्क्रा गमन्तु देवा मित्रो अर्यमा वरुणः सजोषाः ।
भुवन्यथा नो विश्वे वृधासः करन्त्सुषाहा विथुरं न शवः ॥ २ ॥
प्रेष्ठं वो अतिथिं गृणीषेऽग्निं शस्तिभिस्तुर्वणिः सजोषाः ।
असद्यथा नो वरुणः सुकीर्तिरिषश्च पर्षदरिगूर्तः सूरिः ॥ ३ ॥
उप व एषे नमसा जिगीषोषासानक्ता सुदुघेव धेनुः ।
समाने अहन्विमिमानो अर्कं विषुरूपे पयसि सस्मिन्नूधन् ॥ ४ ॥
उत नोऽहिर्बुध्न्यो३ मयस्कः शिशुं न पिप्युषीव वेति सिन्धुः ।
येन नपातमपां जुनाम मनोजुवो वृषणो यं वहन्ति ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमो वर्गः ॥ ५ ॥

उत न ईं त्वष्टा गन्त्वच्छा स्मत्सूरिभिरभिपित्वे सजोषाः ।
आ वृत्रहेन्द्रश्चर्षणिप्रास्तुविष्टमो नरां न इह गम्याः ॥ ६ ॥
उत न ईं मतयोऽश्वयोगाः शिशुं न गावस्तरुणं रिहन्ति ।
तमीं गिरो जनयो न पत्नीः सुरभिष्टमं नरां नसन्त ॥ ७ ॥
उत न ईं मरुतो वृद्धसेनाः स्मद्रोदसी समनसः सदन्तु ।
पृषदश्वासोऽवनयो न रथा रिशादसो मित्रयुजो न देवाः ॥ ८ ॥

प्र नु यदेषां महिना चिकित्रे प्र युञ्जते प्रयुजस्ते सुवृक्ति ।
अध यदेषां सुदिने न शरुर्विश्वमेरिणं प्रुषायन्त सेनाः ॥ ९ ॥
प्रो अश्विनाववसे कृणुध्वं प्र पूषणं स्वतवसो हि सन्ति ।
अद्वेषो विष्णुर्वात ऋभुक्षा अच्छा सुम्नाय ववृतीय देवान् ॥ १० ॥
इयं सा वो अस्मे दीधितिर्यजत्रा अपिप्राणी च सदनी च भूयाः ।
नि या देवेषु यतते वसूयुर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ११ ॥

[१८७] सप्ताशीत्युत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—अगस्त्यः ॥ देवता—ओषधयः ॥ छन्दः—१ उष्णिक्; २, ८ निचृद्गायत्री; ३, ५ निचृदनुष्टुप्; ४ विराड्गायत्री; ६, ७ भुरिगुष्णिक्; ९, १० गायत्री; ११ स्वराडनुष्टुप् ॥ स्वरः—१, ६, ७ ऋषभः; २, ४, ८-१० षड्जः; ३, ५, ११ गान्धारः ॥

अथ षष्ठो वर्गः ॥ ६ ॥

पितुं नु स्तोषं महो धर्माणं तविषीम् ।
यस्य त्रितो व्योजसा वृत्रं विपर्वमर्दयत् ॥ १ ॥
स्वादो पितो मधो पितो वयं त्वा ववृमहे । अस्माकमविता भव ॥ २ ॥
उप नः पितवा चर शिवः शिवाभिरूतिभिः ।
मयोभुरद्विषेण्यः सखा सुशेवो अद्वयाः ॥ ३ ॥
तव त्ये पितो रसा रजांस्यनु विष्ठिताः । दिवि वाताइव श्रिताः ॥ ४ ॥
तव त्ये पितो ददतस्तव स्वादिष्ठ ते पितो ।
प्र स्वाद्मानो रसानां तुविग्रीवाइवेरते ॥ ५ ॥

अथ सप्तमो वर्गः ॥ ७ ॥

त्वे पितो महानां देवानां मनो हितम् ।
अकारि चारु केतुना तवाहिमवसावधीत् ॥ ६ ॥
यददो पितो अजगन्विवस्व पर्वतानाम् ।
अत्रा चिन्नो मधो पितोऽरं भक्षाय गम्याः ॥ ७ ॥
यदपामोषधीनां परिंशमारिशामहे । वातापे पीव इद्भव ॥ ८ ॥
यत्ते सोम गवाशिरो यवाशिरो भजामहे । वातापे पीव इद्भव ॥ ९ ॥

करम्भ ओषधे भव पीवो वृक्क उदारथिः । वातापे पीव इद्भव ॥ १० ॥
तं त्वा वयं पितो वचोभिर्गावो न हव्या सुषूदिम ।
देवेभ्यस्त्वा सधमादमस्मभ्यं त्वा सधमादम् ॥ ११ ॥

[१८८] अष्टाशीत्युत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—अगस्त्यः ॥ देवता—आप्रियः ॥ छन्दः—१, ३, ५-७, १० निचृद्गायत्री; २, ४, ८, ९, ११ गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

अथ अष्टमो वर्गः ॥ ८ ॥

समिद्धो अद्य राजसि देवो देवैः सहस्रजित् । दूतो हव्या कविर्वह ॥ १ ॥
तनूनपादृतं यते मध्वा यज्ञः समज्यते । दधत्सहस्रिणीरिषः ॥ २ ॥
आजुह्वानो न ईड्यो देवाँ आ वक्षि यज्ञियान् । अग्ने सहस्रसा असि ॥ ३ ॥
प्राचीनं बर्हिरोजसा सहस्रवीरमस्तृणन् । यत्रादित्या विराजथ ॥ ४ ॥
विराट् सम्राड्विभ्वीः प्रभ्वीर्बह्वीश्च भूयसीश्च याः । दुरो घृतान्यक्षरन् ॥ ५ ॥

अथ नवमो वर्गः ॥ ९ ॥

सुरुक्मे हि सुपेशसाधि श्रिया विराजतः । उषासावेह सीदताम् ॥ ६ ॥
प्रथमा हि सुवाचसा होतारा दैव्या कवी । यज्ञं नो यक्षतामिमम् ॥ ७ ॥
भारतीळे सरस्वति या वः सर्वा उपब्रुवे । ता नश्चोदयत श्रिये ॥ ८ ॥
त्वष्टा रूपाणि हि प्रभुः पशून्विश्वान्त्समानजे । तेषां नः स्फातिमा यज ॥ ९ ॥
उप त्मन्या वनस्पते पाथो देवेभ्यः सृज । अग्निर्हव्यानि सिष्वदत् ॥ १० ॥
पुरोगा अग्निर्देवानां गायत्रेण समज्यते । स्वाहाकृतीषु रोचते ॥ ११ ॥

[१८९] एकोननवत्युत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—अगस्त्यः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१, ४, ८ निचृत्त्रिष्टुप्; २ भुरिक्पङ्क्तिः; ३, ५, ६ स्वराट्पङ्क्तिः; ७ पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१, ४, ८ धैवतः; २, ३, ५-७ पञ्चमः ॥

अथ दशमो वर्गः ॥ १० ॥

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्य१स्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमउक्तिं विधेम ॥ १ ॥
अग्ने त्वं पारया नव्यो अस्मान्त्स्वस्तिभिरति दुर्गाणि विश्वा ।
पूश्च पृथ्वी बहुला न उर्वी भवा तोकाय तनयाय शं योः ॥ २ ॥

अग्ने त्वमस्मद्युयोध्यमीवा अनग्नित्रा अभ्यमन्त कृष्टीः ।
पुनरस्मभ्यं सुविताय देव क्षां विश्वेभिरमृतेभिर्यजत्र ॥ ३ ॥
पाहि नो अग्ने पायुभिरजस्रैरुत प्रिये सदन आ शुशुक्वान् ।
मा ते भयं जरितारं यविष्ठ नूनं विदन्मापरं सहस्वः ॥ ४ ॥
मा नो अग्नेऽव सृजो अघायाविष्यवे रिपवे दुच्छुनायै ।
मा दत्वते दशते मादते नो मा रीषते सहसावन्परा दाः ॥ ५ ॥

अथ एकादशो वर्गः ॥ ११ ॥

वि घ त्वावाँ ऋतजात यंसद् गृणानो अग्ने तन्वे३ वरूथम् ।
विश्वाद्रिरिक्षोरुत वा निनित्सोरभिह्रुतामसि हि देव विष्पट् ॥ ६ ॥
त्वं ताँ अग्न उभयान्वि विद्वान्वेषि प्रपित्वे मनुषो यजत्र ।
अभिपित्वे मनवे शास्यो भूर्मर्मृजेन्य उशिग्भिर्नाक्रः ॥ ७ ॥
अवोचाम निवचनान्यस्मिन्मानस्य सूनुः सहसाने अग्नौ ।
वयं सहस्रमृषिभिः सनेम विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ८ ॥

[१९०] नवत्युत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—अगस्त्यः ॥ देवता—बृहस्पतिः ॥ छन्दः—१, २, ३ निचृत्त्रिष्टुप्; ४, ८ त्रिष्टुप्; ५-७ स्वराट्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१-४, ८ धैवतः; ५-७ पञ्चमः ॥

अथ द्वादशो वर्गः ॥ १२ ॥

अनर्वाणं वृषभं मन्द्रजिह्वं बृहस्पतिं वर्धया नव्यमर्कैः ।
गाथान्यः सुरुचो यस्य देवा आशृण्वन्ति नवमानस्य मर्ताः ॥ १ ॥
तमृत्विया उप वाचः सचन्ते सर्गो न यो देवयतामसर्जि ।
बृहस्पतिः स ह्यञ्जो वरांसि विभ्वाभवत्समृते मातरिश्वा ॥ २ ॥
उपस्तुतिं नमस उद्यतिं च श्लोकं यंसत्सवितेव प्र बाहू ।
अस्य क्रत्वाहन्यो३ यो अस्ति मृगो न भीमो अरक्षसस्तुविष्मान् ॥ ३ ॥
अस्य श्लोको दिवीयते पृथिव्यामत्यो न यंसद्यक्षभृद्विचेताः ।
मृगाणां न हेतयो यन्ति चेमा बृहस्पतेरहिमायाँ अभि द्यून् ॥ ४ ॥
ये त्वा देवोस्रिकं मन्यमानाः पापा भद्रमुपजीवन्ति पज्राः ।
न दूढ्ये३ अनु ददासि वामं बृहस्पते चयस इत्पियारुम् ॥ ५ ॥

अथ त्रयोदशो वर्गः ॥ १३ ॥

सुप्रैतुः सूयवसो न पन्था दुर्नियन्तुः परिप्रीतो न मित्रः ।
अनर्वाणो अभि ये चक्षते नोऽपीवृता अपोर्णुवन्तो अस्थुः ॥ ६ ॥
सं यं स्तुभोऽवनयो न यन्ति समुद्रं न स्रवतो रोधचक्राः ।
स विद्वाँ उभयं चष्टे अन्तर्बृहस्पतिस्तर आपश्च गृध्रः ॥ ७ ॥
एवा महस्तुविजातस्तुविष्मान्बृहस्पतिर्वृषभो धायि देवः ।
स नः स्तुतो वीरवद्धातु गोमद्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ८ ॥

[१९१] एकनवत्युत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः—अगस्त्यः ॥ देवता—अबोषधिसूर्याः ॥ छन्दः—१ उष्णिक्; २ भुरिगुष्णिक्; ३, ७ स्वराडुष्णिक्; ४, ९, १४ विराडनुष्टुप्; ५, ८, १५ निचृदनुष्टुप्; ६ अनुष्टुप्; १०, ११ निचृद्ब्राह्म्यनुष्टुप्; १२ विराड्ब्राह्म्यनुष्टुप्; १३ विराडुष्णिक्; १६ भुरिगनुष्टुप् ॥ स्वरः—१-३, ७, १३ ऋषभः; ४-६, ८-१२, १४-१६ गान्धारः ॥

अथ चतुर्दशो वर्गः ॥ १४ ॥

कङ्कतो न कङ्कतोऽथो सतीनकङ्कतः ।
द्वाविति प्लुषी इति न्य१दृष्टा अलिप्सत ॥ १ ॥
अदृष्टान्हन्त्यायत्यथो हन्ति परायती ।
अथो अवघ्नती हन्त्यथो पिनष्टि पिंषती ॥ २ ॥
शरासः कुशरासो दर्भासः सैर्या उत ।
मौञ्जा अदृष्टा वैरिणाः सर्वे साकं न्यलिप्सत ॥ ३ ॥
नि गावो गोष्ठे असदन्नि मृगासो अविक्षत ।
नि केतवो जनानां न्य१दृष्टा अलिप्सत ॥ ४ ॥
एत उ त्ये प्रत्यदृश्रन्प्रदोषं तस्कराइव ।
अदृष्टा विश्वदृष्टाः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥ ५ ॥

अथ पञ्चदशो वर्गः ॥ १५ ॥

द्यौर्वः पिता पृथिवी माता सोमो भ्रातादितिः स्वसा ।
अदृष्टा विश्वदृष्टास्तिष्ठतेलयता सु कम् ॥ ६ ॥

ये अंस्या ये अङ्ग्याः सूचीका ये प्रकङ्कताः ।
अदृष्टाः किं चनेह वः सर्वे साकं नि जस्यत ॥७॥
उत्पुरस्तात्सूर्य एति विश्वदृष्टो अदृष्टहा ।
अदृष्टान्त्सर्वाञ्जम्भयन्त्सर्वाश्च यातुधान्यः ॥८॥
उदपप्तदसौ सूर्यः पुरु विश्वानि जूर्वन् ।
आदित्यः पर्वतेभ्यो विश्वदृष्टो अदृष्टहा ॥९॥
सूर्ये विषमा सजामि दृतिं सुरावतो गृहे ।
सो चिन्नु न मराति नो वयं मरामारे अस्य
योजनं हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ॥१०॥

अथ षोडशो वर्गः ॥ १६ ॥

इयत्तिका शकुन्तिका सका जघास ते विषम् ।
सो चिन्नु न मराति नो वयं मरामारे अस्य
योजनं हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ॥११॥
त्रिः सप्त विष्पुलिङ्गका विषस्य पुष्यमक्षन् ।
ताश्चिन्नु न मरन्ति नो वयं मरामारे अस्य
योजनं हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ॥१२॥
नवानां नवतीनां विषस्य रोपुषीणाम् ।
सर्वासामग्रभं नामारे अस्य योजनं
हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ॥१३॥
त्रिः सप्त मयूर्यः सप्त स्वसारो अग्रुवः ।
तास्ते विषं वि जभ्रिर उदकं कुम्भिनीरिव ॥१४॥
इयत्तकः कुषुम्भकस्तकं भिनद्म्यश्मना ।
ततो विषं प्र वावृते पराचीरनु संवतः ॥१५॥
कुषुम्भकस्तदब्रवीद् गिरेः प्रवर्तमानकः ।
वृश्चिकस्यारसं विषमरसं वृश्चिक ते विषम् ॥१६॥

इति प्रथमं मण्डलम् ॥

अथ द्वितीयं मण्डलम्

प्रथमोऽनुवाकः [१] प्रथमं सूक्तम्

ऋषिः—आङ्गिरसः शौनहोत्रो भार्गवो गृत्समदः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१ पङ्क्तिः; २, १५ विराड्जगती; ३, ५, ८, १० निचृत्त्रिष्टुप्; ४, ६, ११, १२, १४ भुरिक् त्रिष्टुप्; ७ विराट्त्रिष्टुप्; ९ भुरिक्पङ्क्तिः; १३ स्वराट्पङ्क्तिः; १६ निचृज्जगती ॥
स्वरः—१, ९, १३ पञ्चमः; २, १५, १६ निषादः;
३-८, १०-१२, १४, १६ धैवतः ॥

अथ सप्तदशो वर्गः ॥ १७ ॥

त्वमग्ने द्युभिस्त्वमाशुशुक्षणिस्त्वमद्भ्यस्त्वमश्मनस्परि ।
त्वं वनेभ्यस्त्वमोषधीभ्यस्त्वं नृणां नृपते जायसे शुचिः ॥ १ ॥
तवाग्ने होत्रं तव पोत्रमृत्वियं तव नेष्ट्रं त्वमग्निदृतायतः ।
तव प्रशास्त्रं त्वमध्वरीयसि ब्रह्मा चासि गृहपतिश्च नो दमे ॥ २ ॥
त्वमग्न इन्द्रो वृषभः सतामसि त्वं विष्णुरुरुगायो नमस्यः ।
त्वं ब्रह्मा रयिविद् ब्रह्मणस्पते त्वं विधर्तः सचसे पुरन्ध्या ॥ ३ ॥
त्वमग्ने राजा वरुणो धृतव्रतस्त्वं मित्रो भवसि दस्म ईड्यः ।
त्वमर्यमा सत्पतिर्यस्य संभुजं त्वमंशो विदथे देव भाजयुः ॥ ४ ॥
त्वमग्ने त्वष्टा विधते सुवीर्यं तव ग्नावो मित्रमहः सजात्यम् ।
त्वमाशुहेमा ररिषे स्वश्व्यं त्वं नरां शर्धो असि पुरूवसुः ॥ ५ ॥

अथ अष्टादशो वर्गः ॥ १८ ॥

त्वमग्ने रुद्रो असुरो महो दिवस्त्वं शर्धो मारुतं पृक्ष ईशिषे ।
त्वं वातैररुणैर्यासि शंगयस्त्वं पूषा विधतः पासि नु त्मना ॥ ६ ॥
त्वमग्ने द्रविणोदा अरंकृते त्वं देवः सविता रत्नधा असि ।
त्वं भगो नृपते वस्व ईशिषे त्वं पायुर्दमे यस्तेऽविधत् ॥ ७ ॥
त्वामग्ने दम आ विश्पतिं विशस्त्वां राजानं सुविदत्रमृञ्जते ।
त्वं विश्वानि स्वनीक पत्यसे त्वं सहस्राणि शता दश प्रति ॥ ८ ॥

त्वामग्ने पितरमिष्टिभिर्नरस्त्वां भ्रात्राय शम्या तनूरुचम्।
त्वं पुत्रो भवसि यस्तेऽविधत्त्वं सखा सुशेवः पास्याधृषः॥ ९॥
त्वमग्न ऋभुराके नमस्य१स्त्वं वाजस्य क्षुमतो राय ईशिषे।
त्वं वि भास्यनु दक्षि दावने त्वं विशिक्षुरसि यज्ञमातनिः॥ १०॥

अथ एकोनविंशो वर्गः॥ १९॥

त्वमग्ने अदितिर्देव दाशुषे त्वं होत्रा भारती वर्धसे गिरा।
त्वमिळा शतहिमासि दक्षसे त्वं वृत्रहा वसुपते सरस्वती॥ ११॥
त्वमग्ने सुभृत उत्तमं वयस्तव स्पार्हे वर्ण आ संदृशि श्रियः।
त्वं वाजः प्रतरणो बृहन्नसि त्वं रयिर्बहुलो विश्वतस्पृथुः॥ १२॥
त्वामग्न आदित्यास आस्यं१ त्वां जिह्वां शुचयश्चक्रिरे कवे।
त्वां रातिषाचो अध्वरेषु सश्चिरे त्वे देवा हविरदन्त्याहुतम्॥ १३॥
त्वे अग्ने विश्वे अमृतासो अद्रुह आसा देवा हविरदन्त्याहुतम्।
त्वया मर्तासः स्वदन्त आसुतिं त्वं गर्भो वीरुधां जज्ञिषे शुचिः॥ १४॥
त्वं तान्त्सं च प्रति चासि मज्मनाग्ने सुजात प्र च देव रिच्यसे।
पृक्षो यदत्र महिना वि ते भुवदनु द्यावापृथिवी रोदसी उभे॥ १५॥
ये स्तोतृभ्यो गोअग्रामश्वपेशसमग्ने रातिमुपसृजन्ति सूरयः।
अस्माञ्च तांश्च प्र हि नेषि वस्य आ बृहद्वदेम विदथे सुवीराः॥ १६॥

[२] द्वितीयं सूक्तम्

ऋषिः—गृत्समदः शौनकः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—१, २, ७, १२ विराड्जगती; ३, ८, १०, ११ भुरिक्त्रिष्टुप्; ४ जगती; ५, ६, ९, १३ निचृज्जगती॥ स्वरः—१, २, ४-७, ९, १२, १३ निषादः; ३, ८, १०, ११ धैवतः॥

अथ विंशो वर्गः॥ २०॥

यज्ञेन वर्धत जातवेदसमग्निं यजध्वं हविषा तना गिरा।
समिधानं सुप्रयसं स्वर्णरं द्युक्षं होतारं वृजनेषु धूर्षदम्॥ १॥
अभि त्वा नक्तीरुषसो ववाशिरेऽग्ने वत्सं न स्वसरेषु धेनवः।
दिवइवेदरतिर्मानुषा युगा क्षपो भासि पुरुवार संयतः॥ २॥

तं देवा बुध्ने रजसः सुदंससं दिवस्पृथिव्योररतिं न्येरिरे।
रथमिव वेद्यं शुक्रशोचिषमग्निं मित्रं न क्षितिषु प्रशंस्यम्॥ ३॥
तमुक्षमाणं रजसि स्व आ दमे चन्द्रमिव सुरुचं ह्वार आ दधुः।
पृश्न्याः पतरं चितयन्तमक्षभिः पाथो न पायुं जनसी उभे अनु॥ ४॥
स होता विश्वं परि भूत्वध्वरं तमु हव्यैर्मनुष ऋञ्जते गिरा।
हिरिशिप्रो वृधसानासु जर्भुरद् द्यौर्न स्तृभिश्चितयद्रोदसी अनु॥ ५॥

अथ एकविंशो वर्गः॥ २१॥

स नो रेवत्समिधानः स्वस्तये संदस्वान्रयिमस्मासु दीदिहि।
आ नः कृणुष्व सुविताय रोदसी अग्ने हव्या मनुषो देव वीतये॥ ६॥
दा नो अग्ने बृहतो दाः सहस्रिणो दुरो न वाजं श्रुत्या अपा वृधि।
प्राची द्यावापृथिवी ब्रह्मणा कृधि स्व१र्ण शुक्रमुषसो वि दिद्युतः॥ ७॥
स इधान उषसो राम्या अनु स्व१र्ण दीदेदरुषेण भानुना।
होत्राभिरग्निर्मनुषः स्वध्वरो राजा विशामतिथिश्चारुरायवे॥ ८॥
एवा नो अग्ने अमृतेषु पूर्व्य धीष्पीपाय बृहद्दिवेषु मानुषा।
दुहाना धेनुर्वृजनेषु कारवे त्मना शतिनं पुरुरूपमिषणि॥ ९॥
वयमग्ने अर्वता वा सुवीर्यं ब्रह्मणा वा चितयेमा जनाँ अति।
अस्माकं द्युम्नमधि पञ्च कृष्टिषूच्चा स्व१र्ण शुशुचीत दुष्टरम्॥ १०॥
स नो बोधि सहस्य प्रशंस्यो यस्मिन्त्सुजाता इषयन्त सूरयः।
यमग्ने यज्ञमुपयन्ति वाजिनो नित्ये तोके दीदिवांसं स्वे दमे॥ ११॥
उभयासो जातवेदः स्याम ते स्तोतारो अग्ने सूरयश्च शर्मणि।
वस्वो रायः पुरुश्चन्द्रस्य भूयसः प्रजावतः स्वपत्यस्य शग्धि नः॥ १२॥
ये स्तोतृभ्यो गोअग्रामश्वपेशसमग्ने रातिमुपसृजन्ति सूरयः।
अस्माञ्च तांश्च प्र हि नेषि वस्य आ बृहद्वदेम विदथे सुवीराः॥ १३॥

[३] तृतीयं सूक्तम्

ऋषिः—गृत्समदः शौनकः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१, २ विराट्त्रिष्टुप्; ३, ५, ६ भुरिक्त्रिष्टुप्; ४, ९, ११ निचृत्त्रिष्टुप्; ७ जगती; ८, १० त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१-६, ८-११ धैवतः; ७ निषादः ॥

अथ द्वाविंशो वर्गः ॥ २२ ॥

समिद्धो अग्निर्निहितः पृथिव्यां प्रत्यङ् विश्वानि भुवनान्यस्थात्।
होता पावकः प्रदिवः सुमेधा देवो देवान्यजत्वग्निरर्हन् ॥ १ ॥
नराशंसः प्रति धामान्यञ्जन्तिस्रो दिवः प्रति मह्ना स्वर्चिः।
घृतप्रुषा मनसा हव्यमुन्दन्मूर्धन्यज्ञस्य समनक्तु देवान् ॥ २ ॥
ईळितो अग्ने मनसा नो अर्हन्देवान्यक्षि मानुषात्पूर्वो अद्य।
स आ वह मरुतां शर्धो अच्युतमिन्द्रं नरो बर्हिषदं यजध्वम् ॥ ३ ॥
देव बर्हिर्वर्धमानं सुवीरं स्तीर्णं राये सुभरं वेद्यस्याम्।
घृतेनाक्तं वसवः सीदतेदं विश्वे देवा आदित्या यज्ञियासः ॥ ४ ॥
वि श्रयन्तामुर्विया हूयमाना द्वारो देवीः सुप्रायणा नमोभिः।
व्यचस्वतीर्वि प्रथन्तामजुर्या वर्णं पुनाना यशसं सुवीरम् ॥ ५ ॥

अथ त्रयोविंशो वर्गः ॥ २३ ॥

साध्वपांसि सनता न उक्षिते उषासानक्ता वय्येव रण्विते।
तन्तुं ततं संवयन्ती समीची यज्ञस्य पेशः सुदुघे पयस्वती ॥ ६ ॥
दैव्या होतारा प्रथमा विदुष्टर ऋजु यक्षतः समृचा वपुष्टरा।
देवान्यजन्तावृतुथा समञ्जतो नाभा पृथिव्या अधि सानुषु त्रिषु ॥ ७ ॥
सरस्वती साधयन्ती धियं न इळा देवी भारती विश्वतूर्तिः।
तिस्रो देवीः स्वधया बर्हिरेदमच्छिद्रं पान्तु शरणं निषद्य ॥ ८ ॥
पिशङ्गरूपः सुभरो वयोधाः श्रुष्टी वीरो जायते देवकामः।
प्रजां त्वष्टा वि ष्यतु नाभिमस्मे अथा देवानामप्येतु पाथः ॥ ९ ॥
वनस्पतिरवसृजन्नुप स्थादग्निर्हविः सूदयाति प्र धीभिः।
त्रिधा समक्तं नयतु प्रजानन्देवेभ्यो दैव्यः शमितोप हव्यम् ॥ १० ॥

घृतं मिमिक्षे घृतमस्य योनिर्घृते श्रितो घृतम्वस्य धाम।
अनुष्वधमा वह मादयस्व स्वाहाकृतं वृषभ वक्षि हव्यम् ॥ ११ ॥

[४] चतुर्थं सूक्तम्

ऋषिः—सोमाहुतिर्भार्गवः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१, ८ स्वराट्पङ्क्तिः; २, ३, ५-७ आर्षीपङ्क्तिः; ३ ब्राह्म्युष्णिक्; ९ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१-३, ५-८ पञ्चमः; ४ ऋषभः; ९ धैवतः ॥

अथ चतुर्विंशो वर्गः ॥ २४ ॥

हुवे वः सुद्योत्मानं सुवृक्तिं विशामग्निमतिथिं सुप्रयसम्।
मित्रइव यो दिधिषाय्यो भूद्देव आदेवे जने जातवेदाः ॥ १ ॥
इमं विधन्तो अपां सधस्थे द्वितादधुर्भृगवो विक्ष्वा३योः।
एष विश्वान्यभ्यस्तु भूमा देवानामग्निररतिर्जीराश्वः ॥ २ ॥
अग्निं देवासो मानुषीषु विक्षु प्रियं धुः क्षेष्यन्तो न मित्रम्।
स दीदयदुशतीरूर्म्या आ दक्षाय्यो यो दास्वते दम आ ॥ ३ ॥
अस्य रण्वा स्वस्येव पुष्टिः संदृष्टिरस्य हियानस्य दक्षोः।
वि यो भरिभ्रदोषधीषु जिह्वामत्यो न रथ्यो दोधवीति वारान् ॥ ४ ॥
आ यन्मे अभ्वं वनदः पनन्तोशिग्भ्यो नामिमीत वर्णम्।
स चित्रेण चिकिते रंसु भासा जुजुर्वाँ यो मुहुरा युवा भूत् ॥ ५ ॥

अथ पञ्चविंशो वर्गः ॥ २५ ॥

आ यो वना तातृषाणो न भाति वार्ण पथा रथ्येव स्वानीत्।
कृष्णाध्वा तपू रण्वश्चिकेत द्यौरिव स्मयमानो नभोभिः ॥ ६ ॥
स यो व्यस्थादभि दक्षदुर्वीं पशुर्नैति स्वयुरगोपाः।
अग्निः शोचिष्माँ अतसान्युष्णन्कृष्णव्यथिरस्वदयन्न भूम ॥ ७ ॥
नू ते पूर्वस्यावसो अधीतौ तृतीये विदथे मन्म शंसि।
अस्मे अग्ने संयद्वीरं बृहन्तं क्षुमन्तं वाजं स्वपत्यं रयिं दाः ॥ ८ ॥
त्वया यथा गृत्समदासो अग्ने गुहा वन्वन्त उपराँ अभि ष्युः।
सुवीरासो अभिमातिषाहः स्मत्सूरिभ्यो गृणते तद्वयो धाः ॥ ९ ॥

[५] पञ्चमं सूक्तम्

ऋषिः—सोमाहुतिर्भार्गवः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—१, ३, ६ निचृदनुष्टुप्; २, ४, ५ अनुष्टुप्; ८ विराडनुष्टुप्; ७ भुरिगुष्णिक्॥ स्वरः—१-६, ८ गान्धारः; ७ ऋषभः॥

अथ षड्विंशो वर्गः॥ २६॥

होताजनिष्ट चेतनः पिता पितृभ्य ऊतये।
प्रयक्षञ्जेन्यं वसु शकेम वाजिनो यमम्॥ १॥
आ यस्मिन्त्सप्त रश्मयस्तता यज्ञस्य नेतरि।
मनुष्वद्दैव्यमष्टमं पोता विश्वं तदिन्वति॥ २॥
दधन्वे वा यदीमनु वोचद् ब्रह्माणि वेरु तत्।
परि विश्वानि काव्या नेमिश्चक्रमिवाभवत्॥ ३॥
साकं हि शुचिना शुचिः प्रशास्ता क्रतुनाजनि।
विद्वाँ अस्य व्रता ध्रुवा वयाइवानु रोहते॥ ४॥
ता अस्य वर्णमायुवो नेष्टुः सचन्त धेनवः।
कुवित्तिसृभ्य आ वरं स्वसारो या इदं ययुः॥ ५॥
यदी मातुरुप स्वसा घृतं भरन्त्यस्थित।
तासामध्वर्युरागतौ यवो वृष्टीव मोदते॥ ६॥
स्वः स्वाय धायसे कृणुतामृत्विगृत्विजम्।
स्तोमं यज्ञं चादरं वनेमा ररिमा वयम्॥ ७॥
यथा विद्वाँ अरं करद्विश्वेभ्यो यजतेभ्यः।
अयमग्ने त्वे अपि यं यज्ञं चकृमा वयम्॥ ८॥

[६] षष्ठं सूक्तम्

ऋषिः—सोमाहुतिर्भार्गवः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—१, ३, ५, ८ गायत्री; २, ४, ६ निचृद्गायत्री; ७ विराड्गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

अथ सप्तविंशो वर्गः॥ २७॥

इमां मे अग्ने समिधमिमामुपसदं वनेः। इमा उ षु श्रुधी गिरः॥ १॥
अया ते अग्ने विधेमोर्जो नपादश्वमिष्टे। एना सूक्तेन सुजात॥ २॥
तं त्वा गीर्भिर्गिर्वणसं द्रविणस्युं द्रविणोदः। सपर्येम सपर्यवः॥ ३॥

स बोधि सूरिर्मघवा वसुपते वसुदावन्। युयोध्य१स्मद् द्वेषांसि॥ ४॥
स नो वृष्टिं दिवस्परि स नो वाजमनर्वाणम्। स नः सहस्रिणीरिषः॥ ५॥
ईळानायावस्यवे यविष्ठ दूत नो गिरा। यजिष्ठ होतरा गहि॥ ६॥
अन्तर्ह्यग्न ईयसे विद्वान् जन्मोभया कवे। दूतो जन्येव मित्र्यः॥ ७॥
स विद्वाँ आ च पिप्रयो यक्षि चिकित्व आनुषक्।
आ चास्मिन्त्सत्सि बर्हिषि॥ ८॥

[७] सप्तमं सूक्तम्

ऋषिः—सोमाहुतिर्भार्गवः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—१, २, ३ निचृद्गायत्री; ४ पाद् निचृद्गायत्री; ५ विराट्पिपीलिकामध्यागायत्री; ६ विराड्गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

अथ अष्टाविंशो वर्गः॥ २८॥

श्रेष्ठं यविष्ठ भारताग्ने द्युमन्तमा भर। वसो पुरुस्पृहं रयिम्॥ १॥
मा नो अरातिरीशत देवस्य मर्त्यस्य च। पर्षि तस्या उत द्विषः॥ २॥
विश्वा उत त्वया वयं धारा उदन्याइव। अति गाहेमहि द्विषः॥ ३॥
शुचिः पावक वन्द्योऽग्ने बृहद्वि रोचसे। त्वं घृतेभिराहुतः॥ ४॥
त्वं नो असि भारताग्ने वशाभिरुक्षभिः। अष्टापदीभिराहुतः॥ ५॥
द्र्वन्नः सर्पिरासुतिः प्रत्नो होता वरेण्यः। सहसस्पुत्रो अद्भुतः॥ ६॥

[८] अष्टमं सूक्तम्

ऋषिः—गृत्समदः शौनकः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—१ गायत्री; २ निचृत्पिपीलिकामध्यागायत्री; ३, ५ निचृद्गायत्री; ४ विराड्गायत्री; ६ निचृदनुष्टुप्॥ स्वरः—१-५ षड्जः; ६ गान्धारः॥

अथ एकोनत्रिंशो वर्गः॥ २९॥

वाजयन्निव नू रथान्योगाँ अग्नेरुप स्तुहि। यशस्तमस्य मीळ्हुषः॥ १॥
यः सुनीथो ददाशुषेऽजुर्यो जरयन्नरिम्। चारुप्रतीक आहुतः॥ २॥
य उ श्रिया दमेष्वा दोषोषसि प्रशस्यते। यस्य व्रतं न मीयते॥ ३॥
आ यः स्व१र्ण भानुना चित्रो विभात्यर्चिषा। अञ्जानो अजरैरभि॥ ४॥
अग्निमनु स्वराज्यमग्निमुक्थानि वावृधुः। विश्वा अधि श्रियो दधे॥ ५॥

अग्नेरिन्द्रस्य सोमस्य देवानामूतिभिर्वयम् ।
अरिष्यन्तः सचेमह्यभि ष्याम पृतन्यतः ॥ ६ ॥

॥ इति द्वितीयाष्टके पञ्चमोऽध्यायः ॥

अथ द्वितीयाष्टके षष्ठोऽध्यायः

[९] नवमं सूक्तम्

ऋषिः—गृत्समदः शौनकः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१, ३ त्रिष्टुप्; २ पङ्क्तिः; ४ विराट्त्रिष्टुप्; ५, ६ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१, ३-६ धैवतः; २ पञ्चमः ॥

अथ प्रथमो वर्गः ॥ १ ॥

नि होता होतृषदने विदानस्त्वेषो दीदिवाँ असदत्सुदक्षः ।
अदब्धव्रतप्रमतिर्वसिष्ठः सहस्रंभरः शुचिजिह्वो अग्निः ॥ १ ॥
त्वं दूतस्त्वमु नः परस्पास्त्वं वस्य वृषभ प्रणेता ।
अग्ने तोकस्य नस्तने तनूनामप्रयुच्छन्दीद्यद्बोधि गोपाः ॥ २ ॥
विधेम ते परमे जन्मन्नग्ने विधेम स्तोमैरवरे सधस्थे ।
यस्माद्योनेरुदारिथा यजे तं प्र त्वे हवींषि जुहुरे समिद्धे ॥ ३ ॥
अग्ने यजस्व हविषा यजीयाञ्छ्रुष्टी देष्णमभि गृणीहि राधः ।
त्वं ह्यसि रयिपती रयीणां त्वं शुक्रस्य वचसो मनोता ॥ ४ ॥
उभयं ते न क्षीयते वसव्यं दिवेदिवे जायमानस्य दस्म ।
कृधि क्षुमन्तं जरितारमग्ने कृधि पतिं स्वपत्यस्य रायः ॥ ५ ॥
सैनानीकेन सुविदत्रो अस्मे यष्टा देवाँ आयजिष्ठः स्वस्ति ।
अदब्धो गोपा उत नः परस्पा अग्ने द्युमदुत रेवद्दिदीहि ॥ ६ ॥

[१०] दशमं सूक्तम्

ऋषिः—गृत्समदः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१, २, ६ विराट्त्रिष्टुप्; ३ त्रिष्टुप्; ४ निचृत्त्रिष्टुप्; ५ पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१-४, ६ धैवतः; ५ पञ्चमः ॥

अथ द्वितीयो वर्गः ॥ २ ॥

जोहूत्रो अग्निः प्रथमः पितेवेळस्पदे मनुषा यत्समिद्धः ।
श्रियं वसानो अमृतो विचेता मर्मृजेन्यः श्रवस्यः स वाजी ॥ १ ॥

श्रूया अग्निश्चित्रभानुर्हवं मे विश्वाभिर्गीर्भिरमृतो विचेताः ।
श्यावा रथं वहतो रोहिता वोतारुषाह चक्रे विभृत्रः ॥ २ ॥
उत्तानायामजनयन्त्सुषूतं भुवदग्निः पुरुपेशासु गर्भः ।
शिरिणायां चिदक्तुना महोभिरपरीवृतो वसति प्रचेताः ॥ ३ ॥
जिघर्म्यग्निं हविषा घृतेन प्रतिक्षियन्तं भुवनानि विश्वा ।
पृथुं तिरश्चा वयसा बृहन्तं व्यचिष्ठमन्नै रभसं दृशानम् ॥ ४ ॥
आ विश्वतः प्रत्यञ्चं जिघर्म्यरक्षसा मनसा तज्जुषेत ।
मर्यश्रीः स्पृहयद्वर्णो अग्निर्नाभिमृशे तन्वा३ जर्भुराणः ॥ ५ ॥
ज्ञेया भागं सहसानो वरेण त्वादूतासो मनुवद्वदेम ।
अनूनमग्निं जुह्वा वचस्या मधुपृचं धनसा जोहवीमि ॥ ६ ॥

[११] एकादशं सूक्तम्

ऋषिः—गृत्समदः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१, ८, १०, १३, १९, २० पङ्क्तिः; २, ९ भुरिक्पङ्क्तिः; ३, ४, ६, ११, १२, १४, १८ निचृत्पङ्क्तिः; ५ स्वराड् बृहती; ७ विराट्पङ्क्तिः; १५ बृहती; १६, १७ भुरिग्बृहती; २१ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१-४, ६-१४, १८-२० पञ्चमः; ५, १५-१७ मध्यमः; २१ धैवतः ॥

अथ तृतीयो वर्गः ॥ ३ ॥

श्रुधी हवमिन्द्र मा रिषण्यः स्याम ते दावने वसूनाम् ।
इमा हि त्वामूर्जो वर्धयन्ति वसूयवः सिन्धवो न क्षरन्तः ॥ १ ॥
सृजो महीरिन्द्र या अपिन्वः परिष्ठिता अहिना शूर पूर्वीः ।
अमर्त्यं चिद्दासं मन्यमानमवाभिनदुक्थैर्वावृधानः ॥ २ ॥
उक्थेष्विन्नु शूर येषु चाकन्त्स्तोमेष्विन्द्र रुद्रियेषु च ।
तुभ्येदेता यासु मन्दसानः प्र वायवे सिस्रते न शुभ्राः ॥ ३ ॥
शुभ्रं नु ते शुष्मं वर्धयन्तः शुभ्रं वज्रं बाह्वोर्दधानाः ।
शुभ्रस्त्वमिन्द्र वावृधानो अस्मे दासीर्विशः सूर्येण सह्याः ॥ ४ ॥
गुहा हितं गुह्यं गूळ्हमप्स्वपीवृतं मायिनं क्षियन्तम् ।
उतो अपो द्यां तस्तभ्वांसमहन्नहिं शूर वीर्येण ॥ ५ ॥

अथ चतुर्थो वर्गः ॥ ४ ॥

स्तवा नु त इन्द्र पूर्व्या महान्युत स्तवाम नूतना कृतानि ।
स्तवा वज्रं बाह्वोरुशन्तं स्तवा हरी सूर्यस्य केतू ॥ ६ ॥
हरी नु त इन्द्र वाजयन्ता घृतश्चुतं स्वारमस्वार्ष्टाम् ।
वि समना भूमिरप्रथिष्टारंस्त पर्वतश्चित्सरिष्यन् ॥ ७ ॥
नि पर्वतः साद्यप्रयुच्छन्त्सं मातृभिर्वावशानो अक्रान् ।
दूरे पारे वाणीं वर्धयन्त इन्द्रेषितां धमनिं पप्रथन्नि ॥ ८ ॥
इन्द्रो महां सिन्धुमाशयानं मायाविनं वृत्रमस्फुरन्निः ।
अरेजेतां रोदसी भियाने कनिक्रदतो वृष्णो अस्य वज्रात् ॥ ९ ॥
अरोरवीद् वृष्णो अस्य वज्रोऽमानुषं यन्मानुषो निजूर्वात् ।
नि मायिनो दानवस्य माया अपादयत्पपिवान्त्सुतस्य ॥ १० ॥

अथ पञ्चमो वर्गः ॥ ५ ॥

पिबापिबेदिन्द्र शूर सोमं मन्दन्तु त्वा मन्दिनः सुतासः ।
पृणन्तस्ते कुक्षी वर्धयन्त्वित्था सुतः पौर इन्द्रमाव ॥ ११ ॥
त्वे इन्द्राप्यभूम विप्रा धियं वनेम ऋतया सपन्तः ।
अवस्यवो धीमहि प्रशस्तिं सद्यस्ते रायो दावने स्याम ॥ १२ ॥
स्याम ते त इन्द्र ये त ऊती अवस्यव ऊर्जं वर्धयन्तः ।
शुष्मिन्तमं यं चाकनाम देवास्मे रयिं रासि वीरवन्तम् ॥ १३ ॥
रासि क्षयं रासि मित्रमस्मे रासि शर्ध इन्द्र मारुतं नः ।
सजोषसो ये च मन्दसानाः प्र वायवः पान्त्यग्रणीतिम् ॥ १४ ॥
व्यन्त्विन्नु येषु मन्दसानस्तृपत्सोमं पाहि द्रह्यदिन्द्र ।
अस्मान्त्सु पृत्स्वा तरुत्रावर्धयो द्यां बृहद्भिरर्कैः ॥ १५ ॥

अथ षष्ठो वर्गः ॥ ६ ॥

बृहन्त इन्नु ये ते तरुत्रोक्थेभिर्वा सुम्नमाविवासान् ।
स्तृणानासो बर्हिः पस्त्यावत्त्वोता इदिन्द्र वाजमग्मन् ॥ १६ ॥

उग्रेष्विन्नु शूर मन्दसानस्त्रिकद्रुकेषु पाहि सोममिन्द्र ।
प्रदोधुवच्छ्मश्रुषु प्रीणानो याहि हरिभ्यां सुतस्य पीतिम् ॥ १७ ॥
धिष्वा शवः शूर येन वृत्रमवाभिनद्दानुमौर्णवाभम् ।
अपावृणोर्ज्योतिरार्याय नि सव्यतः सादि दस्युरिन्द्र ॥ १८ ॥
सनेम ये त ऊतिभिस्तरन्तो विश्वाः स्पृध आर्येण दस्यून् ।
अस्मभ्यं तत्त्वाष्ट्रं विश्वरूपमरन्धयः साख्यस्य त्रिताय ॥ १९ ॥
अस्य सुवानस्य मन्दिनस्त्रितस्य न्यर्बुदं वावृधानो अस्तः ।
अवर्तयत्सूर्यो न चक्रं भिनद्वलमिन्द्रो अङ्गिरस्वान् ॥ २० ॥
नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ २१ ॥

द्वितीयोऽनुवाकः [१२] द्वादशं सूक्तम्

ऋषिः—गृत्समदः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१-५, १२-१५ त्रिष्टुप्; ६-८, १०, ११ निचृत्त्रिष्टुप्; ९ भुरिक्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

अथ सप्तमो वर्गः ॥ ७ ॥

यो जात एव प्रथमो मनस्वान्देवो देवान्क्रतुना पर्यभूषत् ।
यस्य शुष्माद्रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः ॥ १ ॥
यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहद्यः पर्वतान्प्रकुपिताँ अरम्णात् ।
यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यो द्यामस्तभ्नात्स जनास इन्द्रः ॥ २ ॥
यो हत्वाहिमरिणात्सप्त सिन्धून्यो गा उदाजदपधा वलस्य ।
यो अश्मनोरन्तरग्निं जजान संवृक्समत्सु स जनास इन्द्रः ॥ ३ ॥
येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि यो दासं वर्णमधरं गुहाकः ।
श्वघ्नीव यो जिगीवाँ लक्षमाददर्यः पुष्टानि स जनास इन्द्रः ॥ ४ ॥
यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोरमुतेमाहुर्नैषो अस्तीत्येनम् ।
सो अर्यः पुष्टीर्विजइवा मिनाति श्रदस्मै धत्त स जनास इन्द्रः ॥ ५ ॥

अथ अष्टमो वर्गः ॥ ८ ॥

यो रध्रस्य चोदिता यः कृशस्य यो ब्रह्मणो नाधमानस्य कीरेः ।
युक्तग्राव्णो योऽविता सुशिप्रः सुतसोमस्य स जनास इन्द्रः ॥ ६ ॥
यस्याश्वासः प्रदिशि यस्य गावो यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रथासः ।
यः सूर्यं य उषसं जजान यो अपां नेता स जनास इन्द्रः ॥ ७ ॥
यं क्रन्दसी संयती विह्वयेते परेऽवर उभया अमित्राः ।
समानं चिद्रथमातस्थिवांसा नाना हवेते स जनास इन्द्रः ॥ ८ ॥
यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो यं युध्यमाना अवसे हवन्ते ।
यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत्स जनास इन्द्रः ॥ ९ ॥
यः शश्वतो मह्येनो दधानानमन्यमानाञ्छर्वा जघान ।
यः शर्धते नानुददाति शृध्यां यो दस्योर्हन्ता स जनास इन्द्रः ॥ १० ॥

अथ नवमो वर्गः ॥ ९ ॥

यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं चत्वारिंश्यां शरद्यन्वविन्दत् ।
ओजायमानं यो अहिं जघान दानुं शयानं स जनास इन्द्रः ॥ ११ ॥
यः सप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्मानवासृजत्सर्तवे सप्त सिन्धून् ।
यो रौहिणमस्फुरद्वज्रबाहुर्द्यामारोहन्तं स जनास इन्द्रः ॥ १२ ॥
द्यावा चिदस्मै पृथिवी नमेते शुष्माच्चिदस्य पर्वता भयन्ते ।
यः सोमपा निचितो वज्रबाहुर्यो वज्रहस्तः स जनास इन्द्रः ॥ १३ ॥
यः सुन्वन्तमवति यः पचन्तं यः शंसन्तं यः शशमानमूती ।
यस्य ब्रह्म वर्धनं यस्य सोमो यस्येदं राधः स जनास इन्द्रः ॥ १४ ॥
यः सुन्वते पचते दुध्र आ चिद्वाजं दर्दर्षि स किलासि सत्यः ।
वयं त इन्द्र विश्वह प्रियासः सुवीरासो विदथमा वदेम ॥ १५ ॥

[१३] त्रयोदशं सूक्तम्

ऋषिः—गृत्समदः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१-३, १०-१२ भुरिक्त्रिष्टुप्; ४ निचृत् जगती; ५, ६ विराड्जगती; ७, ८ निचृत्त्रिष्टुप्; ९, १३ त्रिष्टुप् ॥
स्वरः—१-३, ७-१३ धैवतः; ४-६ निषादः ॥

अथ दशमो वर्गः ॥ १० ॥

ऋतुर्जनित्री तस्या अपस्परि मक्षू जात आविशद्यासु वर्धते ।
तदाहना अभवत्पिप्युषी पयोंऽशोः पीयूषं प्रथमं तदुक्थ्यम् ॥ १ ॥
सध्रीमा यन्ति परि बिभ्रतीः पयो विश्वप्स्न्याय प्र भरन्त भोजनम् ।
समानो अध्वा प्रवतामनुष्यदे यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः ॥ २ ॥
अन्वेको वदति यद्ददाति तद्रूपा मिनन्तदपा एक ईयते ।
विश्वा एकस्य विनुदस्तितिक्षते यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः ॥ ३ ॥
प्रजाभ्यः पुष्टिं विभजन्त आसते रयिमिव पृष्ठं प्रभवन्तमायते ।
असिन्वन्दंष्ट्रैः पितुरत्ति भोजनं यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः ॥ ४ ॥
अधाकृणोः पृथिवीं संदृशे दिवे यो धौतीनामहिहन्नारिणक्पथः ।
तं त्वा स्तोमेभिरुदभिर्न वाजिनं देवं देवा अजनन्त्सास्युक्थ्यः ॥ ५ ॥

अथ एकादशो वर्गः ॥ ११ ॥

यो भोजनं च दयसे च वर्धनमार्द्रादा शुष्कं मधुमद्दुदोहिथ ।
स शेवधिं नि दधिषे विवस्वति विश्वस्यैक ईशिषे सास्युक्थ्यः ॥ ६ ॥
यः पुष्पिणीश्च प्रस्वश्च धर्मणाधि दाने व्य१वनीरधारयः ।
यश्चासमा अजनो दिद्युतो दिव उरुरूर्वाँ अभितः सास्युक्थ्यः ॥ ७ ॥
यो नार्मरं सहवसुं निहन्तवे पृक्षाय च दासवेशाय चावहः ।
ऊर्जयन्त्या अपरिविष्टमास्यमुतैवाद्य पुरुकृत्सास्युक्थ्यः ॥ ८ ॥
शतं वा यस्य दश साकमाद्य एकस्य श्रुष्टौ यद्ध चोदमाविथ ।
अरज्जौ दस्यून्त्समुनब्दभीतये सुप्राव्यो अभवः सास्युक्थ्यः ॥ ९ ॥
विश्वेदनु रोधना अस्य पौंस्यं ददुरस्मै दधिरे कृत्नवे धनम् ।
षळस्तभ्ना विष्टिरः पञ्च संदृशः परि परो अभवः सास्युक्थ्यः ॥ १० ॥

अथ द्वादशो वर्गः ॥ १२ ॥

सुप्रवाचनं तव वीर वीर्यं१ यदेकेन क्रतुना विन्दसे वसु ।
जातूष्ठिरस्य प्र वयः सहस्वतो या चकर्थ सेन्द्र विश्वास्युक्थ्यः ॥ ११ ॥

अरमयः सरपसस्तराय कं तुर्वीतये च वय्याय च स्रुतिम्।
नीचा सन्तमुदनयः परावृजं प्रान्धं श्रोणं श्रवयन्त्सास्युक्थ्यः॥ १२॥
अस्मभ्यं तद्वसो दानाय राधः समर्थयस्व बहु ते वसव्यम्।
इन्द्र यच्चित्रं श्रवस्या अनु द्यून्बृहद्वदेम विदथे सुवीराः॥ १३॥

[१४] चतुर्दशं सूक्तम्

ऋषिः—गृत्समदः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१, ३, ४, ९, १०, १२ त्रिष्टुप्; २, ६, ८ निचृत्त्रिष्टुप्; ५ निचृत्पङ्क्तिः; ७ विराट्त्रिष्टुप्; ११ भुरिक्पङ्क्तिः॥ स्वरः—१-४, ६-१०, १२ धैवतः; ५, ११ पञ्चमः॥

अथ त्रयोदशो वर्गः॥ १३॥

अध्वर्यवो भरतेन्द्राय सोममामत्रेभिः सिञ्चता मद्यमन्धः।
कामी हि वीरः सदमस्य पीतिं जुहोत वृष्णे तदिदेष वष्टि॥ १॥
अध्वर्यवो यो अपो वव्रिवांसं वृत्रं जघानाशन्येव वृक्षम्।
तस्मा एतं भरत तद्वशायँ एष इन्द्रो अर्हति पीतिमस्य॥ २॥
अध्वर्यवो यो दृभीकं जघान यो गा उदाजदप हि वलं वः।
तस्मा एतमन्तरिक्षे न वातमिन्द्रं सोमैरोर्णुत जूर्न वस्त्रैः॥ ३॥
अध्वर्यवो य उरणं जघान नव चख्वांसं नवतिं च बाहून्।
यो अर्बुदमव नीचा बबाधे तमिन्द्रं सोमस्य भृथे हिनोत॥ ४॥
अध्वर्यवो यः स्वश्नं जघान यः शुष्णमशुषं यो व्यंसम्।
यः पिप्रुं नमुचिं यो रुधिक्रां तस्मा इन्द्रायान्धसो जुहोत॥ ५॥
अध्वर्यवो यः शतं शम्बरस्य पुरो बिभेदाश्मनेव पूर्वीः।
यो वर्चिनः शतमिन्द्रः सहस्रमपावपद्भरता सोममस्मै॥ ६॥

अथ चतुर्दशो वर्गः॥ १४॥

अध्वर्यवो यः शतमा सहस्रं भूम्या उपस्थेऽवपज्जघन्वान्।
कुत्सस्यायोरतिथिग्वस्य वीरान् न्यावृणग्भरता सोममस्मै॥ ७॥
अध्वर्यवो यन्नरः कामयाध्वे श्रुष्टी वहन्तो नशथा तदिन्द्रे।
गभस्तिपूतं भरत श्रुतायेन्द्राय सोमं यज्यवो जुहोत॥ ८॥

अध्वर्यवः कर्तना श्रुष्टिमस्मै वने निपूतं वन उन्नयध्वम्।
जुषाणो हस्त्यमभि वावशे व इन्द्राय सोमं मदिरं जुहोत॥ ९॥
अध्वर्यवः पयसोधर्यथा गोः सोमेभिरीं पृणता भोजमिन्द्रम्।
वेदाहमस्य निभृतं म एतद्दित्सन्तं भूयो यजतश्चिकेत॥ १०॥
अध्वर्यवो यो दिव्यस्य वस्वो यः पार्थिवस्य क्षम्यस्य राजा।
तमूर्दरं न पृणता यवेनेन्द्रं सोमेभिस्तदपो वो अस्तु॥ ११॥
अस्मभ्यं तद्वसो दानाय राधः समर्थयस्व बहु ते वसव्यम्।
इन्द्र यच्चित्रं श्रवस्या अनु द्यून्बृहद्वदेम विदथे सुवीराः॥ १२॥

[१५] पञ्चदशं सूक्तम्

ऋषिः—गृत्समदः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१ भुरिक्पङ्क्तिः; २, ४-६, ९, १० त्रिष्टुप्; ३ निचृत्त्रिष्टुप्; ७ स्वराट्पङ्क्तिः; ८ विराट्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—१, ७ पञ्चमः; २-६, ८-१० धैवतः॥

अथ पञ्चदशो वर्गः॥ १५॥

प्र घा न्वस्य महतो महानि सत्या सत्यस्य करणानि वोचम्।
त्रिकद्रुकेष्वपिबत्सुतस्यास्य मदे अहिमिन्द्रो जघान॥ १॥
अवंशे द्यामस्तभायद् बृहन्तमा रोदसी अपृणदन्तरिक्षम्।
स धारयत्पृथिवीं पप्रथच्च सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार॥ २॥
सद्मेव प्राचो वि मिमाय मानैर्वज्रेण खान्यतृणन्नदीनाम्।
वृथासृजत्पथिभिर्दीर्घयाथैः सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार॥ ३॥
स प्रवोळ्हन्परिगत्या दभीतेर्विश्वमधागायुधमिद्धे अग्नौ।
सं गोभिरश्वैरसृजद्रथेभिः सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार॥ ४॥
स ईं महीं धुनिमेतोररम्णात्सो अस्नातॄनपारयत्स्वस्ति।
त उत्स्नाय रयिमभि प्र तस्थुः सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार॥ ५॥

अथ षोडशो वर्गः॥ १६॥

सोदञ्चं सिन्धुमरिणान्महित्वा वज्रेणान उषसः सं पिपेष।
अजवसो जविनीभिर्विवृश्चन्त्सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार॥ ६॥

स विद्वाँ अपगोहं कनीनामाविर्भवन्नुदतिष्ठत्परावृक् ।
प्रति श्रोणः स्थाद् व्य१नगचष्ट सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ ७ ॥
भिनद्वलमङ्गिरोभिर्गृणानो वि पर्वतस्य दृंहितान्यैरत् ।
रिणग्रोधांसि कृत्रिमाण्येषां सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ ८ ॥
स्वप्नेनाभ्युप्या चुमुरिं धुनिं च जघन्थ दस्युं प्र दभीतिमावः ।
रम्भी चिदत्र विविदे हिरण्यं सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ ९ ॥
नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ १० ॥

[१६] षोडशं सूक्तम्

ऋषिः—गृत्समदः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१, ७ जगती; २ भुरिक्त्रिष्टुप्; ३ विराड्जगती; ४-६, ८ निचृज्जगती; ९ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१, ३-८ निषादः; २, ९ धैवतः ॥

अथ सप्तदशो वर्गः ॥ १७ ॥

प्र वः सतां ज्येष्ठतमाय सुष्टुतिमग्नाविव समिधाने हविर्भरे ।
इन्द्रमजुर्यं जरयन्तमुक्षितं सनाद्युवानमवसे हवामहे ॥ १ ॥
यस्मादिन्द्राद् बृहतः किं चनेमृते विश्वान्यस्मिन्त्संभृताधि वीर्या ।
जठरे सोमं तन्वी३ सहो महो हस्ते वज्रं भरति शीर्षणि क्रतुम् ॥ २ ॥
न क्षोणीभ्यां परिभ्वे त इन्द्रियं न समुद्रैः पर्वतैरिन्द्र ते रथः ।
न ते वज्रमन्वश्नोति कश्चन यदाशुभिः पतसि योजना पुरु ॥ ३ ॥
विश्वे ह्यस्मै यजताय धृष्णवे क्रतुं भरन्ति वृषभाय सश्चते ।
वृषा यजस्व हविषा विदुष्टरः पिबेन्द्र सोमं वृषभेण भानुना ॥ ४ ॥
वृष्णः कोशः पवते मध्व ऊर्मिर्वृषभान्नाय वृषभाय पातवे ।
वृषणाध्वर्यू वृषभासो अद्रयो वृषणं सोमं वृषभाय सुष्वति ॥ ५ ॥

अथ अष्टादशो वर्गः ॥ १८ ॥

वृषा ते वज्र उत ते वृषा रथो वृषणा हरी वृषभाण्यायुधा ।
वृष्णो मदस्य वृषभ त्वमीशिष इन्द्र सोमस्य वृषभस्य तृप्णुहि ॥ ६ ॥

प्र ते नावं न समने वचस्युवं ब्रह्मणा यामि सवनेषु दाधृषिः ।
कुविन्नो अस्य वचसो निबोधिषदिन्द्रमुत्सं न वसुनः सिचामहे ॥ ७ ॥
पुरा संबाधादभ्या ववृत्स्व नो धेनुर्न वत्सं यवसस्य पिप्युषी ।
सकृत्सु ते सुमतिभिः शतक्रतो सं पत्नीभिर्न वृषणो नसीमहि ॥ ८ ॥
नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ ९ ॥

[१७] सप्तदशं सूक्तम्

ऋषिः—गृत्समदः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१, ५, ६ विराड्जगती; २, ४ निचृज्जगती; ३, ७ भुरिक्त्रिष्टुप्; ८ निचृत्पङ्क्तिः; ९ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१, २, ४-६ निषादः; ३, ७, ९ धैवतः; ८ पञ्चमः ॥

अथ एकोनविंशो वर्गः ॥ १९ ॥

तदस्मै नव्यमङ्गिरस्वदर्चत शुष्मा यदस्य प्रत्नथोदीरते ।
विश्वा यद् गोत्रा सहसा परीवृता मदे सोमस्य दृंहितान्यैरयत् ॥ १ ॥
स भूतु यो ह प्रथमाय धायस ओजो मिमानो महिमानमातिरत् ।
शूरो यो युत्सु तन्वं परिव्यत शीर्षणि द्यां महिना प्रत्यमुञ्चत ॥ २ ॥
अधाकृणोः प्रथमं वीर्यं महद्यदस्याग्रे ब्रह्मणा शुष्ममैरयः ।
रथेष्ठेन हर्यश्वेन विच्युताः प्र जीरयः सिस्रते सध्र्य१क् पृथक् ॥ ३ ॥
अधा यो विश्वा भुवनाभि मज्मनेशानकृत्प्रवया अभ्यवर्धत ।
आद्रोदसी ज्योतिषा वह्निरातनोत्सीव्यन्तमांसि दुधिता समव्ययत् ॥ ४ ॥
स प्राचीनान् पर्वतान् दृंहदोजसाधराचीनमकृणोदपामपः ।
अधारयत्पृथिवीं विश्वधायसमस्तभ्नान्मायया द्यामवस्रसः ॥ ५ ॥

अथ विंशो वर्गः ॥ २० ॥

सास्मा अरं बाहुभ्यां यं पिताकृणोद्विश्वस्मादा जनुषो वेदसस्परि ।
येना पृथिव्यां नि क्रिविं शयध्यै वज्रेण हत्व्यवृणक्तुविष्वणिः ॥ ६ ॥
अमाजूरिव पित्रोः सचा सती समानादा सदसस्त्वामिये भगम् ।
कृधि प्रकेतमुप मास्या भर दद्धि भागं तन्वो३ येन मामहः ॥ ७ ॥

भोजं त्वामिन्द्र वयं हुवेम ददिष्ट्वमिन्द्रापांसि वाजान्।
अविड्ढीन्द्र चित्रया न ऊती कृधि वृषन्निन्द्र वस्यसो नः॥८॥
नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः॥९॥

[१८] अष्टादशं सूक्तम्

ऋषिः—गृत्समदः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१ पङ्क्तिः; २, ३, ९ त्रिष्टुप्; ४, ८ भुरिक्पङ्क्तिः; ५, ६ स्वराट्पङ्क्तिः; ७ निचृत्पङ्क्तिः॥ स्वरः—१, ४-८ पञ्चमः; २, ३, ९ धैवतः॥

अथ एकविंशो वर्गः॥२१॥

प्राता रथो नवो योजि सस्निश्चतुर्युगस्त्रिकशः सप्तरश्मिः।
दशारित्रो मनुष्यः स्वर्षाः स इष्टिभिर्मतिभी रंह्यो भूत्॥१॥
सास्मा अरं प्रथमं स द्वितीयमुतो तृतीयं मनुषः स होता।
अन्यस्या गर्भमन्य ऊ जनन्त सो अन्येभिः सचते जेन्यो वृषा॥२॥
हरी नु कं रथ इन्द्रस्य योजमायै सूक्तेन वचसा नवेन।
मो षु त्वामत्र बहवो हि विप्रा नि रीरमन्यजमानासो अन्ये॥३॥
आ द्वाभ्यां हरिभ्यामिन्द्र याह्या चतुर्भिरा षड्भिर्हूयमानः।
आष्टाभिर्दशभिः सोमपेयमयं सुतः सुमख मा मृधस्कः॥४॥
आ विंशत्या त्रिंशता याह्यर्वाङा चत्वारिंशता हरिभिर्युजानः।
आ पञ्चाशता सुरथेभिरिन्द्रा षष्ट्या सप्तत्या सोमपेयम्॥५॥

अथ द्वाविंशो वर्गः॥२२॥

आशीत्या नवत्या याह्यर्वाङा शतेन हरिभिरुह्यमानः।
अयं हि ते शुनहोत्रेषु सोम इन्द्र त्वाया परिषिक्तो मदाय॥६॥
मम ब्रह्मेन्द्र याह्यच्छा विश्वा हरी धुरि धिष्वा रथस्य।
पुरुत्रा हि विहव्यो बभूथास्मिञ्छूर सवने मादयस्व॥७॥
न म इन्द्रेण सख्यं वि योषदस्मभ्यमस्य दक्षिणा दुहीत।
उप ज्येष्ठे वरूथे गभस्तौ प्रायेप्राये जिगीवांसः स्याम॥८॥

नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः॥९॥

[१९] एकोनविंशं सूक्तम्

ऋषिः—गृत्समदः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१, २, ६, ८ विराट्त्रिष्टुप्; ३ पङ्क्तिः; ४, ७ भुरिक् पङ्क्तिः; ५ निचृत्पङ्क्तिः; ९ त्रिष्टुप्॥ स्वरः—१, २, ६, ८, ९ धैवतः; ३-५, ७ पञ्चमः॥

अथ त्रयोविंशो वर्गः॥२३॥

अपाय्यस्यान्धसो मदाय मनीषिणः सुवानस्य प्रयसः।
यस्मिन्निन्द्रः प्रदिवि वावृधान ओको दधे ब्रह्मण्यन्तश्च नरः॥१॥
अस्य मन्दानो मध्वो वज्रहस्तोऽहिमिन्द्रो अर्णोवृतं वि वृश्चत्।
प्र यद्वयो न स्वसराण्यच्छा प्रयांसि च नदीनां चक्रमन्त॥२॥
स माहिन इन्द्रो अर्णो अपां प्रैरयदहिहाच्छा समुद्रम्।
अजनयत्सूर्यं विदद्गा अक्तुनाह्नां वयुनानि साधत्॥३॥
सो अप्रतीनि मनवे पुरूणीन्द्रो दाशद्दाशुषे हन्ति वृत्रम्।
सद्यो यो नृभ्यो अतसाय्यो भूत्पस्पृधानेभ्यः सूर्यस्य सातौ॥४॥
स सुन्वत इन्द्रः सूर्यमा देवो रिणङ्मर्त्याय स्तवान्।
आ यद्रयिं गुहदवद्यमस्मै भरदंशं नैतशो दशस्यन्॥५॥

अथ चतुर्विंशो वर्गः॥२४॥

स रन्धयत्सदिवः सारथये शुष्णमशुषं कुयवं कुत्साय।
दिवोदासाय नवतिं च नवेन्द्रः पुरो व्यैरच्छम्बरस्य॥६॥
एवा त इन्द्रोचथमहेम श्रवस्या न त्मना वाजयन्तः।
अश्याम तत्साप्तमाशुषाणा ननमो वधरदेवस्य पीयोः॥७॥
एवा ते गृत्समदाः शूर मन्मावस्यवो न वयुनानि तक्षुः।
ब्रह्मण्यन्त इन्द्र ते नवीय इषमूर्जं सुक्षितिं सुम्नमश्युः॥८॥
नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः॥९॥

[२०] विंशं सूक्तम्

ऋषिः—गृत्समदः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१, ६, ८ विराट्त्रिष्टुप्; २ बृहती; ३ पङ्क्तिः; ४, ५, ७ भुरिक्पङ्क्तिः; ९ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१, ६, ८, ९ धैवतः; २ मध्यमः; ३-५, ७ पञ्चमः ॥

अथ पञ्चविंशो वर्गः ॥ २५ ॥

वयं ते वय इन्द्र विद्धि षु णः प्र भरामहे वाजयुर्न रथम्।
विपन्यवो दीध्यतो मनीषा सुम्नमियक्षन्तस्त्वावतो नॄन् ॥ १ ॥
त्वं न इन्द्र त्वाभिरूती त्वायतो अभिष्टिपासि जनान्।
त्वमिनो दाशुषो वरूतेत्थाधीरभि यो नक्षति त्वा ॥ २ ॥
स नो युवेन्द्रो जोहूत्रः सखा शिवो नरामस्तु पाता।
यः शंसन्तं यः शशमानमूती पचन्तं च स्तुवन्तं च प्रणेषत् ॥ ३ ॥
तमु स्तुष इन्द्रं तं गृणीषे यस्मिन्पुरा वावृधुः शाशदुश्च।
स वस्वः कामं पीपरदियानो ब्रह्मण्यतो नूतनस्यायोः ॥ ४ ॥
सो अङ्गिरसामुचथा जुजुष्वान्ब्रह्मा तूतोदिन्द्रो गातुमिष्णन्।
मुष्णन्नुषसः सूर्येण स्तवानश्नस्य चिच्छिश्नथत्पूर्व्याणि ॥ ५ ॥

अथ षड्विंशो वर्गः ॥ २६ ॥

स ह श्रुत इन्द्रो नाम देव ऊर्ध्वो भुवन्मनुषे दस्मतमः।
अव प्रियमर्शसानस्य साह्वाञ्छिरो भरद्दासस्य स्वधावान् ॥ ६ ॥
स वृत्रहेन्द्रः कृष्णयोनीः पुरन्दरो दासीरैरयद्वि ।
अजनयन्मनवे क्षामपश्च सत्रा शंसं यजमानस्य तूतोत् ॥ ७ ॥
तस्मै तवस्य१मनु दायि सत्रेन्द्राय देवेभिरर्णसातौ।
प्रति यदस्य वज्रं बाह्वोर्धुर्हत्वी दस्यून्पुर आयसीर्नि तारीत् ॥ ८ ॥
नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ ९ ॥

[२१] एकविंशं सूक्तम्

ऋषिः—गृत्समदः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१, २ स्वराट्त्रिष्टुप्; ३-४ विराड्जगती; ५ निचृज्जगती; ६ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१, २, ६ धैवतः; ३-५ निषादः ॥

अथ सप्तविंशो वर्गः ॥ २७ ॥

विश्वजिते धनजिते स्वर्जिते सत्राजिते नृजित उर्वराजिते।
अश्वजिते गोजिते अब्जिते भरेन्द्राय सोमं यजताय हर्यतम् ॥ १ ॥
अभिभुवेऽभिभङ्गाय वन्वतेऽषाळ्हाय सहमानाय वेधसे ।
तुविग्रये वह्नये दुष्टरीतवे सत्रासाहे नम इन्द्राय वोचत ॥ २ ॥
सत्रासाहो जनभक्षो जनंसहश्च्यवनो युध्मो अनु जोषमुक्षितः।
वृतंचयः सहुरिर्विक्ष्वारित इन्द्रस्य वोचं प्र कृतानि वीर्या ॥ ३ ॥
अनानुदो वृषभो दोधतो वधो गम्भीर ऋष्वो असमष्टकाव्यः।
रध्रचोदः श्नथनो वीळितस्पृथुरिन्द्रः सुयज्ञ उषसः स्वर्जनत् ॥ ४ ॥
यज्ञेन गातुमप्तुरो विविद्रिरे धियो हिन्वाना उशिजो मनीषिणः।
अभिस्वरा निषदा गा अवस्यव इन्द्रे हिन्वाना द्रविणान्याशत ॥ ५ ॥
इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे।
पोषं रयीणामरिष्टिं तनूनां स्वाद्मानं वाचः सुदिनत्वमह्नाम् ॥ ६ ॥

[२२] द्वाविंशं सूक्तम्

ऋषिः—गृत्समदः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१ अष्टिः; २ निचृदतिशक्वरी; ३ स्वराट् शक्वरी; ४ भुरिगतिशक्वरी ॥ स्वरः—१ मध्यमः; २-४ पञ्चमः ॥

अथ अष्टाविंशो वर्गः ॥ २८ ॥

त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस्तृपत्सोममपिबद्विष्णुना
सुतं यथावशत्। स ईं ममाद महि कर्म कर्तवे महामुरुं
सैनं सश्चद्देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥ १ ॥
अध त्विषीमाँ अभ्योजसा क्रिविं युधाभवदा रोदसी
अपृणदस्य मज्मना प्र वावृधे। अधत्तान्यं जठरे प्रेमरिच्यत
सैनं सश्चद्देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥ २ ॥
साकं जातः क्रतुना साकमोजसा ववक्षिथ साकं वृद्धो वीर्यैः
सासहिर्मृधो विचर्षणिः। दाता राधः स्तुवते काम्यं वसु
सैनं सश्चद्देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥ ३ ॥

तव त्यन्नर्यं नृतोऽप इन्द्र प्रथमं पूर्व्यं दिवि प्रवाच्यं कृतम् ।
यद्देवस्य शवसा प्रारिणा असुं रिणन्नपः ।
भुवद्विश्वमभ्यादेवमोजसा विदादूर्जं शतक्रतुर्विदादिषम् ॥ ४ ॥

तृतीयोऽनुवाकः [२३] त्रयोविंशं सूक्तम्

ऋषिः—गृत्समदः ॥ देवता—१, ५, ९, ११, १७, १९ ब्रह्मणस्पतिः; २-४, ६-८, १०, १२ १६, १८ बृहस्पतिः ॥ छन्दः—१, ४, ५, १०-१२ जगती; २, ७-९, १३, १४ विराड्जगती; ३, ६, १६, १८ निचृज्जगती; १५, १७ भुरिक्त्रिष्टुप्; १९ निचृत्त्रिष्टुप् ॥
स्वरः—१-१४, १६, १८ निषादः; १५, १७, १९ धैवतः ॥

अथ एकोनत्रिंशो वर्गः ॥ २९ ॥

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम् ।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम् ॥ १ ॥
देवाश्चित्ते असुर्य प्रचेतसो बृहस्पते यज्ञियं भागमानशुः ।
उस्राइव सूर्यो ज्योतिषा महो विश्वेषामिज्जनिता ब्रह्मणामसि ॥ २ ॥
आ विबाध्या परिरापस्तमांसि च ज्योतिष्मन्तं रथमृतस्य तिष्ठसि ।
बृहस्पते भीममममित्रदम्भनं रक्षोहणं गोत्रभिदं स्वर्विदम् ॥ ३ ॥
सुनीतिभिर्नयसि त्रायसे जनं यस्तुभ्यं दाशान्न तमंहो अश्नवत् ।
ब्रह्मद्विषस्तपनो मन्युमीरसि बृहस्पते महि तत्ते महित्वनम् ॥ ४ ॥
न तमंहो न दुरितं कुतश्चन नारातयस्तितिरुर्न द्वयाविनः ।
विश्वा इदस्माद् ध्वरसो वि बाधसे यं सुगोपा रक्षसि ब्रह्मणस्पते ॥ ५ ॥

अथ त्रिंशो वर्गः ॥ ३० ॥

त्वं नो गोपाः पथिकृद्विचक्षणस्तव व्रताय मतिभिर्जरामहे ।
बृहस्पते यो नो अभि ह्वरो दधे स्वा तं मर्मर्तु दुच्छुना हरस्वती ॥ ६ ॥
उत वा यो नो मर्चयादनागसोऽरातीवा मर्तः सानुको वृकः ।
बृहस्पते अप तं वर्तया पथः सुगं नो अस्यै देववीतये कृधि ॥ ७ ॥
त्रातारं त्वा तनूनां हवामहेऽवस्पर्तरधिवक्तारमस्मयुम् ।
बृहस्पते देवनिदो नि बर्हय मा दुरेवा उत्तरं सुम्नमुन्नशन् ॥ ८ ॥

त्वया वयं सुवृधा ब्रह्मणस्पते स्पार्हा वसु मनुष्या ददीमहि ।
या नो दूरे तळितो या अरातयोऽभि सन्ति जम्भया ता अनप्रसः ॥ ९ ॥
त्वया वयमुत्तमं धीमहे वयो बृहस्पते पप्रिणा सस्निना युजा ।
मा नो दुःशंसो अभिदिप्सुरीशत प्र सुशंसा मतिभिस्तारिषीमहि ॥ १० ॥

अथ एकत्रिंशो वर्गः ॥ ३१ ॥

अनानुदो वृषभो जग्मिराहवं निष्टप्ता शत्रुं पृतनासु सासहिः ।
असि सत्य ऋणया ब्रह्मणस्पत उग्रस्य चिद्दमिता वीळुहर्षिणः ॥ ११ ॥
अदेवेन मनसा यो रिषण्यति शासामुग्रो मन्यमानो जिघांसति ।
बृहस्पते मा प्रणक्तस्य नो वधो नि कर्म मन्युं दुरेवस्य शर्धतः ॥ १२ ॥
भरेषु हव्यो नमसोपसद्यो गन्ता वाजेषु सनिता धनंधनम् ।
विश्वा इदर्यो अभिदिप्स्वो३ मृधो बृहस्पतिर्वि ववर्हा रथाँइव ॥ १३ ॥
तेजिष्ठया तपनी रक्षसस्तप ये त्वा निदे दधिरे दृष्टवीर्यम् ।
आविस्तत्कृष्व यदसत्त उक्थ्यं१ बृहस्पते वि परिरापो अर्दय ॥ १४ ॥
बृहस्पते अति यदर्यो अर्हाद् द्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु ।
यद् दीदयच्छवस ऋतप्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम् ॥ १५ ॥

अथ द्वात्रिंशो वर्गः ॥ ३२ ॥

मा नः स्तेनेभ्यो ये अभि द्रुहस्पदे निरामिणो रिपवोऽन्नेषु जागृधुः ।
आ देवानामोहते वि व्रयो हृदि बृहस्पते न परः साम्नो विदुः ॥ १६ ॥
विश्वेभ्यो हि त्वा भुवनेभ्यस्परि त्वष्टाजनत्साम्नःसाम्नः कविः ।
स ऋणचिदृणया ब्रह्मणस्पतिर्द्रुहो हन्ता मह ऋतस्य धर्तरि ॥ १७ ॥
तव श्रिये व्यजिहीत पर्वतो गवां गोत्रमुदसृजो यदङ्गिरः ।
इन्द्रेण युजा तमसा परीवृतं बृहस्पते निरपामौब्जो अर्णवम् ॥ १८ ॥
ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं च जिन्व ।
विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ १९ ॥

॥ इति द्वितीयाऽष्टके षष्ठोऽध्यायः ॥

अथ द्वितीयाष्टके सप्तमो अध्यायः

[२४] चतुर्विंशं सूक्तम्

ऋषिः—गृत्समदः ॥ देवता—१-११, १३-१६ ब्रह्मणस्पतिः; १२ ब्रह्मणस्पतिरिन्द्रश्च ॥ छन्दः—१,७, ९, ११ निचृज्जगती; २, ३ त्रिष्टुप्; ४, ५ स्वराट्त्रिष्टुप्; ६, ८, १४ जगती; १० स्वराड् जगती; १२, १६ निचृत्त्रिष्टुप्; १३ भुरिग्जगती; १५ भुरिक्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१, ६-११, १३, १४ निषादः; २-५, १२, १५, १६ धैवतः ॥

अथ प्रथमो वर्गः ॥ १ ॥

सेमामविड्ढि प्रभृतिं य ईशिषेऽया विधेम नवया महा गिरा।
यथा नो मीढ्वान्त्स्तवते सखा तव बृहस्पते सीषधः सोत नो मतिम् ॥ १ ॥
यो नन्त्वान्यनमन्न्योजसोतादर्दर्मन्युना शम्बराणि वि ।
प्राच्यावयदच्युता ब्रह्मणस्पतिरा चाविशद्वसुमन्तं वि पर्वतम् ॥ २ ॥
तद्देवानां देवतमाय कर्त्वमश्रथ्नन्दृळ्हाव्रदन्त वीळिता ।
उद्गा आजदभिनद् ब्रह्मणा वलमगूहत्तमो व्यचक्षयत्स्वः ॥ ३ ॥
अश्मास्यमवतं ब्रह्मणस्पतिर्मधुधारमभि यमोजसातृणत् ।
तमेव विश्वे पपिरे स्वर्दृशो बहु साकं सिसिचुरुत्समुद्रिणम् ॥ ४ ॥
सना ता का चिद् भुवना भवीत्वा माद्भिः शरद्भिर्दुरो वरन्त वः ।
अयतन्ता चरतो अन्यदन्यदिद्या चकार वयुना ब्रह्मणस्पतिः ॥ ५ ॥

अथ द्वितीयो वर्गः ॥ २ ॥

अभिनक्षन्तो अभि ये तमानशुर्निधिं पणीनां परमं गुहा हितम् ।
ते विद्वांसः प्रतिचक्ष्यानृता पुनर्यत उ आयन्तदुदीयुराविशम् ॥ ६ ॥
ऋतावानः प्रतिचक्ष्यानृता पुनरात आ तस्थुः कवयो महस्पथः ।
ते बाहुभ्यां धमितमग्निमश्मनि नकिः षो अस्त्यरणो जहुर्हि तम् ॥ ७ ॥
ऋतज्येन क्षिप्रेण ब्रह्मणस्पतिर्यत्र वष्टि प्र तदश्नोति धन्वना ।
तस्य साध्वीरिषवो याभिरस्यति नृचक्षसो दृशये कर्णयोनयः ॥ ८ ॥
स संनयः स विनयः पुरोहितः स सुष्टुतः स युधि ब्रह्मणस्पतिः ।
चाक्ष्मो यद्वाजं भरते मती धनादित्सूर्यस्तपति तप्यतुर्वृथा ॥ ९ ॥

विभु प्रभु प्रथमं मेहनावतो बृहस्पतेः सुविदत्राणि राध्या ।
इमा सातानि वेन्यस्य वाजिनो येन जना उभये भुञ्जते विशः ॥ १० ॥

अथ तृतीयो वर्गः ॥ ३ ॥

योऽवरे वृजने विश्वथा विभुर्महामु रण्वः शवसा ववक्षिथ ।
स देवो देवान्प्रति पप्रथे पृथु विश्वेदु ता परिभूर्ब्रह्मणस्पतिः ॥ ११ ॥
विश्वं सत्यं मघवाना युवोरिदापश्चन प्र मिनन्ति व्रतं वाम् ।
अच्छेन्द्राब्रह्मणस्पती हविर्नोऽन्नं युजेव वाजिना जिगातम् ॥ १२ ॥
उताशिष्ठा अनु शृण्वन्ति वह्नयः सभेयो विप्रो भरते मती धना ।
वीळुद्वेषा अनु वश ऋणमाददिः स ह वाजी समिथे ब्रह्मणस्पतिः ॥ १३ ॥
ब्रह्मणस्पतेरभवद्यथावशं सत्यो मन्युर्महि कर्मा करिष्यतः ।
यो गा उदाजत्स दिवे वि चाभजन्महीव रीतिः शवसासरत्पृथक् ॥ १४ ॥
ब्रह्मणस्पते सुयमस्य विश्वहा रायः स्याम रथ्यो३ वयस्वतः ।
वीरेषु वीराँ उप पृङ्धि नस्त्वं यदीशानो ब्रह्मणा वेषि मे हवम् ॥ १५ ॥
ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं च जिन्व ।
विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ १६ ॥

[२५] पञ्चविंशं सूक्तम्

ऋषिः—गृत्समदः ॥ देवता—ब्रह्मणस्पतिः ॥ छन्दः—१, २ जगती; ३ निचृज्जगती; ४, ५ विराड्जगती ॥ स्वरः—निषादः ॥

अथ चतुर्थो वर्गः ॥ ४ ॥

इन्धानो अग्निं वनवद्वनुष्यतः कृतब्रह्मा शूशुवद्रातहव्य इत् ।
जातेन जातमति स प्र सर्सृते यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥ १ ॥
वीरेभिर्वीरान्वनवद्वनुष्यतो गोभी रयिं पप्रथद्बोधति त्मना ।
तोकं च तस्य तनयं च वर्धते यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥ २ ॥
सिन्धुर्न क्षोदः शिमीवाँ ऋघायतो वृषेव वध्रीँरभि वष्ट्योजसा ।
अग्नेरिव प्रसितिर्नाह वर्तवे यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥ ३ ॥

तस्मा अर्षन्ति दिव्या असश्चतः स सत्वभिः प्रथमो गोषु गच्छति।
अनिभृष्टतविषिर्हन्त्योजसा यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥ ४ ॥
तस्मा इद्विश्वे धुनयन्त सिन्धवोऽच्छिद्रा शर्म दधिरे पुरूणि।
देवानां सुम्ने सुभगः स एधते यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥ ५ ॥

[२६] षड्विंशं सूक्तम्

ऋषिः—गृत्समदः ॥ देवता—ब्रह्मणस्पतिः ॥ छन्दः—१, ३ जगती; २, ४ निचृज्जगती ॥ स्वरः—निषादः ॥
अथ पञ्चमो वर्गः ॥ ५ ॥

ऋजुरिच्छंसो वनवद्वनुष्यतो देवयन्निददेवयन्तमभ्यसत् ।
सुप्रावीरिद्वनवत्पृत्सु दुष्टरं यज्वेदयज्योर्वि भजाति भोजनम् ॥ १ ॥
यजस्व वीर प्र विहि मनायतो भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये।
हविष्कृणुष्व सुभगो यथाससि ब्रह्मणस्पतेरव आ वृणीमहे ॥ २ ॥
स इज्जनेन स विशा स जन्मना स पुत्रैर्वाजं भरते धना नृभिः।
देवानां यः पितरमाविवासति श्रद्धामना हविषा ब्रह्मणस्पतिम् ॥ ३ ॥
यो अस्मै हव्यैर्घृतवद्भिरविधत्प्र तं प्राचा नयति ब्रह्मणस्पतिः।
उरुष्यतीमंहसो रक्षती रिषों३ऽहोश्चिदस्मा उरुचक्रिरद्भुतः ॥ ४ ॥

[२७] सप्तविंशं सूक्तम्

ऋषिः—कूर्मो गार्त्समदो गृत्समदो वा ॥ देवता—आदित्याः ॥ छन्दः—१, ३, ६, १३-१५ निचृत् त्रिष्टुप्; २, ४, ५, ८, १२, १७ त्रिष्टुप्; ७ भुरिक्पङ्क्तिः; ९, १० स्वराट्पङ्क्तिः; ११, १६ विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१-६, ८, ११-१७ धैवतः; ७, ९, १० पञ्चमः ॥
अथ षष्ठो वर्गः ॥ ६ ॥

इमा गिर आदित्येभ्यो घृतस्नूः सनाद्राजभ्यो जुह्वा जुहोमि।
शृणोतु मित्रो अर्यमा भगो नस्तुविजातो वरुणो दक्षो अंशः ॥ १ ॥
इमं स्तोमं सक्रतवो मे अद्य मित्रो अर्यमा वरुणो जुषन्त।
आदित्यासः शुचयो धारपूता अवृजिना अनवद्या अरिष्टाः ॥ २ ॥
त आदित्यास उरवो गभीरा अदब्धासो दिप्सन्तो भूर्यक्षाः।
अन्तः पश्यन्ति वृजिनोत साधु सर्वं राजभ्यः परमा चिदन्ति ॥ ३ ॥

धारयन्त आदित्यासो जगत्स्था देवा विश्वस्य भुवनस्य गोपाः।
दीर्घाधियो रक्षमाणा असुर्यमृतावानश्चयमाना ऋणानि ॥ ४ ॥
विद्यामादित्या अवसो वो अस्य यदर्यमन्भय आ चिन्मयोभु।
युष्माकं मित्रावरुणा प्रणीतौ परि श्वभ्रेव दुरितानि वृज्याम् ॥ ५ ॥
अथ सप्तमो वर्गः ॥ ७ ॥
सुगो हि वो अर्यमन्मित्र पन्था अनृक्षरो वरुण साधुरस्ति।
तेनादित्या अधि वोचता नो यच्छता नो दुष्परिहन्तु शर्म ॥ ६ ॥
पिपर्तु नो अदिती राजपुत्राति द्वेषांस्यर्यमा सुगेभिः।
बृहन्मित्रस्य वरुणस्य शर्मोप स्याम पुरुवीरा अरिष्टाः ॥ ७ ॥
तिस्रो भूमीर्धारयन्त्रीँरुत द्यून्त्रीणि व्रता विदथे अन्तरेषाम्।
ऋतेनादित्या महि वो महित्वं तदर्यमन्वरुण मित्र चारु ॥ ८ ॥
त्री रोचना दिव्या धारयन्त हिरण्ययाः शुचयो धारपूताः।
अस्वप्नजो अनिमिषा अदब्धा उरुशंसा ऋजवे मर्त्याय ॥ ९ ॥
त्वं विश्वेषां वरुणासि राजा ये च देवा असुर ये च मर्ताः।
शतं नो रास्व शरदो विचक्षेऽश्यामायूंषि सुधितानि पूर्वा ॥ १० ॥
अथ अष्टमो वर्गः ॥ ८ ॥
न दक्षिणा वि चिकिते न सव्या न प्राचीनमादित्या नोत पश्चा।
पाक्या चिद्वसवो धीर्या चिद्युष्मानीतो अभयं ज्योतिरश्याम् ॥ ११ ॥
यो राजभ्य ऋतनिभ्यो ददाश यं वर्धयन्ति पुष्टयश्च नित्याः।
स रेवान्याति प्रथमो रथेन वसुदावा विदथेषु प्रशस्तः ॥ १२ ॥
शुचिरपः सूयवसा अदब्ध उप क्षेति वृद्धवयाः सुवीरः।
नकिष्टं घ्नन्त्यन्तितो न दूराद्य आदित्यानां भवति प्रणीतौ ॥ १३ ॥
अदिते मित्र वरुणोत मृळ यद्वो वयं चकृमा कच्चिदागः।
उर्वश्यामभयं ज्योतिरिन्द्र मा नो दीर्घा अभि नशन्तमिस्राः ॥ १४ ॥

उभे अस्मै पीपयतः समीची दिवो वृष्टिं सुभगो नाम पुष्यन्।
उभा क्षयावाजयन्याति पृत्सूभावर्धौ भवतः साधू अस्मै ॥ १५ ॥
या वो माया अभिद्रुहे यजत्राः पाशा आदित्या रिपवे विचृत्ताः।
अश्वीव ताँ अति येषं रथेनारिष्टा उरावा शर्मन्त्स्याम ॥ १६ ॥
माहं मघोनो वरुण प्रियस्य भूरिदाव्न आ विदं शूनमापेः।
मा रायो राजन्त्सुयमादव स्थां बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ १७ ॥

[२८] अष्टाविंशं सूक्तम्

ऋषिः—कूर्मो गार्त्समदो गृत्समदो वा ॥ देवता—वरुणः ॥ छन्दः—१, ३, ४, ६ निचृत्त्रिष्टुप्; २, १० भुरिक्पङ्क्तिः; ५, ७, ११ त्रिष्टुप्; ८ विराट्त्रिष्टुप्; ९ भुरिक्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—१, ३-९, ११ धैवतः; २, १० पञ्चमः ॥

अथ नवमो वर्गः ॥ ९ ॥

इदं कवेरादित्यस्य स्वराजो विश्वानि सान्त्यभ्यस्तु मह्ना।
अति यो मन्द्रो यजथाय देवः सुकीर्तिं भिक्षे वरुणस्य भूरेः ॥ १ ॥
तव व्रते सुभगासः स्याम स्वाध्यो वरुण तुष्टुवांसः।
उपायन उषसां गोमतीनामग्नयो न जरमाणा अनु द्यून् ॥ २ ॥
तव स्याम पुरुवीरस्य शर्मन्नुरुशंसस्य वरुण प्रणेतः।
यूयं नः पुत्रा अदितेरदब्धा अभि क्षमध्वं युज्याय देवाः ॥ ३ ॥
प्र सीमादित्यो असृजद्विधर्ताँ ऋतं सिन्धवो वरुणस्य यन्ति।
न श्राम्यन्ति न वि मुचन्त्येते वयो न पप्तू रघुया परिज्मन् ॥ ४ ॥
वि मच्छ्रथाय रशनामिवाग ऋध्याम ते वरुण खामृतस्य।
मा तन्तुश्छेदि वयतो धियं मे मा मात्रा शार्यपसः पुर ऋतोः ॥ ५ ॥

अथ दशमो वर्गः ॥ १० ॥

अपो सु म्यक्ष वरुण भियसं मत्सम्राळृतावोऽनु मा गृभाय।
दामेव वत्साद्वि मुमुग्ध्यंहो नहि त्वदारे निमिषश्चनेशे ॥ ६ ॥
मा नो वधैर्वरुण ये त इष्टावेनः कृण्वन्तमसुर भ्रीणन्ति।
मा ज्योतिषः प्रवसथानि गन्म वि षू मृधः शिश्रथो जीवसे नः ॥ ७ ॥

नमः पुरा ते वरुणोत नूनमुतापरं तुविजात ब्रवाम।
त्वे हि कं पर्वते न श्रितान्यप्रच्युतानि दूळभ व्रतानि ॥ ८ ॥
पर ऋणा सावीरध मत्कृतानि माहं राजन्नन्यकृतेन भोजम्।
अव्युष्टा इन्नु भूयसीरुषास आ नो जीवान्वरुण तासु शाधि ॥ ९ ॥
यो मे राजन्युज्यो वा सखा वा स्वप्ने भयं भीरवे मह्यमाह।
स्तेनो वा यो दिप्सति नो वृको वा त्वं तस्माद्वरुण पाह्यस्मान् ॥ १० ॥
माहं मघोनो वरुण प्रियस्य भूरिदाव्न आ विदं शूनमापेः।
मा रायो राजन्त्सुयमादव स्थां बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ ११ ॥

[२९] एकोनत्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—कूर्मो गार्त्समदो गृत्समदो वा ॥ देवता—विश्वे देवाः ॥ छन्दः—१, ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप्; २, ६, ७ त्रिष्टुप्; ३ विराट्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः ॥

अथ एकादशो वर्गः ॥ ११ ॥

धृतव्रता आदित्या इषिरा आरे मत्कर्त रहसूरिवागः।
शृण्वतो वो वरुण मित्र देवा भद्रस्य विद्वाँ अवसे हुवे वः ॥ १ ॥
यूयं देवाः प्रमतिर्यूयमोजो यूयं द्वेषांसि सनुतर्युयोत।
अभिक्षत्तारो अभि च क्षमध्वमद्या च नो मृळयतापरं च ॥ २ ॥
किमू नु वः कृणवामापरेण किं सनेन वसव आप्येन।
यूयं नो मित्रावरुणादिते च स्वस्तिमिन्द्रामरुतो दधात ॥ ३ ॥
हये देवा यूयमिदापयः स्थ ते मृळत नाधमानाय मह्यम्।
मा वो रथो मध्यमवाळृते भून्मा युष्मावत्स्वापिषु श्रमिष्म ॥ ४ ॥
प्र व एको मिमय भूर्यागो यन्मा पितेव कितवं शशास।
आरे पाशा आरे अघानि देवा मा माधि पुत्रे विमिव ग्रभीष्ट ॥ ५ ॥
अर्वाञ्चो अद्या भवता यजत्रा आ वो हार्दि भयमानो व्ययेयम्।
त्राध्वं नो देवा निजुरो वृकस्य त्राध्वं कर्तादवपदो यजत्राः ॥ ६ ॥

माहं मघोनो वरुण प्रियस्य भूरिदाव्न आ विदं शूनमापेः।
मा रायो राजन्त्सुयमादव स्थां बृहद्वदेम विदथे सुवीराः॥७॥

[३०] त्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—गृत्समदः॥ देवता—१-५, ७, ८, १० इन्द्रः; ६ इन्द्रासोमौ; ९ बृहस्पतिः; ११ मरुतः॥ छन्दः—१, ३ भुरिक्पङ्क्तिः; २, ८ निचृत्त्रिष्टुप्; ४-७, ९ त्रिष्टुप्; १० विराट्त्रिष्टुप्; ११ भुरिक्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—१, ३ पञ्चमः; २, ४-११ धैवतः॥

अथ द्वादशो वर्गः॥ १२॥

ऋतं देवाय कृण्वते सवित्र इन्द्रायाहिघ्ने न रमन्त आपः।
अहरहर्यात्यक्तुरपां कियात्या प्रथमः सर्ग आसाम्॥१॥
यो वृत्राय सिनमत्राभरिष्यत्प्र तं जनित्री विदुष उवाच।
पथो रदन्तीरनु जोषमस्मै दिवेदिवे धुनयो यन्त्यर्थम्॥२॥
ऊर्ध्वो ह्यस्थादध्यन्तरिक्षेऽधा वृत्राय प्र वधं जभार।
मिहं वसान उप हीमदुद्रोत्तिग्मायुधो अजयच्छत्रुमिन्द्रः॥३॥
बृहस्पते तपुषाश्नेव विध्य वृकद्वरसो असुरस्य वीरान्।
यथा जघन्थ धृषता पुरा चिदेवा जहि शत्रुमस्माकमिन्द्र॥४॥
अव क्षिप दिवो अश्मानमुच्चा येन शत्रुं मन्दसानो निजूर्वाः।
तोकस्य सातौ तनयस्य भूरेरस्माँ अर्धं कृणुतादिन्द्र गोनाम्॥५॥

अथ त्रयोदशो वर्गः॥ १३॥

प्र हि क्रतुं वृहथो यं वनुथो रध्रस्य स्थो यजमानस्य चोदौ।
इन्द्रासोमा युवमस्माँ अविष्टमस्मिन्भयस्थे कृणुतमु लोकम्॥६॥
न मा तमन्न श्रमन्नोत तन्द्रन्न वोचाम मा सुनोतेति सोमम्।
यो मे पृणाद्यो ददद्यो निबोधाद्यो मा सुन्वन्तमुप गोभिरायत्॥७॥
सरस्वति त्वमस्माँ अविड्ढि मरुत्वती धृषती जेषि शत्रून्।
त्यं चिच्छर्धन्तं तविषीयमाणमिन्द्रो हन्ति वृषभं शण्डिकानाम्॥८॥
यो नः सनुत्य उत वा जिघत्नुरभिख्याय तं तिगितेन विध्य।
बृहस्पत आयुधैर्जेषि शत्रून्द्रुहे रीषन्तं परि धेहि राजन्॥९॥

अस्माकेभिः सत्वभिः शूर शूरैर्वीर्या कृधि यानि ते कर्त्वानि।
ज्योगभूवन्ननुधूपितासो हत्वी तेषामा भरा नो वसूनि॥१०॥
तं वः शर्धं मारुतं सुम्नयुर्गिरोप ब्रुवे नमसा दैव्यं जनम्।
यथा रयिं सर्ववीरं नशामहा अपत्यसाचं श्रुत्यं दिवेदिवे॥११॥

[३१] एकत्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—गृत्समदः॥ देवता—विश्वे देवाः॥ छन्दः—१, २, ४ जगती; ३ विराड्जगती; ५ निचृत् जगती; ६ त्रिष्टुप्; ७ पङ्क्तिः॥ स्वरः—१-५ निषादः; ६ धैवतः; ७ पञ्चमः॥

अथ चतुर्दशो वर्गः॥ १४॥

अस्माकं मित्रावरुणावतं रथमादित्यै रुद्रैर्वसुभिः सचाभुवा।
प्र यद्वयो न पप्तन्वस्मनस्परि श्रवस्यवो हृषीवन्तो वनर्षदः॥१॥
अध स्मा न उदवता सजोषसो रथं देवासो अभि विक्षु वाजयुम्।
यदाशवः पद्याभिस्तित्रतो रजः पृथिव्याः सानौ जङ्घनन्त पाणिभिः॥२॥
उत स्य न इन्द्रो विश्वचर्षणिर्दिवः शर्धेन मारुतेन सुक्रतुः।
अनु नु स्थात्यवृकाभिरूतिभी रथं महे सनये वाजसातये॥३॥
उत स्य देवो भुवनस्य सक्षणिस्त्वष्टा ग्नाभिः सजोषा जूजुवद्रथम्।
इळा भगो बृहद्दिवोत रोदसी पूषा पुरंधिरश्विनावधा पती॥४॥
उत त्ये देवी सुभगे मिथूदृशोषासानक्ता जगतामपीजुवा।
स्तुषे यद्वां पृथिवि नव्यसा वचः स्थातुश्च वयस्त्रिवया उपस्तिरे॥५॥
उत वः शंसमुशिजामिव श्मस्यहिर्बुध्न्योऽ३ज एकपादुत।
त्रित ऋभुक्षाः सविता चनो दधेऽपां नपादाशुहेमा धिया शमि॥६॥
एता वो वश्म्युद्यता यजत्रा अतक्षन्नायवो नव्यसे सम्।
श्रवस्यवो वाजं चकानाः सप्तिर्न रथ्यो अह धीतिमश्याः॥७॥

[३२] द्वात्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—गृत्समदः॥ देवता—१ द्यावापृथिव्यौ; २, ३ इन्द्रस्त्वष्टा वा; ४, ५ राका; ६, ७ सिनीवाली; ८ लिङ्गोक्ताः॥ छन्दः—१ जगती; २ त्रिष्टुप्; ३ निचृज्जगती; ४, ५ विराड्जगती; ६ अनुष्टुप्; ७ विराडनुष्टुप्; ८ निचृदनुष्टुप्॥ स्वरः—१, ३-५ निषादः; २ धैवतः; ६-८ गान्धारः॥

अथ पञ्चदशो वर्गः ॥ १५ ॥

अस्य मे द्यावापृथिवी ऋतायतो भूतमवित्री वचसः सिषासतः।
ययोरायुः प्रतरं ते इदं पुर उपस्तुते वसूयुर्वां महो दधे ॥ १ ॥
मा नो गुह्या रिप आयोरहन्दभन्मा न आभ्यो रीरधो दुच्छुनाभ्यः।
मा नो वि यौः सख्या विद्धि तस्य नः सुम्नायता मनसा तत्त्वेमहे ॥ २ ॥
अहेळता मनसा श्रुष्टिमा वह दुहानां धेनुं पिप्युषीमसश्चतम्।
पद्याभिराशुं वचसा च वाजिनं त्वां हिनोमि पुरुहूत विश्वहा ॥ ३ ॥
राकामहं सुहवां सुष्टुती हुवे शृणोतु नः सुभगा बोधतु त्मना।
सीव्यत्वपः सूच्याच्छिद्यमानया ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यम् ॥ ४ ॥
यास्ते राके सुमतयः सुपेशसो याभिर्ददासि दाशुषे वसूनि ।
ताभिर्नो अद्य सुमना उपागहि सहस्रपोषं सुभगे रराणा ॥ ५ ॥
सिनीवालि पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसा ।
जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि दिदिड्ढि नः ॥ ६ ॥
या सुबाहुः स्वङ्गुरिः सुषूमा बहुसूवरी ।
तस्यै विश्पत्न्यै हविः सिनीवाल्यै जुहोतन ॥ ७ ॥
या गुङ्गूर्या सिनीवाली या राका या सरस्वती ।
इन्द्राणीमह्व ऊतये वरुणानीं स्वस्तये ॥ ८ ॥

चतुर्थोऽनुवाकः [३३] त्रयस्त्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—गृत्समदः ॥ देवता—रुद्रः ॥ छन्दः—१, ५, ९, १३-१५ निचृत्त्रिष्टुप्; ३, ६, १०, ११ विराट्त्रिष्टुप्; ४, ८ त्रिष्टुप्; २, ७ पङ्क्तिः; १२ भुरिक्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१, ३-६, ८-११, १३-१५ धैवतः; २, ७, १२ पञ्चमः ॥

अथ षोडशो वर्गः ॥ १६ ॥

आ ते पितर्मरुतां सुम्नमेतु मा नः सूर्यस्य संदृशो युयोथाः।
अभि नो वीरो अर्वति क्षमेत प्र जायेमहि रुद्र प्रजाभिः ॥ १ ॥
त्वादत्तेभी रुद्र शंतमेभिः शतं हिमा अशीय भेषजेभिः।
व्य१स्मद् द्वेषो वितरं व्यंहो व्यमीवाश्चातयस्वा विषूचीः ॥ २ ॥

श्रेष्ठो जातस्य रुद्र श्रियासि तवस्तमस्तवसां वज्रबाहो।
पर्षि णः पारमंहसः स्वस्ति विश्वा अभीती रपसो युयोधि ॥ ३ ॥
मा त्वा रुद्र चुक्रुधामा नमोभिर्मा दुष्टुती वृषभ मा सहूती।
उन्नो वीराँ अर्पय भेषजेभिर्भिषक्तमं त्वा भिषजां शृणोमि ॥ ४ ॥
हवीमभिर्हवते यो हविर्भिरव स्तोमेभी रुद्रं दिषीय।
ऋदूदरः सुहवो मा नो अस्यै बभ्रुः सुशिप्रो रीरधन्मनायै ॥ ५ ॥

अथ सप्तदशो वर्गः ॥ १७ ॥

उन्मा ममन्द वृषभो मरुत्वान्त्वक्षीयसा वयसा नाधमानम्।
घृणीव च्छायामरपा अशीया विवासेयं रुद्रस्य सुम्नम् ॥ ६ ॥
क्व१ स्य ते रुद्र मृळयाकुर्हस्तो यो अस्ति भेषजो जलाषः।
अपभर्ता रपसो दैव्यस्याभी नु मा वृषभ चक्षमीथाः ॥ ७ ॥
प्र बभ्रवे वृषभाय श्वितीचे महो महीं सुष्टुतिमीरयामि।
नमस्या कल्मलीकिनं नमोभिर्गृणीमसि त्वेषं रुद्रस्य नाम ॥ ८ ॥
स्थिरेभिरङ्गैः पुरुरूप उग्रो बभ्रुः शुक्रेभिः पिपिशे हिरण्यैः।
ईशानादस्य भुवनस्य भूरेर्न वा उ योषद्रुद्रादसुर्यम् ॥ ९ ॥
अर्हन्बिभर्षि सायकानि धन्वार्हन्निष्कं यजतं विश्वरूपम्।
अर्हन्निदं दयसे विश्वमभ्वं न वा ओजीयो रुद्र त्वदस्ति ॥ १० ॥

अथ अष्टादशो वर्गः ॥ १८ ॥

स्तुहि श्रुतं गर्तसदं युवानं मृगं न भीममुपहत्नुमुग्रम्।
मृळा जरित्रे रुद्र स्तवानोऽन्यं ते अस्मन्नि वपन्तु सेनाः ॥ ११ ॥
कुमारश्चित्पितरं वन्दमानं प्रति नानाम रुद्रोपयन्तम्।
भूरेर्दातारं सत्पतिं गृणीषे स्तुतस्त्वं भेषजा रास्यस्मे ॥ १२ ॥
या वो भेषजा मरुतः शुचीनि या शन्तमा वृषणो या मयोभु।
यानि मनुरवृणीता पिता नस्ता शं च योश्च रुद्रस्य वश्मि ॥ १३ ॥

परि णो हेती रुद्रस्य वृज्याः परि त्वेषस्य दुर्मतिर्मही गात्।
अव स्थिरा मघवद्भ्यस्तनुष्व मीढ्वस्तोकाय तनयाय मृळ॥ १४॥
एवा बभ्रो वृषभ चेकितान यथा देव न हृणीषे न हंसि।
हवनश्रुन्नो रुद्रेह बोधि बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ १५॥

[३४] चतुस्त्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—गृत्समदः॥ देवता—मरुतः॥ छन्दः—१, ३, ८, ९ निचृज्जगती; २, १०-१३ विराड्जगती; ४-७, १४ जगती; १५ निचृत्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—१-१४ निषादः; १५ धैवतः॥

अथ एकोनविंशो वर्गः॥ १९॥

धारावरा मरुतो धृष्ण्वोजसो मृगा न भीमास्तविषीभिरर्चिनः।
अग्नयो न शुशुचाना ऋजीषिणो भृमिं धमन्तो अप गा अवृण्वत॥ १॥
द्यावो न स्तृभिश्चितयन्त खादिनो व्य१भ्रिया न द्युतयन्त वृष्टयः।
रुद्रो यद्वो मरुतो रुक्मवक्षसो वृषाजनि पृश्न्याः शुक्र ऊधनि॥ २॥
उक्षन्ते अश्वाँ अत्याँइवाजिषु नदस्य कर्णैस्तुरयन्त आशुभिः।
हिरण्यशिप्रा मरुतो दविध्वतः पृक्षं याथ पृषतीभिः समन्यवः॥ ३॥
पृक्षे ता विश्वा भुवना ववक्षिरे मित्राय वा सदमा जीरदानवः।
पृषदश्वासो अनवभ्रराधस ऋजिप्यासो न वयुनेषु धूर्षदः॥ ४॥
इन्धन्वभिर्धेनुभी रप्शदूधभिरध्वस्मभिः पथिभिर्भ्राजदृष्टयः।
आ हंसासो न स्वसराणि गन्तन मधोर्मदाय मरुतः समन्यवः॥ ५॥

अथ विंशो वर्गः॥ २०॥

आ नो ब्रह्माणि मरुतः समन्यवो नरां न शंसः सवनानि गन्तन।
अश्वामिव पिप्यत धेनुमूधनि कर्ता धियं जरित्रे वाजपेशसम्॥ ६॥
तं नो दात मरुतो वाजिनं रथ आपानं ब्रह्म चितयद्दिवेदिवे।
इषं स्तोतृभ्यो वृजनेषु कारवे सनिं मेधामरिष्टं दुष्टरं सहः॥ ७॥
यद्युञ्जते मरुतो रुक्मवक्षसोऽश्वान्रथेषु भग आ सुदानवः।
धेनुर्न शिश्वे स्वसरेषु पिन्वते जनाय रातहविषे महीमिषम्॥ ८॥

यो नो मरुतो वृकताति मर्त्यो रिपुर्दधे वसवो रक्षता रिषः।
वर्तयत तपुषा चक्रियाभि तमव रुद्रा अशसो हन्तना वधः॥ ९॥
चित्रं तद्वो मरुतो याम चेकिते पृश्न्या यदूधरप्यापयो दुहुः।
यद्वा निदे नवमानस्य रुद्रियास्त्रितं जराय जुरतामदाभ्याः॥ १०॥

अथ एकविंशो वर्गः॥ २१॥

तान्वो महो मरुत एवयाव्नो विष्णोरेषस्य प्रभृथे हवामहे।
हिरण्यवर्णान्ककुहान्यतस्रुचो ब्रह्मण्यन्तः शंस्यं राध ईमहे॥ ११॥
ते दशग्वाः प्रथमा यज्ञमूहिरे ते नो हिन्वन्तूषसो व्युष्टिषु।
उषा न रामीररुणैरपोर्णुते महो ज्योतिषा शुचता गोअर्णसा॥ १२॥
ते क्षोणीभिररुणेभिर्नाञ्जिभी रुद्रा ऋतस्य सदनेषु वावृधुः।
निमेघमाना अत्येन पाजसा सुश्चन्द्रं वर्णं दधिरे सुपेशसम्॥ १३॥
ताँ इयानो महि वरूथमूतय उप घेदेना नमसा गृणीमसि।
त्रितो न यान्पञ्च होतॄनभिष्टय आववर्तदवराञ्चक्रियावसे॥ १४॥
यया रध्रं पारयथात्यंहो यया निदो मुञ्चथ वन्दितारम्।
अर्वाची सा मरुतो या व ऊतिरो षु वाश्रेव सुमतिर्जिगातु॥ १५॥

[३५] पञ्चत्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—गृत्समदः॥ देवता—अपान्नपात्॥ छन्दः—१, ४, ६, ७, ९, १०, १२, १३, १५ निचृत् त्रिष्टुप्; २, ३, ८ भुरिक्पङ्क्तिः; ५ स्वराट्पङ्क्तिः; ११ विराट्त्रिष्टुप्; १४ त्रिष्टुप्॥ स्वरः—१, ४, ६, ७, ९-१५ धैवतः; २, ३, ५, ८ पञ्चमः॥

अथ द्वाविंशो वर्गः॥ २२॥

उपेमसृक्षि वाजयुर्वचस्यां चनो दधीत नाद्यो गिरो मे।
अपां नपादाशुहेमा कुवित्स सुपेशसस्करति जोषिषद्धि॥ १॥
इमं स्वस्मै हृद आ सुतष्टं मन्त्रं वोचेम कुविदस्य वेदत्।
अपां नपादसुर्यस्य मह्ना विश्वान्यर्यो भुवना जजान॥ २॥
समन्या यन्त्युप यन्त्यन्याः समानमूर्वं नद्यः पृणन्ति।
तमू शुचिं शुचयो दीदिवांसमपां नपातं परि तस्थुरापः॥ ३॥

तमस्मेरा युवतयो युवानं मर्मृज्यमानाः परि यन्त्यापः ।
स शुक्रेभिः शिक्वभी रेवदस्मे दीदायानिध्मो घृतनिर्णिगप्सु ॥ ४ ॥
अस्मै तिस्रो अव्यथ्याय नारीर्देवाय देवीर्दिधिषन्त्यन्नम् ।
कृताइवोप हि प्रसर्स्रे अप्सु स पीयूषं धयति पूर्वसूनाम् ॥ ५ ॥

अथ त्रयोविंशो वर्गः ॥ २३ ॥

अश्वस्यात्र जनिमास्य च स्वर्द्रुहो रिषः संपृचः पाहि सूरीन् ।
आमासु पूर्षु परो अप्रमृष्यं नारातयो वि नशन्नानृतानि ॥ ६ ॥
स्व आ दमे सुदुघा यस्य धेनुः स्वधां पीपाय सुभ्वन्नमत्ति ।
सो अपां नपादूर्जयन्नप्स्व१न्तर्वसुदेयाय विधते वि भाति ॥ ७ ॥
यो अप्स्वा शुचिना दैव्येन ऋतावाजस्र उर्विया विभाति ।
वया इदन्या भुवनान्यस्य प्र जायन्ते वीरुधश्च प्रजाभिः ॥ ८ ॥
अपां नपादा ह्यस्थादुपस्थं जिह्मानामूर्ध्वो विद्युतं वसानः ।
तस्य ज्येष्ठं महिमानं वहन्तीर्हिरण्यवर्णाः परि यन्ति यह्वीः ॥ ९ ॥
हिरण्यरूपः स हिरण्यसन्दृगपां नपात्सेदु हिरण्यवर्णः ।
हिरण्ययात्परि योनेर्निषद्या हिरण्यदा ददत्यन्नमस्मै ॥ १० ॥

अथ चतुर्विंशो वर्गः ॥ २४ ॥

तदस्यानीकमुत चारु नामापीच्यं वर्धते नप्तुरपाम् ।
यमिन्धते युवतयः समित्था हिरण्यवर्णं घृतमन्नमस्य ॥ ११ ॥
अस्मै बहूनामवमाय सख्ये यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः ।
सं सानु मार्ज्मि दिधिषामि बिल्मैर्दधाम्यन्नैः परि वन्द ऋग्भिः ॥ १२ ॥
स ईं वृषाजनयत्तासु गर्भं स ईं शिशुर्धयति तं रिहन्ति ।
सो अपां नपादनभिम्लातवर्णोऽन्यस्येवेह तन्वा विवेष ॥ १३ ॥
अस्मिन्पदे परमे तस्थिवांसमध्वस्मभिर्विश्वहा दीदिवांसम् ।
आपो नप्त्रे घृतमन्नं वहन्तीः स्वयमत्कैः परि दीयन्ति यह्वीः ॥ १४ ॥

अयांसमग्ने सुक्षितिं जनायायांसमु मघवद्भ्यः सुवृक्तिम् ।
विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ १५ ॥

[३६] षट्त्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—गृत्समदः ॥ देवता—१ इन्द्रो मधुश्च; २ मरुतो माधवश्च; ३ त्वष्टा शुक्रश्च; ४ अग्निः शुचिश्च; ५ इन्द्रो नभश्च; ६ मित्रावरुणौ नभस्यश्च ॥ छन्दः—१, ४ स्वराट् त्रिष्टुप्; २, ३ जगती; ५, ६ भुरिक्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१, ४-६ धैवतः; २, ३ निषादः ॥

अथ पञ्चविंशो वर्गः ॥ २५ ॥

तुभ्यं हिन्वानो वसिष्ट गा अपोऽधुक्षन्त्सीमविभिरद्रिभिर्नरः ।
पिबेन्द्र स्वाहा प्रहुतं वषट्कृतं होत्रादा सोमं प्रथमो य ईशिषे ॥ १ ॥
यज्ञैः संमिश्लाः पृषतीभिर्ऋष्टिभिर्यामञ्छुभ्रासो अञ्जिषु प्रिया उत ।
आसद्या बर्हिर्भरतस्य सूनवः पोत्रादा सोमं पिबता दिवो नरः ॥ २ ॥
अमेव नः सुहवा आ हि गन्तन नि बर्हिषि सदतना रणिष्टन ।
अथा मन्दस्व जुजुषाणो अन्धसस्त्वष्टर्देवेभिर्जनिभिः सुमद्गणः ॥ ३ ॥
आ वक्षि देवाँ इह विप्र यक्षि चोशन्होतर्नि षदा योनिषु त्रिषु ।
प्रति वीहि प्रस्थितं सोम्यं मधु पिबाग्नीध्रात्तव भागस्य तृप्णुहि ॥ ४ ॥
एष स्य ते तन्वो नृम्णवर्धनः सह ओजः प्रदिवि बाह्वोर्हितः ।
तुभ्यं सुतो मघवन्तुभ्यमाभृतस्त्वमस्य ब्राह्मणादा तृपत्पिब ॥ ५ ॥
जुषेथां यज्ञं बोधतं हवस्य मे सत्तो होता निविदः पूर्व्या अनु ।
अच्छा राजाना नम एत्यावृतं प्रशास्त्रादा पिबतं सोम्यं मधु ॥ ६ ॥

॥ इति द्वितीयाष्टके सप्तमोऽध्यायः ॥

अथ द्वितीयाष्टकेऽष्टमोऽध्यायः

[३७] सप्तत्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—गृत्समदः ॥ देवता—१-४ द्रविणोदाः; ५ अश्विनौ; ६ अग्निः ॥ छन्दः—१, ५ निचृज्जगती; २ जगती; ३ विराड्जगती; ४, ६ भुरिक्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१-३, ५ निषादः; ४, ६ धैवतः ॥

अथ प्रथमो वर्गः ॥ १ ॥

मन्दस्व होत्रादनु जोषमन्धसोऽध्वर्यवः स पूर्णां वष्ट्यासिचम्।
तस्मा एतं भरत तद्वशो ददिर्होत्रात्सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः ॥ १ ॥
यमु पूर्वमहुवे तमिदं हुवे सेदु हव्यो ददिर्यो नाम पत्यते।
अध्वर्युभिः प्रस्थितं सोम्यं मधु पोत्रात्सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः ॥ २ ॥
मेद्यन्तु ते वह्नयो येभिरीयसेऽरिषण्यन्वीळयस्वा वनस्पते ।
आयूया धृष्णो अभिगूर्या त्वं नेष्ट्रात्सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः ॥ ३ ॥
अपाद्धोत्रादुत पोत्रादमत्तोत नेष्ट्रादजुषत प्रयो हितम् ।
तुरीयं पात्रममृक्तममर्त्यं द्रविणोदाः पिबतु द्राविणोदसः ॥ ४ ॥
अर्वाञ्चमद्य यय्यं नृवाहणं रथं युञ्जाथामिह वां विमोचनम्।
पृङ्क्तं हवींषि मधुना हि कं गतमथा सोमं पिबतं वाजिनीवसू ॥ ५ ॥
जोष्यग्ने समिधं जोष्याहुतिं जोषि ब्रह्म जन्यं जोषि सुष्टुतिम्।
विश्वेभिर्विश्वाँ ऋतुना वसो मह उशन्देवाँ उशतः पायया हविः ॥ ६ ॥

[३८] अष्टात्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—गृत्समदः ॥ देवता—सविता ॥ छन्दः—१, ५ निचृत्त्रिष्टुप्; २ त्रिष्टुप्; ३, ४, ६, १०, ११ विराट्त्रिष्टुप्; ७, ८ स्वराट्पङ्क्तिः; ९ भुरिक्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१-६, १०, ११ धैवतः; ७-९ पञ्चमः ॥

अथ द्वितीयो वर्गः ॥ २ ॥

उदु ष्य देवः सविता सवाय शश्वत्तमं तदपा वह्निरस्थात्।
नूनं देवेभ्यो वि हि धाति रत्नमथाभजद्वीतिहोत्रं स्वस्तौ ॥ १ ॥
विश्वस्य हि श्रुष्टये देव ऊर्ध्वः प्र बाहवा पृथुपाणिः सिसर्ति।
आपश्चिदस्य व्रत आ निमृग्रा अयं चिद्वातो रमते परिज्मन् ॥ २ ॥
आशुभिश्चिद्यान्वि मुचाति नूनमरीरमदतमानं चिदेतोः ।
अह्यर्षूणां चिन्न्ययाँ अविष्यामनु व्रतं सवितुर्मोक्यागात् ॥ ३ ॥
पुनः समव्यद्विततं वयन्ती मध्या कर्तोर्न्यधाच्छक्म धीरः ।
उत्संहायास्थाद् व्यृ१तूँरदर्धररमतिः सविता देव आगात् ॥ ४ ॥

नानौकांसि दुर्यो विश्वमायुर्वि तिष्ठते प्रभवः शोको अग्नेः।
ज्येष्ठं माता सूनवे भागमाधादन्वस्य केतमिषितं सवित्रा ॥ ५ ॥

अथ तृतीयो वर्गः ॥ ३ ॥

समाववर्ति विष्ठितो जिगीषुर्विश्वेषां कामश्चरताममाभूत् ।
शश्वाँ अपो विकृतं हित्व्यागादनु व्रतं सवितुर्दैव्यस्य ॥ ६ ॥
त्वया हितमप्य्मप्सु भागं धन्वान्वा मृगयसो वि तस्थुः ।
वनानि विभ्यो नकिरस्य तानि व्रता देवस्य सवितुर्मिनन्ति ॥ ७ ॥
याद्राध्यं१ वरुणो योनिमप्यमनिशितं निमिषि जर्भुराणः ।
विश्वो मार्ताण्डो व्रजमा पशुर्गात्स्थशो जन्मानि सविता व्याकः ॥ ८ ॥
न यस्येन्द्रो वरुणो न मित्रो व्रतमर्यमा न मिनन्ति रुद्रः।
नारातयस्तमिदं स्वस्ति हुवे देवं सवितारं नमोभिः ॥ ९ ॥
भगं धियं वाजयन्तः पुरन्धिं नराशंसो ग्नास्पतिर्नो अव्याः ।
आये वामस्य सङ्गथे रयीणां प्रिया देवस्य सवितुः स्याम ॥ १० ॥
अस्मभ्यं तद्दिवो अद्भ्यः पृथिव्यास्त्वया दत्त काम्यं राध आ गात्।
शं यत्स्तोतृभ्य आपये भवात्युरुशंसाय सवितर्जरित्रे ॥ ११ ॥

[३९] एकोनचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—गृत्समदः ॥ देवता—अश्विनौ ॥ छन्दः—१ निचृत्त्रिष्टुप्; २ भुरिक्पङ्क्तिः; ३ विराट्त्रिष्टुप्; ४, ७, ८ त्रिष्टुप्; ५, ६ स्वराट्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१, ३, ४, ७, ८ धैवतः; २, ५, ६ पञ्चमः ॥

अथ चतुर्थो वर्गः ॥ ४ ॥

ग्रावाणेव तदिदर्थं जरेथे गृध्रेव वृक्षं निधिमन्तमच्छ ।
ब्रह्माणेव विदथ उक्थशासा दूतेव हव्या जन्या पुरुत्रा ॥ १ ॥
प्रातर्यावाणा रथ्येव वीराजेव यमा वरमा सचेथे ।
मेनेइव तन्वा३ शुम्भमाने दम्पतीव क्रतुविदा जनेषु ॥ २ ॥
शृङ्गेव नः प्रथमा गन्तमर्वाक्छफाविव जर्भुराणा तरोभिः ।
चक्रवाकेव प्रति वस्तोरुस्रार्वाञ्चा यातं रथ्येव शक्रा ॥ ३ ॥

नावेव नः पारयतं युगेव नभ्येव न उपधीव प्रधीव ।
श्वानेव नो अरिषण्या तनूनां खृगलेव विस्रसः पातमस्मान् ॥ ४ ॥
वातेवाजुर्या नद्येव रीतिरक्षीइव चक्षुषा यातमर्वाक् ।
हस्ताविव तन्वे३ शंभविष्ठा पादेव नो नयतं वस्यो अच्छ ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमो वर्गः ॥ ५ ॥

ओष्ठाविव मध्वास्ने वदन्ता स्तनाविव पिप्यतं जीवसे नः ।
नासेव नस्तन्वो रक्षितारा कर्णाविव सुश्रुता भूतमस्मे ॥ ६ ॥
हस्तेव शक्तिमभि सन्ददी नः क्षामेव नः समजतं रजांसि ।
इमा गिरो अश्विना युष्मयन्तीः क्ष्णोत्रेणेव स्वधितिं सं शिशीतम् ॥ ७ ॥
एतानि वामश्विना वर्धनानि ब्रह्म स्तोमं गृत्समदासो अक्रन् ।
तानि नरा जुजुषाणोप यातं बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ ८ ॥

[४०] चत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—गृत्समदः ॥ देवता—सोमापूषणावदितिश्च ॥ छन्दः—१, ३ त्रिष्टुप्; २ विराट्त्रिष्टुप्; ४ स्वराट्पङ्क्तिः; ५, ६ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१-३, ५, ६ धैवतः; ४ पञ्चमः ॥

अथ षष्ठो वर्गः ॥ ६ ॥

सोमापूषणा जनना रयीणां जनना दिवो जनना पृथिव्याः ।
जातौ विश्वस्य भुवनस्य गोपौ देवा अकृण्वन्नमृतस्य नाभिम् ॥ १ ॥
इमौ देवौ जायमानौ जुषन्तेमौ तमांसि गूहतामजुष्टा ।
आभ्यामिन्द्रः पक्वमामास्वन्तः सोमापूषभ्यां जनदुस्रियासु ॥ २ ॥
सोमापूषणा रजसो विमानं सप्तचक्रं रथमविश्वमिन्वम् ।
विषूवृतं मनसा युज्यमानं तं जिन्वथो वृषणा पञ्चरश्मिम् ॥ ३ ॥
दिव्य१न्यः सदनं चक्र उच्चा पृथिव्यामन्यो अध्यन्तरिक्षे ।
तावस्मभ्यं पुरुवारं पुरुक्षुं रायस्पोषं वि ष्यतां नाभिमस्मे ॥ ४ ॥
विश्वान्यन्यो भुवना जजान विश्वमन्यो अभिचक्षाण एति ।
सोमापूषणाववतं धियं मे युवाभ्यां विश्वाः पृतना जयेम ॥ ५ ॥

धियं पूषा जिन्वतु विश्वमिन्वो रयिं सोमो रयिपतिर्दधातु ।
अवतु देव्यदितिरनर्वा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ ६ ॥

[४१] एकचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—गृत्समदः ॥ देवता—१, २ वायुः; ३ इन्द्रवायू; ४-६ मित्रावरुणौ; ७-९ अश्विनौ; १०-१२ इन्द्रः; १३-१५ विश्वे देवाः; १६-१८ सरस्वती; १९-२१ द्यावापृथिव्यौ हविर्धाने वा ॥ छन्दः—१, ३, ४, ६, १०, ११, १३, १५, १९-२१ गायत्री; २, ५, ९, १२, १४, निचृद्गायत्री; ७ पादनिचृदद्गायत्री; ८ विराड्गायत्री; १६ अनुष्टुप्; १७ उष्णिक्; १८ बृहती ॥ स्वरः—१-१५, १९-२१ षड्जः; १६ गान्धारः; १७ ऋषभः; १८ मध्यमः ॥

अथ सप्तमो वर्गः ॥ ७ ॥

वायो ये ते सहस्रिणो रथासस्तेभिरा गहि । नियुत्वान्त्सोमपीतये ॥ १ ॥
नियुत्वान्वायवा गह्ययं शुक्रो अयामि ते । गन्तासि सुन्वतो गृहम् ॥ २ ॥
शुक्रस्याद्य गवाशिर इन्द्रवायू नियुत्वतः । आ यातं पिबतं नरा ॥ ३ ॥
अयं वां मित्रावरुणा सुतः सोम ऋतावृधा । ममेदिह श्रुतं हवम् ॥ ४ ॥
राजानावनभिद्रुहा ध्रुवे सदस्युत्तमे । सहस्रस्थूण आसाते ॥ ५ ॥

अथ अष्टमो वर्गः ॥ ८ ॥

ता सम्राजा घृतासुती आदित्या दानुनस्पती । सचेते अनवह्वरम् ॥ ६ ॥
गोमदू षु नासत्याश्वावद्यातमश्विना । वर्ती रुद्रा नृपाय्यम् ॥ ७ ॥
न यत्परो नान्तर आदधर्षद् वृषणवसू । दुःशंसो मर्त्यो रिपुः ॥ ८ ॥
ता न आ वोळ्हमश्विना रयिं पिशङ्गसन्दृशम् । धिष्ण्या वरिवोविदम् ॥ ९ ॥
इन्द्रो अङ्ग महद्भयमभी षदप चुच्यवत् । स हि स्थिरो विचर्षणिः ॥ १० ॥

अथ नवमो वर्गः ॥ ९ ॥

इन्द्रश्च मृळयाति नो न नः पश्चादघं नशत् । भद्रं भवाति नः पुरः ॥ ११ ॥
इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत् । जेता शत्रून्विचर्षणिः ॥ १२ ॥
विश्वे देवास आ गत शृणुता म इमं हवम् । एदं बर्हिर्नि षीदत ॥ १३ ॥
तीव्रो वो मधुमाँ अयं शुनहोत्रेषु मत्सरः । एतं पिबत काम्यम् ॥ १४ ॥
इन्द्रज्येष्ठा मरुद्गणा देवासः पूषरातयः । विश्वे मम श्रुता हवम् ॥ १५ ॥

अथ दशमो वर्गः ॥ १० ॥

अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति ।
अप्रशस्ताइव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि ॥ १६ ॥
त्वे विश्वा सरस्वति श्रितायूंषि देव्याम् ।
शुनहोत्रेषु मत्स्व प्रजां देवि दिदिड्ढि नः ॥ १७ ॥
इमा ब्रह्म सरस्वति जुषस्व वाजिनीवति ।
या ते मन्म गृत्समदा ऋतावरि प्रिया देवेषु जुह्वति ॥ १८ ॥
प्रेतां यज्ञस्य शंभुवा युवामिदा वृणीमहे। अग्निं च हव्यवाहनम् ॥ १९ ॥
द्यावा नः पृथिवी इमं सिध्रमद्य दिविस्पृशम्। यज्ञं देवेषु यच्छताम् ॥ २० ॥
आ वामुपस्थमद्रुहा देवाः सीदन्तु यज्ञियाः। इहाद्य सोमपीतये ॥ २१ ॥

[४२] द्विचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—गृत्समदः ॥ देवता—कपिञ्जलइवेन्द्रः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

अथ एकादशो वर्गः ॥ ११ ॥

कनिक्रदज्जनुषं प्रब्रुवाण इयर्ति वाचमरितेव नावम् ।
सुमङ्गलश्च शकुने भवासि मा त्वा का चिदभिभा विश्व्या विदत् ॥ १ ॥
मा त्वा श्येन उद्वधीन्मा सुपर्णो मा त्वा विददिषुमान्वीरो अस्ता।
पित्र्यामनु प्रदिशं कनिक्रदत्सुमङ्गलो भद्रवादी वदेह ॥ २ ॥
अव क्रन्द दक्षिणतो गृहाणां सुमङ्गलो भद्रवादी शकुन्ते ।
मा नः स्तेन ईशत माघशंसो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ ३ ॥

[४३] त्रिचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—गृत्समदः ॥ देवता—कपिञ्जलइवेन्द्रः ॥ छन्दः—१ जगती; २ भुरिगतिशक्वरी;
३ निचृज्जगती ॥ स्वरः—१, ३ निषादः; २ पञ्चमः ॥

अथ द्वादशो वर्गः ॥ १२ ॥

प्रदक्षिणिदभि गृणन्ति कारवो वयो वदन्त ऋतुथा शकुन्तयः।
उभे वाचौ वदति सामगाइव गायत्रं च त्रैष्टुभं चानु राजति ॥ १ ॥

उद्गातेव शकुने साम गायसि ब्रह्मपुत्रइव सवनेषु शंससि ।
वृषेव वाजी शिशुमतीरपीत्या सर्वतो नः शकुने भद्रमा वद
विश्वतो नः शकुने पुण्यमा वद ॥ २ ॥
आवदंस्त्वं शकुने भद्रमा वद तूष्णीमासीनः सुमतिं चिकिद्धि नः।
यदुत्पतन्वदसि कर्करिर्यथा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ ३ ॥

इति द्वितीयं मण्डलम् ॥

अथ तृतीयं मण्डलम्

प्रथमोऽनुवाकः [१] प्रथमं सूक्तम्

ऋषिः—गाथिनो विश्वामित्रः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१, ३-५, ९, ११, १२, १५, १७, १९, २० निचृत्त्रिष्टुप्; २, ६, ७, १३, १४ त्रिष्टुप्; ८, १६, २३ स्वराट्पङ्क्तिः; १०, २१ विराट्त्रिष्टुप्; १८ भुरिक्पङ्क्तिः; २२ ज्योतिष्मतीत्रिष्टुप्॥ स्वरः—१-७, ९-१५, १७, १९-२२ धैवतः; ८, १६, १८, २३ पञ्चमः॥

अथ त्रयोदशो वर्गः ॥ १३ ॥

सोम॑स्य मा त॒वसं॒ वक्ष्य॑ग्ने॒ वह्निं॑ चकर्थ वि॒दथे॒ यज॑ध्यै ।
दे॒वाँ अच्छा॒ दीद्य॑द्युञ्जे॒ अद्रिं॑ शमा॒ये अ॑ग्ने त॒न्वं॑ जुषस्व ॥ १ ॥
प्राञ्चं॑ य॒ज्ञं च॑कृम॒ वर्ध॑तां॒ गीः स॒मिद्भि॑र॒ग्निं नम॑सा दुवस्यन् ।
दि॒वः श॑शासुर्वि॒दथा॑ कवी॒नां गृत्सा॑य चित्त॒वसे॑ गा॒तुमी॑षुः ॥ २ ॥
मयो॑ दधे॒ मेधि॑रः पू॒तद॑क्षो दि॒वः सु॒बन्धु॑र्ज॒नुषा॑ पृथि॒व्याः ।
अवि॑न्दन्नु दर्श॒तम॒प्स्व१॒॑न्तर्दे॒वासो॑ अ॒ग्निम॒पसि॒ स्वसॄ॑णाम् ॥ ३ ॥
अव॑र्धयन्त्सु॒भगं॑ स॒प्त य॒ह्वीः श्वे॒तं ज॑ज्ञा॒नम॑रु॒षं म॑हि॒त्वा ।
शिशुं॒ न जा॒तम॒भ्या॑रु॒रश्वा॑ दे॒वासो॑ अ॒ग्निं जनि॑मन्वपुष्यन् ॥ ४ ॥
शु॒क्रेभि॒रङ्गै॒ रज॑ आतत॒न्वान्क्रतुं॑ पुना॒नः क॒विभिः॑ प॒वित्रैः॑ ।
शो॒चिर्वसा॑नः॒ पर्यायु॑र॒पां श्रियो॑ मिमीते बृह॒तीरनू॑नाः ॥ ५ ॥

अथ चतुर्दशो वर्गः ॥ १४ ॥

व॒व्राजा॑ सी॒मन॑दतीर॒दब्धा दि॒वो य॒ह्वीरव॑साना॒ अन॑ग्नाः ।
सना॒ अत्र॑ युव॒तयः॒ सयो॑नी॒रेकं॒ गर्भं॑ दधिरे स॒प्त वाणीः॑ ॥ ६ ॥
स्ती॒र्णा अ॑स्य सं॒हतो॑ वि॒श्वरू॑पा घृ॒तस्य॒ योनौ॑ स्र॒वथे॒ मधू॑नाम् ।
अस्थु॒रत्र॑ धे॒नवः॒ पिन्व॑माना म॒ही द॒स्मस्य॑ मा॒तरा॑ समी॒ची ॥ ७ ॥
ब॒भ्रा॒णः सू॑नो सहसो॒ व्य॑द्यौ॒द्दधा॑नः शु॒क्रा र॑भ॒सा वपूं॑षि ।
श्चोत॑न्ति॒ धारा॒ मधु॑नो घृ॒तस्य॒ वृषा॒ यत्र॑ वावृ॒धे काव्ये॑न ॥ ८ ॥

पि॒तुश्चि॒दूध॑र्ज॒नुषा॑ विवेद॒ व्य॑स्य॒ धारा॑ असृज॒द्वि धेनाः॑ ।
गुहा॒ चर॑न्तं॒ सखि॑भिः शि॒वेभि॑र्दि॒वो य॒ह्वीभि॒र्न गुहा॑ बभूव ॥ ९ ॥
पि॒तुश्च॒ गर्भं॑ जनि॒तुश्च॑ बभ्रे पू॒र्वीरेको॑ अधय॒त्पीप्या॑नाः ।
वृष्णे॑ स॒पत्नी॒ शुच॑ये॒ सब॑न्धू उ॒भे अ॑स्मै मनु॒ष्ये॒३॒॑ नि पा॑हि ॥ १० ॥

अथ पञ्चदशो वर्गः ॥ १५ ॥

उ॒रौ म॒हाँ अ॑निबा॒धे व॑व॒र्धापो॑ अ॒ग्निं य॒शसः॒ सं हि पू॒र्वीः ।
ऋ॒तस्य॒ योना॑वशय॒द्दमू॑ना जा॒मी॒नाम॒ग्निर॒पसि॒ स्वसॄ॑णाम् ॥ ११ ॥
अ॒क्रो न ब॒भ्रिः स॑मि॒थे म॒हीनां॑ दिदृ॒क्षेयः॑ सू॒नवे॒ भाऋ॑जीकः ।
उ॒दु॒स्रिया॒ जनि॑ता॒ यो ज॒जाना॒पां गर्भो॒ नृत॑मो य॒ह्वो अ॒ग्निः ॥ १२ ॥
अ॒पां गर्भं॑ दर्श॒तमोष॑धीनां॒ वना॑ जजान सु॒भगा॒ विरू॑पम् ।
दे॒वास॑श्चि॒न्मन॑सा॒ सं हि ज॒ग्मुः पनि॑ष्ठं जा॒तं त॒वसं॑ दुवस्यन् ॥ १३ ॥
बृ॒हन्त॒ इद्भा॒नवो॒ भाऋ॑जीकम॒ग्निं स॑चन्त वि॒द्युतो॒ न शु॒क्राः ।
गुहे॑व वृ॒द्धं सद॑सि॒ स्वे अ॒न्तर॑पा॒र ऊ॒र्वे अ॒मृतं॒ दुहा॑नाः ॥ १४ ॥
ईळे॑ च त्वा॒ यज॑मानो ह॒विर्भि॒रीळे॑ सखि॒त्वं सु॑म॒तिं निका॑मः ।
दे॒वैरवो॑ मिमीहि॒ सं ज॑रि॒त्रे रक्षा॑ च नो॒ दम्ये॑भि॒रनी॑कैः ॥ १५ ॥

अथ षोडशो वर्गः ॥ १६ ॥

उ॒प॒क्षे॒तार॒स्तव॑ सुप्रणी॒तेऽग्ने॒ विश्वा॑नि॒ धन्या॒ दधा॑नाः ।
सु॒रेत॑सा॒ श्रव॑सा॒ तुञ्ज॑माना अ॒भि ष्या॑म पृतना॒यूँरदे॑वान् ॥ १६ ॥
आ दे॒वाना॑मभवः के॒तुर॑ग्ने म॒न्द्रो विश्वा॑नि॒ काव्या॑नि वि॒द्वान् ।
प्रति॒ मर्ताँ॑ अवासयो॒ दमू॑ना॒ अनु॑ दे॒वान्र॒थिरो॑ यासि॒ साध॑न् ॥ १७ ॥
नि दु॑रो॒णे अ॒मृतो॒ मर्त्या॑नां॒ राजा॑ ससाद वि॒दथा॑नि॒ साध॑न् ।
घृ॒तप्र॑तीक उर्वि॒या व्य॑द्यौद॒ग्निर्विश्वा॑नि॒ काव्या॑नि वि॒द्वान् ॥ १८ ॥
आ नो॑ गहि स॒ख्येभिः॑ शि॒वेभि॑र्म॒हान्म॒हीभि॑रू॒तिभिः॑ सर॒ण्यन् ।
अ॒स्मे र॒यिं ब॑हु॒लं सन्त॑रुत्रं सु॒वाचं॑ भा॒गं य॒शसं॑ कृधी नः ॥ १९ ॥
ए॒ता ते॑ अग्ने॒ जनि॑मा॒ सना॑नि॒ प्र पू॒र्व्याय॒ नूत॑नानि वोचम् ।
म॒हान्ति॒ वृष्णे॒ सव॑ना कृ॒तेमा जन्म॑जन्म॒न्निहि॑तो जा॒तवे॑दाः ॥ २० ॥

जन्मंजन्मन्निहितो जातवेदा विश्वामित्रेभिरिध्यते अजस्रः ।
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ॥ २१ ॥
इमं यज्ञं सहसावन्त्वं नो देवत्रा धेहि सुक्रतो रराणः ।
प्र यंसि होतर्बृहतीरिषो नोऽग्ने महि द्रविणमा यजस्व ॥ २२ ॥
इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥ २३ ॥

[२] द्वितीयं सूक्तम्

ऋषिः—विश्वामित्रः ॥ देवता—अग्निर्वैश्वानरः ॥ छन्दः—१, ३, १० जगती; २, ४, ६, ८, ९, ११ विराड्जगती; ५, ७, १२-१५ निचृज्जगती ॥ स्वरः—निषादः ॥

अथ सप्तदशो वर्गः ॥ १७ ॥

वैश्वानराय धिषणामृतावृधे घृतं न पूतमग्नये जनामसि ।
द्विता होतारं मनुषश्च वाघतो धिया रथं न कुलिशः समृण्वति ॥ १ ॥
स रोचयज्जनुषा रोदसी उभे स मात्रोरभवत्पुत्र ईड्यः ।
हव्यवाळग्निरजरश्चनोहितो दूळभो विशामतिथिर्विभावसुः ॥ २ ॥
क्रत्वा दक्षस्य तरुषो विधर्मणि देवासो अग्निं जनयन्त चित्तिभिः ।
रुरुचानं भानुना ज्योतिषा महामत्यं न वाजं सनिष्यन्नुप ब्रुवे ॥ ३ ॥
आ मन्द्रस्य सनिष्यन्तो वरेण्यं वृणीमहे अह्रयं वाजमृग्मियम् ।
रातिं भृगूणामुशिजं कविक्रतुमग्निं राजन्तं दिव्येन शोचिषा ॥ ४ ॥
अग्निं सुम्नाय दधिरे पुरो जना वाजश्रवसमिह वृक्तबर्हिषः ।
यतस्रुचः सुरुचं विश्वदेव्यं रुद्रं यज्ञानां साधदिष्टिमपसाम् ॥ ५ ॥

अथ अष्टादशो वर्गः ॥ १८ ॥

पावकशोचे तव हि क्षयं परि होतर्यज्ञेषु वृक्तबर्हिषो नरः ।
अग्ने दुव इच्छमानास आप्यमुपासते द्रविणं धेहि तेभ्यः ॥ ६ ॥
आ रोदसी अपृणदा स्वर्महज्जातं यदेनमपसो अधारयन् ।
सो अध्वराय परि णीयते कविरत्यो न वाजसातये चनोहितः ॥ ७ ॥

नमस्यत हव्यदातिं स्वध्वरं दुवस्यत दम्यं जातवेदसम् ।
रथीर्ऋतस्य बृहतो विचर्षणिरग्निर्देवानामभवत् पुरोहितः ॥ ८ ॥
तिस्रो यह्वस्य समिधः परिज्मनोऽग्नेरपुनन्नुशिजो अमृत्यवः ।
तासामेकामदधुर्मर्त्ये भुजमु लोकमु द्वे उप जामिमीयतुः ॥ ९ ॥
विशां कविं विश्पतिं मानुषीरिषः सं सीमकृण्वन्त्स्वधितिं न तेजसे ।
स उद्वतो निवतो याति वेविषत्स गर्भमेषु भुवनेषु दीधरत् ॥ १० ॥

अथ एकोनविंशो वर्गः ॥ १९ ॥

स जिन्वते जठरेषु प्रजज्ञिवान्वृषा चित्रेषु नानदन्न सिंहः ।
वैश्वानरः पृथुपाजा अमर्त्यो वसु रत्ना दयमानो वि दाशुषे ॥ ११ ॥
वैश्वानरः प्रत्नथा नाकमारुहद्दिवस्पृष्ठं भन्दमानः सुमन्मभिः ।
स पूर्ववज्जनयञ्जन्तवे धनं समानमज्मं पर्येति जागृविः ॥ १२ ॥
ऋतावानं यज्ञियं विप्रमुक्थ्य१मा यं दधे मातरिश्वा दिवि क्षयम् ।
तं चित्रयामं हरिकेशमीमहे सुदीतिमग्निं सुविताय नव्यसे ॥ १३ ॥
शुचिं न यामन्निषिरं स्वर्दृशं केतुं दिवो रोचनस्थामुषर्बुधम् ।
अग्निं मूर्धानं दिवो अप्रतिष्कुतं तमीमहे नमसा वाजिनं बृहत् ॥ १४ ॥
मन्द्रं होतारं शुचिमद्वयाविनं दमूनसमुक्थ्यं विश्वचर्षणिम् ।
रथं न चित्रं वपुषाय दर्शतं मनुर्हितं सदमिद्राय ईमहे ॥ १५ ॥

[३] तृतीयं सूक्तम्

ऋषिः—विश्वामित्रः ॥ देवता—वैश्वानरोऽग्निः ॥ छन्दः—१, ५ निचृज्जगती; २-४, ६, ८, ९ जगती; ७, १० विराड्जगती; ११ भुरिक्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१-१० निषादः; ११ पञ्चमः ॥

अथ विंशो वर्गः ॥ २० ॥

वैश्वानराय पृथुपाजसे विपो रत्ना विधन्त धरुणेषु गातवे ।
अग्निर्हि देवाँ अमृतो दुवस्यत्यथा धर्माणि सनता न दूदुषत् ॥ १ ॥
अन्तर्दूतो रोदसी दस्म ईयते होता निषत्तो मनुषः पुरोहितः ।
क्षयं बृहन्तं परि भूषति द्युभिर्देवेभिरग्निरिषितो धियावसुः ॥ २ ॥

केतुं यज्ञानां विदथस्य साधनं विप्रासो अग्निं महयन्त चित्तिभिः।
अपांसि यस्मिन्नधि सन्दधुर्गिरस्तस्मिन्त्सुम्नानि यजमान आ चके॥ ३॥
पिता यज्ञानामसुरो विपश्चितां विमानमग्निर्वयुनं च वाघताम्।
आ विवेश रोदसी भूरिवर्पसा पुरुप्रियो भन्दते धामभिः कविः॥ ४॥
चन्द्रमग्निं चन्द्ररथं हरिव्रतं वैश्वानरमप्सुषदं स्वर्विदम् ।
विगाहं तूर्णिं तविषीभिरावृतं भूर्णिं देवास इह सुश्रियं दधुः॥ ५॥

अथ एकविंशो वर्गः॥ २१॥

अग्निर्देवेभिर्मनुषश्च जन्तुभिस्तन्वानो यज्ञं पुरुपेशसं धिया।
रथीरन्तरीयते साधदिष्टिभिर्जीरो दमूना अभिशस्तिचातनः॥ ६॥
अग्ने जरस्व स्वपत्य आयुन्यूर्जा पिन्वस्व समिषो दिदीहि नः।
वयांसि जिन्व बृहतश्च जागृव उशिग्देवानामसि सुक्रतुर्विपाम्॥ ७॥
विश्पतिं यह्वमतिथिं नरः सदा यन्तारं धीनामुशिजं च वाघताम्।
अध्वराणां चेतनं जातवेदसं प्र शंसन्ति नमसा जूतिभिर्वृधे॥ ८॥
विभावा देवः सुरणः परि क्षितीरग्निर्बभूव शवसा सुमद्रथः।
तस्य व्रतानि भूरिपोषिणो वयमुप भूषेम दम आ सुवृक्तिभिः॥ ९॥
वैश्वानर तव धामान्या चके येभिः स्वर्विदभवो विचक्षण।
जात आपृणो भुवनानि रोदसी अग्ने ता विश्वा परिभूरसि त्मना॥ १०॥
वैश्वानरस्य दंसनाभ्यो बृहदरिणादेकः स्वपस्यया कविः।
उभा पितरा महयन्नजायताग्निर्द्यावापृथिवी भूरिरेतसा ॥ ११॥

[४] चतुर्थं सूक्तम्

ऋषिः—विश्वामित्रः॥ देवता—आप्रियः॥ छन्दः—१, ४, ७ स्वराट्पङ्क्तिः; २, ३, ५ त्रिष्टुप्; ६, ८, १०, ११ निचृत्त्रिष्टुप्; ९ विराट्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—१, ४, ७ पञ्चमः; २, ३, ५, ६, ८-११ धैवतः॥

अथ द्वाविंशो वर्गः॥ २२॥

समित्समित्सुमना बोध्यस्मे शुचाशुचा सुमतिं रासि वस्वः।
आ देव देवान्यजथाय वक्षि सखा सखीन्त्सुमना यक्ष्यग्ने॥ १॥

यं देवासस्त्रिरहन्नायजन्ते दिवेदिवे वरुणो मित्रो अग्निः।
सेमं यज्ञं मधुमन्तं कृधी नस्तनूनपाद् घृतयोनिं विधन्तम्॥ २॥
प्र दीधितिर्विश्ववारा जिगाति होतारमिळः प्रथमं यजध्यै।
अच्छा नमोभिर्वृषभं वन्दध्यै स देवान्यक्षदिषितो यजीयान्॥ ३॥
ऊर्ध्वो वां गातुरध्वरे अकार्यूर्ध्वा शोचींषि प्रस्थिता रजांसि।
दिवो वा नाभा न्यसादि होता स्तृणीमहि देवव्यचा वि बर्हिः॥ ४॥
सप्त होत्राणि मनसा वृणाना इन्वन्तो विश्वं प्रति यन्नृतेन।
नृपेशसो विदथेषु प्र जाता अभी३मं यज्ञं वि चरन्त पूर्वीः॥ ५॥

अथ त्रयस्त्रिंशो वर्गः॥ २३॥

आ भन्दमाने उषसा उपाके उत स्मयेते तन्वा३ विरूपे।
यथा नो मित्रो वरुणो जुजोषदिन्द्रो मरुत्वाँ उत वा महोभिः॥ ६॥
दैव्या होतारा प्रथमा न्यृञ्जे सप्त पृक्षासः स्वधया मदन्ति।
ऋतं शंसन्त ऋतमित्त आहुरनु व्रतं व्रतपा दीध्यानाः॥ ७॥
आ भारती भारतीभिः सजोषा इळा देवैर्मनुष्येभिरग्निः।
सरस्वती सारस्वतेभिरर्वाक् तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदन्तु ॥ ८॥
तन्नस्तुरीपमध पोषयित्नु देव त्वष्टर्वि रराणः स्यस्व ।
यतो वीरः कर्मण्यः सुदक्षो युक्तग्रावा जायते देवकामः॥ ९॥
वनस्पतेऽव सृजोप देवानग्निर्हविः शमिता सूदयाति।
सेदु होता सत्यतरो यजाति यथा देवानां जनिमानि वेद॥ १०॥
आ याह्यग्ने समिधानो अर्वाङिन्द्रेण देवैः सरथं तुरेभिः।
बर्हिर्न आस्तामदितिः सुपुत्रा स्वाहा देवा अमृता मादयन्ताम्॥ ११॥

[५] पञ्चमं सूक्तम्

ऋषिः—विश्वामित्रः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—१, २, ११ भुरिक्पङ्क्तिः; ३ पङ्क्तिः; ४ त्रिष्टुप्; ५, ७, १० निचृत्त्रिष्टुप्; ६ स्वराट्पङ्क्तिः; ८, ९ विराट्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—१-३, ६, ११ पञ्चमः; ४, ५, ७-१० धैवतः॥

अथ चतुर्विंशो वर्गः ॥ २४ ॥

प्रत्यग्निरुषसश्चेकितानोऽबोधि विप्रः पदवीः कवीनाम् ।
पृथुपाजा देवयद्भिः समिद्धोऽप द्वारा तमसो वह्निरावः ॥ १ ॥
प्रेद्वग्निर्वावृधे स्तोमेभिर्गीर्भिः स्तोतॄणां नमस्य उक्थैः ।
पूर्वीर्ऋतस्य सन्दृशश्चकानः सं दूतो अद्यौदुषसो विरोके ॥ २ ॥
अधाय्यग्निर्मानुषीषु विक्ष्व१पां गर्भो मित्र ऋतेन साधन् ।
आ हर्यतो यजतः सान्वस्थादभूदु विप्रो हव्यो मतीनाम् ॥ ३ ॥
मित्रो अग्निर्भवति यत्समिद्धो मित्रो होता वरुणो जातवेदाः ।
मित्रो अध्वर्युरिषिरो दमूना मित्रः सिन्धूनामुत पर्वतानाम् ॥ ४ ॥
पाति प्रियं रिपो अग्रं पदं वेः पाति यह्वश्चरणं सूर्यस्य ।
पाति नाभा सप्तशीर्षाणमग्निः पाति देवानामुपमादमृष्वः ॥ ५ ॥

अथ पञ्चविंशो वर्गः ॥ २५ ॥

ऋभुश्चक्र ईड्यं चारु नाम विश्वानि देवो वयुनानि विद्वान् ।
ससस्य चर्म घृतवत्पदं वेस्तदिदग्नी रक्षत्यप्रयुच्छन् ॥ ६ ॥
आ योनिमग्निर्घृतवन्तमस्थात् पृथुप्रगाणमुशन्तमुशानः ।
दीद्यानः शुचिर्ऋष्वः पावकः पुनःपुनर्मातरा नव्यसी कः ॥ ७ ॥
सद्यो जात ओषधीभिर्ववक्षे यदी वर्धन्ति प्रस्वो घृतेन ।
आपइव प्रवता शुम्भमाना उरुष्यदग्निः पित्रोरुपस्थे ॥ ८ ॥
उदु ष्टुतः समिधा यह्वो अद्यौद्वर्ष्मन्दिवो अधि नाभा पृथिव्याः ।
मित्रो अग्निरीड्यो मातरिश्वा दूतो वक्षद्यजथाय देवान् ॥ ९ ॥
उदस्तम्भीत्समिधा नाकमृष्वो३ऽग्निर्भवन्नुत्तमो रोचनानाम् ।
यदी भृगुभ्यः परि मातरिश्वा गुहा सन्तं हव्यवाहं समीधे ॥ १० ॥
इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥ ११ ॥

[६] षष्ठं सूक्तम्

ऋषिः—विश्वामित्रः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१, ५ विराट्त्रिष्टुप्; २, ७ त्रिष्टुप्; ३, ४ ८ निचृत्त्रिष्टुप्; ६, ११ भुरिक्पङ्क्तिः; ९ स्वराट्पङ्क्तिः; १० भुरिक्त्रिष्टुप् ॥
स्वरः—१-५, ७, ८, १० धैवतः; ६, ९, ११ पञ्चमः ॥

अथ षड्विंशो वर्गः ॥ २६ ॥

प्र कारवो मनना वच्यमाना देवद्रीचीं नयत देवयन्तः ।
दक्षिणावाड् वाजिनी प्राच्येति हविर्भरन्त्यग्नये घृताची ॥ १ ॥
आ रोदसी अपृणा जायमान उत प्र रिक्था अध नु प्रयज्यो ।
दिवश्चिदग्ने महिना पृथिव्या वच्यन्तां ते वह्नयः सप्तजिह्वाः ॥ २ ॥
द्यौश्च त्वा पृथिवी यज्ञियासो नि होतारं सादयन्ते दमाय ।
यदी विशो मानुषीर्देवयन्तीः प्रयस्वतीरीळते शुक्रमर्चिः ॥ ३ ॥
महान्त्सधस्थे ध्रुव आ निषत्तोऽन्तर्द्यावा माहिने हर्यमाणः ।
आस्क्रे सपत्नी अजरे अमृक्ते सबर्दुघे उरुगायस्य धेनू ॥ ४ ॥
व्रता ते अग्ने महतो महानि तव क्रत्वा रोदसी आ ततन्थ ।
त्वं दूतो अभवो जायमानस्त्वं नेता वृषभ चर्षणीनाम् ॥ ५ ॥

अथ सप्तविंशो वर्गः ॥ २७ ॥

ऋतस्य वा केशिना योग्याभिर्घृतस्नुवा रोहिता धुरि धिष्व ।
अथा वह देवान्देव विश्वान्त्स्वध्वरा कृणुहि जातवेदः ॥ ६ ॥
दिवश्चिदा ते रुचयन्त रोका उषो विभातीरनु भासि पूर्वीः ।
अपो यदग्न उशधग्वनेषु होतुर्मन्द्रस्य पनयन्त देवाः ॥ ७ ॥
उरौ वा ये अन्तरिक्षे मदन्ति दिवो वा ये रोचने सन्ति देवाः ।
ऊमा वा ये सुहवासो यजत्रा आयेमिरे रथ्यो अग्ने अश्वाः ॥ ८ ॥
ऐभिरग्ने सरथं याह्यर्वाङ् नानारथं वा विभवो ह्यश्वाः ।
पत्नीवतस्त्रिंशतं त्रींश्च देवाननुष्वधमा वह मादयस्व ॥ ९ ॥
स होता यस्य रोदसी चिदुर्वी यज्ञंयज्ञमभि वृधे गृणीतः ।
प्राची अध्वरेव तस्थतुः सुमेके ऋतावरी ऋतजातस्य सत्ये ॥ १० ॥

इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे॥ ११॥

॥इति द्वितीयाष्टकेऽष्टमोऽध्यायः॥

॥इति द्वितीयोऽष्टकः॥

अथ तृतीयाऽष्टके प्रथमोऽध्यायः

[७] सप्तमं सूक्तम्

ऋषिः—विश्वामित्रः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—१, ६, ९, १० त्रिष्टुप्; २-५, ७ निचृत्त्रिष्टुप्; ८ स्वराट्पङ्क्तिः; ११ भुरिक्पङ्क्तिः॥
स्वरः—१-७, ९, १० धैवतः; ८, ११ पञ्चमः॥

अथ प्रथमो वर्गः॥ १॥

प्र य आरुः शितिपृष्ठस्य धासेरा मातरा विविशुः सप्त वाणीः।
परिक्षिता पितरा सं चरेते प्र सर्स्राते दीर्घमायुः प्रयक्षे॥ १॥
दिवक्षसो धेनवो वृष्णो अश्वा देवीरा तस्थौ मधुमद्वहन्तीः।
ऋतस्य त्वा सदसि क्षेमयन्तं पर्येका चरति वर्तनिं गौः॥ २॥
आ सीमरोहत्सुयमा भवन्तीः पतिश्चिकित्वान्रयिविद्रयीणाम्।
प्र नीलपृष्ठो अतसस्य धासेस्ता अवासयत्पुरुधप्रतीकः ॥ ३॥
महि त्वाष्ट्रमूर्जयन्तीरजुर्यं स्तभूयमानं वहतो वहन्ति ।
व्यङ्गेभिर्दिद्युतानः सधस्थ एकामिव रोदसी आ विवेश ॥ ४॥
जानन्ति वृष्णो अरुषस्य शेवमुत ब्रध्नस्य शासने रणन्ति।
दिवोरुचः सुरुचो रोचमाना इळा येषां गण्या माहिना गीः॥ ५॥

अथ द्वितीयो वर्गः॥ २॥

उतो पितृभ्यां प्रविदानु घोषं महो महद्भ्यामनयन्त शूषम्।
उक्षा ह यत्र परि धानमक्तोरनु स्वं धाम जरितुर्ववक्ष॥ ६॥
अध्वर्युभिः पञ्चभिः सप्त विप्राः प्रियं रक्षन्ते निहितं पदं वेः।
प्राञ्चो मदन्त्युक्षणो अजुर्या देवा देवानामनु हि व्रता गुः॥ ७॥

दैव्या होतारा प्रथमा न्यृञ्जे सप्त पृक्षासः स्वधया मदन्ति।
ऋतं शंसन्त ऋतमित्त आहुरनु व्रतं व्रतपा दीध्यानाः॥ ८॥
वृषायन्ते महे अत्याय पूर्वीर्वृष्णे चित्राय रश्मयः सुयामाः।
देव होतर्मन्द्रतरश्चिकित्वान्महो देवान्रोदसी एह वक्षि ॥ ९॥
पृक्षप्रयजो द्रविणः सुवाचः सुकेतव उषसो रेवदूषुः।
उतो चिदग्ने महिना पृथिव्याः कृतं चिदेनः सं महे दशस्य॥ १०॥
इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥ ११॥

[८] अष्टमं सूक्तम्

ऋषिः—विश्वामित्रः॥ देवता—विश्वे देवाः॥ छन्दः—१, ८-१० निचृत्त्रिष्टुप्; २, ५, ६, ११ त्रिष्टुप्; ३, ७ स्वराडनुष्टुप्; ४ स्वराट्त्रिष्टुप्॥
स्वरः—१, २, ४-६, ८-११ धैवतः; ३, ७ गान्धारः॥

अथ तृतीयो वर्गः॥ ३॥

अञ्जन्ति त्वामध्वरे देवयन्तो वनस्पते मधुना दैव्येन ।
यदूर्ध्वस्तिष्ठा द्रविणेह धत्ताद्यद्वा क्षयो मातुरस्या उपस्थे ॥ १॥
समिद्धस्य श्रयमाणः पुरस्ताद् ब्रह्म वन्वानो अजरं सुवीरम्।
आरे अस्मदमतिं बाधमान उच्छ्रयस्व महते सौभगाय ॥ २॥
उच्छ्रयस्व वनस्पते वर्ष्मन्पृथिव्या अधि ।
सुमिती मीयमानो वर्चो धा यज्ञवाहसे ॥ ३॥
युवा सुवासाः परिवीत आगात्स उ श्रेयान्भवति जायमानः।
तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो३ मनसा देवयन्तः॥ ४॥
जातो जायते सुदिनत्वे अह्नां समर्य आ विदथे वर्धमानः।
पुनन्ति धीरा अपसो मनीषा देवया विप्र उदियर्ति वाचम्॥ ५॥

अथ चतुर्थो वर्गः॥ ४॥

यान्वो नरो देवयन्तो निमिम्युर्वनस्पते स्वधितिर्वा ततक्ष।
ते देवासः स्वरवस्तस्थिवांसः प्रजावदस्मे दिधिषन्तु रत्नम्॥ ६॥

ये वृक्णासो अधि क्षमि निमितासो यतस्रुचः ।
ते नो व्यन्तु वार्यं देवत्रा क्षेत्रसाधसः ॥ ७ ॥
आदित्या रुद्रा वसवः सुनीथा द्यावाक्षामा पृथिवी अन्तरिक्षम् ।
सजोषसो यज्ञमवन्तु देवा ऊर्ध्वं कृण्वन्त्वध्वरस्य केतुम् ॥ ८ ॥
हंसाइव श्रेणिशो यतानाः शुक्रा वसानाः स्वरवो न आगुः ।
उन्नीयमानाः कविभिः पुरस्ताद्देवा देवानामपि यन्ति पाथः ॥ ९ ॥
शृङ्गाणीवेच्छृङ्गिणां सं ददृशे चषालवन्तः स्वरवः पृथिव्याम् ।
वाघद्भिर्वा विहवे श्रोषमाणा अस्माँ अवन्तु पृतनाज्येषु ॥ १० ॥
वनस्पते शतवल्शो वि रोह सहस्रवल्शा वि वयं रुहेम ।
यं त्वामयं स्वधितिस्तेजमानः प्रणिनाय महते सौभगाय ॥ ११ ॥

[९] नवमं सूक्तम्

ऋषिः—विश्वामित्रः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१, ४ बृहती; २, ५-७ निचृद्बृहती; ३, ८ विराड्बृहती; ९ स्वराट्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१-८ मध्यमः; ९ पञ्चमः ॥

अथ पञ्चमो वर्गः ॥ ५ ॥

सखायस्त्वा ववृमहे देवं मर्तास ऊतये ।
अपां नपातं सुभगं सुदीदितिं सुप्रतूर्तिमनेहसम् ॥ १ ॥
कायमानो वना त्वं यन्मातॄरजगन्नपः ।
न तत्ते अग्ने प्रमृषे निवर्तनं यद् दूरे सन्निहाभवः ॥ २ ॥
अतिं तृष्टं ववक्षिथाथैव सुमना असि ।
प्रप्रान्ये यन्ति पर्यन्य आसते येषां सख्ये असि श्रितः ॥ ३ ॥
ईयिवांसमति स्रिधः शश्वतीरति सश्चतः ।
अन्वीमविन्दन्निचिरासो अद्रुहोऽप्सु सिंहमिव श्रितम् ॥ ४ ॥
ससृवांसमिव त्मनाग्निमित्था तिरोहितम् ।
ऐनं नयन्मातरिश्वा परावतो देवेभ्यो मथितं परि ॥ ५ ॥

अथ षष्ठो वर्गः ॥ ६ ॥

तं त्वा मर्ता अगृभ्णत देवेभ्यो हव्यवाहन ।
विश्वान्यद्यज्ञाँ अभिपासि मानुष तव क्रत्वा यविष्ठ्य ॥ ६ ॥
तद्भद्रं तव दंसना पाकाय चिच्छदयति ।
त्वां यदग्ने पशवः समासते समिद्धमपिशर्वरे ॥ ७ ॥
आ जुहोता स्वध्वरं शीरं पावकशोचिषम् ।
आशुं दूतमजिरं प्रत्नमीड्यं श्रुष्टी देवं सपर्यत ॥ ८ ॥
त्रीणि शता त्री सहस्राण्यग्निं त्रिंशच्च देवा नव चासपर्यन् ।
औक्षन्घृतैरस्तृणन्बर्हिरस्मा आदिद्धोतारं न्यसादयन्त ॥ ९ ॥

[१०] दशमं सूक्तम्

ऋषिः—विश्वामित्रः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१, ५, ८ विराडुष्णिक्; २ भुरिग्गायत्री; ३ उष्णिक्; ४, ६, ७, ९ निचृदुष्णिक् ॥ स्वरः—१, ३-९ ऋषभः; २ षड्जः ॥

अथ सप्तमो वर्गः ॥ ७ ॥

त्वामग्ने मनीषिणः सम्राजं चर्षणीनाम् । देवं मर्तास इन्धते समध्वरे ॥ १ ॥
त्वां यज्ञेष्वृत्विजमग्ने होतारमीळते । गोपा ऋतस्य दीदिहि स्वे दमे ॥ २ ॥
स घा यस्ते ददाशति समिधा जातवेदसे । सो अग्ने धत्ते सुवीर्यं स पुष्यति ॥ ३ ॥
स केतुरध्वराणामग्निर्देवेभिरा गमत् । अञ्जानः सप्त होतृभिर्हविष्मते ॥ ४ ॥
प्र होत्रे पूर्व्यं वचोऽग्नये भरता बृहत् । विपां ज्योतींषि बिभ्रते न वेधसे ॥ ५ ॥

अथ अष्टमो वर्गः ॥ ८ ॥

अग्निं वर्धन्तु नो गिरो यतो जायत उक्थ्यः । महे वाजाय द्रविणाय दर्शतः ॥ ६ ॥
अग्ने यजिष्ठो अध्वरे देवान्देवयते यज । होता मन्द्रो वि राजस्यति स्रिधः ॥ ७ ॥
स नः पावक दीदिहि द्युमदस्मे सुवीर्यम् । भवा स्तोतृभ्यो अन्तमः स्वस्तये ॥ ८ ॥
तं त्वा विप्रा विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते । हव्यवाहममर्त्यं सहोवृधम् ॥ ९ ॥

[११] एकादशं सूक्तम्

ऋषिः—विश्वामित्रः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१, २, ५, ७, ८ निचृद्गायत्री; ३, ९ विराड्गायत्री; ४, ६ गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

अथ नवमो वर्गः ॥ ९ ॥

अग्निर्होता पुरोहितोऽध्वरस्य विचर्षणिः । स वेद यज्ञमानुषक् ॥ १ ॥
स हव्यवाळमर्त्य उशिग्दूतश्चनोहितः । अग्निर्धिया समृण्वति ॥ २ ॥
अग्निर्धिया स चेतति केतुर्यज्ञस्य पूर्व्यः । अर्थं ह्यस्य तरणि ॥ ३ ॥
अग्निं सूनुं सनश्रुतं सहसो जातवेदसम् । वह्निं देवा अकृण्वत ॥ ४ ॥
अदाभ्यः पुरएता विशामग्निर्मानुषीणाम् । तूर्णी रथः सदा नवः ॥ ५ ॥

अथ दशमो वर्गः ॥ १० ॥

साह्वान्विश्वा अभियुजः क्रतुर्देवानाममृक्तः । अग्निस्तुविश्रवस्तमः ॥ ६ ॥
अभि प्रयांसि वाहसा दाश्वाँ अश्नोति मर्त्यः । क्षयं पावकशोचिषः ॥ ७ ॥
परि विश्वानि सुधिताग्नेरश्याम मन्मभिः । विप्रासो जातवेदसः ॥ ८ ॥
अग्ने विश्वानि वार्या वाजेषु सनिषामहे । त्वे देवास एरिरे ॥ ९ ॥

[१२] द्वादशं सूक्तम्

ऋषिः—विश्वामित्रः ॥ देवता—इन्द्राग्नी ॥ छन्दः—१, ३, ५, ८, ९ निचृद्गायत्री; २, ४, ६ गायत्री; ७ यवमध्याविराड्गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

अथ एकादशो वर्गः ॥ ११ ॥

इन्द्राग्नी आ गतं सुतं गीर्भिर्नभो वरेण्यम् । अस्य पातं धियेषिता ॥ १ ॥
इन्द्राग्नी जरितुः सचा यज्ञो जिगाति चेतनः । अया पातमिमं सुतम् ॥ २ ॥
इन्द्रमग्निं कविच्छदा यज्ञस्य जूत्या वृणे । ता सोमस्येह तृम्पताम् ॥ ३ ॥
तोशा वृत्रहणा हुवे सजित्वानापराजिता । इन्द्राग्नी वाजसातमा ॥ ४ ॥
प्र वामर्चन्त्युक्थिनो नीथाविदो जरितारः । इन्द्राग्नी इष आ वृणे ॥ ५ ॥

अथ द्वादशो वर्गः ॥ १२ ॥

इन्द्राग्नी नवतिं पुरो दासपत्नीरधूनुतम् । साकमेकेन कर्मणा ॥ ६ ॥
इन्द्राग्नी अपसस्पर्युप प्र यन्ति धीतयः । ऋतस्य पथ्या३ अनु ॥ ७ ॥
इन्द्राग्नी तविषाणि वां सधस्थानि प्रयांसि च । युवोरप्तूर्यं हितम् ॥ ८ ॥
इन्द्राग्नी रोचना दिवः परि वाजेषु भूषथः । तद्वां चेति प्र वीर्यम् ॥ ९ ॥

द्वितीयोऽनुवाकः

[१३] त्रयोदशं सूक्तम्

ऋषिः—ऋषभो वैश्वामित्रः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१ भुरिगुष्णिक्; २ ३, ५-७ निचृदनुष्टुप्; ४ विराडनुष्टुप् ॥ स्वरः—१ ऋषभः; २-७ गान्धारः ॥

अथ त्रयोदशो वर्गः ॥ १३ ॥

प्र वो देवायाग्नये बर्हिष्ठमर्चास्मै ।
गमद्देवेभिरा स नो यजिष्ठो बर्हिरा सदत् ॥ १ ॥
ऋतावा यस्य रोदसी दक्षं सचन्त ऊतयः ।
हविष्मन्तस्तमीळते तं सनिष्यन्तोऽवसे ॥ २ ॥
स यन्ता विप्र एषां स यज्ञानामथा हि षः ।
अग्निं तं वो दुवस्यत दाता यो वनिता मघम् ॥ ३ ॥
स नः शर्माणि वीतयेऽग्निर्यच्छतु शन्तमा ।
यतो नः प्रुष्णवद्वसु दिवि क्षितिभ्यो अप्स्वा ॥ ४ ॥
दीदिवांसमपूर्व्यं वस्वीभिरस्य धीतिभिः ।
ऋक्वाणो अग्निमिन्धते होतारं विश्पतिं विशाम् ॥ ५ ॥
उत नो ब्रह्मन्नविष उक्थेषु देवहूतमः ।
शं नः शोचा मरुद्वृधोऽग्ने सहस्रसातमः ॥ ६ ॥
नू नो रास्व सहस्रवत्तोकवत्पुष्टिमद्वसु ।
द्युमदग्ने सुवीर्यं वर्षिष्ठमनुपक्षितम् ॥ ७ ॥

[१४] चतुर्दशं सूक्तम्

ऋषिः—ऋषभो वैश्वामित्रः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१, ७ निचृत्त्रिष्टुप्; २, ५ त्रिष्टुप्; ३, ४ विराट्त्रिष्टुप्; ६ पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१-५, ७, धैवतः; ६ पञ्चमः ॥

अथ चतुर्दशो वर्गः ॥ १४ ॥

आ होता मन्द्रो विदथान्यस्थात्सत्यो यज्वा कवितमः स वेधाः ।
विद्युद्रथः सहसस्पुत्रो अग्निः शोचिष्केशः पृथिव्यां पाजो अश्रेत् ॥ १ ॥
अयामि ते नमउक्तिं जुषस्व ऋतावस्तुभ्यं चेतते सहस्वः ।
विद्वाँ आ वक्षि विदुषो नि षत्सि मध्य आ बर्हिरूतये यजत्र ॥ २ ॥

द्रवतां त उषसा वाजयन्ती अग्ने वातस्य पथ्याभिरच्छ।
यत्सीमञ्जन्ति पूर्व्यं हविर्भिरा वन्धुरेव तस्थतुर्दुरोणे॥ ३॥
मित्रश्च तुभ्यं वरुणः सहस्वोऽग्ने विश्वे मरुतः सुम्नमर्चन्।
यच्छोचिषा सहसस्पुत्र तिष्ठा अभि क्षितीः प्रथयन्त्सूर्यो नॄन्॥ ४॥
वयं ते अद्य ररिमा हि काममुत्तानहस्ता नमसोपसद्य।
यजिष्ठेन मनसा यक्षि देवानस्रेधता मन्मना विप्रो अग्ने॥ ५॥
त्वद्धि पुत्र सहसो वि पूर्वीर्देवस्य यन्त्यूतयो वि वाजाः।
त्वं देहि सहस्रिणं रयिं नोऽद्रोघेण वचसा सत्यमग्ने॥ ६॥
तुभ्यं दक्ष कविक्रतो यानीमा देव मर्तासो अध्वरे अकर्म।
त्वं विश्वस्य सुरथस्य बोधि सर्वं तदग्ने अमृत स्वदेह॥ ७॥

[१५] पञ्चदशं सूक्तम्

ऋषिः—उत्कीलः कात्यः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—१, ४ त्रिष्टुप्; २ पङ्क्तिः; ३, ७ भुरिक्पङ्क्तिः; ५ विराट्त्रिष्टुप्; ६ निचृत्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—१, ४-६ धैवतः; २, ३, ७ पञ्चमः॥

अथ पञ्चदशो वर्गः॥ १५॥

वि पाजसा पृथुना शोशुचानो बाधस्व द्विषो रक्षसो अमीवाः।
सुशर्मणो बृहतः शर्मणि स्यामग्नेरहं सुहवस्य प्रणीतौ॥ १॥
त्वं नो अस्या उषसो व्युष्टौ त्वं सूर उदिते बोधि गोपाः।
जन्मेव नित्यं तनयं जुषस्व स्तोमं मे अग्ने तन्वा सुजात॥ २॥
त्वं नृचक्षा वृषभानु पूर्वीः कृष्णास्वग्ने अरुषो वि भाहि।
वसो नेषि च पर्षि चात्यंहः कृधी नो राय उशिजो यविष्ठ॥ ३॥
अषाळ्हो अग्ने वृषभो दिदीहि पुरो विश्वाः सौभगा संजिगीवान्।
यज्ञस्य नेता प्रथमस्य पायोर्जातवेदो बृहतः सुप्रणीते॥ ४॥
अच्छिद्रा शर्म जरितः पुरूणि देवाँ अच्छा दीद्यानः सुमेधाः।
रथो न सस्निरभि वक्षि वाजमग्ने त्वं रोदसी नः सुमेके॥ ५॥
प्र पीपय वृषभ जिन्व वाजानग्ने त्वं रोदसी नः सुदोघे।
देवेभिर्देव सुरुचा रुचानो मा नो मर्तस्य दुर्मतिः परि ष्ठात्॥ ६॥

इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥ ७॥

[१६] षोडशं सूक्तम्

ऋषिः—उत्कीलः कात्यः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—१, ५ भुरिगनुष्टुप्; २, ६ निचृत्पङ्क्तिः; ३ निचृद्बृहती; ४ भुरिक्बृहती॥ स्वरः—१, ५ गान्धारः; २, ६ पञ्चमः; ३, ४ मध्यमः॥

अथ षोडशो वर्गः॥ १६॥

अयमग्निः सुवीर्यस्येशे महः सौभगस्य।
राय ईशे स्वपत्यस्य गोमत ईशे वृत्रहथानाम्॥ १॥
इमं नरो मरुतः सश्चता वृधं यस्मिन्रायः शेवृधासः।
अभि ये सन्ति पृतनासु दूढ्यो विश्वाहा शत्रुमादभुः॥ २॥
स त्वं नो रायः शिशीहि मीढ्वो अग्ने सुवीर्यस्य।
तुविद्युम्न वर्षिष्ठस्य प्रजावतोऽनमीवस्य शुष्मिणः ॥ ३॥
चक्रिर्यो विश्वा भुवनाभि सासहिश्चक्रिर्देवेष्वा दुवः।
आ देवेषु यतत आ सुवीर्य आ शंस उत नृणाम्॥ ४॥
मा नो अग्नेऽमतये मावीरतायै रीरधः।
मागोतायै सहसस्पुत्र मा निदेऽप द्वेषांस्या कृधि॥ ५॥
शग्धि वाजस्य सुभग प्रजावतोऽग्ने बृहतो अध्वरे।
सं राया भूयसा सृज मयोभुना तुविद्युम्न यशस्वता॥ ६॥

[१७] सप्तदशं सूक्तम्

ऋषिः—उत्कीलः कात्यः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—१, २ त्रिष्टुप्; ३ निचृत्पङ्क्तिः; ४ विराट्त्रिष्टुप्; ५ निचृत्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—१, २, ४, ५ धैवतः; ३ पञ्चमः॥

अथ सप्तदशो वर्गः॥ १७॥

समिध्यमानः प्रथमानु धर्मा समक्तुभिरज्यते विश्ववारः।
शोचिष्केशो घृतनिर्णिक्पावकः सुयज्ञो अग्निर्यजथाय देवान्॥ १॥
यथायजो होत्रमग्ने पृथिव्या यथा दिवो जातवेदश्चिकित्वान्।
एवानेन हविषा यक्षि देवान्मनुष्वद्यज्ञं प्र तिरेममद्य ॥ २॥

त्रीण्यायूंषि तव जातवेदस्तिस्र आजानीरुषसस्ते अग्ने ।
ताभिर्देवानामवो यक्षि विद्वानथा भव यजमानाय शं योः ॥ ३ ॥
अग्निं सुदीतिं सुदृशं गृणन्तो नमस्यामस्त्वेड्यं जातवेदः ।
त्वां दूतमरतिं हव्यवाहं देवा अकृण्वन्नमृतस्य नाभिम् ॥ ४ ॥
यस्त्वद्धोता पूर्वो अग्ने यजीयान्द्विता च सत्ता स्वधया च शंभुः ।
तस्यानु धर्म प्र यजा चिकित्वोऽथा नो धा अध्वरं देववीतौ ॥ ५ ॥

[१८] अष्टादशं सूक्तम्

ऋषिः—कतो वैश्वामित्रः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१, ३, ५ त्रिष्टुप्;
२, ४ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

अथ अष्टादशो वर्गः ॥ १८ ॥

भवा नो अग्ने सुमना उपेतौ सखेव सख्ये पितरेव साधुः ।
पुरुद्रुहो हि क्षितयो जनानां प्रति प्रतीचीर्दहतादरातीः ॥ १ ॥
तपो ष्वग्ने अन्तराँ अमित्रान्तपा शंसमररुषः परस्य ।
तपो वसो चिकितानो अचित्तान्वि ते तिष्ठन्तामजरा अयासः ॥ २ ॥
इध्मेनाग्न इच्छमानो घृतेन जुहोमि हव्यं तरसे बलाय ।
यावदीशे ब्रह्मणा वन्दमान इमां धियं शतसेयाय देवीम् ॥ ३ ॥
उच्छोचिषा सहसस्पुत्र स्तुतो बृहद्वयः शशमानेषु धेहि ।
रेवदग्ने विश्वामित्रेषु शं योर्मर्मृज्मा ते तन्वं१ भूरि कृत्वः ॥ ४ ॥
कृधि रत्नं सुसनितर्धनानां स घेदग्ने भवसि यत्समिद्धः ।
स्तोतुर्दुरोणे सुभगस्य रेवत्सृप्रा करस्ना दधिषे वपूंषि ॥ ५ ॥

[१९] एकोनविंशं सूक्तम्

ऋषिः—गाथी कौशिकः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप्; २, ४, ५ विराट्-
त्रिष्टुप्; ३ स्वराट्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१, २, ४, ५ धैवतः; ३ पञ्चमः ॥

अथ एकोनविंशो वर्गः ॥ १९ ॥

अग्निं होतारं प्र वृणे मियेधे गृत्सं कविं विश्वविदममूरम् ।
स नो यक्षद्देवताता यजीयान्राये वाजाय वनते मघानि ॥ १ ॥

प्र ते अग्ने हविष्मतीमियर्म्यच्छा सुद्युम्नां रातिनीं घृताचीम् ।
प्रदक्षिणिद्देवतातिमुराणः सं रातिभिर्वसुभिर्यज्ञमश्रेत् ॥ २ ॥
स तेजीयसा मनसा त्वोत उत शिक्ष स्वपत्यस्य शिक्षोः ।
अग्ने रायो नृतमस्य प्रभूतौ भूयाम ते सुष्टुतयश्च वस्वः ॥ ३ ॥
भूरीणि हि त्वे दधिरे अनीकाग्ने देवस्य यज्यवो जनासः ।
स आ वह देवतातिं यविष्ठ शर्धो यदद्य दिव्यं यजासि ॥ ४ ॥
यत्त्वा होतारमनजन्मियेधे निषादयन्तो यजथाय देवाः ।
स त्वं नो अग्नेऽवितेह बोध्यधि श्रवांसि धेहि नस्तनूषु ॥ ५ ॥

[२०] विंशं सूक्तम्

ऋषिः—गाथी कौशिकः ॥ देवता—विश्वे देवाः ॥ छन्दः—१ विराट्त्रिष्टुप्;
२ निचृत्त्रिष्टुप्; ३ भुरिक्त्रिष्टुप्; ४, ५ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

अथ विंशो वर्गः ॥ २० ॥

अग्निमुषसमश्विना दधिक्रां व्युष्टिषु हवते वह्निरुक्थैः ।
सुज्योतिषो नः शृण्वन्तु देवाः सजोषसो अध्वरं वावशानाः ॥ १ ॥
अग्ने त्री ते वाजिना त्री षधस्था तिस्रस्ते जिह्वा ऋतजात पूर्वीः ।
तिस्र उ ते तन्वो देववातास्ताभिर्नः पाहि गिरो अप्रयुच्छन् ॥ २ ॥
अग्ने भूरीणि तव जातवेदो देव स्वधावोऽ मृतस्य नाम ।
याश्च माया मायिनां विश्वमिन्व त्वे पूर्वीः सन्दधुः पृष्टबन्धो ॥ ३ ॥
अग्निर्नेता भगइव क्षितीनां दैवीनां देव ऋतुपा ऋतावा ।
स वृत्रहा सनयो विश्ववेदाः पर्षद्विश्वाति दुरिता गृणन्तम् ॥ ४ ॥
दधिक्रामग्निमुषसं च देवीं बृहस्पतिं सवितारं च देवम् ।
अश्विना मित्रावरुणा भगं च वसून्रुद्राँ आदित्याँ इह हुवे ॥ ५ ॥

[२१] एकविंशं सूक्तम्

ऋषिः—गाथी कौशिकः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१, ४ त्रिष्टुप्; २, ३ अनुष्टुप्;
५ विराड्बृहती ॥ स्वरः—१, ४ धैवतः; २, ३ गान्धारः; ५ मध्यमः ॥

अथ एकविंशो वर्गः ॥ २१ ॥

इमं नो यज्ञममृतेषु धेहीमा हव्या जातवेदो जुषस्व ।
स्तोकानामग्ने मेदसो घृतस्य होतः प्राशान प्रथमो निषद्य ॥ १ ॥
घृतवन्तः पावक ते स्तोकाः श्चोतन्ति मेदसः ।
स्वधर्मन्देववीतये श्रेष्ठं नो धेहि वार्यम् ॥ २ ॥
तुभ्यं स्तोका घृतश्चुतोऽग्ने विप्राय सन्त्य ।
ऋषिः श्रेष्ठः समिध्यसे यज्ञस्य प्राविता भव ॥ ३ ॥
तुभ्यं श्चोतन्त्यध्रिगो शचीवः स्तोकासो अग्ने मेदसो घृतस्य ।
कविशस्तो बृहता भानुनागा हव्या जुषस्व मेधिर ॥ ४ ॥
ओजिष्ठं ते मध्यतो मेद उद्भृतं प्र ते वयं ददामहे ।
श्चोतन्ति ते वसो स्तोका अधि त्वचि प्रति तान्देवशो विहि ॥ ५ ॥

[२२] द्वाविंशं सूक्तम्

ऋषिः—गाथी कौशिकः ॥ देवता—पुरीष्या अग्नयः ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप्; २, ३ भुरिक्पङ्क्तिः; ५ निचृत्पङ्क्तिः; ४ विराडनुष्टुप् ॥ स्वरः—१ धैवतः; २, ३, ५ पञ्चमः; ४ ऋषभः ॥

अथ द्वाविंशो वर्गः ॥ २२ ॥

अयं सो अग्निर्यस्मिन्त्सोममिन्द्रः सुतं दधे जठरे वावशानः ।
सहस्रिणं वाजमत्यं न सप्तिं ससवान्त्सन्त्स्तूयसे जातवेदः ॥ १ ॥
अग्ने यत्ते दिवि वर्चः पृथिव्यां यदोषधीष्वप्स्वा यजत्र ।
येनान्तरिक्षमुर्वाततन्थ त्वेषः स भानुरर्णवो नृचक्षाः ॥ २ ॥
अग्ने दिवो अर्णमच्छा जिगास्यच्छा देवाँ ऊचिषे धिष्ण्या ये ।
या रोचने परस्तात्सूर्यस्य याश्चावस्तादुपतिष्ठन्त आपः ॥ ३ ॥
पुरीष्यासो अग्नयः प्रावणेभिः सजोषसः ।
जुषन्तां यज्ञमद्रुहोऽनमीवा इषो महीः ॥ ४ ॥
इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥ ५ ॥

[२३] त्रयोविंशं सूक्तम्

ऋषिः—देवश्रवा देववातश्च भारतौ ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१ विराट्त्रिष्टुप्; २-५ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

अथ त्रयोविंशो वर्गः ॥ २३ ॥

निर्मथितः सुधित आ सधस्थे युवा कविरध्वरस्य प्रणेता ।
जूर्यत्स्वग्निरजरो वनेष्वत्रा दधे अमृतं जातवेदाः ॥ १ ॥
अमन्थिष्टां भारता रेवदग्निं देवश्रवा देववातः सुदक्षम् ।
अग्ने वि पश्य बृहताभि रायेषां नो नेता भवतादनु द्यून् ॥ २ ॥
दश क्षिपः पूर्व्यं सीमजीजनन्त्सुजातं मातृषु प्रियम् ।
अग्निं स्तुहि दैववातं देवश्रवो यो जनानामसद्वशी ॥ ३ ॥
नि त्वा दधे वर आ पृथिव्या इळायास्पदे सुदिनत्वे अह्नाम् ।
दृषद्वत्यां मानुष आपयायां सरस्वत्यां रेवदग्ने दिदीहि ॥ ४ ॥
इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥ ५ ॥

[२४] चतुर्विंशं सूक्तम्

ऋषिः—विश्वामित्रः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१ निचृदनुष्टुप्; २ निचृद्गायत्री; ३-५ गायत्री ॥ स्वरः—१ गान्धारः; २-५ षड्जः ॥

अथ चतुर्विंशो वर्गः ॥ २४ ॥

अग्ने सहस्व पृतना अभिमातीरपास्य । दुष्टरस्तरन्नरातीर्वर्चो धा यज्ञवाहसे ॥ १ ॥
अग्न इळा समिध्यसे वीतिहोत्रो अमर्त्यः । जुषस्व सू नो अध्वरम् ॥ २ ॥
अग्ने द्युम्नेन जागृवे सहसः सूनवाहुत । एदं बर्हिः सदो मम ॥ ३ ॥
अग्ने विश्वेभिरग्निभिर्देवेभिर्महया गिरः । यज्ञेषु य उ चायवः ॥ ४ ॥
अग्ने दा दाशुषे रयिं वीरवन्तं परीणसम् । शिशीहि नः सूनुमतः ॥ ५ ॥

[२५] पञ्चविंशं सूक्तम्

ऋषिः—विश्वामित्रः ॥ देवता—१-४ अग्निः; ५ इन्द्राग्नी ॥ छन्दः—१ निचृदनुष्टुप्; २ अनुष्टुप्; ३-५ भुरिक्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१, २ ऋषभः; ३-५ धैवतः ॥

अथ पञ्चविंशो वर्गः ॥ २५ ॥

अग्ने दिवः सूनुरसि प्रचेतास्तना पृथिव्या उत विश्ववेदाः ।
ऋधग्देवाँ इह यजा चिकित्वः ॥ १ ॥
अग्निः सनोति वीर्याणि विद्वान्त्सनोति वाजममृताय भूषन् ।
स नो देवाँ एह वहा पुरुक्षो ॥ २ ॥
अग्निर्द्यावापृथिवी विश्वजन्ये आ भाति देवी अमृते अमूरः ।
क्षयन्वाजैः पुरुश्चन्द्रो नमोभिः ॥ ३ ॥
अग्न इन्द्रश्च दाशुषो दुरोणे सुतावतो यज्ञमिहोप यातम् ।
अमर्धन्ता सोमपेयाय देवा ॥ ४ ॥
अग्ने अपां समिध्यसे दुरोणे नित्यः सूनो सहसो जातवेदः ।
सधस्थानि महयमान ऊती ॥ ५ ॥

[२६] षड्विंशं सूक्तम्

ऋषिः—१-६, ८, ९ गाथिनो विश्वामित्रः; ७ आत्मा॥ देवता—१-३ वैश्वानरः; ४-६ मरुतः; ७, ८ अग्निरात्मा वा; ९ विश्वामित्रोपाध्यायः॥ छन्दः—१-६ जगती; ७-९ त्रिष्टुप्॥ स्वरः—१-६ निषादः; ७-९ धैवतः॥

अथ षड्विंशो वर्गः ॥ २६ ॥

वैश्वानरं मनसाग्निं निचाय्या हविष्मन्तो अनुषत्यं स्वर्विदम्।
सुदानुं देवं रथिरं वसूयवो गीर्भी रण्वं कुशिकासो हवामहे॥ १ ॥
तं शुभ्रमग्निमवसे हवामहे वैश्वानरं मातरिश्वानमुक्थ्यम् ।
बृहस्पतिं मनुषो देवतातये विप्रं श्रोतारमतिथिं रघुष्यदम् ॥ २ ॥
अश्वो न क्रन्दञ्जनिभिः समिध्यते वैश्वानरः कुशिकेभिर्युगेयुगे।
स नो अग्निः सुवीर्यं स्वश्व्यं दधातु रत्नममृतेषु जागृविः॥ ३ ॥
प्र यन्तु वाजास्तविषीभिरग्नयः शुभे संमिश्लाः पृषतीरयुक्षत।
बृहदुक्षो मरुतो विश्ववेदसः प्र वेपयन्ति पर्वताँ अदाभ्याः॥ ४ ॥
अग्निश्रियो मरुतो विश्वकृष्टय आ त्वेषमुग्रमव ईमहे वयम्।
ते स्वानिनो रुद्रिया वर्षनिर्णिजः सिंहा न हेषक्रतवः सुदानवः॥ ५ ॥

अथ सप्तविंशो वर्गः ॥ २७ ॥

व्रातंव्रातं गणंगणं सुशस्तिभिरग्नेर्भामं मरुतामोज ईमहे ।
पृषदश्वासो अनवभ्रराधसो गन्तारो यज्ञं विदथेषु धीराः ॥ ६ ॥
अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतं मे चक्षुरमृतं म आसन् ।
अर्कस्त्रिधातू रजसो विमानोऽजस्रो घर्मो हविरस्मि नाम ॥ ७ ॥
त्रिभिः पवित्रैरपुपोद्ध्य१र्कं हृदा मतिं ज्योतिरनु प्रजानन् ।
वर्षिष्ठं रत्नमकृत स्वधाभिरादिद् द्यावापृथिवी पर्यपश्यत् ॥ ८ ॥
शतधारमुत्समक्षीयमाणं विपश्चितं पितरं वक्त्वानाम् ।
मेळिं मदन्तं पित्रोरुपस्थे तं रोदसी पिपृतं सत्यवाचम् ॥ ९ ॥

[२७] सप्तविंशं सूक्तम्

ऋषिः—विश्वामित्रः॥ देवता—१ ऋतवोऽग्निर्वा; २-१५ अग्निः॥ छन्दः—१, ७-१०, १४, १५ निचृद्गायत्री; २, ३, ६, ११, १२ गायत्री; ४, ५, १३ विराड्गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

अथ अष्टाविंशो वर्गः ॥ २८ ॥

प्र वो वाजा अभिद्यवो हविष्मन्तो घृताच्या। देवाञ्जिगाति सुम्नयुः॥ १ ॥
ईळे अग्निं विपश्चितं गिरा यज्ञस्य साधनम्। श्रुष्टीवानं धितावानम्॥ २ ॥
अग्ने शकेम ते वयं यमं देवस्य वाजिनः। अति द्वेषांसि तरेम॥ ३ ॥
समिध्यमानो अध्वरे३ऽग्निः पावक ईड्यः। शोचिष्केशस्तमीमहे॥ ४ ॥
पृथुपाजा अमर्त्यो घृतनिर्णिक्स्वाहुतः। अग्निर्यज्ञस्य हव्यवाट्॥ ५ ॥

अथ एकोनत्रिंशो वर्गः ॥ २९ ॥

तं सबाधो यतस्रुच इत्था धिया यज्ञवन्तः। आ चक्रुरग्निमूतये॥ ६ ॥
होता देवो अमर्त्यः पुरस्तादेति मायया। विदथानि प्रचोदयन्॥ ७ ॥
वाजी वाजेषु धीयतेऽध्वरेषु प्र णीयते। विप्रो यज्ञस्य साधनः॥ ८ ॥
धिया चक्रे वरेण्यो भूतानां गर्भमा दधे। दक्षस्य पितरं तना॥ ९ ॥
नि त्वा दधे वरेण्यं दक्षस्येळा सहस्कृत। अग्ने सुदीतिमुशिजम्॥ १० ॥

अथ त्रिंशो वर्गः ॥ ३० ॥

अग्निं यन्तुरमप्तुरमृतस्य योगे वनुषः । विप्रा वाजैः समिन्धते ॥ ११ ॥
ऊर्जो नपातमध्वरे दीदिवांसमुप द्यवि । अग्निमीळे कविक्रतुम् ॥ १२ ॥
ईळेन्यो नमस्यस्तिरस्तमांसि दर्शतः । समग्निरिध्यते वृषा ॥ १३ ॥
वृषो अग्निः समिध्यतेऽश्वो न देववाहनः । तं हविष्मन्त ईळते ॥ १४ ॥
वृषणं त्वा वयं वृषन्वृषणः समिधीमहि । अग्ने दीद्यतं बृहत् ॥ १५ ॥

[२८] अष्टाविंशं सूक्तम्

ऋषिः—विश्वामित्रः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१ गायत्री; २, ६ निचृद्गायत्री; ३ स्वराडुष्णिक्; ४ त्रिष्टुप्; ५ निचृज्जगती ॥ स्वरः—१, २, ६ षड्जः; ३ ऋषभः; ४ धैवतः; ५ निषादः ॥

अथ एकत्रिंशो वर्गः ॥ ३१ ॥

अग्ने जुषस्व नो हविः पुरोळाशं जातवेदः । प्रातःसावे धियावसो ॥ १ ॥
पुरोळा अग्ने पचतस्तुभ्यं वा घा परिष्कृतः । तं जुषस्व यविष्ठ्य ॥ २ ॥
अग्ने वीहि पुरोळाशमाहुतं तिरोअह्न्यम् । सहसः सूनुरस्यध्वरे हितः ॥ ३ ॥
माध्यंदिने सवने जातवेदः पुरोळाशमिह कवे जुषस्व ।
अग्ने यह्वस्य तव भागधेयं न प्र मिनन्ति विदथेषु धीराः ॥ ४ ॥
अग्ने तृतीये सवने हि कानिषः पुरोळाशं सहसः सूनवाहुतम् ।
अथा देवेष्वध्वरं विपन्यया धा रत्नवन्तममृतेषु जागृविम् ॥ ५ ॥
अग्ने वृधान आहुतिं पुरोळाशं जातवेदः । जुषस्व तिरोअह्न्यम् ॥ ६ ॥

[२९] एकोनत्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—विश्वामित्रः ॥ देवता—१-४, ६-१६ अग्निः; ५ ऋत्विज अग्निर्वा ॥ छन्दः—१ निचृदनुष्टुप्; २ भुरिक्पङ्क्तिः; ३, ५, ६ त्रिष्टुप्; ४ विराडनुष्टुप्; ७-९, १६ निचृत्त्रिष्टुप्; १०, १२ भुरिग् अनुष्टुप्; ११, १४, १५ जगती; १३ स्वराट्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१, ४, १०, १२ गान्धारः; २, १३ पञ्चमः; ३, ५-९, १६ धैवतः; ११, १४, १५ निषादः ॥

अथ द्वात्रिंशो वर्गः ॥ ३२ ॥

अस्तीदमधिमन्थनमस्ति प्रजननं कृतम् ।
एतां विश्पत्नीमा भराग्निं मन्थाम पूर्वथा ॥ १ ॥

अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भइव सुधितो गर्भिणीषु ।
दिवेदिव ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः ॥ २ ॥
उत्तानायामव भरा चिकित्वान्त्सद्यः प्रवीता वृषणं जजान ।
अरुषस्तूपो रुशदस्य पाज इळायास्पुत्रो वयुनेऽजनिष्ट ॥ ३ ॥
इळायास्त्वा पदे वयं नाभा पृथिव्या अधि ।
जातवेदो नि धीमह्यग्ने हव्याय वोळ्हवे ॥ ४ ॥
मन्थता नरः कविमद्वयन्तं प्रचेतसममृतं सुप्रतीकम् ।
यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरस्तादग्निं नरो जनयता सुशेवम् ॥ ५ ॥

अथ त्रयस्त्रिंशो वर्गः ॥ ३३ ॥

यदी मन्थन्ति बाहुभिर्वि रोचतेऽश्वो न वाज्यरुषो वनेष्वा ।
चित्रो न यामन्नश्विनोरनिवृतः परि वृणक्त्यश्मनस्तृणा दहन् ॥ ६ ॥
जातो अग्नी रोचते चेकितानो वाजी विप्रः कविशस्तः सुदानुः ।
यं देवास ईड्यं विश्वविदं हव्यवाहमदधुरध्वरेषु ॥ ७ ॥
सीद होतः स्व उ लोके चिकित्वान्त्सादया यज्ञं सुकृतस्य योनौ ।
देवावीर्देवान्हविषा यजास्यग्ने बृहद्यजमाने वयो धाः ॥ ८ ॥
कृणोत धूमं वृषणं सखायोऽस्रेधन्त इतन वाजमच्छ ।
अयमग्निः पृतनाषाट् सुवीरो येन देवासो असहन्त दस्यून् ॥ ९ ॥
अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः ।
तं जानन्नग्न आ सीदाथा नो वर्धया गिरः ॥ १० ॥

अथ चतुस्त्रिंशो वर्गः ॥ ३४ ॥

तनूनपादुच्यते गर्भ आसुरो नराशंसो भवति यद्विजायते ।
मातरिश्वा यदमिमीत मातरि वातस्य सर्गो अभवत्सरीमणि ॥ ११ ॥
सुनिर्मथा निर्मथितः सुनिधा निहितः कविः ।
अग्ने स्वध्वरा कृणु देवान्देवयते यज ॥ १२ ॥
अजीजनन्नमृतं मर्त्यासोऽस्रेमाणं तरणिं वीळुजम्भम् ।
दश स्वसारो अग्रुवः समीचीः पुमांसं जातमभि सं रभन्ते ॥ १३ ॥

प्र सप्तहोता सनकादरोचत मातुरुपस्थे यदशोचदूधनि ।
न नि मिषति सुरणो दिवेदिवे यदसुरस्य जठरादजायत ॥ १४ ॥
अमित्रायुधो मरुतामिव प्रयाः प्रथमजा ब्रह्मणो विश्वमिद्विदुः ।
द्युम्नवद् ब्रह्म कुशिकास एरिर एकएको दमे अग्निं समीधिरे ॥ १५ ॥
यदद्य त्वा प्रयति यज्ञे अस्मिन्होतश्चिकित्वोऽ वृणीमहीह ।
ध्रुवमया ध्रुवमुताशमिष्ठाः प्रजानन्विद्वाँ उप याहि सोमम् ॥ १६ ॥

इति तृतीयाष्टके प्रथमोऽध्यायः ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

तृतीयोऽनुवाकः [३०] त्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—विश्वामित्रः ॥ देवताः—इन्द्रः ॥ छन्दः—१, २, ९-११, १४, १७, २० निचृत्त्रिष्टुप्; ३, ४, ७, १६, १८ भुरिक्पङ्क्तिः; ५, ६, ८, १३, १९, २१, २२ त्रिष्टुप्; १२, १५ विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१, २, ५, ६, ८-१५, १७, १९-२२ धैवतः; ३, ४, ७, १६, १८ पञ्चमः ॥

अथ प्रथमो वर्गः ॥ १ ॥

इच्छन्ति त्वा सोम्यासः सखायः सुन्वन्ति सोमं दधति प्रयांसि ।
तितिक्षन्ते अभिशस्तिं जनानामिन्द्र त्वदा कश्चन हि प्रकेतः ॥ १ ॥
न ते दूरे परमा चिद्रजांस्या तु प्र याहि हरिवो हरिभ्याम् ।
स्थिराय वृष्णे सवना कृतेमा युक्ता ग्रावाणः समिधाने अग्नौ ॥ २ ॥
इन्द्रः सुशिप्रो मघवा तरुत्रो महाव्रातस्तुविकूर्मिर्ऋघावान् ।
यदुग्रो धा बाधितो मर्त्येषु क्व१ त्या ते वृषभ वीर्याणि ॥ ३ ॥
त्वं हि ष्मा च्यावयन्नच्युतान्येको वृत्रा चरसि जिघ्नमानः ।
तव द्यावापृथिवी पर्वतासोऽ नु व्रताय निमितेव तस्थुः ॥ ४ ॥
उताभये पुरुहूत श्रवोभिरेको दृळ्हमवदो वृत्रहा सन् ।
इमे चिदिन्द्र रोदसी अपारे यत्संगृभ्णा मघवन्काशिरित्ते ॥ ५ ॥

अथ द्वितीयो वर्गः ॥ २ ॥

प्र सू त इन्द्र प्रवता हरिभ्यां प्र ते वज्रः प्रमृणन्नेतु शत्रून् ।
जहि प्रतीचो अनूचः पराचो विश्वं सत्यं कृणुहि विष्टमस्तु ॥ ६ ॥
यस्मै धायुरदधा मर्त्यायाभक्तं चिद्भजते गेह्यं१ सः ।
भद्रा त इन्द्र सुमतिर्घृताची सहस्रदाना पुरुहूत रातिः ॥ ७ ॥
सहदानुं पुरुहूत क्षियन्तमहस्तमिन्द्र सं पिणक्कुणारुम् ।
अभि वृत्रं वर्धमानं पियारुमपादमिन्द्र तवसा जघन्थ ॥ ८ ॥
नि सामनामिषिरामिन्द्र भूमिं महीमपारां सदने ससत्थ ।
अस्तभ्नाद् द्यां वृषभो अन्तरिक्षमर्षन्त्वापस्त्वयेह प्रसूताः ॥ ९ ॥
अलातृणो वल इन्द्र व्रजो गोः पुरा हन्तोर्भयमानो व्यार ।
सुगान्पथो अकृणोन्निरजे गाः प्रावन्वाणीः पुरुहूतं धमन्तीः ॥ १० ॥

अथ तृतीयो वर्गः ॥ ३ ॥

एको द्वे वसुमती समीची इन्द्र आ पप्रौ पृथिवीमुत द्याम् ।
उतान्तरिक्षादभि नः समीक इषो रथीः सयुजः शूर वाजान् ॥ ११ ॥
दिशः सूर्यो न मिनाति प्रदिष्टा दिवेदिवे हर्यश्वप्रसूताः ।
सं यदानळध्वन आदिदश्वैर्विमोचनं कृणुते तत्त्वस्य ॥ १२ ॥
दिदृक्षन्त उषसो यामन्नक्तोर्विवस्वत्या महि चित्रमनीकम् ।
विश्वे जानन्ति महिना यदागादिन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि ॥ १३ ॥
महि ज्योतिर्निहितं वक्षणास्वामा पक्वं चरति बिभ्रती गौः ।
विश्वं स्वाद्म संभृतमुस्रियायां यत्सीमिन्द्रो अदधाद्भोजनाय ॥ १४ ॥
इन्द्र दृह्य यामकोशा अभूवन्यज्ञाय शिक्ष गृणते सखिभ्यः ।
दुर्मायवो दुरेवा मर्त्यासो निषङ्गिणो रिपवो हन्त्वासः ॥ १५ ॥

अथ चतुर्थो वर्गः ॥ ४ ॥

सं घोषः शृण्वेऽ वमैरमित्रैर्जही न्येष्वशनिं तपिष्ठाम् ।
वृश्चेमधस्ताद्वि रुजा सहस्व जहि रक्षो मघवन्रन्धयस्व ॥ १६ ॥

उद्वृह रक्षः सहमूलमिन्द्र वृश्चा मध्यं प्रत्यग्रं शृणीहि ।
आ कीवतः सललूकं चकर्थ ब्रह्मद्विषे तपुषिं हेतिमस्य ॥ १७ ॥
स्वस्तये वाजिभिश्च प्रणेतः सं यन्महीरिष आसत्सि पूर्वीः ।
रायो वन्तारो बृहतः स्यामास्मे अस्तु भग इन्द्र प्रजावान् ॥ १८ ॥
आ नो भर भगमिन्द्र द्युमन्तं नि ते देष्णस्य धीमहि प्ररेके ।
ऊर्वइव पप्रथे कामो अस्मे तमा पृण वसुपते वसूनाम् ॥ १९ ॥
इमं कामं मन्दया गोभिरश्वैश्चन्द्रवता राधसा पप्रथश्च ।
स्वर्यवो मतिभिस्तुभ्यं विप्रा इन्द्राय वाहः कुशिकासो अक्रन् ॥ २० ॥
आ नो गोत्रा दर्दृहि गोपते गाः समस्मभ्यं सनयो यन्तु वाजाः ।
दिवक्षा असि वृषभ सत्यशुष्मोऽस्मभ्यं सु मघवन्बोधि गोदाः ॥ २१ ॥
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥ २२ ॥

[३१] एकत्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—विश्वामित्रः कुशिको वा ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१, १४, १६ विराट्पङ्क्तिः; २, ५, ९, १५, १७-२० निचृत्त्रिष्टुप्; ३, ६ भुरिक्पङ्क्तिः; ४, ७, ८, १०, १२, २१, २२ त्रिष्टुप्; ११, १३ स्वराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१, ३, ६, १४, १६ पञ्चमः; २, ४, ५, ७-१३, १५, १७-२२ धैवतः ॥

अथ पञ्चमो वर्गः ॥ ५ ॥

शासद्वह्निर्दुहितुर्नप्त्यं गाद्विद्वाँ ऋतस्य दीधितिं सपर्यन् ।
पिता यत्र दुहितुः सेकमृञ्जन्त्सं शग्म्येन मनसा दधन्वे ॥ १ ॥
न जामये तान्वो रिक्थमारैक्चकार गर्भं सनितुर्निधानम् ।
यदी मातरो जनयन्त वह्निमन्यः कर्ता सुकृतोरन्य ऋन्धन् ॥ २ ॥
अग्निर्जज्ञे जुह्वा३ रेजमानो महस्पुत्राँ अरुषस्य प्रयक्षे ।
महान्गर्भो मह्या जातमेषां मही प्रवृद्धर्यश्वस्य यज्ञैः ॥ ३ ॥
अभि जैत्रीरसचन्त स्पृधानं महि ज्योतिस्तमसो निरजानन् ।
तं जानतीः प्रत्युदायन्नुषासः पतिर्गवामभवदेक इन्द्रः ॥ ४ ॥

वीळौ सतीरभि धीरा अतृन्दन्प्राचाहिन्वन्मनसा सप्त विप्राः ।
विश्वामविन्दन्पथ्यामृतस्य प्रजानन्नित्ता नमसा विवेश ॥ ५ ॥

अथ षष्ठो वर्गः ॥ ६ ॥

विदद्यदी सरमा रुग्णमद्रेर्महि पाथः पूर्व्यं सध्र्यक्कः ।
अग्रं नयत्सुपद्यक्षराणामच्छा रवं प्रथमा जानती गात् ॥ ६ ॥
अगच्छदु विप्रतमः सखीयन्नसूदयत्सुकृते गर्भमद्रिः ।
ससान मर्यो युवभिर्मखस्यन्नथाभवदङ्गिराः सद्यो अर्चन् ॥ ७ ॥
सतःसतः प्रतिमानं पुरोभूर्विश्वा वेद जनिमा हन्ति शुष्णम् ।
प्र णो दिवः पदवीर्गव्युरर्चन्त्सखा सखीँरमुञ्चन्निरवद्यात् ॥ ८ ॥
नि गव्यता मनसा सेदुरर्कैः कृण्वानासो अमृतत्वाय गातुम् ।
इदं चिन्नु सदनं भूर्येषां येन मासाँ असिषासन्नृतेन ॥ ९ ॥
संपश्यमाना अमदन्नभि स्वं पयः प्रत्नस्य रेतसो दुघानाः ।
वि रोदसी अतपद्घोष एषां जाते निःष्ठामदधुर्गोषु वीरान् ॥ १० ॥

अथ सप्तमो वर्गः ॥ ७ ॥

स जातेभिर्वृत्रहा सेदु हव्यैरुदुस्त्रिया असृजदिन्द्रो अर्कैः ।
उरूच्यस्मै घृतवद्भरन्ती मधु स्वाद्म दुदुहे जेन्या गौः ॥ ११ ॥
पित्रे चिच्चक्रुः सदनं समस्मै महि त्विषीमत्सुकृतो वि हि ख्यन् ।
विष्कभ्नन्तः स्कम्भनेना जनित्री आसीना ऊर्ध्वं रभसं वि मिन्वन् ॥ १२ ॥
मही यदि धिषणा शिश्नथे धात्सद्योवृधं विभ्वं१ रोदस्योः ।
गिरो यस्मिन्ननवद्याः समीचीर्विश्वा इन्द्राय तविषीरनुत्ताः ॥ १३ ॥
मह्या ते सख्यं वश्मि शक्तीरा वृत्रघ्ने नियुतो यन्ति पूर्वीः ।
महि स्तोत्रमव आगन्म सूरेरस्माकं सु मघवन्बोधि गोपाः ॥ १४ ॥
महि क्षेत्रं पुरु श्चन्द्रं विविद्वानादित्सखिभ्यश्चरथं समैरत् ।
इन्द्रो नृभिरजनद्दीद्यानः साकं सूर्यमुषसं गातुमग्निम् ॥ १५ ॥

अथ अष्टमो वर्गः ॥ ८ ॥

अपश्चिदेष विभ्वो३ दमूना: प्र सध्रीचीरसृजद्विश्वश्चन्द्राः।
मध्वः पुनानाः कविभिः पवित्रैर्द्युभिर्हिन्वन्त्यक्तुभिर्धनुत्रीः ॥ १६ ॥
अनु कृष्णे वसुधिती जिहाते उभे सूर्यस्य मंहना यजत्रे।
परि यत्ते महिमानं वृजध्यै सखाय इन्द्र काम्या ऋजिप्याः ॥ १७ ॥
पतिर्भव वृत्रहन्त्सूनृतानां गिरां विश्वायुर्वृषभो वयोधाः।
आ नो गहि सख्येभिः शिवेभिर्महान्महीभिरूतिभिः सरण्यन् ॥ १८ ॥
तमङ्गिरस्वन्नमसा सपर्यन्नव्यं कृणोमि सन्यसे पुराजाम्।
द्रुहो वि याहि बहुला अदेवीः स्वश्च नो मघवन्त्सातये धाः ॥ १९ ॥
मिहः पावकाः प्रतता अभूवन्त्स्वस्ति नः पिपृहि पारमासाम्।
इन्द्र त्वं रथिरः पाहि नो रिषो मक्षूमक्षू कृणुहि गोजितो नः ॥ २० ॥
अदेदिष्ट वृत्रहा गोपतिर्गा अन्तः कृष्णाँ अरुषैर्धामभिर्गात्।
प्र सूनृता दिशमान ऋतेन दुरश्च विश्वा अवृणोदप स्वाः ॥ २१ ॥
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥ २२ ॥

[३२] द्वात्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—विश्वामित्रः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१-३, ७-९, १७ त्रिष्टुप्; ४, १० भुरिक्पङ्क्तिः; ५ निचृत्पङ्क्तिः; ६ विराट्पङ्क्तिः; ११-१५ निचृत्त्रिष्टुप्; १६ विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१-३, ७-९, ११-१७ धैवतः; ४-६, १० पञ्चमः ॥

अथ नवमो वर्गः ॥ ९ ॥

इन्द्र सोमं सोमपते पिबेमं माध्यंदिनं सवनं चारु यत्ते।
प्रप्रुथ्या शिप्रे मघवन्नृजीषिन्विमुच्या हरी इह मादयस्व ॥ १ ॥
गवाशिरं मन्थिनमिन्द्र शुक्रं पिबा सोमं ररिमा ते मदाय।
ब्रह्मकृता मारुतेना गणेन सजोषा रुद्रैस्तृपदा वृषस्व ॥ २ ॥
ये ते शुष्मं ये तविषीमवर्धन्नर्चन्त इन्द्र मरुतस्त ओजः।
माध्यन्दिने सवने वज्रहस्त पिबा रुद्रेभिः सगणः सुशिप्र ॥ ३ ॥

त इन्न्वस्य मधुमद्विविप्र इन्द्रस्य शर्धो मरुतो य आसन्।
येभिर्वृत्रस्येषितो विवेदामर्मणो मन्यमानस्य मर्म ॥ ४ ॥
मनुष्वदिन्द्र सवनं जुषाणः पिबा सोमं शश्वते वीर्याय।
स आ ववृत्स्व हर्यश्व यज्ञैः सरण्युभिरपो अर्णा सिसर्षि ॥ ५ ॥

अथ दशमो वर्गः ॥ १० ॥

त्वमपो यद्ध वृत्रं जघन्वाँ अत्याँइव प्रासृजः सर्तवाजौ।
शयानमिन्द्र चरता वधेन वव्रिवांसं परि देवीरदेवम् ॥ ६ ॥
यजाम इन्नमसा वृद्धमिन्द्रं बृहन्तमृष्वमजरं युवानम् ।
यस्य प्रिये ममतुर्यज्ञियस्य न रोदसी महिमानं ममाते ॥ ७ ॥
इन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि व्रतानि देवा न मिनन्ति विश्वे।
दाधार यः पृथिवीं द्यामुतेमां जजान सूर्यमुषसं सुदंसाः ॥ ८ ॥
अद्रोघ सत्यं तव तन्महित्वं सद्यो यज्जातो अपिबो ह सोमम्।
न द्याव इन्द्र तवसस्त ओजो नाहा न मासाः शरदो वरन्त ॥ ९ ॥
त्वं सद्यो अपिबो जात इन्द्र मदाय सोमं परमे व्योमन्।
यद्ध द्यावापृथिवी आविवेशीरथाभवः पूर्व्यः कारुधायाः ॥ १० ॥

अथ एकादशो वर्गः ॥ ११ ॥

अहन्नहिं परिशयानमर्णो ओजायमानं तुविजात तव्यान्।
न ते महित्वमनु भूदध द्यौर्यदन्यया स्फिग्या३ क्षामवस्थाः ॥ ११ ॥
यज्ञो हि त इन्द्र वर्धनो भूदुत प्रियः सुतसोमो मियेधः।
यज्ञेन यज्ञमव यज्ञियः सन्यज्ञस्ते वज्रमहिहत्य आवत् ॥ १२ ॥
यज्ञेनेन्द्रमवसा चक्रे अर्वागैनं सुम्नाय नव्यसे ववृत्याम्।
यः स्तोमेभिर्वावृधे पूर्व्येभिर्यो मध्यमेभिरुत नूतनेभिः ॥ १३ ॥
विवेष यन्मा धिषणा जजान स्तवै पुरा पार्यादिन्द्रमह्नः।
अंहसो यत्र पीपरद्यथा नो नावेव यान्तमुभये हवन्ते ॥ १४ ॥

आपूर्णो अस्य कलशः स्वाहा सेक्तेव कोशं सिसिचे पिबध्यै।
समु प्रिया आववृत्रन्मदाय प्रदक्षिणिदभि सोमास इन्द्रम्॥ १५॥
न त्वा गभीरः पुरुहूत सिन्धुर्नाद्रयः परि षन्तो वरन्त।
इत्था सखिभ्य इषितो यदिन्द्रा दृळ्हं चिदरुजो गव्यमूर्वम्॥ १६॥
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम्॥ १७॥

[३३] त्रयस्त्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—विश्वामित्रः॥ देवता—नद्यः॥ छन्दः—१ भुरिक्पङ्क्तिः; २, १० विराट्त्रिष्टुप्; ३, ८, ११, १२ त्रिष्टुप्; ४, ६, ९ निचृत्त्रिष्टुप्; ५ स्वराट्पङ्क्तिः; ७ पङ्क्तिः; १३ उष्णिक्॥ स्वरः—१, ५, ७ पञ्चमः; २-४, ६, ८, ९-१२ धैवतः; १३ ऋषभः॥

अथ द्वादशो वर्गः॥ १२॥

प्र पर्वतानामुशती उपस्थादश्वेइव विषिते हासमाने।
गावेव शुभ्रे मातरा रिहाणे विपाट् छुतुद्री पयसा जवेते॥ १॥
इन्द्रेषिते प्रसवं भिक्षमाणे अच्छा समुद्रं रथ्येव याथः।
समाराणे ऊर्मिभिः पिन्वमाने अन्या वामन्यामप्येति शुभ्रे॥ २॥
अच्छा सिन्धुं मातृतमामयासं विपाशमुर्वीं सुभगामगन्म।
वत्समिव मातरा संरिहाणे समानं योनिमनु संचरन्ती॥ ३॥
एना वयं पयसा पिन्वमाना अनु योनिं देवकृतं चरन्तीः।
न वर्तवे प्रसवः सर्गतक्तः किंयुर्विप्रो नद्यो जोहवीति॥ ४॥
रमध्वं मे वचसे सोम्याय ऋतावरीरुप मुहूर्तमेवैः।
प्र सिन्धुमच्छा बृहती मनीषावस्युरह्वे कुशिकस्य सूनुः॥ ५॥

अथ त्रयोदशो वर्गः॥ १३॥

इन्द्रो अस्माँ अरदद्वज्रबाहुरपाहन्वृत्रं परिधिं नदीनाम्।
देवोऽनयत्सविता सुपाणिस्तस्य वयं प्रसवे याम उर्वीः॥ ६॥
प्रवाच्यं शश्वधा वीर्यं१ तदिन्द्रस्य कर्म यदहिं विवृश्चत्।
वि वज्रेण परिषदो जघानायन्नापोऽयनमिच्छमानाः॥ ७॥

एतद्वचो जरितर्मापि मृष्ठा आ यत्ते घोषानुत्तरा युगानि।
उक्थेषु कारो प्रति नो जुषस्व मा नो नि कः पुरुषत्रा नमस्ते॥ ८॥
ओ षु स्वसारः कारवे शृणोत ययौ वो दूरादनसा रथेन।
नि षू नमध्वं भवता सुपारा अधोअक्षाः सिन्धवः स्रोत्याभिः॥ ९॥
आ ते कारो शृणवामा वचांसि ययाथ दूरादनसा रथेन।
नि ते नंसै पीप्यानेव योषा मर्यायेव कन्या शश्वचै ते॥ १०॥

अथ चतुर्दशो वर्गः॥ १४॥

यदङ्ग त्वा भरताः सन्तरेयुर्गव्यन्ग्राम इषित इन्द्रजूतः।
अर्षादह प्रसवः सर्गतक्त आ वो वृणे सुमतिं यज्ञियानाम्॥ ११॥
अतारिषुर्भरता गव्यवः समभक्त विप्रः सुमतिं नदीनाम्।
प्र पिन्वध्वमिषयन्तीः सुराधा आ वक्षणाः पृणध्वं यात शीभम्॥ १२॥
उद्व ऊर्मिः शम्या हन्त्वापो योक्त्राणि मुञ्चत।
मादुष्कृतौ व्येनसाघ्न्यौ शूनमारताम्॥ १३॥

[३४] चतुस्त्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—विश्वामित्रः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१, २, ११ त्रिष्टुप्; ३, ६, ८, भुरिक्पङ्क्तिः; ४, ५, ७, ९ विराट्त्रिष्टुप्; १० निचृत्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—१, २, ४, ५, ७, ९-११ धैवतः; ३, ६, ८ पञ्चमः॥

अथ पञ्चदशो वर्गः॥ १५॥

इन्द्रः पूर्भिदातिरद्दासमर्कैर्विदद्वसुर्दयमानो वि शत्रून्।
ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधानो भूरिदात्र आपृणद्रोदसी उभे॥ १॥
मखस्य ते तविषस्य प्र जूतिमियर्मि वाचममृताय भूषन्।
इन्द्र क्षितीनामसि मानुषीणां विशां दैवीनामुत पूर्वयावा॥ २॥
इन्द्रो वृत्रमवृणोच्छर्धनीतिः प्र मायिनाममिनाद्वर्पणीतिः।
अहन्व्यंसमुशधग्वनेष्वाविर्धेना अकृणोद्राम्याणाम्॥ ३॥
इन्द्रः स्वर्षा जनयन्नहानि जिगायोशिग्भिः पृतना अभिष्टिः।
प्रारोचयन्मनवे केतुमह्नामविन्दज्ज्योतिर्बृहते रणाय॥ ४॥

इन्द्रस्तुजो बर्हणा आ विवेश नृवद्दधानो नर्या पुरूणि।
अचेतयद्धिय इमा जरित्रे प्रेमं वर्णमतिरच्छुक्रमासाम् ॥५॥

अथ षोडशो वर्गः॥१६॥

महो महानि पनयन्त्यस्येन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि ।
वृजनेन वृजिनान्त्सं पिपेष मायाभिर्दस्यूँरभिभूत्योजाः॥६॥

युधेन्द्रो मह्ना वरिवश्चकार देवेभ्यः सत्पतिश्चर्षणिप्राः।
विवस्वतः सदने अस्य तानि विप्रा उक्थेभिः कवयो गृणन्ति॥७॥

सत्रासाहं वरेण्यं सहोदां ससवांसं स्वरपश्च देवीः ।
ससान यः पृथिवीं द्यामुतेमामिन्द्रं मदन्त्यनु धीरणासः॥८॥

ससानात्याँ उत सूर्यं ससानेन्द्रः ससान पुरुभोजसं गाम्।
हिरण्ययमुत भोगं ससान हत्वी दस्यून्प्रार्यं वर्णमावत्॥९॥

इन्द्र ओषधीरसनोदहानि वनस्पतींरसनोदन्तरिक्षम् ।
बिभेद वलं नुनुदे विवाचोऽथाभवद्दमिताभिक्रतूनाम् ॥१०॥

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम्॥११॥

[३५] पञ्चत्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—विश्वामित्रः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१, ७, १०, ११ त्रिष्टुप्; २, ३, ६, ८ निचृत्त्रिष्टुप्; ४ भुरिक्पङ्क्तिः; ५ स्वराट्पङ्क्तिः; ९ विराट्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—१-३, ६-११ धैवतः; ४, ५ पञ्चमः॥

अथ सप्तदशो वर्गः॥१७॥

तिष्ठा हरी रथ आ युज्यमाना याहि वायुर्न नियुतो नो अच्छ।
पिबास्यन्धो अभिसृष्टो अस्मे इन्द्र स्वाहा ररिमा ते मदाय॥१॥

उपाजिरा पुरुहूताय सप्ती हरी रथस्य धूर्ष्वा युनज्मि।
द्रवद्यथा संभृतं विश्वतश्चिदुपेमं यज्ञमा वहात इन्द्रम्॥२॥

उपो नयस्व वृषणा तपुष्पोतेमव त्वं वृषभ स्वधावः।
ग्रसेतामश्वा वि मुचेह शोणा दिवेदिवे सदृशीरद्धि धानाः॥३॥

ब्रह्मणा ते ब्रह्मयुजा युनज्मि हरी सखाया सधमाद आशू।
स्थिरं रथं सुखमिन्द्राधितिष्ठन्प्रजानन्विद्वाँ उप याहि सोमम्॥४॥

मा ते हरी वृषणा वीतपृष्ठा नि रीरमन्यजमानासो अन्ये।
अत्यायाहि शश्वतो वयं तेऽरं सुतेभिः कृणवाम सोमैः॥५॥

अथ अष्टादशो वर्गः॥१८॥

तवायं सोमस्त्वमेह्यर्वाङ् शश्वत्तमं सुमना अस्य पाहि।
अस्मिन्यज्ञे बर्हिष्या निषद्या दधिष्वेमं जठर इन्दुमिन्द्र॥६॥

स्तीर्णं ते बर्हिः सुत इन्द्र सोमः कृता धाना अत्तवे ते हरिभ्याम्।
तदोकसे पुरुशाकाय वृष्णे मरुत्वते तुभ्यं राता हवींषि॥७॥

इमं नरः पर्वतास्तुभ्यमापः समिन्द्र गोभिर्मधुमन्तमक्रन्।
तस्यागत्या सुमना ऋष्व पाहि प्रजानन्विद्वान्पथ्या३ अनु स्वाः॥८॥

याँ आभजो मरुत इन्द्र सोमे ये त्वामवर्धन्नभवन्गणस्ते।
तेभिरेतं सजोषा वावशानो३ऽग्नेः पिब जिह्वया सोममिन्द्र॥९॥

इन्द्र पिब स्वधया चित्सुतस्याग्नेर्वा पाहि जिह्वया यजत्र।
अध्वर्योर्वा प्रयतं शक्र हस्ताद्धोतुर्वा यज्ञं हविषो जुषस्व॥१०॥

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम्॥११॥

[३६] षट्त्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—१-९, ११ विश्वामित्रः; १० घोर आङ्गिरसः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१, ७, १०, ११ त्रिष्टुप्; २, ३, ६, ८ निचृत्त्रिष्टुप्; ४ भुरिक्पङ्क्तिः; ५ स्वराट्पङ्क्तिः; ९ विराट्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—१-३, ६-११ धैवतः; ४, ५ पञ्चमः॥

अथ एकोनविंशो वर्गः॥१९॥

इमामू षु प्रभृतिं सातये धाः शश्वच्छश्वदूतिभिर्यादमानः।
सुतेसुते वावृधे वर्धनेभिर्यः कर्मभिर्महद्भिः सुश्रुतो भूत्॥१॥

इन्द्राय सोमाः प्रदिवो विदाना ऋभुर्येभिर्वृषपर्वा विहायाः।
प्रयम्यमानान्प्रति षू गृभायेन्द्र पिब वृषधूतस्य वृष्णः ॥२॥

पिबा वर्धस्व तव घा सुतास इन्द्र सोमासः प्रथमा उतेमे।
यथापिबः पूर्व्याँ इन्द्र सोमाँ एवा पाहि पन्यो अद्या नवीयान्॥ ३ ॥
महाँ अमत्रो वृजने विरप्श्यु१ग्रं शवः पत्यते धृष्ण्वोजः।
नाह विव्याच पृथिवी चनैनं यत्सोमासो हर्यश्वममन्दन्॥ ४ ॥
महाँ उग्रो वावृधे वीर्याय समाचक्रे वृषभः काव्येन।
इन्द्रो भगो वाजदा अस्य गावः प्र जायन्ते दक्षिणा अस्य पूर्वीः॥ ५ ॥

अथ विंशो वर्गः॥ २०॥

प्र यत्सिन्धवः प्रसवं यथायन्नापः समुद्रं रथ्येव जग्मुः।
अतश्चिदिन्द्रः सदसो वरीयान्यदीं सोमः पृणति दुग्धो अंशुः॥ ६ ॥
समुद्रेण सिन्धवो यादमाना इन्द्राय सोमं सुषुतं भरन्तः।
अंशुं दुहन्ति हस्तिनो भरित्रैर्मध्वः पुनन्ति धारया पवित्रैः॥ ७ ॥
हृदाइव कुक्षयः सोमधानाः समी विव्याच सवना पुरूणि।
अन्ना यदिन्द्रः प्रथमा व्याश वृत्रं जघन्वाँ अवृणीत सोमम्॥ ८ ॥
आ तू भर माकिरेतत्परि ष्ठाद्विद्मा हि त्वा वसुपतिं वसूनाम्।
इन्द्र यत्ते माहिनं दत्रमस्त्यस्मभ्यं तद्धर्यश्व प्र यन्धि॥ ९ ॥
अस्मे प्र यन्धि मघवन्नृजीषिन्निन्द्र रायो विश्ववारस्य भूरेः।
अस्मे शतं शरदो जीवसे धा अस्मे वीराञ्छश्वत इन्द्र शिप्रिन्॥ १० ॥
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम्॥ ११ ॥

[३७] सप्तत्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—विश्वामित्रः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१, ३, ७ निचृद्गायत्री; २, ४-६, ८-१० गायत्री; ११ निचृदनुष्टुप्॥ स्वरः—१-१० षड्जः; ११ गान्धारः॥

अथ एकविंशो वर्गः॥ २१॥

वार्त्रहत्याय शवसे पृतनाषाह्याय च। इन्द्र त्वा वर्तयामसि॥ १ ॥
अर्वाचीनं सु ते मन उत चक्षुः शतक्रतो। इन्द्र कृण्वन्तु वाघतः॥ २ ॥
नामानि ते शतक्रतो विश्वाभिर्गीर्भिरीमहे। इन्द्राभिमातिषाह्ये॥ ३ ॥

पुरुष्टुतस्य धामभिः शतेन महयामसि। इन्द्रस्य चर्षणीधृतः॥ ४ ॥
इन्द्रं वृत्राय हन्तवे पुरुहूतमुप ब्रुवे। भरेषु वाजसातये॥ ५ ॥

अथ द्वादशो वर्गः॥ २२॥

वाजेषु सासहिर्भव त्वामीमहे शतक्रतो। इन्द्र वृत्राय हन्तवे॥ ६ ॥
द्युम्नेषु पृतनाज्ये पृत्सुतूर्षु श्रवःसु च। इन्द्र साक्ष्वाभिमातिषु॥ ७ ॥
शुष्मिन्तमं न ऊतये द्युम्निनं पाहि जागृविम्। इन्द्र सोमं शतक्रतो॥ ८ ॥
इन्द्रियाणि शतक्रतो या ते जनेषु पञ्चसु। इन्द्र तानि त आ वृणे॥ ९ ॥
अगन्निन्द्र श्रवो बृहद्द्युम्नं दधिष्व दुष्टरम्। उत्ते शुष्मं तिरामसि॥ १० ॥
अर्वावतो न आ गह्यथो शक्र परावतः।
उ लोको यस्ते अद्रिव इन्द्रेह तत आ गहि॥ ११ ॥

[३८] अष्टात्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—प्रजापतिः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१, ६, १० त्रिष्टुप्; २-५, ८, ९ निचृत्त्रिष्टुप्; ७ भुरिक्पङ्क्तिः॥ स्वरः—१-६, ८-१० धैवतः; ७ पञ्चमः॥

अथ त्रयोविंशो वर्गः॥ २३॥

अभि तष्टेव दीधया मनीषामत्यो न वाजी सुधुरो जिहानः।
अभि प्रियाणि मर्मृशत्पराणि कवीँरिच्छामि संदृशे सुमेधाः॥ १ ॥
इनोत पृच्छ जनिमा कवीनां मनोधृतः सुकृतस्तक्षत द्याम्।
इमा उ ते प्रण्यो३ वर्धमाना मनोवाता अध नु धर्मणि ग्मन्॥ २ ॥
नि षीमिदत्र गुह्या दधाना उत क्षत्राय रोदसी समञ्जन्।
सं मात्राभिर्ममिरे येमुरुर्वी अन्तर्मही समृते धायसे धुः॥ ३ ॥
आतिष्ठन्तं परि विश्वे अभूषञ्छ्रियो वसानश्चरति स्वरोचिः।
महत्तद् वृष्णो असुरस्य नामा विश्वरूपो अमृतानि तस्थौ॥ ४ ॥
असूत पूर्वो वृषभो ज्यायानिमा अस्य शुरुधः सन्ति पूर्वीः।
दिवो नपाता विदथस्य धीभिः क्षत्रं राजाना प्रदिवो दधाते॥ ५ ॥

अथ चतुर्विंशो वर्गः॥ २४॥

त्रीणि राजाना विदथे पुरूणि परि विश्वानि भूषथः सदांसि।
अपश्यमत्र मनसा जगन्वान्व्रते गन्धर्वाँ अपि वायुकेशान्॥ ६ ॥

तदिन्न्वस्य वृषभस्य धेनोरा नामभिर्ममिरे सक्म्यं गोः।
अन्यदन्यदसुर्यं वसाना नि मायिनो ममिरे रूपमस्मिन्॥ ७॥
तदिन्न्वस्य सवितुर्नकिर्मे हिरण्ययीममतिं यामशिश्रेत्।
आ सुष्टुती रोदसी विश्वमिन्वे अपीव योषा जनिमानि वव्रे॥ ८॥
युवं प्रत्नस्य साधथो महो यद्दैवी स्वस्तिः परि णः स्यातम्।
गोपाजिह्वस्य तस्थुषो विरूपा विश्वे पश्यन्ति मायिनः कृतानि॥ ९॥
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम्॥ १०॥

चतुर्थोऽनुवाकः [३९] एकोनचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—विश्वामित्रः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१, ९ विराट्त्रिष्टुप्; २, ८ भुरिक्पङ्क्तिः; ३-७ निचृत्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—१, ३-७, ९ धैवतः; २, ८ पञ्चमः॥

अथ पञ्चविंशो वर्गः॥ २५॥

इन्द्रं मतिर्हृद आ वच्यमानाच्छा पतिं स्तोमतष्टा जिगाति।
या जागृविर्विदथे शस्यमानेन्द्र यत्ते जायते विद्धि तस्य॥ १॥
दिवश्चिदा पूर्व्या जायमाना वि जागृविर्विदथे शस्यमाना।
भद्रा वस्त्राण्यर्जुना वसाना सेयमस्मे सनजा पित्र्या धीः॥ २॥
यमा चिदत्र यमसूरसूत जिह्वाया अग्रं पतदा ह्यस्थात्।
वपूंषि जाता मिथुना सचेते तमोहना तपुषो बुध्न एता॥ ३॥
नकिरेषां निन्दिता मर्त्येषु ये अस्माकं पितरो गोषु योधाः।
इन्द्र एषां दृंहिता माहिनावानुद् गोत्राणि ससृजे दंसनावान्॥ ४॥
सखा ह यत्र सखिभिर्नवग्वैरभिज्ञ्वा सत्वभिर्गा अनुग्मन्।
सत्यं तदिन्द्रो दशभिर्दशग्वैः सूर्यं विवेद तमसि क्षियन्तम्॥ ५॥

अथ षड्विंशो वर्गः॥ २६॥

इन्द्रो मधु संभृतमुस्त्रियायां पद्वद्विवेद शफवन्नमे गोः।
गुहा हितं गुह्यं गूळ्हमप्सु हस्ते दधे दक्षिणे दक्षिणावान्॥ ६॥

ज्योतिर्वृणीत तमसो विजानन्नारे स्याम दुरितादभीके।
इमा गिरः सोमपाः सोमवृद्ध जुषस्वेन्द्र पुरुतमस्य कारोः॥ ७॥
ज्योतिर्यज्ञाय रोदसी अनु ष्यादारे स्याम दुरितस्य भूरेः।
भूरि चिद्धि तुजतो मर्त्यस्य सुपारासो वसवो बर्हणावत्॥ ८॥
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम्॥ ९॥

इति तृतीयाष्टके द्वितीयोऽध्यायः॥

अथ तृतीयाष्टके तृतीयोऽध्यायः

[४०] चत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—विश्वामित्रः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१-४, ६-९ गायत्री; ५ निचृद्गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

अथ प्रथमो वर्गः॥ १॥

इन्द्र त्वा वृषभं वयं सुते सोमे हवामहे। स पाहि मध्वो अन्धसः॥ १॥
इन्द्र क्रतुविदं सुतं सोमं हर्य पुरुष्टुत। पिबा वृषस्व तातृपिम्॥ २॥
इन्द्र प्र णो धितावानं यज्ञं विश्वेभिर्देवेभिः। तिर स्तवान विश्पते॥ ३॥
इन्द्र सोमाः सुता इमे तव प्र यन्ति सत्पते। क्षयं चन्द्रास इन्दवः॥ ४॥
दधिष्वा जठरे सुतं सोममिन्द्र वरेण्यम्। तव द्युक्षास इन्दवः॥ ५॥

अथ द्वितीयो वर्गः॥ २॥

गिर्वणः पाहि नः सुतं मधोर्धाराभिरज्यसे। इन्द्र त्वादातमिद्यशः॥ ६॥
अभि द्युम्नानि वनिन इन्द्रं सचन्ते अक्षिता। पीत्वी सोमस्य वावृधे॥ ७॥
अर्वावतो न आ गहि परावतश्च वृत्रहन्। इमा जुषस्व नो गिरः॥ ८॥
यदन्तरा परावतमर्वावतं च हूयसे। इन्द्रेह तत आ गहि॥ ९॥

[४१] एकचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—विश्वामित्रः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१ यवमध्यागायत्री; २, ३, ५, ९ गायत्री; ४, ७, ८ निचृद्गायत्री; ६ विराड्गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

अथ तृतीयो वर्गः॥ ३॥

आ तू न इन्द्र मद्र्यग्घुवानः सोमपीतये। हरिभ्यां याह्यद्रिवः॥ १॥
सत्तो होता न ऋत्वियस्तिस्तिरे बर्हिरानुषक्। अयुज्रन्प्रातरद्रयः॥ २॥
इमा ब्रह्म ब्रह्मवाहः क्रियन्त आ बर्हिः सीद। वीहि शूर पुरोळाशम्॥ ३॥
रारन्धि सवनेषु ण एषु स्तोमेषु वृत्रहन्। उक्थेष्विन्द्र गिर्वणः॥ ४॥
मतयः सोमपामुरुं रिहन्ति शवसस्पतिम्। इन्द्रं वत्सं न मातरः॥ ५॥

अथ चतुर्थो वर्गः॥ ४॥

स मन्दस्वा ह्यन्धसो राधसे तन्वा महे। न स्तोतारं निदे करः॥ ६॥
वयमिन्द्र त्वायवो हविष्मन्तो जरामहे। उत त्वमस्मयुर्वसो॥ ७॥
मारे अस्मद्वि मुमुचो हरिप्रियार्वाङ् याहि। इन्द्र स्वधावो मत्स्वेह॥ ८॥
अर्वाञ्चं त्वा सुखे रथे वहतामिन्द्र केशिना। घृतस्नू बर्हिरासदे॥ ९॥

[४२] द्विचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—विश्वामित्रः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१, ४-७ गायत्री;
२, ३, ८, ९ निचृद्गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

अथ पञ्चमो वर्गः॥ ५॥

उप नः सुतमा गहि सोममिन्द्र गवाशिरम्। हरिभ्यां यस्ते अस्मयुः॥ १॥
तमिन्द्र मदमा गहि बर्हिःष्ठां ग्रावभिः सुतम्। कुविन्न्वस्य तृप्णवः॥ २॥
इन्द्रमित्था गिरो ममाच्छागुरिषिता इतः। आवृते सोमपीतये॥ ३॥
इन्द्रं सोमस्य पीतये स्तोमैरिह हवामहे। उक्थेभिः कुविदागमत्॥ ४॥
इन्द्र सोमाः सुता इमे तान्दधिष्व शतक्रतो। जठरे वाजिनीवसो॥ ५॥

अथ षष्ठो वर्गः॥ ६॥

विद्मा हि त्वा धनञ्जयं वाजेषु दधृषं कवे। अधा ते सुम्नमीमहे॥ ६॥
इममिन्द्र गवाशिरं यवाशिरं च नः पिब। आगत्या वृषभिः सुतम्॥ ७॥
तुभ्येदिन्द्र स्व ओक्ये३ सोमं चोदामि पीतये। एष रारन्तु ते हृदि॥ ८॥
त्वां सुतस्य पीतये प्रत्नमिन्द्र हवामहे। कुशिकासो अवस्यवः॥ ९॥

[४३] त्रिचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—विश्वामित्रः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१, ३ विराट्पङ्क्तिः; २, ४, ६ निचृत्त्रिष्टुप्;
५ भुरिक्त्रिष्टुप्; ७, ८ त्रिष्टुप्॥ स्वरः—१, ३ पञ्चमः; २, ४-८ धैवतः॥

अथ सप्तमो वर्गः॥ ७॥

आ याह्यर्वाङुप वन्धुरेष्ठास्तवेदनु प्रदिवः सोमपेयम्।
प्रिया सखाया वि मुचोप बर्हिस्त्वामिमे हव्यवाहो हवन्ते॥ १॥
आ याहि पूर्वीरति चर्षणीराँ अर्य आशिष उप नो हरिभ्याम्।
इमा हि त्वा मतयः स्तोमतष्टा इन्द्र हवन्ते सख्यं जुषाणाः॥ २॥
आ नो यज्ञं नमोवृधं सजोषा इन्द्र देव हरिभिर्याहि तूयम्।
अहं हि त्वा मतिभिर्जोहवीमि घृतप्रयाः सधमादे मधूनाम्॥ ३॥
आ च त्वामेता वृषणा वहातो हरी सखाया सुधुरा स्वङ्गा।
धानावदिन्द्रः सवनं जुषाणः सखा सख्युः शृणवद्वन्दनानि॥ ४॥
कुविन्मा गोपां करसे जनस्य कुविद्राजानं मघवन्नृजीषिन्।
कुविन्म ऋषिं पपिवांसं सुतस्य कुविन्मे वस्वो अमृतस्य शिक्षाः॥ ५॥
आ त्वा बृहन्तो हरयो युजाना अर्वागिन्द्र सधमादो वहन्तु।
प्र ये द्विता दिव ऋञ्जन्त्याताः सुसंमृष्टासो वृषभस्य मूराः॥ ६॥
इन्द्र पिब वृषधूतस्य वृष्ण आ यं ते श्येन उशते जभार।
यस्य मदे च्यावयसि प्र कृष्टीर्यस्य मदे अप गोत्रा ववर्थ॥ ७॥
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम्॥ ८॥

[४४] चतुश्चत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—विश्वामित्रः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१, २ निचृद्बृहती; ३, ५ बृहती;
४ स्वराडनुष्टुप्॥ स्वरः—१-३, ५ मध्यमः; ४ गान्धारः॥

अथ अष्टमो वर्गः॥ ८॥

अयं ते अस्तु हर्यतः सोम आ हरिभिः सुतः।
जुषाण इन्द्र हरिभिर्न आ गह्या तिष्ठ हरितं रथम्॥ १॥

हर्यन्नुषसमर्चयः सूर्यं हर्यन्नरोचयः ।
विद्वांश्चिकित्वान्हर्यश्व वर्धस इन्द्र विश्वा अभि श्रियः ॥ २ ॥
द्यामिन्द्रो हरिधायसं पृथिवीं हरिवर्पसम् ।
अधारयद्धरितोर्भूरि भोजनं ययोरन्तर्हरिश्चरत् ॥ ३ ॥
जज्ञानो हरितो वृषा विश्वमा भाति रोचनम् ।
हर्यश्वो हरितं धत्त आयुधमा वज्रं बाह्वोर्हरिम् ॥ ४ ॥
इन्द्रो हर्यन्तमर्जुनं वज्रं शुक्रैरभीवृतम् ।
अपावृणोद्धरिभिरद्रिभिः सुतमुद्गा हरिभिराजत ॥ ५ ॥

[४५] पञ्चचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—विश्वामित्रः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१, २ निचृद्बृहती; ३, ५ बृहती; ४ स्वराडनुष्टुप् ॥ स्वरः—१-३, ५ मध्यमः; ४ गान्धारः ॥

अथ नवमो वर्गः ॥ ९ ॥

आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः ।
मा त्वा के चिन्नि यमन्विं न पाशिनोऽति धन्वेव ताँ इहि ॥ १ ॥
वृत्रखादो वलंरुजः पुरां दर्मो अपामजः ।
स्थाता रथस्य हर्योरभिस्वर इन्द्रो दृळ्हा चिदारुजः ॥ २ ॥
गम्भीराँ उदधीँरिव क्रतुं पुष्यसि गाइव ।
प्र सुगोपा यवसं धेनवो यथा ह्रदं कुल्याइवाशत ॥ ३ ॥
आ नस्तुजं रयिं भरांशं न प्रतिजानते ।
वृक्षं पक्वं फलमङ्कीव धूनुहीन्द्र संपारणं वसु ॥ ४ ॥
स्वयुरिन्द्र स्वराळसि स्मद्दिष्टिः स्वयशस्तरः ।
स वावृधान ओजसा पुरुष्टुत भवा नः सुश्रवस्तमः ॥ ५ ॥

[४६] षट्चत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—विश्वामित्रः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१ विराट्त्रिष्टुप्; २, ५ निचृत्त्रिष्टुप्; ३, ४ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

अथ दशमो वर्गः ॥ १० ॥

युध्मस्य ते वृषभस्य स्वराज उग्रस्य यूनः स्थविरस्य घृष्वेः ।
अजूर्यतो वज्रिणो वीर्या३णीन्द्र श्रुतस्य महतो महानि ॥ १ ॥
महाँ असि महिष वृष्ण्येभिर्धनस्पृदुग्र सहमानो अन्यान् ।
एको विश्वस्य भुवनस्य राजा स योधया च क्षयया च जनान् ॥ २ ॥
प्र मात्राभी रिरिचे रोचमानः प्र देवेभिर्विश्वतो अप्रतीतः ।
प्र मज्मना दिव इन्द्रः पृथिव्याः प्रोरोर्महो अन्तरिक्षादृजीषी ॥ ३ ॥
उरुं गभीरं जनुषाभ्यु१ग्रं विश्वव्यचसमवतं मतीनाम् ।
इन्द्रं सोमासः प्रदिवि सुतासः समुद्रं न स्रवत आ विशन्ति ॥ ४ ॥
यं सोममिन्द्र पृथिवीद्यावा गर्भं न माता बिभृतस्त्वाया ।
तं ते हिन्वन्ति तमु ते मृजन्त्यध्वर्यवो वृषभ पातवा उ ॥ ५ ॥

[४७] सप्तचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—विश्वामित्रः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१-३ निचृत्त्रिष्टुप्; ४ त्रिष्टुप्; ५ विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

अथ एकादशो वर्गः ॥ ११ ॥

मरुत्वाँ इन्द्र वृषभो रणाय पिबा सोममनुष्वधं मदाय ।
आ सिञ्चस्व जठरे मध्व ऊर्मिं त्वं राजासि प्रदिवः सुतानाम् ॥ १ ॥
सजोषा इन्द्र सगणो मरुद्भिः सोमं पिब वृत्रहा शूर विद्वान् ।
जहि शत्रूँरप मृधो नुदस्वाथाभयं कृणुहि विश्वतो नः ॥ २ ॥
उत ऋतुभिर्ऋतुपाः पाहि सोममिन्द्र देवेभिः सखिभिः सुतं नः ।
याँ आभजो मरुतो ये त्वान्वहन्वृत्रमदधुस्तुभ्यमोजः ॥ ३ ॥
ये त्वाहिहत्ये मघवन्नवर्धन्ये शाम्बरे हरिवो ये गविष्टौ ।
ये त्वा नूनमनुमदन्ति विप्राः पिबेन्द्र सोमं सगणो मरुद्भिः ॥ ४ ॥
मरुत्वन्तं वृषभं वावृधानमकवारिं दिव्यं शासमिन्द्रम् ।
विश्वासाहमवसे नूतनायोग्रं सहोदामिह तं हुवेम ॥ ५ ॥

[४८] अष्टचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—विश्वामित्रः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१, २ निचृत्त्रिष्टुप्; ३, ४ त्रिष्टुप्; ५ भुरिक्पङ्क्तिः॥ स्वरः—१-४ धैवतः; ५ पञ्चमः॥

अथ द्वादशो वर्गः॥ १२॥

सद्यो ह जातो वृषभः कनीनः प्रभर्तुमावदन्धसः सुतस्य।
साधोः पिब प्रतिकामं यथा ते रसाशिरः प्रथमं सोम्यस्य॥ १॥
यज्जायथास्तदहरस्य कामेंऽशोः पीयूषमपिबो गिरिष्ठाम्।
तं ते माता परि योषा जनित्री महः पितुर्दम आसिञ्चदग्रे॥ २॥
उपस्थाय मातरमन्नमैट्ट तिग्ममपश्यदभि सोममूधः।
प्रयावयन्नचरद् गृत्सो अन्यान्महानि चक्रे पुरुधप्रतीकः॥ ३॥
उग्रस्तुराषाळभिभूत्योजा यथावशं तन्वं चक्र एषः।
त्वष्टारमिन्द्रो जनुषाभिभूयामुष्या सोममपिबच्चमूषु॥ ४॥
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम्॥ ५॥

[४९] एकोनपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—विश्वामित्रः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१, ४ निचृत्त्रिष्टुप्; २, ५ त्रिष्टुप्; ३ भुरिक्पङ्क्तिः॥ स्वरः—१, २, ४, ५ धैवतः; ३ पञ्चमः॥

अथ त्रयोदशो वर्गः॥ १३॥

शंसा महामिन्द्रं यस्मिन्विश्वा आ कृष्टयः सोमपाः काममव्यन्।
यं सुक्रतुं धिषणे विभ्वतष्टं घनं वृत्राणां जनयन्त देवाः॥ १॥
यं नु नकिः पृतनासु स्वराजं द्विता तरति नृतमं हरिष्ठाम्।
इनतमः सत्वभिर्यो ह शूषैः पृथुज्रया अमिनादायुर्दस्योः॥ २॥
सहावा पृत्सु तरणिर्नार्वा व्यानशी रोदसी मेहनावान्।
भगो न कारे हव्यो मतीनां पितेव चारुः सुहवो वयोधाः॥ ३॥
धर्ता दिवो रजसस्पृष्ट ऊर्ध्वो रथो न वायुर्वसुभिर्नियुत्वान्।
क्षपां वस्ता जनिता सूर्यस्य विभक्ता भागं धिषणेव वाजम्॥ ४॥

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम्॥ ५॥

[५०] पञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—विश्वामित्रः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१, २, ४ निचृत्त्रिष्टुप्; ३, ५ त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

अथ चतुर्दशो वर्गः॥ १४॥

इन्द्रः स्वाहा पिबतु यस्य सोम आगत्या तुम्रो वृषभो मरुत्वान्।
ओरुव्यचाः पृणतामेभिरन्नैरास्य हविस्तन्व१ः काममृध्याः॥ १॥
आ ते सपर्यू जवसे युनज्मि ययोरनु प्रदिवः श्रुष्टिमावः।
इह त्वा धेयुर्हरयः सुशिप्र पिबा त्व१स्य सुषुतस्य चारोः॥ २॥
गोभिर्मिमिक्षुं दधिरे सुपारमिन्द्रं ज्यैष्ठ्याय धायसे गृणानाः।
मन्दानः सोमं पपिवाँ ऋजीषिन्त्समस्मभ्यं पुरुधा गा इषण्य॥ ३॥
इमं कामं मन्दया गोभिरश्वैश्चन्द्रवता राधसा पप्रथश्च।
स्वर्यवो मतिभिस्तुभ्यं विप्रा इन्द्राय वाहः कुशिकासो अक्रन्॥ ४॥
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम्॥ ५॥

[५१] एकपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—विश्वामित्रः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१-३ निचृज्जगती; ४, ७-९ त्रिष्टुप्; ५, ६ निचृत्त्रिष्टुप्; १०, ११ यवमध्यागायत्री; १२ विराड्गायत्री॥ स्वरः—१-३ निषादः; ४-९ धैवतः; १०-१२ षड्जः॥

अथ पञ्चदशो वर्गः॥ १५॥

चर्षणीधृतं मघवानमुक्थ्य१मिन्द्रं गिरो बृहतीरभ्यनूषत।
वावृधानं पुरुहूतं सुवृक्तिभिरमर्त्यं जरमाणं दिवेदिवे॥ १॥
शतक्रतुमर्णवं शाकिनं नरं गिरो म इन्द्रमुप यन्ति विश्वतः।
वाजसनिं पूर्भिदं तूर्णिमप्तुरं धामसाचमभिषाचं स्वर्विदम्॥ २॥
आकरे वसोर्जरिता पनस्यतेऽनेहसः स्तुभ इन्द्रो दुवस्यति।
विवस्वतः सदन आ हि पिप्रिये सत्रासाहमभिमातिहनं स्तुहि॥ ३॥

नृणामु त्वा नृतमं गीर्भिरुक्थैरभि प्र वीरमर्चता सबाधः।
सं सहसे पुरुमायो जिहीते नमो अस्य प्रदिव एक ईशे॥ ४॥
पूर्वीरस्य निष्षिधो मर्त्येषु पुरू वसूनि पृथिवी बिभर्ति।
इन्द्राय द्याव ओषधीरुतापो रयिं रक्षन्ति जीरयो वनानि॥ ५॥

अथ षोडशो वर्गः॥ १६॥

तुभ्यं ब्रह्माणि गिर इन्द्र तुभ्यं सत्रा दधिरे हरिवो जुषस्व।
बोध्या३पिरवसो नूतनस्य सखे वसो जरितृभ्यो वयो धाः॥ ६॥
इन्द्र मरुत्व इह पाहि सोमं यथा शार्याते अपिबः सुतस्य।
तव प्रणीती तव शूर शर्मन्ना विवासन्ति कवयः सुयज्ञाः॥ ७॥
स वावशान इह पाहि सोमं मरुद्भिरिन्द्र सखिभिः सुतं नः।
जातं यत्त्वा परि देवा अभूषन्महे भराय पुरुहूत विश्वे॥ ८॥
असूर्ये मरुत आपिरेषोऽमन्दन्निन्द्रमनु दातिवाराः।
तेभिः साकं पिबतु वृत्रखादः सुतं सोमं दाशुषः स्वे सधस्थे॥ ९॥
इदं ह्यन्वोजसा सुतं राधानां पते। पिबा त्व१स्य गिर्वणः॥ १०॥
यस्ते अनु स्वधामसत्सुते नि यच्छ तन्वम्। स त्वा ममत्तु सोम्यम्॥ ११॥
प्र ते अश्नोतु कुक्ष्योः प्रेन्द्र ब्रह्मणा शिरः। प्र बाहु शूर राधसे॥ १२॥

[५२] द्विपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—विश्वामित्रः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१, ३, ४ गायत्री; २ निचृद्गायत्री; ५, ७ निचृत्त्रिष्टुप्; ६ जगती; ८ त्रिष्टुप्॥ स्वरः—१-४ षड्जः; ५, ७, ८ धैवतः; ६ निषादः॥

अथ सप्तदशो वर्गः॥ १७॥

धानावन्तं करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनम्। इन्द्र प्रातर्जुषस्व नः॥ १॥
पुरोळाशं पचत्यं जुषस्वेन्द्रा गुरस्व च। तुभ्यं हव्यानि सिस्रते॥ २॥
पुरोळाशं च नो घसो जोषयासे गिरश्च नः। वधूयुरिव योषणाम्॥ ३॥
पुरोळाशं सनश्रुत प्रातःसावे जुषस्व नः। इन्द्र क्रतुर्हि ते बृहन्॥ ४॥
माध्यन्दिनस्य सवनस्य धानाः पुरोळाशमिन्द्र कृष्वेह चारुम्।
प्र यत्स्तोता जरिता तूर्ण्यर्थो वृषायमाण उप गीर्भिरीट्टे॥ ५॥

अथ अष्टादशो वर्गः॥ १८॥

तृतीये धानाः सवने पुरुष्टुत पुरोळाशमाहुतं मामहस्व नः।
ऋभुमन्तं वाजवन्तं त्वा कवे प्रयस्वन्त उप शिक्षेम धीतिभिः॥ ६॥
पूषण्वते ते चकृमा करम्भं हरिवते हर्यश्वाय धानाः।
अपूपमद्धि सगणो मरुद्भिः सोमं पिब वृत्रहा शूर विद्वान्॥ ७॥
प्रति धाना भरत तूयमस्मै पुरोळाशं वीरतमाय नृणाम्।
दिवेदिवे सदृशीरिन्द्र तुभ्यं वर्धन्तु त्वा सोमपेयाय धृष्णो॥ ८॥

[५३] त्रिपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—विश्वामित्रः॥ देवता—१ इन्द्रापर्वतौ; २-१४, २१-२४ इन्द्रः; १५, १६ वाक्; १७-२० रथाङ्गानि॥ छन्दः—१, ५, ९, २१ निचृत्त्रिष्टुप्; २, ६, ७, १४, १७, १९, २३, २४ त्रिष्टुप्; ३, ४, ८, १५ स्वराट्त्रिष्टुप्; १०, १६ निचृज्जगती; ११ भुरिक्त्रिष्टुप्; १२, २२ अनुष्टुप्; १३ निचृद्गायत्री; १८ निचृद्बृहती; २० भुरिगनुष्टुप्॥ स्वरः—१-९, ११, १४, १५, १७, १९, २१, २३, २४ धैवतः; १०, १६ निषादः; १२, २०, २२ गान्धारः; १३ षड्जः; १८ मध्यमः॥

अथैकोनविंशो वर्गः॥ १९॥

इन्द्रापर्वता बृहता रथेन वामीरिष आ वहतं सुवीराः।
वीतं हव्यान्यध्वरेषु देवा वर्धेथां गीर्भिरिळया मदन्ता॥ १॥
तिष्ठा सु कं मघवन्मा परा गाः सोमस्य नु त्वा सुषुतस्य यक्षि।
पितुर्न पुत्रः सिचमा रभे त इन्द्र स्वादिष्ठया गिरा शचीवः॥ २॥
शंसावाध्वर्यो प्रति मे गृणीहीन्द्राय वाहः कृणवाव जुष्टम्।
एदं बर्हिर्यजमानस्य सीदाथा च भूदुक्थमिन्द्राय शस्तम्॥ ३॥
जायेदस्तं मघवन्त्सेदु योनिस्तदित्त्वा युक्ता हरयो वहन्तु।
यदा कदा च सुनवाम सोममग्निष्ट्वा दूतो धन्वात्यच्छ॥ ४॥
परा याहि मघवन्ना च याहीन्द्र भ्रातरुभयत्रा ते अर्थम्।
यत्रा रथस्य बृहतो निधानं विमोचनं वाजिनो रासभस्य॥ ५॥

अथ विंशो वर्गः॥ २०॥

अपाः सोममस्तमिन्द्र प्र याहि कल्याणीर्जाया सुरणं गृहे ते।
यत्रा रथस्य बृहतो निधानं विमोचनं वाजिनो दक्षिणावत्॥ ६॥

इमे भोजा अङ्गिरसो विरूपा दिवस्पुत्रासो असुरस्य वीराः।
विश्वामित्राय ददतो मघानि सहस्रसावे प्र तिरन्त आयुः ॥ ७ ॥
रूपंरूपं मघवा बोभवीति मायाः कृण्वानस्तन्वं१ परि स्वाम्।
त्रिर्यद्दिवः परि मुहूर्तमागात्स्वैर्मन्त्रैरनृतुपा ऋतावा ॥ ८ ॥
महाँ ऋषिर्देवजा देवजूतोऽस्तभ्नात्सिन्धुमर्णवं नृचक्षाः ।
विश्वामित्रो यदवहत्सुदासमप्रियायत कुशिकेभिरिन्द्रः ॥ ९ ॥
हंसाइव कृणुथ श्लोकमद्रिभिर्मदन्तो गीर्भिरध्वरे सुते सचा।
देवेभिर्विप्रा ऋषयो नृचक्षसो वि पिबध्वं कुशिकाः सोम्यं मधु ॥ १० ॥

अथ एकविंशो वर्गः ॥ २१ ॥

उप प्रेत कुशिकाश्चेतयध्वमश्वं राये प्र मुञ्चता सुदासः।
राजा वृत्रं जङ्घनत्प्रागपागुदगथा यजाते वर आ पृथिव्याः ॥ ११ ॥
य इमे रोदसी उभे अहमिन्द्रमतुष्टवम् ।
विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मेदं भारतं जनम् ॥ १२ ॥
विश्वामित्रा अरासत ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे। करदिन्नः सुराधसः ॥ १३ ॥
किं ते कृण्वन्ति कीकटेषु गावो नाशिरं दुह्रे न तपन्ति घर्मम्।
आ नो भर प्रमगन्दस्य वेदो नैचाशाखं मघवन्रन्धया नः ॥ १४ ॥
ससर्परीरमतिं बाधमाना बृहन्मिमाय जमदग्निदत्ता ।
आ सूर्यस्य दुहिता ततान श्रवो देवेष्वमृतमजुर्यम् ॥ १५ ॥

अथ द्वाविंशो वर्गः ॥ २२ ॥

ससर्परीरभरत्तूयमेभ्योऽधि श्रवः पाञ्चजन्यासु कृष्टिषु।
सा पक्ष्या३ नव्यमायुर्दधाना यां मे पलस्तिजमदग्नयो ददुः ॥ १६ ॥
स्थिरौ गावौ भवतां वीळुरक्षो मेषा वि वर्हि मा युगं वि शारि।
इन्द्रः पातल्ये ददतां शरीतोररिष्टनेमे अभि नः सचस्व ॥ १७ ॥
बलं धेहि तनूषु नो बलमिन्द्रानळुत्सु नः ।
बलं तोकाय तनयाय जीवसे त्वं हि बलदा असि ॥ १८ ॥

अभि व्ययस्व खदिरस्य सारमोजो धेहि स्पन्दने शिंशपायाम्।
अक्ष वीळो वीळित वीळयस्व मा यामादस्मादव जीहिपो नः ॥ १९ ॥
अयमस्मान्वनस्पतिर्मा च हा मा च रीरिषत् ।
स्वस्त्या गृहेभ्य आवसा आ विमोचनात् ॥ २० ॥

अथ त्रयोविंशो वर्गः ॥ २३ ॥

इन्द्रोतिभिर्बहुलाभिर्नो अद्य याच्छ्रेष्ठाभिर्मघवञ्छूर जिन्व।
यो नो द्वेष्ट्यधरः सस्पदीष्ट यमु द्विष्मस्तमु प्राणो जहातु ॥ २१ ॥
परशुं चिद्वि तपति शिम्बलं चिद्वि वृश्चति ।
उखा चिदिन्द्र येषन्ती प्रयस्ता फेनमस्यति ॥ २२ ॥
न सायकस्य चिकिते जनासो लोधं नयन्ति पशु मन्यमानाः।
नावाजिनं वाजिना हासयन्ति न गर्दभं पुरो अश्वान्नयन्ति ॥ २३ ॥
इम इन्द्र भरतस्य पुत्रा अपपित्वं चिकितुर्न प्रपित्वम् ।
हिन्वन्त्यश्वमरणं न नित्यं ज्यावाजं परि णयन्त्याजौ ॥ २४ ॥

पञ्चमोऽनुवाकः [५४] चतुःपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—प्रजापतिर्वैश्वामित्रो वाच्यो वा ॥ देवता—विश्वे देवाः ॥ छन्दः—१ निचृत्पङ्क्तिः; २, ३, ६, ८, १०, ११, १३, १४ त्रिष्टुप्; ४, ७, १५, १६, १८, २० २१ निचृत्त्रिष्टुप्; ५ स्वराट् त्रिष्टुप्; ९ भुरिक्पङ्क्तिः; १२ स्वराट्पङ्क्तिः; १७ भुरिक्त्रिष्टुप्; १९, २२ विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१, ९, १२ पञ्चमः; २-८, १०, ११, १३-२२ धैवतः ॥

अथ चतुर्विंशो वर्गः ॥ २४ ॥

इमं महे विदथ्याय शूषं शश्वत्कृत्व ईड्याय प्र जभ्रुः ।
शृणोतु नो दम्येभिरनीकैः शृणोत्वग्निर्दिव्यैरजस्रः ॥ १ ॥
महि महे दिवे अर्चा पृथिव्यै कामो म इच्छञ्चरति प्रजानन्।
ययोर्ह स्तोमे विदथेषु देवाः सपर्यवो मादयन्ते सचायोः ॥ २ ॥
युवोर्ऋतं रोदसी सत्यमस्तु महे षु णः सुविताय प्र भूतम्।
इदं दिवे नमो अग्ने पृथिव्यै सपर्यामि प्रयसा यामि रत्नम् ॥ ३ ॥
उतो हि वां पूर्व्या आविविद्र ऋतावरी रोदसी सत्यवाचः।
नरश्चिद्वां समिथे शूरसातौ ववन्दिरे पृथिवि वेविदानाः ॥ ४ ॥

को अद्धा वेद क इह प्र वोचद्देवाँ अच्छा पथ्या३ का समेति।
ददृश्र एषामवमा सदांसि परेषु या गुह्येषु व्रतेषु ॥ ५ ॥

अथ पञ्चविंशो वर्गः ॥ २५ ॥

कविर्नृचक्षा अभि षीमचष्ट ऋतस्य योना विघृते मदन्ती।
नाना चक्राते सदनं यथा वेः समानेन क्रतुना संविदाने ॥ ६ ॥
समान्या वियुते दूरेअन्ते ध्रुवे पदे तस्थतुर्जागरूके।
उत स्वसारा युवती भवन्ती आदु ब्रुवाते मिथुनानि नाम ॥ ७ ॥
विश्वेदेते जनिमा सं विविक्तो महो देवान्बिभ्रती न व्यथेते।
एजद् ध्रुवं पत्यते विश्वमेकं चरत्पतत्रि विषुणं वि जातम् ॥ ८ ॥
सना पुराणमध्येम्यारान्महः पितुर्जनितुर्जामि तन्नः ।
देवासो यत्र पनितार एवैरुरौ पथि व्युते तस्थुरन्तः ॥ ९ ॥
इमं स्तोमं रोदसी प्र ब्रवीम्यृदूदराः शृणवन्नग्निजिह्वाः ।
मित्रः सम्राजो वरुणो युवान आदित्यासः कवयः पप्रथानाः ॥ १० ॥

अथ षड्विंशो वर्गः ॥ २६ ॥

हिरण्यपाणिः सविता सुजिह्वस्त्रिरा दिवो विदथे पत्यमानः।
देवेषु च सवितः श्लोकमश्रेरादस्मभ्यमा सुव सर्वतातिम् ॥ ११ ॥
सुकृत्सुपाणिः स्ववाँ ऋतावा देवस्त्वष्टावसे तानि नो धात्।
पूषण्वन्त ऋभवो मादयध्वमूर्ध्वग्रावाणो अध्वरमतष्ट ॥ १२ ॥
विद्युद्रथा मरुत ऋष्टिमन्तो दिवो मर्या ऋतजाता अयासः।
सरस्वती शृणवन्यज्ञियासो धाता रयिं सहवीरं तुरासः ॥ १३ ॥
विष्णुं स्तोमासः पुरुदस्ममर्का भगस्येव कारिणो यामनि ग्मन्।
उरुक्रमः ककुहो यस्य पूर्वीर्न मर्धन्ति युवतयो जनित्रीः ॥ १४ ॥
इन्द्रो विश्वैर्वीर्यैः३ पत्यमान उभे आ पप्रौ रोदसी महित्वा।
पुरंदरो वृत्रहा धृष्णुषेणः संगृभ्या न आ भरा भूरि पश्वः ॥ १५ ॥

अथ सप्तविंशो वर्गः ॥ २७ ॥

नासत्या मे पितरा बन्धुपृच्छा सजात्यमश्विनोश्चारु नाम।
युवं हि स्थो रयिदौ नो रयीणां दात्रं रक्षेथे अकवैरदब्धा ॥ १६ ॥
महत्तद्वः कवयश्चारु नाम यद्ध देवा भवथ विश्व इन्द्रे।
सख ऋभुभिः पुरुहूत प्रियेभिरिमां धियं सातये तक्षता नः ॥ १७ ॥
अर्यमा णो अदितिर्यज्ञियासोऽदब्धानि वरुणस्य व्रतानि।
युयोत नो अनपत्यानि गन्तोः प्रजावान्नः पशुमाँ अस्तु गातुः ॥ १८ ॥
देवानां दूतः पुरुध प्रसूतोऽनागान्नो वोचतु सर्वताता ।
शृणोतु नः पृथिवी द्यौरुतापः सूर्यो नक्षत्रैरुर्व१न्तरिक्षम् ॥ १९ ॥
शृण्वन्तु नो वृषणः पर्वतासो ध्रुवक्षेमास इळया मदन्तः।
आदित्यैर्नो अदितिः शृणोतु यच्छन्तु नो मरुतः शर्म भद्रम् ॥ २० ॥
सदा सुगः पितुमाँ अस्तु पन्था मध्वा देवा ओषधीः सं पिपृक्त।
भगो मे अग्ने सख्ये न मृध्या उद्रायो अश्यां सदनं पुरुक्षोः ॥ २१ ॥
स्वदस्व हव्या समिषो दिदीह्यस्मद्र्य१क्सं मिमीहि श्रवांसि।
विश्वाँ अग्ने पृत्सु ताञ्जेषि शत्रूनहा विश्वा सुमना दीदिही नः ॥ २२ ॥

[५५] पञ्चपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—प्रजापतिर्वैश्वामित्रो वाच्यो वा॥ देवता—विश्वे देवाः—१ उषा; २-१० अग्निः; ११ अहोरात्रौ; १२-१४ रोदसी; १५ रोदसी द्युनिशौ वा; १६ दिशः; १७-२२ इन्द्रः पर्जन्यात्मा त्वष्टा वाग्निश्च॥ छन्दः—१, २, ६, ७, ९-१२, १९, २२ निचृत् त्रिष्टुप्; ३ भुरिक्पङ्क्तिः; ४, ८, १३, १६, २१ त्रिष्टुप्; ५, २० स्वराट् पङ्क्तिः; १७ भुरिक्त्रिष्टुप्; १४, १५, १८ विराट्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—१, २, ४, ६-१९, २१, २२ धैवतः; ३, ५, २० पञ्चमः॥

अथाष्टाविंशो वर्गः ॥ २८ ॥

उषसः पूर्वा अध यद् व्यूषुर्महद्वि जज्ञे अक्षरं पदे गोः।
व्रता देवानामुप नु प्रभूषन्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ १ ॥

मो षू णो अत्र जुहुरन्त देवा मा पूर्वे अग्ने पितरः पदज्ञाः।
पुराण्योः सद्मनोः केतुरन्तर्महद्देवानामसुरत्वमेकम्॥ २॥
वि मे पुरुत्रा पतयन्ति कामाः शम्यच्छा दीद्ये पूर्व्याणि।
समिद्धे अग्नावृतमिद्वदेम महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ ३॥
समानो राजा विभृतः पुरुत्रा शये शयासु प्रयुतो वनानु।
अन्या वत्सं भरति क्षेति माता महद्देवानामसुरत्वमेकम्॥ ४॥
आक्षित्पूर्वास्वपरा अनूरुत्सद्यो जातासु तरुणीष्वन्तः।
अन्तर्वतीः सुवते अप्रवीता महद्देवानामसुरत्वमेकम्॥ ५॥

अथ एकोनत्रिंशो वर्गः॥ २९॥

शयुः परस्तादध नु द्विमाताबन्धनश्चरति वत्स एकः।
मित्रस्य ता वरुणस्य व्रतानि महद्देवानामसुरत्वमेकम्॥ ६॥
द्विमाता होता विदथेषु सम्राळन्वग्रं चरति क्षेति बुध्नः।
प्र रण्यानि रण्यवाचो भरन्ते महद्देवानामसुरत्वमेकम्॥ ७॥
शूरस्येव युध्यतो अन्तमस्य प्रतीचीनं ददृशे विश्वमायत्।
अन्तर्मतिश्चरति निष्षिधं गोर्महद्देवानामसुरत्वमेकम्॥ ८॥
नि वेवेति पलितो दूत आस्वन्तर्महांश्चरति रोचनेन।
वपूंषि बिभ्रदभि नो वि चष्टे महद्देवानामसुरत्वमेकम्॥ ९॥
विष्णुर्गोपाः परमं पाति पाथः प्रिया धामान्यमृता दधानः।
अग्निष्टा विश्वा भुवनानि वेद महद्देवानामसुरत्वमेकम्॥ १०॥

अथ त्रिंशो वर्गः॥ ३०॥

नाना चक्राते यम्या३ वपूंषि तयोरन्यद्रोचते कृष्णमन्यत्।
श्यावी च यदरुषी च स्वसारौ महद्देवानामसुरत्वमेकम्॥ ११॥
माता च यत्र दुहिता च धेनू सबर्दुघे धापयेते समीची।
ऋतस्य ते सदसीळे अन्तर्महद्देवानामसुरत्वमेकम्॥ १२॥

अन्यस्या वत्सं रिहती मिमाय कया भुवा नि दधे धेनुरूधः।
ऋतस्य सा पयसापिन्वतेळा महद्देवानामसुरत्वमेकम्॥ १३॥
पद्या वस्ते पुरुरूपा वपूंष्यूर्ध्वा तस्थौ त्र्यविं रेरिहाणा।
ऋतस्य सद्म वि चरामि विद्वान्महद्देवानामसुरत्वमेकम्॥ १४॥
पदेइव निहिते दस्मे अन्तस्तयोरन्यद् गुह्यमाविरन्यत्।
सध्रीचीना पथ्या३ सा विषूची महद्देवानामसुरत्वमेकम्॥ १५॥

अथैकत्रिंशो वर्गः॥ ३१॥

आ धेनवो धुनयन्तामशिश्वीः सबर्दुघाः शशया अप्रदुग्धाः।
नव्यानव्या युवतयो भवन्तीर्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ १६॥
यदन्यासु वृषभो रोरवीति सो अन्यस्मिन्यूथे नि दधाति रेतः।
स हि क्षपावान्त्स भगः स राजा महद्देवानामसुरत्वमेकम्॥ १७॥
वीरस्य नु स्वश्व्यं जनासः प्र नु वोचाम विदुरस्य देवाः।
षोळ्हा युक्ताः पञ्चपञ्चा वहन्ति महद्देवानामसुरत्वमेकम्॥ १८॥
देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः पुपोष प्रजाः पुरुधा जजान।
इमा च विश्वा भुवनान्यस्य महद्देवानामसुरत्वमेकम्
॥ १९॥
मही समैरच्चम्वा समीची उभे ते अस्य वसुना न्यृष्टे।
शृण्वे वीरो विन्दमानो वसूनि महद्देवानामसुरत्वमेकम्॥ २०॥
इमां च नः पृथिवीं विश्वधाया उप क्षेति हितमित्रो न राजा।
पुरःसदः शर्मसदो न वीरा महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ २१॥
निष्षिध्वरीस्त ओषधीरुतापो रयिं त इन्द्र पृथिवी बिभर्ति।
सखायस्ते वामभाजः स्याम महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ २२॥

इति तृतीयाऽष्टके तृतीयोऽध्यायः॥

अथ तृतीयाष्टके चतुर्थोऽध्यायः

[५६] षट्पञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—प्रजापतिर्वैश्वामित्रो वाच्यो वा ॥ देवता—विश्वे देवाः ॥ छन्दः—१, ६, ८ निचृत्त्रिष्टुप्; २ भुरिक्पङ्क्तिः; ३, ४ विराट्त्रिष्टुप्; ५, ७ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१, ३-८ धैवतः; २ पञ्चमः ॥

अथ प्रथमो वर्गः ॥ १ ॥

न ता मिनन्ति मायिनो न धीरा व्रता देवानां प्रथमा ध्रुवाणि।
न रोदसी अद्रुहा वेद्याभिर्न पर्वता निनमे तस्थिवांसः ॥ १ ॥
षड् भाराँ एको अचरन्बिभर्त्यृतं वर्षिष्ठमुप गाव आगुः।
तिस्रो महीरुपरास्तस्थुरत्या गुहा द्वे निहिते दर्श्येका ॥ २ ॥
त्रिपाजस्यो वृषभो विश्वरूप उत त्र्युधा पुरुध प्रजावान् ।
त्र्यनीकः पत्यते माहिनावान्त्स रेतोधा वृषभः शश्वतीनाम् ॥ ३ ॥
अभीक आसां पदवीरबोध्यादित्यानामह्वे चारु नाम ।
आपश्चिदस्मा अरमन्त देवीः पृथग्व्रजन्तीः परि षीमवृञ्जन् ॥ ४ ॥
त्री षधस्था सिन्धवस्त्रिः कवीनामुत त्रिमाता विदथेषु सम्राट्।
ऋतावरीर्योषणास्तिस्रो अप्यास्त्रिरा दिवो विदथे पत्यमानाः ॥ ५ ॥
त्रिरा दिवः सवितर्वार्याणि दिवेदिव आ सुव त्रिर्नो अह्नः।
त्रिधातु राय आ सुवा वसूनि भग त्रातर्धिषणे सातये धाः ॥ ६ ॥
त्रिरा दिवः सविता सोषवीति राजाना मित्रावरुणा सुपाणी।
आपश्चिदस्य रोदसी चिदुर्वी रत्नं भिक्षन्त सवितुः सवाय ॥ ७ ॥
त्रिरुत्तमा दूणशा रोचनानि त्रयो राजन्त्यसुरस्य वीराः।
ऋतावान इषिरा दूळभासस्त्रिरा दिवो विदथे सन्तु देवाः ॥ ८ ॥

[५७] सप्तपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—विश्वामित्रः ॥ देवता—विश्वे देवाः ॥ छन्दः—१, ३, ४ त्रिष्टुप्; २, ५, ६, निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

अथ द्वितीयो वर्गः ॥ २ ॥

प्र मे विविक्वाँ अविदन्मनीषां धेनुं चरन्तीं प्रयुतामगोपाम्।
सद्यश्चिद्या दुदुहे भूरि धासेरिन्द्रस्तदग्निः पनितारो अस्याः ॥ १ ॥

इन्द्रः सु पूषा वृषणा सुहस्ता दिवो न प्रीताः शशयं दुदुहे।
विश्वे यदस्यां रणयन्त देवाः प्र वोऽत्र वसवः सुम्नमश्याम् ॥ २ ॥
या जामयो वृष्ण इच्छन्ति शक्तिं नमस्यन्तीर्जानते गर्भमस्मिन्।
अच्छा पुत्रं धेनवो वावशाना महश्चरन्ति बिभ्रतं वपूंषि ॥ ३ ॥
अच्छा विवक्मि रोदसी सुमेके ग्राव्णो युजानो अध्वरे मनीषा।
इमा उ ते मनवे भूरिवारा ऊर्ध्वा भवन्ति दर्शता यजत्राः ॥ ४ ॥
या ते जिह्वा मधुमती सुमेधा अग्ने देवेषूच्यत उरूची।
तयेह विश्वाँ अवसे यजत्राना सादय पायया चा मधूनि ॥ ५ ॥
या ते अग्ने पर्वतस्येव धारासश्चन्ती पीपयद्देव चित्रा ।
तामस्मभ्यं प्रमतिं जातवेदो वसो रास्व सुमतिं विश्वजन्याम् ॥ ६ ॥

[५८] अष्टपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—विश्वामित्रः ॥ देवता—अश्विनौ ॥ छन्दः—१, ८, ९ त्रिष्टुप्; २-५, ७ निचृत्त्रिष्टुप्; ६ भुरिक्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१-५, ७-९ धैवतः; ६ पञ्चमः ॥

अथ तृतीयो वर्गः ॥ ३ ॥

धेनुः प्रत्नस्य काम्यं दुहानान्तः पुत्रश्चरति दक्षिणायाः।
आ द्योतनिं वहति शुभ्रयामोषसः स्तोमो अश्विनावजीगः ॥ १ ॥
सुयुग्वहन्ति प्रति वामृतेनोर्ध्वा भवन्ति पितरेव मेधाः।
जरेथामस्मद्वि पणेर्मनीषां युवोरवश्चकृमा यातमर्वाक् ॥ २ ॥
सुयुग्भिरश्वैः सुवृता रथेन दस्राविमं शृणुतं श्लोकमद्रेः।
किमङ्ग वां प्रत्यवर्तिं गमिष्ठाहुर्विप्रासो अश्विना पुराजाः ॥ ३ ॥
आ मन्येथामा गतं कच्चिदेवैर्विश्वे जनासो अश्विना हवन्ते।
इमा हि वां गोऋजीका मधूनि प्र मित्रासो न ददुरुस्रो अग्रे ॥ ४ ॥
तिरः पुरू चिदश्विना रजांस्याङ्गूषो वां मघवाना जनेषु।
एह यातं पथिभिर्देवयानैर्दस्राविमे वां निधयो मधूनाम् ॥ ५ ॥

अथ चतुर्थो वर्गः ॥ ४ ॥

पुराणमोकः सख्यं शिवं वां युवोर्नरा द्रविणं जह्नाव्याम्।
पुनः कृण्वानाः सख्या शिवानि मध्वा मदेम सह नू समानाः ॥ ६ ॥
अश्विना वायुना युवं सुदक्षा नियुद्भिश्च सजोषसा युवाना।
नासत्या तिरोअह्न्यं जुषाणा सोमं पिबतमस्रिधा सुदानू ॥ ७ ॥
अश्विना परि वामिषः पुरूचीरीयुर्गीर्भिर्यतमाना अमृध्राः।
रथो ह वामृतजा अद्रिजूतः परि द्यावापृथिवी याति सद्यः ॥ ८ ॥
अश्विना मधुषुत्तमो युवाकुः सोमस्तं पातमा गतं दुरोणे।
रथो ह वां भूरि वर्पः करिक्रत्सुतावतो निष्कृतमागमिष्ठः ॥ ९ ॥

[५९] एकोनषष्टितमं सूक्तम्

ऋषिः—विश्वामित्रः ॥ देवता—मित्रः ॥ छन्दः—१, २, ५, त्रिष्टुप्; ३ निचृत्त्रिष्टुप्; ४ भुरिक्पङ्क्तिः; ६, ९ निचृद्गायत्री; ७, ८ गायत्री ॥ स्वरः—१-३, ५ धैवतः; ४ पञ्चमः; ६-९ षड्जः ॥

अथ पञ्चमो वर्गः ॥ ५ ॥

मित्रो जनान्यातयति ब्रुवाणो मित्रो दाधार पृथिवीमुत द्याम्।
मित्रः कृष्टीरनिमिषाभि चष्टे मित्राय हव्यं घृतवज्जुहोत ॥ १ ॥
प्र स मित्र मर्तो अस्तु प्रयस्वान्यस्त आदित्य शिक्षति व्रतेन।
न हन्यते न जीयते त्वोतो नैनमंहो अश्नोत्यन्तितो न दूरात् ॥ २ ॥
अनमीवास इळया मदन्तो मितज्ञवो वरिमन्ना पृथिव्याः।
आदित्यस्य व्रतमुपक्षियन्तो वयं मित्रस्य सुमतौ स्याम ॥ ३ ॥
अयं मित्रो नमस्यः सुशेवो राजा सुक्षत्रो अजनिष्ट वेधाः।
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ॥ ४ ॥
महाँ आदित्यो नमसोपसद्यो यातयज्जनो गृणते सुशेवः।
तस्मा एतत्पन्यतमाय जुष्टमग्नौ मित्राय हविरा जुहोत ॥ ५ ॥

अथ षष्ठो वर्गः ॥ ६ ॥

मित्रस्य चर्षणीधृतोऽवो देवस्य सानसि। द्युम्नं चित्रश्रवस्तमम् ॥ ६ ॥

अभि यो महिना दिवं मित्रो बभूव सप्रथाः। अभि श्रवोभिः पृथिवीम् ॥ ७ ॥
मित्राय पञ्च येमिरे जना अभिष्टिशवसे। स देवान्विश्वान्बिभर्ति ॥ ८ ॥
मित्रो देवेष्वायुषु जनाय वृक्तबर्हिषे। इष इष्टव्रता अकः ॥ ९ ॥

[६०] षष्टितमं सूक्तम्

ऋषिः—विश्वामित्रः ॥ देवता—ऋभवः ॥ छन्दः—१-३ जगती; ४, ५ निचृज्जगती; ६ विराड्जगती; ७ भुरिग्जगती ॥ स्वरः—निषादः ॥

अथ सप्तमो वर्गः ॥ ७ ॥

इहेह वो मनसा बन्धुता नर उशिजो जग्मुरभि तानि वेदसा।
याभिर्मायाभिः प्रतिजूतिवर्पसः सौधन्वना यज्ञियं भागमानश ॥ १ ॥
याभिः शचीभिश्चमसाँ अपिंशत यया धिया गामरिणीत चर्मणः।
येन हरी मनसा निरतक्षत तेन देवत्वमृभवः समानश ॥ २ ॥
इन्द्रस्य सख्यमृभवः समानशुर्मनोर्नपातो अपसो दधन्विरे।
सौधन्वनासो अमृतत्वमेरिरे विष्ट्वी शमीभिः सुकृतः सुकृत्यया ॥ ३ ॥
इन्द्रेण याथ सरथं सुते सचाँ अथो वशानां भवथा सह श्रिया।
न वः प्रतिमै सुकृतानि वाघतः सौधन्वना ऋभवो वीर्याणि च ॥ ४ ॥
इन्द्र ऋभुभिर्वाजवद्भिः समुक्षितं सुतं सोममा वृषस्वा गभस्त्योः।
धियेषितो मघवन्दाशुषो गृहे सौधन्वनेभिः सह मत्स्वा नृभिः ॥ ५ ॥
इन्द्र ऋभुमान्वाजवान्मत्स्वेह नोऽस्मिन्त्सवने शच्या पुरुष्टुत।
इमानि तुभ्यं स्वसराणि येमिरे व्रता देवानां मनुषश्च धर्मभिः ॥ ६ ॥
इन्द्र ऋभुभिर्वाजिभिर्वाजयन्निह स्तोमं जरितुरुप याहि यज्ञियम्।
शतं केतेभिरिषिरेभिरायवे सहस्रणीथो अध्वरस्य होमनि ॥ ७ ॥

[६१] एकषष्टितमं सूक्तम्

ऋषिः—विश्वामित्रः ॥ देवता—उषाः ॥ छन्दः—१, ५, ७ त्रिष्टुप्; २ विराट्त्रिष्टुप्; ३, ४ भुरिक्पङ्क्तिः; ६ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१, २, ५-७ धैवतः; ३, ४ पञ्चमः ॥

अथाष्टमो वर्गः ॥ ८ ॥

उषो वाजेन वाजिनि प्रचेताः स्तोमं जुषस्व गृणतो मघोनि।
पुराणी देवि युवतिः पुरन्धिरनु व्रतं चरसि विश्ववारे ॥ १ ॥

उषो देव्यमर्त्या वि भाहि चन्द्ररथा सूनृता ईरयन्ती ।
आ त्वा वहन्तु सुयमासो अश्वा हिरण्यवर्णां पृथुपाजसो ये ॥ २ ॥
उषः प्रतीची भुवनानि विश्वोर्ध्वा तिष्ठस्यमृतस्य केतुः ।
समानमर्थं चरणीयमाना चक्रमिव नव्यस्या ववृत्स्व ॥ ३ ॥
अव स्यूमेव चिन्वती मघोन्युषा याति स्वसरस्य पत्नी ।
स्व१र्जनन्ती सुभगा सुदंसा आन्ताद्दिवः पप्रथ आ पृथिव्याः ॥ ४ ॥
अच्छा वो देवीमुषसं विभातीं प्र वो भरध्वं नमसा सुवृक्तिम् ।
ऊर्ध्वं मधुधा दिवि पाजो अश्रेत्प्र रोचना रुरुचे रण्वसन्दृक् ॥ ५ ॥
ऋतावरी दिवो अर्कैरबोध्या रेवती रोदसी चित्रमस्थात् ।
आयतीमग्न उषसं विभातीं वाममेषि द्रविणं भिक्षमाणः ॥ ६ ॥
ऋतस्य बुध्न उषसामिषण्यन्वृषा मही रोदसी आ विवेश ।
मही मित्रस्य वरुणस्य माया चन्द्रेव भानुं वि दधे पुरुत्रा ॥ ७ ॥

[६२] द्विषष्टितमं सूक्तम्

ऋषिः—१-१५ विश्वामित्रः; १६-१८ विश्वामित्रो जमदग्निर्वा ॥ देवता—१-३ इन्द्रावरुणौ; ४-६ बृहस्पतिः; ७-९ पूषा; १०-१२ सविता; १३-१५ सोमः; १६-१८ मित्रावरुणौ ॥ छन्दः—१ विराट्त्रिष्टुप्; २ त्रिष्टुप्; ३ निचृत्त्रिष्टुप्; ४, ५, १०, ११, १६ निचृद् गायत्री; ६ पादनिचृद्गायत्री; ७-९, १२-१५, १७, १८ गायत्री ॥ स्वरः—१-३ धैवतः; ४-१८ षड्जः ॥

अथ नवमो वर्गः ॥ ९ ॥

इमा उ वां भृमयो मन्यमाना युवावते न तुज्या अभूवन् ।
क्व१ त्यदिन्द्रावरुणा यशो वां येन स्मा सिनं भरथः सखिभ्यः ॥ १ ॥
अयमु वां पुरुतमो रयीयञ्छश्वत्तममवसे जोहवीति ।
सजोषाविन्द्रावरुणा मरुद्भिर्दिवा पृथिव्या शृणुतं हवं मे ॥ २ ॥
अस्मे तदिन्द्रावरुणा वसु ष्यादस्मे रयिर्मरुतः सर्ववीरः ।
अस्मान्वरूत्रीः शरणैरवन्त्वस्मान्होत्रा भारती दक्षिणाभिः ॥ ३ ॥
बृहस्पते जुषस्व नो हव्यानि विश्वदेव्य । रास्व रत्नानि दाशुषे ॥ ४ ॥

शुचिमर्कैर्बृहस्पतिमध्वरेषु नमस्यत । अनाम्योज आ चके ॥ ५ ॥

अथ दशमो वर्गः ॥ १० ॥

वृषभं चर्षणीनां विश्वरूपमदाभ्यम् । बृहस्पतिं वरेण्यम् ॥ ६ ॥
इयं ते पूषन्नाघृणे सुष्टुतिर्देव नव्यसी । अस्माभिस्तुभ्यं शस्यते ॥ ७ ॥
तां जुषस्व गिरं मम वाजयन्तीमवा धियम् । वधूयुरिव योषणाम् ॥ ८ ॥
यो विश्वाभि विपश्यति भुवना सं च पश्यति । स नः पूषाविता भुवत् ॥ ९ ॥
तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ १० ॥

अथैकादशो वर्गः ॥ ११ ॥

देवस्य सवितुर्वयं वाजयन्तः पुरन्ध्या । भगस्य रातिमीमहे ॥ ११ ॥
देवं नरः सवितारं विप्रा यज्ञैः सुवृक्तिभिः । नमस्यन्ति धियेषिताः ॥ १२ ॥
सोमो जिगाति गातुविद्देवानामेति निष्कृतम् । ऋतस्य योनिमासदम् ॥ १३ ॥
सोमो अस्मभ्यं द्विपदे चतुष्पदे च पशवे । अनमीवा इषस्करत् ॥ १४ ॥
अस्माकमायुर्वर्धयन्नभिमातीः सहमानः । सोमः सधस्थमासदत् ॥ १५ ॥
आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् । मध्वा रजांसि सुक्रतू ॥ १६ ॥
उरुशंसा नमोवृधा मह्ना दक्षस्य राजथः । द्राघिष्ठाभिः शुचिव्रता ॥ १७ ॥
गृणाना जमदग्निना योनावृतस्य सीदतम् । पातं सोममृतावृधा ॥ १८ ॥

इति तृतीयं मण्डलम् ॥

अथ चतुर्थं मण्डलम्

प्रथमोऽनुवाकः [१] प्रथमं सूक्तम्

ऋषिः—वामदेवः ॥ देवता—१, ५-२० अग्निः; २-४ अग्निर्वा वरुणश्च ॥ छन्दः—१ स्वराडतिशक्वरी; २ अतिजगती; ३ अष्टिः; ४, ६ भुरिक्पङ्क्तिः; ५, १८, २० स्वराट्पङ्क्तिः; ७, ९, १५, १७, १९ विराट्त्रिष्टुप्; ८, १०-१२, १६ निचृत्त्रिष्टुप्; १३, १४ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१, ४-६, १८, २० पञ्चमः; २ निषादः; ३ मध्यमः; ७-१७, १९ धैवतः ॥

अथ द्वादशो वर्गः ॥ १२ ॥

त्वां ह्यग्ने सदमित्समन्यवो देवासो देवमरतिं न्येरिर इति क्रत्वा न्येरिरे।
अमर्त्यं यजत मर्त्येष्वा देवमादेवं जनत प्रचेतसं
विश्वमादेवं जनत प्रचेतसम् ॥ १ ॥
स भ्रातरं वरुणमग्न आ ववृत्स्व देवाँ अच्छा सुमती यज्ञवनसं
ज्येष्ठं यज्ञवनसम्। ऋतावानमादित्यं चर्षणीधृतं राजानं चर्षणीधृतम् ॥ २ ॥
सखे सखायमभ्या ववृत्स्वाशुं न चक्रं रथ्येव रंह्यास्मभ्यं दस्म रंह्या।
अग्ने मृळीकं वरुणे सचा विदो मरुत्सु विश्वभानुषु ।
तोकाय तुजे शुशुचान शं कृध्यस्मभ्यं दस्म शं कृधि ॥ ३ ॥
त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान्देवस्य हेळोऽव यासिसीष्ठाः ।
यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्र मुमुग्ध्यस्मत् ॥ ४ ॥
स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ ।
अव यक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृळीकं सुहवो न एधि ॥ ५ ॥

अथ त्रयोदशो वर्गः ॥ १३ ॥

अस्य श्रेष्ठा सुभगस्य सन्दृग्देवस्य चित्रतमा मर्त्येषु।
शुचि घृतं न तप्तमघ्न्यायाः स्पार्हा देवस्य मंहनेव धेनोः ॥ ६ ॥
त्रिरस्य ता परमा सन्ति सत्या स्पार्हा देवस्य जनिमान्यग्नेः।
अनन्ते अन्तः परिवीत आगाच्छुचिः शुक्रो अर्यो रोरुचानः ॥ ७ ॥
स दूतो विश्वेदभि वष्टि सद्मा होता हिरण्यरथो रंसुजिह्वः।
रोहिदश्वो वपुष्यो विभावा सदा रण्वः पितुमतीव संसत् ॥ ८ ॥

स चेतयन्मनुषो यज्ञबन्धुः प्र तं मह्या रशनया नयन्ति।
स क्षेत्यस्य दुर्यासु साधन्देवो मर्तस्य सधनित्वमाप ॥ ९ ॥
स तू नो अग्निर्नयतु प्रजानन्नच्छा रत्नं देवभक्तं यदस्य।
धिया यद्विश्वे अमृता अकृण्वन्द्यौष्पिता जनिता सत्यमुक्षन् ॥ १० ॥

अथ चतुर्दशो वर्गः ॥ १४ ॥

स जायत प्रथमः पस्त्यासु महो बुध्ने रजसो अस्य योनौ।
अपादशीर्षा गुहमानो अन्तायोयुवानो वृषभस्य नीळे ॥ ११ ॥
प्र शर्ध आर्त प्रथमं विपन्याँ ऋतस्य योना वृषभस्य नीळे।
स्पार्हो युवा वपुष्यो विभावा सप्त प्रियासोऽजनयन्त वृष्णे ॥ १२ ॥
अस्माकमत्र पितरो मनुष्या अभि प्र सेदुर्ऋतमाशुषाणाः।
अश्मव्रजाः सुदुघा वव्रे अन्तरुदुस्रा आजन्नुषसो हुवानाः ॥ १३ ॥
ते मर्मृजत ददृवांसो अद्रिं तदेषामन्ये अभितो वि वोचन्।
पश्वयन्त्रासो अभि कारमर्चन्विदन्त ज्योतिश्चकृपन्त धीभिः ॥ १४ ॥
ते गव्यता मनसा दृध्रमुब्धं गा येमानं परि षन्तमद्रिम्।
दृळ्हं नरो वचसा दैव्येन व्रजं गोमन्तमुशिजो वि वव्रुः ॥ १५ ॥

अथ पञ्चदशो वर्गः ॥ १५ ॥

ते मन्वत प्रथमं नाम धेनोस्त्रिः सप्त मातुः परमाणि विन्दन्।
तज्जानतीरभ्यनूषत व्रा आविर्भुवदरुणीर्यशसा गोः ॥ १६ ॥
नेशत्तमो दुधितं रोचत द्यौरुद्देव्या उषसो भानुरर्त ।
आ सूर्यो बृहतस्तिष्ठदज्राँ ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन् ॥ १७ ॥
आदित्पश्चा बुबुधाना व्यख्यन्नादिद्रत्नं धारयन्त द्युभक्तम्।
विश्वे विश्वासु दुर्यासु देवा मित्र धिये वरुण सत्यमस्तु ॥ १८ ॥
अच्छा वोचेय शुशुचानमग्निं होतारं विश्वभरसं यजिष्ठम्।
शुच्यूधो अतृणन्न गवामन्धो न पूतं परिषिक्तमंशोः ॥ १९ ॥
विश्वेषामदितिर्यज्ञियानां विश्वेषामतिथिर्मानुषाणाम् ।
अग्निर्देवानामव आवृणानः सुमृळीको भवतु जातवेदाः ॥ २० ॥

[२] द्वितीयं सूक्तम्

ऋषिः—वामदेवः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—१, १९ पङ्क्तिः; २, ४-७, ९, १३, १५, १७, १८, २० निचृत्त्रिष्टुप्; ३, १६ त्रिष्टुप्; ८, १०, ११ विराट्त्रिष्टुप्; १२ निचृत्पङ्क्तिः; १४ स्वराट्पङ्क्तिः॥ स्वरः—१, १२, १४, १९ पञ्चमः; २-११, १३, १५-१८, २० धैवतः॥

अथ षोडशो वर्गः॥ १६॥

यो मर्त्येष्वमृत ऋतावा देवो देवेष्वरतिर्निधायि ।
होता यजिष्ठो मह्ना शुचध्यै हव्यैरग्निर्मनुष ईरयध्यै ॥ १ ॥
इह त्वं सूनो सहसो नो अद्य जातो जाताँ उभयाँ अन्तरग्ने।
दूत ईयसे युयुजान ऋष्व ऋजुमुष्कान्वृषणः शुक्रांश्च ॥ २ ॥
अत्या वृधस्नू रोहिता घृतस्नू ऋतस्य मन्ये मनसा जविष्ठा।
अन्तरीयसे अरुषा युजानो युष्मांश्च देवान्विश आ च मर्तान्॥ ३ ॥
अर्यमणं वरुणं मित्रमेषामिन्द्राविष्णू मरुतो अश्विनोत ।
स्वश्वो अग्ने सुरथः सुराधा एदु वह सुहविषे जनाय॥ ४ ॥
गोमाँ अग्नेऽविमाँ अश्वी यज्ञो नृवत्सखा सदमिदप्रमृष्यः।
इळावाँ एषो असुर प्रजावान्दीर्घो रयिः पृथुबुध्नः सभावान्॥ ५ ॥

अथ सप्तदशो वर्गः॥ १७॥

यस्त इध्मं जभरत्सिष्विदानो मूर्धानं वा ततपते त्वाया।
भुवस्तस्य स्वतवाँ॒ पायुरग्ने विश्वस्मात्सीमघायत उरुष्य॥ ६ ॥
यस्ते भरादन्नियते चिदन्नं निशिषन्मन्द्रमतिथिमुदीरत् ।
आ देवयुरिनधते दुरोणे तस्मिन्रयिर्ध्रुवो अस्तु दास्वान् ॥ ७ ॥
यस्त्वा दोषा य उषसि प्रशंसात्प्रियं वा त्वा कृणवते हविष्मान्।
अश्वो न स्वे दम आ हेम्यावान्तमंहसः पीपरो दाश्वांसम्॥ ८ ॥
यस्तुभ्यमग्ने अमृताय दाशद्दुवस्त्वे कृणवते यतस्रुक् ।
न स राया शशमानो वि योषन्नैनमंहः परि वरदघायोः॥ ९ ॥
यस्य त्वमग्ने अध्वरं जुजोषो देवो मर्तस्य सुधितं रराणः।
प्रीतेदसद्धोत्रा सा यविष्ठासाम यस्य विधतो वृधासः ॥ १० ॥

अथ अष्टादशो वर्गः॥ १८॥

चित्तिमचित्तिं चिनवद्वि विद्वान्पृष्ठेव वीता वृजिना च मर्तान्।
राये च नः स्वपत्याय देव दितिं च रास्वादितिमुरुष्य॥ ११ ॥
कविं शशासुः कवयोऽदब्धा निधारयन्तो दुर्यास्वायोः।
अतस्त्वं दृश्याँ अग्न एतान्पड्भिः पश्येरद्भुताँ अर्य एवैः॥ १२ ॥
त्वमग्ने वाघते सुप्रणीतिः सुतसोमाय विधते यविष्ठ।
रत्नं भर शशमानाय घृष्वे पृथु श्चन्द्रमवसे चर्षणिप्राः॥ १३ ॥
अधा ह यद्वयमग्ने त्वाया पड्भिर्हस्तेभिश्चकृमा तनूभिः।
रथं न क्रन्तो अपसा भुरिजोर्ऋतं येमुः सुध्य आशुषाणाः॥ १४ ॥
अधा मातुरुषसः सप्त विप्रा जायेमहि प्रथमा वेधसो नॄन्।
दिवस्पुत्रा अङ्गिरसो भवेमाद्रिं रुजेम धनिनं शुचन्तः॥ १५ ॥

अथ एकोनविंशो वर्गः॥ १९॥

अधा यथा नः पितरः परासः प्रत्नासो अग्न ऋतमाशुषाणाः।
शुचीदयन्दीधितिमुक्थशासः क्षामा भिन्दन्तो अरुणीरप व्रन्॥ १६ ॥
सुकर्माणः सुरुचो देवयन्तोऽयो न देवा जनिमा धमन्तः।
शुचन्तो अग्निं ववृधन्त इन्द्रमूर्वं गव्यं परिषदन्तो अग्मन्॥ १७ ॥
आ यूथेव क्षुमति पश्वो अख्यद्देवानां यज्जनिमान्त्युग्र।
मर्तानां चिदुर्वशीरकृप्रन्वृधे चिदर्य उपरस्यायोः ॥ १८ ॥
अकर्म ते स्वपसो अभूम ऋतमवस्रन्नुषसो विभातीः ।
अनूनमग्निं पुरुधा सुश्चन्द्रं देवस्य मर्मृजतश्चारु चक्षुः॥ १९ ॥
एता ते अग्न उचथानि वेधोऽवोचाम कवये ता जुषस्व।
उच्छोचस्व कृणुहि वस्यसो नो महो रायः पुरुवार प्र यन्धि॥ २० ॥

[३] तृतीयं सूक्तम्

ऋषिः—वामदेवः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—१, ५, ८, १०, १२, १५ निचृत्त्रिष्टुप्; २, १३, १४ विराट्त्रिष्टुप्; ३, ७, ९ त्रिष्टुप्; ४ स्वराड्बृहती; ६, ११, १६ पङ्क्तिः॥ स्वरः—१-३, ५, ७-१०,१२-१५ धैवतः; ४ मध्यमः; ६, ११, १६ पञ्चमः॥

अथ विंशो वर्गः ॥ २० ॥

आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रं होतारं सत्ययजं रोदस्योः ।
अग्निं पुरा तनयित्नोरचित्ताद्धिरण्यरूपमवसे कृणुध्वम् ॥ १ ॥
अयं योनिश्चकृमा यं वयं ते जायेव पत्य उशती सुवासाः ।
अर्वाचीनः परिवीतो नि षीदेमा उ ते स्वपाक प्रतीचीः ॥ २ ॥
आशृण्वते अदृपिताय मन्म नृचक्षसे सुमृळीकाय वेधः ।
देवाय शस्तिममृताय शंस ग्रावेव सोता मधुषुद्यमीळे ॥ ३ ॥
त्वं चिन्नः शम्या अग्ने अस्या ऋतस्य बोध्यृतचित्स्वाधीः ।
कदा त उक्था सधमाद्यानि कदा भवन्ति सख्या गृहे ते ॥ ४ ॥
कथा ह तद्वरुणाय त्वमग्ने कथा दिवे गर्हसे कन्न आगः ।
कथा मित्राय मीळ्हुषे पृथिव्यै ब्रवः कदर्यम्णे कद्भगाय ॥ ५ ॥

अथैकविंशो वर्गः ॥ २१ ॥

कद्धिष्ण्यासु वृधसानो अग्ने कद्वाताय प्रतवसे शुभंये ।
परिज्मने नासत्याय क्षे ब्रवः कदग्ने रुद्राय नृघ्ने ॥ ६ ॥
कथा महे पुष्टिंभराय पूष्णे कद्रुद्राय सुमखाय हविर्दे ।
कद्विष्णव उरुगायाय रेतो ब्रवः कदग्ने शरवे बृहत्यै ॥ ७ ॥
कथा शर्धाय मरुतामृताय कथा सूरे बृहते पृच्छ्यमानः ।
प्रति ब्रवोऽदितये तुराय साधा दिवो जातवेदश्चिकित्वान् ॥ ८ ॥
ऋतेन ऋतं नियतमीळ आ गोरामा सचा मधुमत्पक्वमग्ने ।
कृष्णा सती रुशता धासिनैषा जामर्येण पयसा पीपाय ॥ ९ ॥
ऋतेन हि ष्मा वृषभश्चिदक्तः पुमाँ अग्निः पयसा पृष्ठ्येन ।
अस्पन्दमानो अचरद्वयोधा वृषा शुक्रं दुदुहे पृश्निरूधः ॥ १० ॥

अथ द्वाविंशो वर्गः ॥ २२ ॥

ऋतेनाद्रिं व्यसन्भिदन्तः समङ्गिरसो नवन्त गोभिः ।
शुनं नरः परि षदन्नुषासमाविः स्वरभवज्जाते अग्नौ ॥ ११ ॥

ऋतेन देवीरमृता अमृक्ता अर्णोभिरापो मधुमद्भिरग्ने ।
वाजी न सर्गेषु प्रस्तुभानः प्र सदमित्स्रवितवे दधन्युः ॥ १२ ॥
मा कस्य यक्षं सदमिद्धुरो गा मा वेशस्य प्रमिनतो मापेः ।
मा भ्रातुरग्ने अनृजोर्ऋणं वेर्मा सख्युर्दक्षं रिपोर्भुजेम ॥ १३ ॥
रक्षा णो अग्ने तव रक्षणेभी रारक्षाणः सुमख प्रीणानः ।
प्रति ष्फुर वि रुज वीड्वंहो जहि रक्षो महि चिद्वावृधानम् ॥ १४ ॥
एभिर्भव सुमना अग्ने अर्कैरिमान्त्स्पृश मन्मभिः शूर वाजान् ।
उत ब्रह्माण्यङ्गिरो जुषस्व सं ते शस्तिर्देववाता जरेत ॥ १५ ॥
एता विश्वा विदुषे तुभ्यं वेधो नीथान्यग्ने निण्या वचांसि ।
निवचना कवये काव्यान्यशंसिषं मतिभिर्विप्र उक्थैः ॥ १६ ॥

[४] चतुर्थं सूक्तम्

ऋक् १५ ऋषिः—वामदेवः ॥ देवता—रक्षोहाऽग्निः ॥ छन्दः—१, २, ४, ५, ८ भुरिक्पङ्क्तिः; ३, १०, ११, १५, निचृत्त्रिष्टुप्; ६ विराट्त्रिष्टुप्; ७, १३ त्रिष्टुप्; ९ स्वराट्पङ्क्तिः; १२ निचृत्पङ्क्तिः; १४ स्वराड्बृहती ॥ स्वरः—१, २, ४, ५, ८, ९, १२ पञ्चमः; ३, ६, ७, १०, ११, १३, १५ धैवतः; १४ मध्यमः ॥

अथ त्रयोविंशो वर्गः ॥ २३ ॥

कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेवामवाँ इभेन ।
तृष्वीमनु प्रसितिं द्रूणानोऽस्तासि विध्य रक्षसस्तपिष्ठैः ॥ १ ॥
तव भ्रमास आशुया पतन्त्यनु स्पृश धृषता शोशुचानः ।
तपूंष्यग्ने जुह्वा पतङ्गानसन्दितो वि सृज विष्वगुल्काः ॥ २ ॥
प्रति स्पशो वि सृज तूर्णितमो भवा पायुर्विशो अस्या अदब्धः ।
यो नो दूरे अघशंसो यो अन्त्यग्ने माकिष्टे व्यथिरा दधर्षीत् ॥ ३ ॥
उदग्ने तिष्ठ प्रत्या तनुष्व न्यमित्राँ ओषतात्तिग्महेते ।
यो नो अरातिं समिधान चक्रे नीचा तं धक्ष्यतसं न शुष्कम् ॥ ४ ॥
ऊर्ध्वो भव प्रति विध्याध्यस्मदाविष्कृणुष्व दैव्यान्यग्ने ।
अव स्थिरा तनुहि यातुजूनां जामिमजामिं प्र मृणीहि शत्रून् ॥ ५ ॥

अथ चतुर्विंशो वर्गः ॥ २४ ॥

स ते जानाति सुमतिं यविष्ठ य ईवते ब्रह्मणे गातुमैरत्।
विश्वान्यस्मै सुदिनानि रायो द्युम्नान्यर्यो वि दुरो अभि द्यौत् ॥ ६ ॥
सेदग्ने अस्तु सुभगः सुदानुर्यस्त्वा नित्येन हविषा य उक्थैः।
पिप्रीषति स्व आयुषि दुरोणे विश्वेदस्मै सुदिना सासदिष्टिः ॥ ७ ॥
अर्चामि ते सुमतिं घोष्यर्वाक्सं ते वावाता जरतामियं गीः।
स्वश्वास्त्वा सुरथा मर्जयेमास्मे क्षत्राणि धारयेरनु द्यून् ॥ ८ ॥
इह त्वा भूर्या चरेदुप त्मन्दोषावस्तर्दीदिवांसमनु द्यून् ।
क्रीळन्तस्त्वा सुमनसः सपेमाभि द्युम्ना तस्थिवांसो जनानाम् ॥ ९ ॥
यस्त्वा स्वश्वः सुहिरण्यो अग्न उपयाति वसुमता रथेन।
तस्य त्राता भवसि तस्य सखा यस्त आतिथ्यमानुषग्जुजोषत् ॥ १० ॥

अथ पञ्चविंशो वर्गः ॥ २५ ॥

महो रुजामि बन्धुता वचोभिस्तन्मा पितुर्गोतमादन्वियाय।
त्वं नो अस्य वचसश्चिकिद्धि होतर्यविष्ठ सुक्रतो दमूनाः ॥ ११ ॥
अस्वप्नजस्तरणयः सुशेवा अतन्द्रासोऽवृका अश्रमिष्ठाः।
ते पायवः सध्र्यञ्चो निषद्याग्ने तव नः पान्त्वमूर ॥ १२ ॥
ये पायवो मामतेयं ते अग्ने पश्यन्तो अन्धं दुरितादरक्षन्।
ररक्ष तान्सुकृतो विश्ववेदा दिप्सन्त इद्रिपवो नाह देभुः ॥ १३ ॥
त्वया वयं सधन्य१स्त्वोतास्तव प्रणीत्यश्याम वाजान् ।
उभा शंसा सूदय सत्यतातेऽनुष्ठुया कृणुह्यह्रयाण ॥ १४ ॥
अया ते अग्ने समिधा विधेम प्रति स्तोमं शस्यमानं गृभाय।
दहाशसो रक्षसः पाह्य१स्मान्द्रुहो निदो मित्रमहो अवद्यात् ॥ १५ ॥

इति तृतीयाष्टके चतुर्थोऽध्यायः ॥

अथ तृतीयाष्टके पञ्चमोऽध्यायः

[५] पञ्चमं सूक्तम्

ऋषिः—वामदेवः ॥ देवता—वैश्वानरः ॥ छन्दः—१ विराट्त्रिष्टुप्; २, ५-८, ११ निचृत्त्रिष्टुप्; ३, ४, ९, १२, १३, १५ त्रिष्टुप्; १०, १४ भुरिक्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१-९, ११-१३, १५ धैवतः; १०, १४ पञ्चमः ॥

अथ प्रथमो वर्गः ॥ १ ॥

वैश्वानराय मीळ्हुषे सजोषाः कथा दाशेमाग्नये बृहद्भाः ।
अनूनेन बृहता वक्षथेनोप स्तभायदुपमिन्न रोधः ॥ १ ॥
मा निन्दत य इमां मह्यं रातिं देवो ददौ मर्त्याय स्वधावान्।
पाकाय गृत्सो अमृतो विचेता वैश्वानरो नृतमो यह्वो अग्निः ॥ २ ॥
साम द्विबर्हा महि तिग्मभृष्टिः सहस्ररेता वृषभस्तुविष्मान्।
पदं न गोरपगूळ्हं विविद्वानग्निर्मह्यं प्रेदु वोचन्मनीषाम् ॥ ३ ॥
प्र ताँ अग्निर्बभसत्तिग्मजम्भस्तपिष्ठेन शोचिषा यः सुराधाः।
प्र ये मिनन्ति वरुणस्य धाम प्रिया मित्रस्य चेततो ध्रुवाणि ॥ ४ ॥
अभ्रातरो न योषणो व्यन्तः पतिरिपो न जनयो दुरेवाः।
पापासः सन्तो अनृता असत्या इदं पदमजनता गभीरम् ॥ ५ ॥

अथ द्वितीयो वर्गः ॥ २ ॥

इदं मे अग्ने कियते पावकामिनते गुरुं भारं न मन्म ।
बृहद्दधाथ धृषता गभीरं यह्वं पृष्ठं प्रयसा सप्तधातु ॥ ६ ॥
तमिन्न्वे३व समना समानमभि क्रत्वा पुनती धीतिरश्याः ।
ससस्य चर्मन्नधि चारु पृश्नेरग्रे रुप आरुपितं जबारु ॥ ७ ॥
प्रवाच्यं वचसः किं मे अस्य गुहा हितमुप निणिग्वदन्ति ।
यदुस्त्रियाणामप वारिव व्रन्पाति प्रियं रुपो अग्रं पदं वेः ॥ ८ ॥
इदमु त्यन्महि महामनीकं यदुस्त्रिया सचत पूर्व्यं गौः ।
ऋतस्य पदे अधि दीद्यानं गुहा रघुष्यद्रघुयद्विवेद ॥ ९ ॥

अध द्युतानः पित्रोः सचासामनुत गुह्यं चारु पृश्नेः ।
मातुष्पदे परमे अन्ति षद्गोर्वृष्णः शोचिषः प्रयतस्य जिह्वा ॥ १० ॥

अथ तृतीयो वर्गः ॥ ३ ॥

ऋतं वोचे नमसा पृच्छ्यमानस्तवाशसा जातवेदो यदीदम् ।
त्वमस्य क्षयसि यद्ध विश्वं दिवि यदु द्रविणं यत्पृथिव्याम् ॥ ११ ॥
किं नो अस्य द्रविणं कद्ध रत्नं वि नो वोचो जातवेदश्चिकित्वान् ।
गुहाध्वनः परमं यन्नो अस्य रेकु पदं न निदाना अगन्म ॥ १२ ॥
का मर्यादा वयुना कद्ध वाममच्छा गमेम रघवो न वाजम् ।
कदा नो देवीरमृतस्य पत्नीः सूरो वर्णेन ततनन्नुषासः ॥ १३ ॥
अनिरेण वचसा फल्ग्वेन प्रतीत्येन कृधुनातृपासः ।
अधा ते अग्ने किमिहा वदन्त्यनायुधास आसता सचन्ताम् ॥ १४ ॥
अस्य श्रिये समिधानस्य वृष्णो वसोरनीकं दम आ रुरोच ।
रुशद्वसानः सुदृशीकरूपः क्षितिर्न राया पुरुवारो अद्यौत् ॥ १५ ॥

[६] षष्ठं सूक्तम्

ऋषिः—वामदेवः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१, ३, ५, ८, ११ विराट्त्रिष्टुप्; २, ४, ९ भुरिक्पङ्क्तिः; ६ स्वराट्पङ्क्तिः; ७ निचृत्त्रिष्टुप्; १० त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१, ३, ५, ७, ८, १०, ११ धैवतः; २, ४, ६, ९ पञ्चमः ॥

अथ चतुर्थो वर्गः ॥ ४ ॥

ऊर्ध्व ऊ षु णो अध्वरस्य होतरग्ने तिष्ठ देवताता यजीयान् ।
त्वं हि विश्वमभ्यसि मन्म प्र वेधसश्चित्तिरसि मनीषाम् ॥ १ ॥
अमूरो होता न्यसादि विक्ष्व१ग्निर्मन्द्रो विदथेषु प्रचेताः ।
ऊर्ध्वं भानुं सवितेवाश्रेन्मेतेव धूमं स्तभायदुप द्याम् ॥ २ ॥
यता सुजूर्णी रातिनी घृताची प्रदक्षिणिद्देवतातिमुराणः ।
उदु स्वरुर्नवजा नाक्रः पश्वो अनक्ति सुधितः सुमेकः ॥ ३ ॥
स्तीर्णे बर्हिषि समिधाने अग्ना ऊर्ध्वो अध्वर्युर्जुजुषाणो अस्थात् ।
पर्यग्निः पशुपा न होता त्रिविष्ट्येति प्रदिव उराणः ॥ ४ ॥

परि त्मना मितद्रुरेति होताग्निर्मन्द्रो मधुवचा ऋतावा ।
द्रवन्त्यस्य वाजिनो न शोका भयन्ते विश्वा भुवना यदभ्राट् ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमो वर्गः ॥ ५ ॥

भद्रा ते अग्ने स्वनीक सन्दृग्घोरस्य सतो विषुणस्य चारुः ।
न यत्ते शोचिस्तमसा वरन्त न ध्वस्मानस्तन्वी३ रेप आ धुः ॥ ६ ॥
न यस्य सातुर्जनितोरवारि न मातरापितरा नू चिदिष्टौ ।
अधा मित्रो न सुधितः पावको३ऽग्निर्दीदाय मानुषीषु विक्षु ॥ ७ ॥
द्विर्यं पञ्च जीजनन्त्संवसानाः स्वसारो अग्निं मानुषीषु विक्षु ।
उषर्बुधमथर्यो३ न दन्तं शुक्रं स्वासं परशुं न तिग्मम् ॥ ८ ॥
तव त्ये अग्ने हरितो घृतस्ना रोहितास ऋज्वञ्चः स्वञ्चः ।
अरुषासो वृषण ऋजुमुष्का आ देवतातिमह्वन्त दस्माः ॥ ९ ॥
ये ह त्ये ते सहमाना अयासस्त्वेषासो अग्ने अर्चयश्चरन्ति ।
श्येनासो न दुवसनासो अर्थं तुविष्वणसो मारुतं न शर्धः ॥ १० ॥
अकारि ब्रह्म समिधान तुभ्यं शंसात्युक्थं यजते व्यू धाः ।
होतारमग्निं मनुषो नि षेदुर्नमस्यन्त उशिजः शंसमायोः ॥ ११ ॥

[७] सप्तमं सूक्तम्

ऋषिः—वामदेवः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१ भुरिक्त्रिष्टुप्; २ स्वराडुष्णिक्; ३ निचृदनुष्टुप्; ४, ६ अनुष्टुप्; ५ विराडनुष्टुप्; ७, १०, ११, त्रिष्टुप्; ८, ९ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१, ७-११ धैवतः; २ ऋषभः; ३-६ गान्धारः ॥

अथ षष्ठो वर्गः ॥ ६ ॥

अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यः ।
यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभ्वं विशेविशे ॥ १ ॥
अग्ने कदा त आनुषग्भुवद्देवस्य चेतनम् ।
अधा हि त्वा जगृभ्रिरे मर्तासो विक्ष्वीड्यम् ॥ २ ॥
ऋतावानं विचेतसं पश्यन्तो द्यामिव स्तृभिः ।
विश्वेषामध्वराणां हस्कर्तारं दमेदमे ॥ ३ ॥

आशुं दूतं विवस्वतो विश्वा यश्चर्षणीरभि।
आ जभ्रुः केतुमायवो भृगवाणं विशेविशे॥४॥
तमीं होतारमानुषक्चिकित्वांसं नि षेदिरे।
रण्वं पावकशोचिषं यजिष्ठं सप्त धामभिः॥५॥

अथ सप्तमो वर्गः॥७॥

तं शश्वतीषु मातृषु वन आ वीतमश्रितम्।
चित्रं सन्तं गुहा हितं सुवेदं कूचिदर्थिनम्॥६॥
ससस्य यद्वियुता सस्मिन्नूधन्नृतस्य धामन्रणयन्त देवाः।
महाँ अग्निर्नमसा रातहव्यो वेरध्वराय सदमिदृतावा॥७॥
वेरध्वरस्य दूत्यानि विद्वानुभे अन्ता रोदसी संचिकित्वान्।
दूत ईयसे प्रदिव उराणो विदुष्टरो दिव आरोधनानि॥८॥
कृष्णं त एम रुशतः पुरो भाश्चरिष्णव१र्चिर्वपुषामिदेकम्।
यदप्रवीता दधते ह गर्भं सद्यश्चिज्जातो भवसीदु दूतः॥९॥
सद्यो जातस्य ददृशानमोजो यदस्य वातो अनुवाति शोचिः।
वृणक्ति तिग्मामतसेषु जिह्वां स्थिरा चिदन्ना दयते वि जम्भैः॥१०॥
तृषु यदन्ना तृषुणा ववक्ष तृषुं दूतं कृणुते यह्वो अग्निः।
वातस्य मेळिं सचते निजूर्वन्नाशुं न वाजयते हिन्वे अर्वा॥११॥

[८] अष्टमं सूक्तम्

ऋषिः—वामदेवः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—१, ४-६ निचृद्गायत्री;
२, ३, ७, गायत्री; ८ भुरिग्गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

अथाष्टमो वर्गः॥८॥

दूतं वो विश्ववेदसं हव्यवाहममर्त्यम्। यजिष्ठमृञ्जसे गिरा॥१॥
स हि वेदा वसुधितिं महाँ आरोधनं दिवः। स देवाँ एह वक्षति॥२॥
स वेद देव आनमं देवाँ ऋतायते दमे। दाति प्रियाणि चिद्वसु॥३॥
स होता सेदु दूत्यं चिकित्वाँ अन्तरीयते। विद्वाँ आरोधनं दिवः॥४॥
ते स्याम ये अग्नये ददाशुर्हव्यदातिभिः। य ईं पुष्यन्त इन्धते॥५॥

ते राया ते सुवीर्यैः ससवांसो वि शृण्विरे। ये अग्ना दधिरे दुवः॥६॥
अस्मे रायो दिवेदिवे सं चरन्तु पुरुस्पृहः। अस्मे वाजास ईरताम्॥७॥
स विप्रश्चर्षणीनां शवसा मानुषाणाम्। अति क्षिप्रेव विध्यति॥८॥

[९] नवमं सूक्तम्

ऋषिः—वामदेवः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—१, ३, ४ गायत्री; २, ६ विराड्गायत्री;
५ पादनिचृद्गायत्री; ७, ८ निचृद्गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

अथ नवमो वर्गः॥९॥

अग्ने मृळ महाँ असि य ईमा देवयुं जनम्। इयेथ बर्हिरासदम्॥१॥
स मानुषीषु दूळभो विक्षु प्रावीरमर्त्यः। दूतो विश्वेषां भुवत्॥२॥
स सद्म परि णीयते होता मन्द्रो दिविष्टिषु। उत पोता नि षीदति॥३॥
उत ग्ना अग्निरध्वर उतो गृहपतिर्दमे। उत ब्रह्मा नि षीदति॥४॥
वेषि ह्यध्वरीयतामुपवक्ता जनानाम्। हव्या च मानुषाणाम्॥५॥
वेषीद्वस्य दूत्यं१ यस्य जुजोषो अध्वरम्। हव्यं मर्तस्य वोळ्हवे॥६॥
अस्माकं जोष्यध्वरमस्माकं यज्ञमङ्गिरः। अस्माकं शृणुधी हवम्॥७॥
परि ते दूळभो रथोऽस्माँ अश्नोतु विश्वतः। येन रक्षसि दाशुषः॥८॥

[१०] दशमं सूक्तम्

ऋषिः—वामदेवः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—१ गायत्री; २-४, ७ भुरिग्गायत्री; ५, ८
स्वराडुष्णिक्; ६ विराडुष्णिक्॥ स्वरः—१-४, ७ षड्जः; ५, ६, ८ ऋषभः॥

अथ दशमो वर्गः॥१०॥

अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रं हृदिस्पृशम्।
ऋध्यामा त ओहैः॥१॥
अधा ह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य दक्षस्य साधोः।
रथीर्ऋतस्य बृहतो बभूथ॥२॥
एभिर्नो अर्कैर्भवा नो अर्वाङ् स्व१र्ण ज्योतिः।
अग्ने विश्वेभिः सुमना अनीकैः॥३॥
आभिष्टे अद्य गीर्भिर्गृणन्तोऽग्ने दाशेम।
प्र ते दिवो न स्तनयन्ति शुष्माः॥४॥

तव स्वादिष्ठाग्ने संदृष्टिरिदा चिदह्न इदा चिदक्तोः ।
श्रिये रुक्मो न रोचत उपाके ॥ ५ ॥
घृतं न पूतं तनूररेपाः शुचि हिरण्यम् ।
तत्ते रुक्मो न रोचत स्वधावः ॥ ६ ॥
कृतं चिद्धि ष्मा सनेमि द्वेषोऽग्न इनोषि मर्तात् ।
इत्था यजमानादृतावः ॥ ७ ॥
शिवाः नः सख्या सन्तु भ्रात्राग्ने देवेषु युष्मे ।
सा नो नाभिः सदने सस्मिन्नूधन् ॥ ८ ॥

द्वितीयोऽनुवाकः

[११] एकादशं सूक्तम्

ऋषिः—वामदेवः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१, २, ५, ६ निचृत्त्रिष्टुप्; ३ स्वराड्बृहती; ४ भुरिक्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१, २, ५, ६ धैवतः; ३ मध्यमः; ४ पञ्चमः ॥

अथ एकादशो वर्गः ॥ ११ ॥

भद्रं ते अग्ने सहसिन्ननीकमुपाक आ रोचते सूर्यस्य ।
रुशद् दृशे ददृशे नक्तया चिदरूक्षितं दृश आ रूपे अन्नम् ॥ १ ॥
वि षाह्यग्ने गृणते मनीषां खं वेपसा तुविजात स्तवानः ।
विश्वेभिर्यद्वावनः शुक्र देवैस्तन्नो रास्व सुमहो भूरि मन्म ॥ २ ॥
त्वदग्ने काव्या त्वन्मनीषास्त्वदुक्था जायन्ते राध्यानि ।
त्वदेति द्रविणं वीरपेशा इत्थाधिये दाशुषे मर्त्याय ॥ ३ ॥
त्वद्वाजी वाजंभरो विहाया अभिष्टिकृज्जायते सत्यशुष्मः ।
त्वद्रयिर्देवजूतो मयोभुस्त्वदाशुर्जूजुवाँ अग्ने अर्वा ॥ ४ ॥
त्वामग्ने प्रथमं देवयन्तो देवं मर्ता अमृत मन्द्रजिह्वम् ।
द्वेषोयुतमा विवासन्ति धीभिर्दमूनसं गृहपतिममूरम् ॥ ५ ॥
आरे अस्मदमतिमारे अंह आरे विश्वां दुर्मतिं यन्निपासि ।
दोषा शिवः सहसः सूनो अग्ने यं देव आ चित्सचसे स्वस्ति ॥ ६ ॥

[१२] द्वादशं सूक्तम्

ऋषिः—वामदेवः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१, ५ निचृत्त्रिष्टुप्; २ त्रिष्टुप्; ३, ४ भुरिक्पङ्क्तिः; ६ पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१, २, ५ धैवतः; ३, ४, ६ पञ्चमः ॥

अथ द्वादशो वर्गः ॥ १२ ॥

यस्त्वामग्न इनधते यतस्रुक्त्रिस्ते अन्नं कृणवत्सस्मिन्नहन् ।
स सु द्युम्नैरभ्यस्तु प्रसक्षत्तव क्रत्वा जातवेदश्चिकित्वान् ॥ १ ॥
इध्मं यस्ते जभरच्छश्रमाणो महो अग्ने अनीकमा सपर्यन् ।
स इधानः प्रति दोषामुषासं पुष्यन्रयिं सचते घ्नन्नमित्रान् ॥ २ ॥
अग्निरीशे बृहतः क्षत्रियस्याग्निर्वाजस्य परमस्य रायः ।
दधाति रत्नं विधते यविष्ठो व्यानुषङ्मर्त्याय स्वधावान् ॥ ३ ॥
यच्चिद्धि ते पुरुषत्रा यविष्ठाचित्तिभिश्चकृमा कच्चिदागः ।
कृधी ष्व१स्माँ अदितेरनागान्व्येनांसि शिश्रथो विष्वगग्ने ॥ ४ ॥
महश्चिदग्न एनसो अभीक ऊर्वाद्देवानामुत मर्त्यानाम् ।
मा ते सखायः सदमिद्रिषाम यच्छा तोकाय तनयाय शं योः ॥ ५ ॥
यथा ह त्यद्वसवो गौर्यं चित्पदि षिताममुञ्चता यजत्राः ।
एवो ष्व१स्मन्मुञ्चता व्यंहः प्र तार्यग्ने प्रतरं न आयुः ॥ ६ ॥

[१३] त्रयोदशं सूक्तम्

ऋषिः—वामदेवः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१, २, ४, ५ विराट्त्रिष्टुप्; ३ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

अथ त्रयोदशो वर्गः ॥ १३ ॥

प्रत्यग्निरुषसामग्रमख्यद्विभातीनां सुमना रत्नधेयम् ।
यातमश्विना सुकृतो दुरोणमुत्सूर्यो ज्योतिषा देव एति ॥ १ ॥
ऊर्ध्वं भानुं सविता देवो अश्रेद् द्रप्सं दविध्वद्गविषो न सत्वा ।
अनु व्रतं वरुणो यन्ति मित्रो यत्सूर्यं दिव्यारोहयन्ति ॥ २ ॥
यं सीमकृण्वन्तमसे विपृचे ध्रुवक्षेमा अनवस्यन्तो अर्थम् ।
तं सूर्यं हरितः सप्त यह्वीः स्पशं विश्वस्य जगतो वहन्ति ॥ ३ ॥
वहिष्ठेभिर्विहरन्यासि तन्तुमवव्ययन्नसितं देव वस्म ।
दविध्वतो रश्मयः सूर्यस्य चर्मेवावाधुस्तमो अप्स्व१न्तः ॥ ४ ॥
अनायतो अनिबद्धः कथायं न्यङ्ङुत्तानोऽव पद्यते न ।
कया याति स्वधया को ददर्श दिवः स्कम्भः समृतः पाति नाकम् ॥ ५ ॥

[१४] चतुर्दशं सूक्तम्

ऋषिः—वामदेवः॥ देवता—अग्निर्लिङ्गोक्ता वा॥ छन्दः—१ भुरिक्पङ्क्तिः; २, ४ निचृत्त्रिष्टुप्; ३ स्वराट्पङ्क्तिः; ५ विराट्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—१, ३ पञ्चमः; २, ४, ५ धैवतः॥

अथ चतुर्दशो वर्गः॥ १४॥

प्रत्यग्निरुषसो जातवेदा अख्यद्देवो रोचमाना महोभिः ।
आ नासत्योरुगाया रथेनेमं यज्ञमुप नो यातमच्छ ॥ १ ॥
ऊर्ध्वं केतुं सविता देवो अश्रेज्ज्योतिर्विश्वस्मै भुवनाय कृण्वन् ।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं वि सूर्यो रश्मिभिश्चेकितानः ॥ २ ॥
आवहन्त्यरुणीर्ज्योतिषागान्मही चित्रा रश्मिभिश्चेकिताना ।
प्रबोधयन्ती सुविताय देव्यु१षा ईयते सुयुजा रथेन ॥ ३ ॥
आ वां वहिष्ठा इह ते वहन्तु रथा अश्वास उषसो व्युष्टौ ।
इमे हि वां मधुपेयाय सोमा अस्मिन्यज्ञे वृषणा मादयेथाम् ॥ ४ ॥
अनायतो अनिबद्धः कथायं न्यङ्ङुत्तानोऽव पद्यते न ।
कया याति स्वधया को ददर्श दिवः स्कम्भः समृतः पाति नाकम् ॥ ५ ॥

[१५] पञ्चदशं सूक्तम्

ऋषिः—वामदेवः॥ देवता—१-६ अग्निः; ७, ८ सोमकः साहदेव्यः; ९, १० अश्विनौ॥ छन्दः—१, ४ गायत्री; २, ५, ६ विराड्गायत्री; ३, ७-१० निचृद्गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

अथ पञ्चदशो वर्गः॥ १५॥

अग्निर्होता नो अध्वरे वाजी सन्परि णीयते । देवो देवेषु यज्ञियः ॥ १ ॥
परि त्रिविष्ट्यध्वरं यात्यग्नी रथीरिव । आ देवेषु प्रयो दधत् ॥ २ ॥
परि वाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत् । दधद्रत्नानि दाशुषे ॥ ३ ॥
अयं यः सृञ्जये पुरो दैववाते समिध्यते । द्युमाँ अमित्रदम्भनः ॥ ४ ॥
अस्य घा वीर ईवतोऽग्नेरीशीत मर्त्यः । तिग्मजम्भस्य मीळ्हुषः ॥ ५ ॥

अथ षोडशो वर्गः॥ १६॥

तमर्वन्तं न सानसिमरुषं न दिवः शिशुम् । मर्मृज्यन्ते दिवेदिवे ॥ ६ ॥
बोधद्यन्मा हरिभ्यां कुमारः साहदेव्यः । अच्छा न हूत उदरम् ॥ ७ ॥
उत त्या यजता हरी कुमारात्साहदेव्यात् । प्रयता सद्य आ ददे ॥ ८ ॥
एष वां देवावश्विना कुमारः साहदेव्यः । दीर्घायुरस्तु सोमकः ॥ ९ ॥
तं युवं देवावश्विना कुमारं साहदेव्यम् । दीर्घायुषं कृणोतन ॥ १० ॥

[१६] षोडशं सूक्तम्

ऋषिः—वामदेवः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१, ४, ६, ८, ९, १२, १९ निचृत्त्रिष्टुप्; २, २१, निचृत्पङ्क्तिः; ३ त्रिष्टुप्; ५, १३-१५ स्वराट्पङ्क्तिः; ७, १६, १७ विराट्त्रिष्टुप्; १०, ११, १८, २० भुरिक्पङ्क्तिः॥ स्वरः—१, ३, ४, ६-९, १२, १६, १७, १९ धैवतः; २, ५, १०, ११, १३-१५, १८, २०, २१ पञ्चमः॥

अथ सप्तदशो वर्गः॥ १७॥

आ सत्यो यातु मघवाँ ऋजीषी द्रवन्त्वस्य हरय उप नः ।
तस्मा इदन्धः सुषुमा सुदक्षमिहाभिपित्वं करते गृणानः ॥ १ ॥
अव स्य शूराध्वनो नान्तेऽस्मिन्नो अद्य सवने मन्दध्यै ।
शंसात्युक्थमुशनेव वेधाश्चिकितुषे असुर्याय मन्म ॥ २ ॥
कविर्न निण्यं विदथानि साधन्वृषा यत्सेकं विपिपानो अर्चात् ।
दिव इत्था जीजनत्सप्त कारूनह्ना चिच्चक्रुर्वयुना गृणन्तः ॥ ३ ॥
स्व१र्यद्वेदि सुदृशीकमर्कैर्महि ज्योती रुरुचुर्यद्ध वस्तोः ।
अन्धा तमांसि दुधिता विचक्षे नृभ्यश्चकार नृतमो अभिष्टौ ॥ ४ ॥
ववक्ष इन्द्रो अमितमृजीष्यु१भे आ पप्रौ रोदसी महित्वा ।
अतश्चिदस्य महिमा वि रेच्यभि यो विश्वा भुवना बभूव ॥ ५ ॥

अथाष्टादशो वर्गः॥ १८॥

विश्वानि शक्रो नर्याणि विद्वानपो रिरेच सखिभिर्निकामैः ।
अश्मानं चिद्ये बिभिदुर्वचोभिर्व्रजं गोमन्तमुशिजो वि वव्रुः ॥ ६ ॥
अपो वृत्रं वव्रिवांसं पराहन्प्रावत्ते वज्रं पृथिवी सचेताः ।
प्रार्णांसि समुद्रियाण्यैनोः पतिर्भवञ्छवसा शूर धृष्णो ॥ ७ ॥
अपो यदद्रिं पुरुहूत दर्दराविर्भुवत्सरमा पूर्व्यं ते ।
स नो नेता वाजमा दर्षि भूरिं गोत्रा रुजन्नङ्गिरोभिर्गृणानः ॥ ८ ॥
अच्छा कविं नृमणो गा अभिष्टौ स्वर्षाता मघवन्नाधमानम् ।
ऊतिभिस्तमिषणो द्युम्नहूतौ नि मायावानब्रह्मा दस्युरर्त ॥ ९ ॥
आ दस्युघ्ना मनसा याह्यस्तं भुवत्ते कुत्सः सख्ये निकामः ।
स्वे योनौ नि षदतं सरूपा वि वां चिकित्सदृतचिद्ध नारी ॥ १० ॥

अथैकोनविंशो वर्गः ॥ १९ ॥

यासि कुत्सेन सरथमवस्युस्तोदो वातस्य हर्योरीशानः ।
ऋज्रा वाजं न गध्यं युयूषन्कविर्यदहन्पार्याय भूषात् ॥ ११ ॥
कुत्साय शुष्णमशुषं नि बर्हीः प्रपित्वे अह्नः कुयवं सहस्रा ।
सद्यो दस्यून्प्र मृण कुत्स्येन प्र सूरश्चक्रं वृहतादभीके ॥ १२ ॥
त्वं पिप्रुं मृगयं शूशुवांसमृजिश्वने वैदथिनाय रन्धीः ।
पञ्चाशत्कृष्णा नि वपः सहस्रात्कं न पुरो जरिमा वि दर्दः ॥ १३ ॥
सूर उपाके तन्वं१ दधानो वि यत्ते चेत्यमृतस्य वर्पः ।
मृगो न हस्ती तविषीमुषाणः सिंहो न भीम आयुधानि बिभ्रत् ॥ १४ ॥
इन्द्रं कामा वसूयन्तो अग्मन्त्स्वर्मीळ्हे न सवने चकानाः ।
श्रवस्यवः शशमानास उक्थैरोको न रण्वा सुदृशीव पुष्टिः ॥ १५ ॥

अथ विंशो वर्गः ॥ २० ॥

तमिद्व इन्द्रं सुहवं हुवेम यस्ता चकार नर्या पुरूणि ।
यो मावते जरित्रे गध्यं चिन्मक्षू वाजं भरति स्पार्हराधाः ॥ १६ ॥
तिग्मा यदन्तरशनिः पताति कस्मिञ्चिच्छूर मुहुके जनानाम् ।
घोरा यदर्य समृतिर्भवात्यध स्मा नस्तन्वो बोधि गोपाः ॥ १७ ॥
भुवोऽविता वामदेवस्य धीनां भुवः सखावृको वाजसातौ ।
त्वामनु प्रमतिमा जगन्मोरुशंसो जरित्रे विश्वध स्याः ॥ १८ ॥
एभिर्नृभिरिन्द्र त्वायुभिष्ट्वा मघवद्भिर्मघवन्विश्व आजौ ।
द्यावो न द्युम्नैरभि सन्तो अर्यः क्षपो मदेम शरदश्च पूर्वीः ॥ १९ ॥
एवेदिन्द्राय वृषभाय वृष्णे ब्रह्माकर्म भृगवो न रथम् ।
नू चिद्यथा नः सख्या वियोषदसन्न उग्रोऽविता तनूपाः ॥ २० ॥
नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥ २१ ॥

[१७] सप्तदशं सूक्तम्

ऋषिः—वामदेवः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१ पङ्क्तिः; २, १२, १३, १७-१९ निचृत्त्रिष्टुप्; ३, ५, ६, ८, १०, ११ त्रिष्टुप्; ४, २० विराट्त्रिष्टुप्; ७, ९ भुरिक्पङ्क्तिः; १४, १६ स्वराट्पङ्क्तिः; १५ याजुषीपङ्क्तिः; २१ निचृत्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१, ७; ९, १४-१६, २१ पञ्चमः; २-६, ८, १०-१३, १७-२० धैवतः ॥

अथैकविंशो वर्गः ॥ २१ ॥

त्वं महाँ इन्द्र तुभ्यं ह क्षा अनु क्षत्रं मंहना मन्यत द्यौः ।
त्वं वृत्रं शवसा जघन्वान्त्सृजः सिन्धूँरहिना जग्रसानान् ॥ १ ॥
तव त्विषो जनिमन्रेजत द्यौ रेजद्भूमिर्भियसा स्वस्य मन्योः ।
ऋघायन्त सुभ्व१ः पर्वतास आर्दन्धन्वानि सरयन्त आपः ॥ २ ॥
भिनद्गिरिं शवसा वज्रमिष्णन्नाविष्कृण्वानः सहसान ओजः ।
वधीद् वृत्रं वज्रेण मन्दसानः सरन्नापो जवसा हतवृष्णीः ॥ ३ ॥
सुवीरस्ते जनिता मन्यत द्यौरिन्द्रस्य कर्ता स्वपस्तमो भूत् ।
य ईं जजान स्वर्यं सुवज्रमनपच्युतं सदसो न भूम ॥ ४ ॥
य एक इच्च्यावयति प्र भूमा राजा कृष्टीनां पुरुहूत इन्द्रः ।
सत्यमेनमनु विश्वे मदन्ति रातिं देवस्य गृणतो मघोनः ॥ ५ ॥

अथ द्वाविंशो वर्गः ॥ २२ ॥

सत्रा सोमा अभवन्नस्य विश्वे सत्रा मदासो बृहतो मदिष्ठाः ।
सत्राभवो वसुपतिर्वसूनां दत्रे विश्वा अधिथा इन्द्र कृष्टीः ॥ ६ ॥
त्वमध प्रथमं जायमानोऽमे विश्वा अधिथा इन्द्र कृष्टीः ।
त्वं प्रति प्रवत आशयानमहिं वज्रेण मघवन्वि वृश्चः ॥ ७ ॥
सत्राहणं दाधृषिं तुम्रमिन्द्रं महामपारं वृषभं सुवज्रम् ।
हन्ता यो वृत्रं सनितोत वाजं दाता मघानि मघवा सुराधाः ॥ ८ ॥
अयं वृतश्चातयते समीचीर्य आजिषु मघवा शृण्व एकः ।
अयं वाजं भरति यं सनोत्यस्य प्रियासः सख्ये स्याम ॥ ९ ॥
अयं शृण्वे अध जयन्नुत घ्नन्नयमुत प्र कृणुते युधा गाः ।
यदा सत्यं कृणुते मन्युमिन्द्रो विश्वं दृळ्हं भयत एजदस्मात् ॥ १० ॥

अथ त्रयोविंशो वर्गः ॥ २३ ॥

समिन्द्रो गा अजयत्सं हिरण्या समश्विया मघवा यो ह पूर्वीः ।
एभिर्नृभिर्नृतमो अस्य शाकै रायो विभक्ता संभरश्च वस्वः ॥ ११ ॥
कियत्स्विदिन्द्रो अध्येति मातुः कियत्पितुर्जनितुर्यो जजान ।
यो अस्य शुष्मं मुहुकैरियर्ति वातो न जूतः स्तनयद्भिरभ्रैः ॥ १२ ॥

क्षियन्तं त्वमक्षियन्तं कृणोतीयर्ति रेणुं मघवा समोहम् ।
विभञ्जनुरशनिमाँइव द्यौरुत स्तोतारं मघवा वसौ धात् ॥ १३ ॥
अयं चक्रमिषणत्सूर्यस्य न्येतशं रीरमत्ससृमाणम् ।
आ कृष्ण ईं जुहुराणो जिघर्ति त्वचो बुध्ने रजसो अस्य योनौ ॥ १४ ॥
असिक्न्यां यजमानो न होता ॥ १५ ॥

अथ चतुर्विंशो वर्गः ॥ २४ ॥

गव्यन्त इन्द्रं सख्याय विप्रा अश्वायन्तो वृषणं वाजयन्तः ।
जनीयन्तो जनिदामक्षितोतिमा च्यावयामोऽवते न कोशम् ॥ १६ ॥
त्राता नो बोधि ददृशान आपिरभिख्याता मर्डिता सोम्यानाम् ।
सखा पिता पितृतमः पितॄणां कर्तेमु लोकमुशते वयोधाः ॥ १७ ॥
सखीयतामविता बोधि सखा गृणान इन्द्र स्तुवते वयो धाः ।
वयं ह्या ते चकृमा सबाध आभिः शमीभिर्महयन्त इन्द्र ॥ १८ ॥
स्तुत इन्द्रो मघवा यद्ध वृत्रा भूरीण्येको अप्रतीनि हन्ति ।
अस्य प्रियो जरिता यस्य शर्मन्नकिर्देवा वारयन्ते न मर्ताः ॥ १९ ॥
एवा न इन्द्रो मघवा विरप्शी करत्सत्या चर्षणीधृदनर्वा ।
त्वं राजा जनुषां धेह्यस्मे अधि श्रवो माहिनं यज्जरित्रे ॥ २० ॥
नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥ २१ ॥

[१८] अष्टादशं सूक्तम्

ऋषिः—वामदेवः ॥ देवता—इन्द्रादिती ॥ छन्दः—१, ८, १२ त्रिष्टुप्; २ पङ्क्तिः; ३, ४ भुरिक्पङ्क्तिः; ५, ६, ७, ९-११ निचृत्त्रिष्टुप्; १३ स्वराट्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१, ५-१२ धैवतः; २-४, १३ पञ्चमः ॥

अथ पञ्चविंशो वर्गः ॥ २५ ॥

अयं पन्था अनुवित्तः पुराणो यतो देवा उदजायन्त विश्वे ।
अतश्चिदा जनिषीष्ट प्रवृद्धो मा मातरममुया पत्तवे कः ॥ १ ॥
नाहमतो निरया दुर्गहैतत्तिरश्चता पार्श्वान्निर्गमाणि ।
बहूनि मे अकृता कर्त्वानि युध्यै त्वेन सं त्वेन पृच्छै ॥ २ ॥

परायतीं मातरमन्वचष्ट न नानु गान्यनु नू गमानि ।
त्वष्टुर्गृहे अपिबत्सोममिन्द्रः शतधन्यं चम्वोः सुतस्य ॥ ३ ॥
किं स ऋधक्कृणवद्यं सहस्रं मासो जभार शरदश्च पूर्वीः ।
नही न्वस्य प्रतिमानमस्त्यन्तर्जातेषूत ये जनित्वाः ॥ ४ ॥
अवद्यमिव मन्यमाना गुहाकरिन्द्रं माता वीर्येणा न्यृष्टम् ।
अथोदस्थात्स्वयमत्कं वसान आ रोदसी अपृणाज्जायमानः ॥ ५ ॥

अथ षड्विंशो वर्गः ॥ २६ ॥

एता अर्षन्त्यललाभवन्तीर्ऋतावरीरिव संक्रोशमानाः ।
एता वि पृच्छ किमिदं भनन्ति कमापो अद्रिं परिधिं रुजन्ति ॥ ६ ॥
किमु ष्विदस्मै निविदो भनन्तेन्द्रस्यावद्यं दिधिषन्त आपः ।
ममैतान्पुत्रो महता वधेन वृत्रं जघन्वाँ असृजद्वि सिन्धून् ॥ ७ ॥
ममच्चन त्वा युवतिः परास ममच्चन त्वा कुषवा जगार ।
ममच्चिदापः शिशवे ममृड्युर्ममच्चिदिन्द्रः सहसोदतिष्ठत् ॥ ८ ॥
ममच्चन ते मघवन्व्यंसो निविविध्वाँ अप हनू जघान ।
अधा निविद्ध उत्तरो बभूवाञ्छिरो दासस्य सं पिणग्वधेन ॥ ९ ॥
गृष्टिः ससूव स्थविरं तवागामनाधृष्यं वृषभं तुम्रमिन्द्रम् ।
अरीळ्हं वत्सं चरथाय माता स्वयं गातुं तन्व इच्छमानम् ॥ १० ॥
उत माता महिषमन्ववेनदमी त्वा जहति पुत्र देवाः ।
अथाब्रवीद् वृत्रमिन्द्रो हनिष्यन्त्सखे विष्णो वितरं वि क्रमस्व ॥ ११ ॥
कस्ते मातरं विधवामचक्रच्छयुं कस्त्वामजिघांसच्चरन्तम् ।
कस्ते देवो अधि मार्डीक आसीद्यत्प्राक्षिणाः पितरं पादगृह्य ॥ १२ ॥
अवर्त्या शुन आन्त्राणि पेचे न देवेषु विविदे मर्डितारम् ।
अपश्यं जायाममहीयमानामधा मे श्येनो मध्वा जभार ॥ १३ ॥

इति तृतीयाष्टके पञ्चमोऽध्यायः ॥

अथ तृतीयाष्टके षष्ठोऽध्यायः

[१९] एकोनविंशं सूक्तम्

ऋषिः—वामदेवः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१ विराट्त्रिष्टुप्; २, ९ निचृत्त्रिष्टुप्; ३, ५, ८ त्रिष्टुप्; ४, ६ भुरिक्पङ्क्तिः; ७, १० पङ्क्तिः; ११ निचृत्पङ्क्तिः ॥
स्वरः—१-३, ५, ८, ९ धैवतः; ४, ६, ७, १०, ११ पञ्चमः ॥

अथ प्रथमो वर्गः ॥ १ ॥

एवा त्वामिन्द्र वज्रिन्नत्र विश्वे देवासः सुहवास ऊमाः ।
महामुभे रोदसी वृद्धमृष्वं निरेकमिद् वृणते वृत्रहत्ये ॥ १ ॥
अवासृजन्त जिव्रयो न देवा भुवः सम्राळिन्द्र सत्ययोनिः ।
अहन्नहिं परिशयानमर्णः प्र वर्तनीररदो विश्वधेनाः ॥ २ ॥
अतृप्णुवन्तं वियतमबुध्यमबुध्यमानं सुषुपाणमिन्द्र ।
सप्त प्रति प्रवत आशयानमहिं वज्रेण वि रिणा अपर्वन् ॥ ३ ॥
अक्षोदयच्छवसा क्षाम बुध्नं वार्ण वातस्तविषीभिरिन्द्रः ।
दृळ्हान्यौभ्नादुशमान ओजोऽवाभिनत्ककुभः पर्वतानाम् ॥ ४ ॥
अभि प्र दद्रुर्जनयो न गर्भं रथा इव प्र ययुः साकमद्रयः ।
अतर्पयो विसृत उब्ज ऊर्मीन्त्वं वृताँ अरिणा इन्द्र सिन्धून् ॥ ५ ॥

अथ द्वितीयो वर्गः ॥ २ ॥

त्वं महीमवनिं विश्वधेनां तुर्वीतये वय्याय क्षरन्तीम् ।
अरमयो नमसैजदर्णः सुतरणाँ अकृणोरिन्द्र सिन्धून् ॥ ६ ॥
प्राग्रुवो नभन्वो३ न वक्वा ध्वस्रा अपिन्वद्युवतीर्ऋतज्ञाः ।
धन्वान्यज्राँ अपृणक्तृषाणाँ अधोगिन्द्रः स्तर्यो३ दंसुपत्नीः ॥ ७ ॥
पूर्वीरुषसः शरदश्च गूर्ता वृत्रं जघन्वाँ असृजद्वि सिन्धून् ।
परिष्ठिता अतृणद्बद्बधानाः सीरा इन्द्रः स्रवितवे पृथिव्या ॥ ८ ॥
वम्रीभिः पुत्रमग्रुवो अदानं निवेशनाद्धरिव आ जभर्थ ।
व्य१न्धो अख्यदहिमाददानो निर्भूदुखच्छित्समरन्त पर्व ॥ ९ ॥

प्र ते पूर्वाणि करणानि विप्राविद्वाँ आह विदुषे करांसि ।
यथायथा वृष्ण्यानि स्वगूर्तापांसि राजन्नर्याविवेषीः ॥ १० ॥
नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥ ११ ॥

[२०] विंशं सूक्तम्

ऋषिः—वामदेवः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१, ३, ६ निचृत्त्रिष्टुप्; २ पङ्क्तिः; ४, ५ विराट्त्रिष्टुप्; ७, ९ स्वराट्पङ्क्तिः; ८, १० त्रिष्टुप्; ११ निचृत्पङ्क्तिः ॥
स्वरः—१, ३-६, ८, १० धैवतः; २, ७, ९, ११ पञ्चमः ॥

अथ तृतीयो वर्गः ॥ ३ ॥

आ न इन्द्रो दूरादा न आसादभिष्टिकृदवसे यासदुग्रः ।
ओजिष्ठेभिर्नृपतिर्वज्रबाहुः सङ्गे समत्सु तुर्वणिः पृतन्यून् ॥ १ ॥
आ न इन्द्रो हरिभिर्यात्वच्छार्वाचीनोऽवसे राधसे च ।
तिष्ठाति वज्री मघवा विरप्शीमं यज्ञमनु नो वाजसातौ ॥ २ ॥
इमं यज्ञं त्वमस्माकमिन्द्र पुरो दधत्सनिष्यसि क्रतुं नः ।
श्वघ्नीव वज्रिन्त्सनये धनानां त्वया वयमर्य आजिं जयेम ॥ ३ ॥
उशन्नु षु णः सुमना उपाके सोमस्य नु सुषुतस्य स्वधावः ।
पा इन्द्र प्रतिभृतस्य मध्वः समन्धसा ममदः पृष्ठ्येन ॥ ४ ॥
वि यो ररप्श ऋषिभिर्नवेभिर्वृक्षो न पक्वः सृण्यो न जेता ।
मर्यो न योषामभि मन्यमानोऽच्छा विवक्मि पुरुहूतमिन्द्रम् ॥ ५ ॥

अथ चतुर्थो वर्गः ॥ ४ ॥

गिरिर्न यः स्वतवाँ ऋष्व इन्द्रः सनादेव सहसे जात उग्रः ।
आदर्ता वज्रं स्थविरं न भीम उद्नेव कोशं वसुना न्यृष्टम् ॥ ६ ॥
न यस्य वर्ता जनुषा न्वस्ति न राधस आमरीता मघस्य ।
उद्वावृषाणस्तविषीव उग्रास्मभ्यं दद्धि पुरुहूत रायः ॥ ७ ॥
ईक्षे रायः क्षयस्य चर्षणीनामुत व्रजमपवर्तासि गोनाम् ।
शिक्षानरः समिथेषु प्रहावान्वस्वो राशिमभिनेतासि भूरिम् ॥ ८ ॥

कया तच्छृण्वे शच्या शचिष्ठो यया कृणोति मुहु का चिदृष्वः।
पुरु दाशुषे विचयिष्ठो अंहोऽथा दधाति द्रविणं जरित्रे॥ ९॥
मा नो मर्धीरा भरा दद्धि तन्नः प्र दाशुषे दातवे भूरि यत्ते।
नव्ये देष्णे शस्ते अस्मिन्त उक्थे प्र ब्रवाम वयमिन्द्र स्तुवन्तः॥ १०॥
नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः॥ ११॥

[२१] एकविंशं सूक्तम्

ऋषिः—वामदेवः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१, २, ७, १० भुरिक्पङ्क्तिः; ३ स्वराट्पङ्क्तिः; ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप्; ६, ८ विराट्त्रिष्टुप्; ९ त्रिष्टुप्; ११ निचृत्पङ्क्तिः॥
स्वरः—१-३, ७, १०, ११ पञ्चमः; ४-६, ८, ९ धैवतः॥

अथ पञ्चमो वर्गः॥ ५॥

आ यात्विन्द्रोऽवस उप न इह स्तुतः सधमादस्तु शूरः।
वावृधानस्तविषीर्यस्य पूर्वीर्द्यौर्न क्षत्रमभिभूति पुष्यात्॥ १॥
तस्येदिह स्तवथ वृष्ण्यानि तुविद्युम्नस्य तुविराधसो नॄन्।
यस्य क्रतुर्विदथ्यो३ न सम्राट् साह्वान्तरुत्रो अभ्यस्ति कृष्टीः॥ २॥
आ यात्विन्द्रो दिव आ पृथिव्या मक्षू समुद्रादुत वा पुरीषात्।
स्वर्णरादवसे नो मरुत्वान्परावतो वा सदनादृतस्य॥ ३॥
स्थूरस्य रायो बृहतो य ईशे तमु ष्टवाम विदथेष्विन्द्रम्।
यो वायुना जयति गोमतीषु प्र धृष्णुया नयति वस्यो अच्छ॥ ४॥
उप यो नमो नमसि स्तभायन्नियर्ति वाचं जनयन्यजध्यै।
ऋञ्जसानः पुरुवार उक्थैरेन्द्रं कृण्वीत सदनेषु होता॥ ५॥

अथ षष्ठो वर्गः॥ ६॥

धिषा यदि धिषण्यन्तः सरण्यान्त्सदन्तो अद्रिमौशिजस्य गोहे।
आ दुरोषाः पास्त्यस्य होता यो नो महान्त्संवरणेषु वह्निः॥ ६॥
सत्रा यदीं भार्वरस्य वृष्णः सिषक्ति शुष्मः स्तुवते भराय।
गुहा यदीमौशिजस्य गोहे प्र यद्धिये प्रायसे मदाय॥ ७॥

वि यद्वरांसि पर्वतस्य वृण्वे पयोभिर्जिन्वे अपां जवांसि।
विदद्गौरस्य गवयस्य गोहे यदी वाजाय सुध्यो३ वहन्ति॥ ८॥
भद्रा ते हस्ता सुकृतोत पाणी प्रयन्तारा स्तुवते राध इन्द्र।
का ते निषत्तिः किमु नो ममत्सि किं नोदुदु हर्षसे दातवा उ॥ ९॥
एवा वस्व इन्द्रः सत्यः सम्राड्ढन्ता वृत्रं वरिवः पूरवे कः।
पुरुष्टुत क्रत्वा नः शग्धि रायो भक्षीय तेऽवसो दैव्यस्य॥ १०॥
नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः॥ ११॥

तृतीयोऽनुवाकः

[२२] द्वाविंशं सूक्तम्

ऋषिः—वामदेवः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१, २, ५, १० निचृत्त्रिष्टुप्; ३, ४ विराट्त्रिष्टुप्; ६, ७, त्रिष्टुप्; ८ भुरिक्पङ्क्तिः; ९ स्वराट्पङ्क्तिः; ११ निचृत्पङ्क्तिः॥
स्वरः—१-७, १० धैवतः; ८, ९, ११ पञ्चमः॥

अथ सप्तमो वर्गः॥ ७॥

यन्न इन्द्रो जुजुषे यच्च वष्टि तन्नो महान्करति शुष्म्या चित्।
ब्रह्म स्तोमं मघवा सोममुक्था यो अश्मानं शवसा बिभ्रदेति॥ १॥
वृषा वृषन्धिं चतुरश्रिमस्यन्नुग्रो बाहुभ्यां नृतमः शचीवान्।
श्रिये परुष्णीमुषमाण ऊर्णां यस्याः पर्वाणि सख्याय विव्ये॥ २॥
यो देवो देवतमो जायमानो महो वाजेभिर्महद्भिश्च शुष्मैः।
दधानो वज्रं बाह्वोरुशन्तं द्याममेन रेजयत्प्र भूम॥ ३॥
विश्वा रोधांसि प्रवतश्च पूर्वीर्द्यौर्ऋष्वाज्जनिमन्रेजत क्षाः।
आ मातरा भरति शुष्म्या गोर्नृवत्परिज्मन्नोनुवन्त वाताः॥ ४॥
ता तू त इन्द्र महतो महानि विश्वेष्वित्सवनेषु प्रवाच्या।
यच्छूर धृष्णो धृषता दधृष्वानहिं वज्रेण शवसाविवेषीः॥ ५॥

अथ अष्टमो वर्गः॥ ८॥

ता तू ते सत्या तुविनृम्ण विश्वा प्र धेनवः सिस्रते वृष्ण ऊध्नः।
अधा ह त्वद् वृषमणो भियानाः प्र सिन्धवो जवसा चक्रमन्त॥ ६॥

अत्राह ते हरिवस्ता उ देवीरवोभिरिन्द्र स्तवन्त स्वसारः।
यत्सीमनु प्र मुचो बद्बधाना दीर्घामनु प्रसितिं स्यन्दयध्यै॥ ७॥
पिपीळे अंशुर्मद्यो न सिन्धुरा त्वा शमी शशमानस्य शक्तिः।
अस्मद्र्यक्शुशुचानस्य यम्या आशुर्न रश्मिं तुव्योजसं गोः॥ ८॥
अस्मे वर्षिष्ठा कृणुहि ज्येष्ठा नृम्णानि सत्रा सहुरे सहांसि।
अस्मभ्यं वृत्रा सुहनानि रन्धि जहि वधर्वनुषो मर्त्यस्य॥ ९॥
अस्माकमित्सु शृणुहि त्वमिन्द्रास्मभ्यं चित्राँ उप माहि वाजान्।
अस्मभ्यं विश्वा इषणः पुरन्धीरस्माकं सु मघवन्बोधि गोदाः॥ १०॥
नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः॥ ११॥

[२३] त्रयोविंशं सूक्तम्

ऋषिः—वामदेवः॥ देवता—१-७, ११ इन्द्रः; ८-१० इन्द्र ऋतदेवो वा॥
छन्दः—१-३, ७-९ त्रिष्टुप्; ४, १० निचृत्त्रिष्टुप्; ५, ६ भुरिक्पङ्क्तिः;
११ निचृत्पङ्क्तिः॥ स्वरः—१-४, ७-१० धैवतः;
५, ६, ११ पञ्चमः॥

अथ नवमो वर्गः॥ ९॥

कथा महामवृधत्कस्य होतुर्यज्ञं जुषाणो अभि सोममूधः।
पिबन्नुशानो जुषमाणो अन्धो ववक्ष ऋष्वः शुचते धनाय॥ १॥
को अस्य वीरः सधमादमाप समानंश सुमतिभिः को अस्य।
कदस्य चित्रं चिकिते कदूती वृधे भुवच्छशमानस्य यज्योः॥ २॥
कथा शृणोति हूयमानमिन्द्रः कथा शृण्वन्नवसामस्य वेद।
का अस्य पूर्वीरुपमातयो ह कथैनमाहुः पपुरिं जरित्रे॥ ३॥
कथा सबाधः शशमानो अस्य नशदभि द्रविणं दीध्यानः।
देवो भुवन्नवेदा म ऋतानां नमो जगृभ्वाँ अभि यज्जुजोषत्॥ ४॥
कथा कदस्या उषसो व्युष्टौ देवो मर्तस्य सख्यं जुजोष।
कथा कदस्य सख्यं सखिभ्यो ये अस्मिन्कामं सुयुजं ततस्रे॥ ५॥

अथ दशमो वर्गः॥ १०॥

किमादमत्रं सख्यं सखिभ्यः कदा नु ते भ्रात्रं प्र ब्रवाम।
श्रिये सुदृशो वपुरस्य सर्गाः स्व१र्ण चित्रतममिष आ गोः॥ ६॥
द्रुहं जिघांसन्ध्वरसमनिन्द्रां तेतिक्ते तिग्मा तुजसे अनीका।
ऋणा चिद्यत्र ऋणया न उग्रो दूरे अज्ञाता उषसो बबाधे॥ ७॥
ऋतस्य हि शुरुधः सन्ति पूर्वीर्ऋतस्य धीतिर्वृजिनानि हन्ति।
ऋतस्य श्लोको बधिरा ततर्द कर्णा बुधानः शुचमान आयोः॥ ८॥
ऋतस्य दृळ्हा धरुणानि सन्ति पुरूणि चन्द्रा वपुषे वपूंषि।
ऋतेन दीर्घमिषणन्त पृक्ष ऋतेन गाव ऋतमा विवेशुः॥ ९॥
ऋतं येमान ऋतमिद्वनोत्यृतस्य शुष्मस्तुरया उ गव्युः।
ऋताय पृथ्वी बहुले गभीरे ऋताय धेनू परमे दुहाते॥ १०॥
नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः॥ ११॥

[२४] चतुर्विंशं सूक्तम्

ऋषिः—वामदेवः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१, ५, ७ त्रिष्टुप्; २, ८ भुरिक्पङ्क्तिः; ३, ९ निचृत् त्रिष्टुप्; ४ विराट्त्रिष्टुप्; ६ स्वराट्पङ्क्तिः; १० निचृदनुष्टुप्; ११ निचृत्पङ्क्तिः॥ स्वरः—१, ३-५, ७, ९ धैवतः; २, ६, ८, ११ पञ्चमः; १० गान्धारः॥

अथैकादशो वर्गः॥ ११॥

का सुष्टुतिः शवसः सूनुमिन्द्रमर्वाचीनं राधस आ ववर्तत्।
ददिर्हि वीरो गृणते वसूनि स गोपतिर्निष्षिधां नो जनासः॥ १॥
स वृत्रहत्ये हव्यः स ईड्यः स सुष्टुत इन्द्रः सत्यराधाः।
स यामन्ना मघवा मर्त्याय ब्रह्मण्यते सुष्वये वरिवो धात्॥ २॥
तमिन्नरो वि ह्वयन्ते समीके रिरिक्वांसस्तन्वः कृण्वत त्राम्।
मिथो यत्त्यागमुभयासो अग्मन्नरस्तोकस्य तनयस्य सातौ॥ ३॥
क्रतूयन्ति क्षितयो योग उग्राशुषाणासो मिथो अर्णसातौ।
सं यद्विशोऽववृत्रन्त युध्मा आदिन्नेम इन्द्रयन्ते अभीके॥ ४॥

आदिद्ध नेम इन्द्रियं यजन्त आदित्पक्तिः पुरोळाशं रिरिच्यात्।
आदित्सोमो वि पपृच्यादसुष्वीनादिज्जुजोष वृषभं यजध्यै॥ ५ ॥

अथ द्वादशो वर्गः ॥ १२ ॥

कृणोत्यस्मै वरिवो य इत्थेन्द्राय सोममुशते सुनोति।
सध्रीचीनेन मनसाविवेनन् तमित्सखायं कृणुते समत्सु॥ ६ ॥
य इन्द्राय सुनवत्सोममद्य पचात्पक्तीरुत भृज्जाति धानाः।
प्रति मनायोरुचथानि हर्यन्तस्मिन्दधद् वृषणं शुष्ममिन्द्रः॥ ७ ॥
यदा समर्यं व्यचेदृघावा दीर्घं यदाजिमभ्यख्यदर्यः ।
अचिक्रदद् वृषणं पत्न्यच्छा दुरोण आ निशितं सोमसुद्भिः॥ ८ ॥
भूयसा वस्नमचरत्कनीयोऽ विक्रीतो अकानिषं पुनर्यन् ।
स भूयसा कनीयो नारिरेचीद्दीना दक्षा वि दुहन्ति प्र वाणम्॥ ९ ॥
क इमं दशभिर्ममेन्द्रं क्रीणाति धेनुभिः ।
यदा वृत्राणि जङ्घनदथैनं मे पुनर्ददत् ॥ १० ॥
नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः॥ ११ ॥

[२५] पञ्चविंशं सूक्तम्

ऋषिः—वामदेवः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१ निचृत्पङ्क्तिः २, ८ स्वराट्पङ्क्तिः; ३, ५, ७ निचृत्त्रिष्टुप्; ४, ६ भुरिक्पङ्क्तिः॥ स्वरः—१, २, ४, ६, ८ पञ्चमः; ३, ५, ७ धैवतः॥

अथ त्रयोदशो वर्गः ॥ १३ ॥

को अद्य नर्यो देवकाम उशन्निन्द्रस्य सख्यं जुजोष ।
को वा महेऽवसे पार्याय समिद्धे अग्नौ सुतसोम ईट्टे ॥ १ ॥
को नानाम वचसा सोम्याय मनायुर्वा भवति वस्त उस्राः।
क इन्द्रस्य युज्यं कः सखित्वं को भ्रात्रं वष्टि कवये क ऊती॥ २ ॥
को देवानामवो अद्या वृणीते क आदित्याँ अदितिं ज्योतिरीट्टे।
कस्याश्विनाविन्द्रो अग्निः सुतस्यांशोः पिबन्ति मनसाविवेनम्॥ ३ ॥

तस्मा अग्निर्भारतः शर्म यंसज्ज्योक्पश्यात्सूर्यमुच्चरन्तम्।
य इन्द्राय सुनवामेत्याह नरे नर्याय नृतमाय नृणाम्॥ ४ ॥
न तं जिनन्ति बहवो न दभ्रा उर्वस्मा अदितिः शर्म यंसत्।
प्रियः सुकृत्प्रिय इन्द्रे मनायुः प्रियः सुप्रावीः प्रियो अस्य सोमी॥ ५ ॥

अथ चतुर्दशो वर्गः ॥ १४ ॥

सुप्राव्यः प्राशुषाळेष वीरः सुष्वेः पक्तिं कृणुते केवलेन्द्रः।
नासुष्वेरापिर्न सखा न जामिर्दुष्प्राव्योऽवहन्तेदवाचः ॥ ६ ॥
न रेवता पणिना सख्यमिन्द्रोऽ सुन्वता सुतपाः सं गृणीते।
आस्य वेदः खिदति हन्ति नग्नं वि सुष्वये पक्तये केवलो भूत्॥ ७ ॥
इन्द्रं परेऽ वरे मध्यमास इन्द्रं यान्तोऽ वसितास इन्द्रम्।
इन्द्रं क्षियन्त उत युध्यमाना इन्द्रं नरो वाजयन्तो हवन्ते॥ ८ ॥

[२६] षड्विंशं सूक्तम्

ऋषिः—वामदेवः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१ पङ्क्तिः; २ भुरिक्पङ्क्तिः; ३, ७ स्वराट्पङ्क्तिः; ४ निचृत्त्रिष्टुप्; ५ विराट्त्रिष्टुप्; ६ त्रिष्टुप्॥ स्वरः—१-३, ७ पञ्चमः; ४-६ धैवतः॥

अथ पञ्चदशो वर्गः ॥ १५ ॥

अहं मनुरभवं सूर्यश्चाहं कक्षीवाँ ऋषिरस्मि विप्रः।
अहं कुत्समार्जुनेयं न्यृञ्जेऽ हं कविरुशना पश्यता मा॥ १ ॥
अहं भूमिमददामार्यायाहं वृष्टिं दाशुषे मर्त्याय।
अहमपो अनयं वावशाना मम देवासो अनु केतमायन्॥ २ ॥
अहं पुरो मन्दसानो व्यैरं नव साकं नवतीः शम्बरस्य।
शततमं वेश्यं सर्वताता दिवोदासमतिथिग्वं यदावम्॥ ३ ॥
प्र सु ष विभ्यो मरुतो विरस्तु प्र श्येनः श्येनेभ्य आशुपत्वा।
अचक्रया यत्स्वधया सुपर्णो हव्यं भरन्मनवे देवजुष्टम्॥ ४ ॥
भरद्यदि विरतो वेविजानः पथोरुणा मनोजवा असर्जि।
तूयं ययौ मधुना सोम्येनोत श्रवो विविदे श्येनो अत्र॥ ५ ॥

ऋजीपी श्येनो ददमानो अंशुं परावतः शकुनो मन्द्रं मदम्।
सोमं भरद्दादृहाणो देवावान्दिवो अमुष्मादुत्तरादादाय॥ ६॥
आदाय श्येनो अभरत्सोमं सहस्रं सवाँ अयुतं च साकम्।
अत्रा पुरंन्धिरजहादरातीर्मदे सोमस्य मूरा अमूरः ॥ ७॥

[२७] सप्तविंशं सूक्तम्

ऋषिः—वामदेवः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१, ४ निचृत्त्रिष्टुप्; २ विराट्त्रिष्टुप्; ३ त्रिष्टुप्; ५ निचृच्छक्वरी॥ स्वरः—१-४ धैवतः; ५ पञ्चमः॥

अथ षोडशो वर्गः॥ १६॥

गर्भे नु सन्नन्वेषामवेदमहं देवानां जनिमानि विश्वा ।
शतं मा पुर आयसीररक्षन्नध श्येनो जवसा निरदीयम्॥ १॥
न घा स मामप जोषं जभाराभीमास त्वक्षसा वीर्येण।
ईर्मा पुरंन्धिरजहादरातीरुत वाताँ अतरच्छूशुवानः ॥ २॥
अव यच्छ्येनो अस्वनीदध द्योर्वि यद्यदि वात ऊहुः पुरंन्धिम्।
सृजद्यदस्मा अव ह क्षिपज्ज्यां कृशानुरस्ता मनसा भुरण्यन्॥ ३॥
ऋजिप्य ईमिन्द्रावतो न भुज्युं श्येनो जभार बृहतो अधि ष्णोः।
अन्तः पतत्पतत्र्यस्य पर्णमध यामनि प्रसितस्य तद्वेः॥ ४॥
अध श्वेतं कलशं गोभिरक्तमापिप्यानं मघवा शुक्रमन्धः।
अध्वर्युभिः प्रयतं मध्वो अग्रमिन्द्रो मदाय प्रति धत्पिबध्यै
शूरो मदाय प्रति धत्पिबध्यै ॥ ५॥

[२८] अष्टाविंशं सूक्तम्

ऋषिः—वामदेवः॥ देवता—इन्द्रासोमौ॥ छन्दः—१ निचृत्त्रिष्टुप्; २ भुरिक्पङ्क्तिः; ३ विराट्त्रिष्टुप्; ४ त्रिष्टुप्; ५ पङ्क्तिः॥ स्वरः—१, ३, ४ धैवतः; २, ५ पञ्चमः॥

अथ सप्तदशो वर्गः॥ १७॥

त्वा युजा तव तत्सोम सख्य इन्द्रो अपो मनवे सस्रुतस्कः।
अहन्नहिमरिणात्सप्त सिन्धूनपावृणोदपिहितेव खानि ॥ १॥
त्वा यु२जा नि खिदत्सूर्यस्येन्द्रश्चक्रं सहसा सद्य इन्दो।
अधि ष्णुना बृहता वर्तमानं महो द्रुहो अप विश्वायु धायि॥ २॥

अहन्निन्द्रो अदहदग्निरिन्दो पुरा दस्यून्मध्यन्दिनादभीके।
दुर्गे दुरोणे क्रत्वा न यातां पुरू सहस्रा शर्वा नि बर्हीत्॥ ३॥
विश्वस्मात्सीमधमाँ इन्द्र दस्यून्विशो दासीरकृणोरप्रशस्ताः।
अबाधेथाममृणतं नि शत्रूनविन्देथामपचितिं वधत्रैः ॥ ४॥
एवा सत्यं मघवाना युवं तदिन्द्रश्च सोमोर्वमश्व्यं गोः।
आदर्दृतमपिहितान्यश्ना रिरिचथुः क्षाश्चित्ततृदाना ॥ ५॥

[२९] एकोनत्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—वामदेवः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१ विराट्त्रिष्टुप्; २, ४ त्रिष्टुप्; ३ निचृत्त्रिष्टुप्; ५ स्वराट्पङ्क्तिः॥ स्वरः—१-४ धैवतः; ५ पञ्चमः॥

अथाष्टादशो वर्गः॥ १८॥

आ नः स्तुत उप वाजेभिरूती इन्द्र याहि हरिभिर्मन्दसानः।
तिरश्चिदर्यः सवना पुरूण्याङ्गूषेभिर्गृणानः सत्यराधाः॥ १॥
आ हि ष्मा याति नर्यश्चिकित्वान्हूयमानः सोतृभिरुप यज्ञम्।
स्वश्वो यो अभीरुर्मन्यमानः सुष्वाणेभिर्मदति सं ह वीरैः॥ २॥
श्रावयेदस्य कर्णा वाजयध्यै जुष्टामनु प्र दिशं मन्दयध्यै।
उद्वावृषाणो राधसे तुविष्मान्करन्न इन्द्रः सुतीर्थाभयं च॥ ३॥
अच्छा यो गन्ता नाधमानमूती इत्था विप्रं हवमानं गृणन्तम्।
उप त्मनि दधानो धुर्या३शून्त्सहस्राणि शतानि वज्रबाहुः॥ ४॥
त्वोतासो मघवन्निन्द्र विप्रा वयं ते स्याम सूरयो गृणन्तः।
भेजानासो बृहद्दिवस्य राय आकाय्यस्य दावने पुरुक्षोः॥ ५॥

[३०] त्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—वामदेवः॥ देवता—१-८, १२-२४ इन्द्रः; ९-११ इन्द्र उषाश्च॥ छन्दः—१, ३, ५, ९, ११, १२, १६, १८, १९, २३ निचृद्गायत्री; २, ७, १०, १३-१५, १७, २१, २२ गायत्री; ४, ६ विराड्गायत्री; ८, २४ विराडनुष्टुप्; २० पिपीलिकामध्यागायत्री॥ स्वरः—१-७, ९-२३ षड्जः; ८, २४ गान्धारः॥

अथैकोनविंशो वर्गः॥ १९॥

नकिरिन्द्र त्वदुत्तरो न ज्यायाँ अस्ति वृत्रहन्। नकिरेवा यथा त्वम्॥ १॥

सत्रा ते अनु कृष्टयो विश्वा चक्रेव वावृतुः । सत्रा महाँ असि श्रुतः ॥ २ ॥
विश्वे चनेदना त्वा देवास इन्द्र युयुधुः । यदहा नक्तमातिरः ॥ ३ ॥
यत्रोत बाधितेभ्यश्चक्रं कुत्साय युध्यते । मुषाय इन्द्र सूर्यम् ॥ ४ ॥
यत्र देवाँ ऋघायतो विश्वाँ अयुध्य एक इत् । त्वमिन्द्र वनूँरहन् ॥ ५ ॥

अथ विंशो वर्गः ॥ २० ॥

यत्रोत मर्त्याय कमरिणा इन्द्र सूर्यम् । प्रावः शचीभिरेतशम् ॥ ६ ॥
किमादुतासि वृत्रहन्मघवन्मन्युमत्तमः । अत्राह दानुमातिरः ॥ ७ ॥
एतद्घेदुत वीर्यमिन्द्र चकर्थ पौंस्यम् ।
स्त्रियं यद्दुर्हणायुवं वधीर्दुहितरं दिवः ॥ ८ ॥
दिवश्चिद्घा दुहितरं महान्महीयमानाम् । उषासमिन्द्र सं पिणक् ॥ ९ ॥
अपोषा अनसः सरत्संपिष्टादह बिभ्युषी । नि यत्सीं शिश्नथद्वृषा ॥ १० ॥

अथैकविंशो वर्गः ॥ २१ ॥

एतदस्या अनः शये सुसंपिष्टं विपाश्या । ससार सीं परावतः ॥ ११ ॥
उत सिन्धुं विबाल्यं वितस्थानामधि क्षमि । परि ष्ठा इन्द्र मायया ॥ १२ ॥
उत शुष्णस्य धृष्णुया प्र मृक्षो अभि वेदनम् । पुरो यदस्य संपिणक् ॥ १३ ॥
उत दासं कौलितरं बृहतः पर्वतादधि । अवाहन्निन्द्र शम्बरम् ॥ १४ ॥
उत दासस्य वर्चिनः सहस्राणि शतावधीः । अधि पञ्च प्रधींरिव ॥ १५ ॥

अथ द्वाविंशो वर्गः ॥ २२ ॥

उत त्यं पुत्रमग्रुवः परावृक्तं शतक्रतुः । उक्थेष्विन्द्र आभजत् ॥ १६ ॥
उत त्या तुर्वशायदू अस्नातारा शचीपतिः । इन्द्रो विद्वाँ अपारयत् ॥ १७ ॥
उत त्या सद्य आर्या सरयोरिन्द्र पारतः । अर्णाचित्ररथावधीः ॥ १८ ॥
अनु द्वा जहिता नयोऽन्धं श्रोणं च वृत्रहन् । न तत्ते सुम्नमष्टवे ॥ १९ ॥
शतमश्मन्मयीनां पुरामिन्द्रो व्यास्यत् । दिवोदासाय दाशुषे ॥ २० ॥

अथ त्रयोविंशो वर्गः ॥ २३ ॥

अस्वापयद्दभीतये सहस्रा त्रिंशतं हथैः । दासानामिन्द्रो मायया ॥ २१ ॥
स घेदुतासि वृत्रहन्त्समान इन्द्र गोपतिः । यस्ता विश्वानि चिच्युषे ॥ २२ ॥

उत नूनं यदिन्द्रियं करिष्या इन्द्र पौंस्यम् । अद्या नकिष्टदा मिनत् ॥ २३ ॥
वामंवामं त आदुरे देवो ददात्वर्यमा ।
वामं पूषा वामं भगो वामं देवः करूळती ॥ २४ ॥

[३१] एकत्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—वामदेवः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१, ७-१०, १४ गायत्री; २, ६, १२, १३, १५ निचृद्गायत्री; ३ पादनिचृद्गायत्री; ४, ५ विराड्गायत्री; ११ पिपीलिकामध्यागायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

अथ चतुर्विंशो वर्गः ॥ २४ ॥

कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा । कया शचिष्ठया वृता ॥ १ ॥
कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः । दृळ्हा चिदारुजे वसु ॥ २ ॥
अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम् । शतं भवास्यूतिभिः ॥ ३ ॥
अभी न आ ववृत्स्व चक्रं न वृत्तमर्वतः । नियुद्भिश्चर्षणीनाम् ॥ ४ ॥
प्रवता हि क्रतूनामा हा पदेव गच्छसि । अभक्षि सूर्ये सचा ॥ ५ ॥

अथ पञ्चविंशो वर्गः ॥ २५ ॥

सं यत्त इन्द्र मन्यवः सं चक्राणि दधन्विरे । अध त्वे अध सूर्ये ॥ ६ ॥
उत स्मा हि त्वामाहुरिन्मघवानं शचीपते । दातारमविदीधयुम् ॥ ७ ॥
उत स्मा सद्य इत्परि शशमानाय सुन्वते । पुरू चिन्मंहसे वसु ॥ ८ ॥
नहि ष्मा ते शतं चन राधो वरन्त आमुरः । न च्यौत्नानि करिष्यतः ॥ ९ ॥
अस्माँ अवन्तु ते शतमस्मान्त्सहस्रमूतयः । अस्मान्विश्वा अभिष्टयः ॥ १० ॥

अथ षड्विंशो वर्गः ॥ २६ ॥

अस्माँ इहा वृणीष्व सख्याय स्वस्तये । महो राये दिवित्मते ॥ ११ ॥
अस्माँ अविड्ढि विश्वहेन्द्र राया परीणसा । अस्मान्विश्वाभिरूतिभिः ॥ १२ ॥
अस्मभ्यं ताँ अपा वृधि व्रजाँ अस्तेव गोमतः । नवाभिरिन्द्रोतिभिः ॥ १३ ॥
अस्माकं धृष्णुया रथो द्युमाँ इन्द्रानपच्युतः । गव्युरश्वयुरीयते ॥ १४ ॥
अस्माकमुत्तमं कृधि श्रवो देवेषु सूर्य । वर्षिष्ठं द्यामिवोपरि ॥ १५ ॥

[३२] द्वात्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—वामदेवः ॥ देवता—१-२२ इन्द्रः; २३, २४ इन्द्राश्वौ ॥ छन्दः—१, ८-१०, १४, १६, १८, २२, २३ गायत्री; २, ४, ७ विराड्गायत्री; ३, ५, ६, १२, १३, १५, १९-२१ निचृद्गायत्री; ११ पिपीलिकामध्यागायत्री; १७ पादनिचृद्गायत्री; २४ स्वराडार्चीगायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

अथ सप्तविंशो वर्गः ॥ २७ ॥

आ तू न इन्द्र वृत्रहन्नस्माकमर्धमा गहि। महान्महीभिरूतिभिः ॥ १ ॥
भृमिश्चिद्घासि तूतुजिरा चित्र चित्रिणीष्वा। चित्रं कृणोष्यूतये ॥ २ ॥
दभ्रेभिश्चिच्छशीयांसं हंसि व्राधन्तमोजसा। सखिभिर्ये त्वे सचा ॥ ३ ॥
वयमिन्द्र त्वे सचा वयं त्वाभि नोनुमः। अस्माँअस्माँ इदुदव ॥ ४ ॥
स नश्चित्राभिरद्रिवोऽनवद्याभिरूतिभिः। अनाधृष्टाभिरा गहि ॥ ५ ॥

अथाष्टाविंशो वर्गः ॥ २८ ॥

भूयामो षु त्वावतः सखाय इन्द्र गोमतः। युजो वाजाय घृष्वये ॥ ६ ॥
त्वं ह्येक ईशिष इन्द्र वाजस्य गोमतः। स नो यन्धि महीमिषम् ॥ ७ ॥
न त्वा वरन्ते अन्यथा यद्दित्ससि स्तुतो मघम्। स्तोतृभ्य इन्द्र गिर्वणः ॥ ८ ॥
अभि त्वा गोतमा गिरानूषत प्र दावने। इन्द्र वाजाय घृष्वये ॥ ९ ॥
प्र ते वोचाम वीर्या३ या मन्दसान आरुजः। पुरो दासीरभीत्य ॥ १० ॥

अथैकोनत्रिंशो वर्गः ॥ २९ ॥

ता ते गृणन्ति वेधसो यानि चकर्थ पौंस्या। सुतेष्विन्द्र गिर्वणः ॥ ११ ॥
अवीवृधन्त गोतमा इन्द्र त्वे स्तोमवाहसः। ऐषु धा वीरवद्यशः ॥ १२ ॥
यच्चिद्धि शश्वतामसीन्द्र साधारणस्त्वम्। तं त्वा वयं हवामहे ॥ १३ ॥
अर्वाचीनो वसो भवास्मे सु मत्स्वान्धसः। सोमानामिन्द्र सोमपाः ॥ १४ ॥
अस्माकं त्वा मतीनामा स्तोम इन्द्र यच्छतु। अर्वागा वर्तया हरी ॥ १५ ॥
पुरोळाशं च नो घसो जोषयासे गिरश्च नः। वधूयुरिव योषणाम् ॥ १६ ॥

अथ त्रिंशो वर्गः ॥ ३० ॥

सहस्रं व्यतीनां युक्तानामिन्द्रमीमहे। शतं सोमस्य खार्यः ॥ १७ ॥
सहस्रा ते शता वयं गवामा च्यावयामसि। अस्मत्रा राध एतु ते ॥ १८ ॥

दर्शं ते कलशानां हिरण्यानामधीमहि। भूरिदा असि वृत्रहन् ॥ १९ ॥
भूरिदा भूरि देहि नो मा दभ्रं भूर्या भर। भूरि घेदिन्द्र दित्ससि ॥ २० ॥
भूरिदा ह्यसि श्रुतः पुरुत्रा शूर वृत्रहन्। आ नो भजस्व राधसि ॥ २१ ॥
प्र ते बभ्रू विचक्षण शंसामि गोषणो नपात्। माभ्यां गा अनु शिश्रथः ॥ २२ ॥
कनीनकेव विद्रधे नवे द्रुपदे अर्भके। बभ्रू यामेषु शोभेते ॥ २३ ॥
अरं म उस्रयाम्णेऽरमनुस्रयाम्णे। बभ्रू यामेष्वस्त्रिधा ॥ २४ ॥

इति तृतीयाऽष्टके षष्ठोऽध्यायः ॥

अथ तृतीयाष्टके सप्तमोऽध्यायः

चतुर्थोऽनुवाकः

[३३] त्रयस्त्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—वामदेवः ॥ देवता—ऋभवः ॥ छन्दः—१ भुरिक्त्रिष्टुप्; २, ४, ५, ११ त्रिष्टुप्; ३, ६, १० निचृत्त्रिष्टुप्; ७, ८ भुरिक्पङ्क्तिः; ९ स्वराट्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१-६, १०, ११ धैवतः; ७-९ पञ्चमः ॥

अथ प्रथमो वर्गः ॥ १ ॥

प्र ऋभुभ्यो दूतमिव वाचमिष्य उपस्तिरे श्वैतरीं धेनुमीळे।
ये वातजूतास्तरणिभिरेवैः परि द्यां सद्यो अपसो बभूवुः ॥ १ ॥
यदारमक्रन्नृभवः पितृभ्यां परिविष्टी वेषणा दंसनाभिः।
आदिद्देवानामुप सख्यमायन्धीरासः पुष्टिमवहन्मनायै ॥ २ ॥
पुनर्ये चक्रुः पितरा युवाना सना यूपेव जरणा शयाना।
ते वाजो विभ्वाँ ऋभुरिन्द्रवन्तो मधुप्सरसो नोऽवन्तु यज्ञम् ॥ ३ ॥
यत्संवत्समृभवो गामरक्षन्यत्संवत्समृभवो मा अपिंशन्।
यत्संवत्समभरन्भासो अस्यास्ताभिः शमीभिरमृतत्वमाशुः ॥ ४ ॥
ज्येष्ठ आह चमसा द्वा करेति कनीयान्त्रीन्कृणवामेत्याह।
कनिष्ठ आह चतुरस्करेति त्वष्ट ऋभवस्तत्पनयद्वचो वः ॥ ५ ॥

अथ द्वितीयो वर्गः ॥ २ ॥

सत्यमूचुर्नर एवा हि चक्रुरनु स्वधामृभवो जग्मुरेताम्।
विभ्राजमानांश्चमसाँ अहेवावेनत्त्वष्टा चतुरो ददृश्वान्॥ ६ ॥
द्वादश द्यून्यदगोह्यस्यातिथ्ये रणन्नृभवः ससन्तः ।
सुक्षेत्राकृण्वन्ननयन्त सिन्धून्धन्वातिष्ठन्नोषधीर्निम्नमापः॥ ७ ॥
रथं ये चक्रुः सुवृतं नरेष्ठां ये धेनुं विश्वजुवं विश्वरूपाम्।
त आ तक्षन्त्वृभवो रयिं नः स्ववसः स्वपसः सुहस्ताः॥ ८ ॥
अपो ह्येषामजुषन्त देवा अभि क्रत्वा मनसा दीध्यानाः।
वाजो देवानामभवत्सुकर्मेन्द्रस्य ऋभुक्षा वरुणस्य विभ्वा॥ ९ ॥
ये हरी मेधयोक्था मदन्त इन्द्राय चक्रुः सुयुजा ये अश्वा।
ते रायस्पोषं द्रविणान्यस्मे धत्त ऋभवः क्षेमयन्तो न मित्रम्॥ १० ॥
इदाह्नः पीतिमुत वो मदं धुर्न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः।
ते नूनमस्मे ऋभवो वसूनि तृतीये अस्मिन्त्सवने दधात॥ ११ ॥

[३४] चतुस्त्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—वामदेवः॥ देवता—ऋभवः॥ छन्दः—१ विराट्त्रिष्टुप्; २ भुरिक्त्रिष्टुप्; ३, ११ स्वराट् पङ्क्तिः; ४, ६-९ निचृत्त्रिष्टुप्; ५ भुरिक्पङ्क्तिः; १० त्रिष्टुप्॥ स्वरः—१, २, ४, ६-१० धैवतः; ३, ५, ११ पञ्चमः॥

अथ तृतीयो वर्गः॥ ३॥

ऋभुर्विभ्वा वाज इन्द्रो नो अच्छेमं यज्ञं रत्नधेयोप यात।
इदा हि वो धिषणा देव्यह्नामधात्पीतिं सं मदा अग्मता वः॥ १ ॥
विदानासो जन्मनो वाजरत्ना उत ऋतुभिर्ऋभवो मादयध्वम्।
सं वो मदा अग्मत सं पुरन्धिः सुवीरामस्मे रयिमेरयध्वम्॥ २ ॥
अयं वो यज्ञ ऋभवोऽकारि यमा मनुष्वत्प्रदिवो दधिध्वे।
प्र वोऽच्छा जुजुषाणासो अस्थुरभूत विश्वे अग्रियोत वाजाः॥ ३ ॥
अभूदु वो विधते रत्नधेयमिदा नरो दाशुषे मर्त्याय।
पिबत वाजा ऋभवो ददे वो महि तृतीयं सवनं मदाय॥ ४ ॥

आ वाजा यातोप न ऋभुक्षा महो नरो द्रविणसो गृणानाः।
आ वः पीतयोऽभिपित्वे अह्नामिमा अस्तं नवस्वइव ग्मन्॥ ५ ॥

अथ चतुर्थो वर्गः॥ ४॥

आ नपातः शवसो यातनोपेमं यज्ञं नमसा हूयमानाः।
सजोषसः सूरयो यस्य च स्थ मध्वः पात रत्नधा इन्द्रवन्तः॥ ६ ॥
सजोषा इन्द्र वरुणेन सोमं सजोषाः पाहि गिर्वणो मरुद्भिः।
अग्रेपाभिर्ऋतुपाभिः सजोषा ग्नास्पत्नीभी रत्नधाभिः सजोषाः॥ ७ ॥
सजोषस आदित्यैर्मादयध्वं सजोषस ऋभवः पर्वतेभिः।
सजोषसो दैव्येना सवित्रा सजोषसः सिन्धुभी रत्नधेभिः॥ ८ ॥
ये अश्विना ये पितरा य ऊती धेनुं ततक्षुर्ऋभवो ये अश्वा।
ये अंसत्रा य ऋधग्रोदसी ये विभ्वो नरः स्वपत्यानि चक्रुः॥ ९ ॥
ये गोमन्तं वाजवन्तं सुवीरं रयिं धत्थ वसुमन्तं पुरुक्षुम्।
ते अग्रेपा ऋभवो मन्दसाना अस्मे धत्त ये च रातिं गृणन्ति॥ १० ॥
नापाभूत न वोऽतीतृषामानिःशस्ता ऋभवो यज्ञे अस्मिन्।
समिन्द्रेण मदथ सं मरुद्भिः सं राजभी रत्नधेयाय देवाः॥ ११ ॥

[३५] पञ्चत्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—वामदेवः॥ देवता—ऋभवः॥ छन्दः—१, २, ४, ६, ७, ९ निचृत्त्रिष्टुप्; ३ भुरिक्पङ्क्तिः; ५ स्वराट्पङ्क्तिः; ८ त्रिष्टुप्॥ स्वरः—१, २, ४, ६-९ धैवतः; ३, ५ पञ्चमः॥

अथ पञ्चमो वर्गः॥ ५॥

इहोप यात शवसो नपातः सौधन्वना ऋभवो माप भूत।
अस्मिन्हि वः सवने रत्नधेयं गमन्त्विन्द्रमनु वो मदासः॥ १ ॥
आगन्नृभूणामिह रत्नधेयमभूत्सोमस्य सुषुतस्य पीतिः ।
सुकृत्यया यत्स्वपस्यया चँ एकं विचक्र चमसं चतुर्धा॥ २ ॥
व्यकृणोत चमसं चतुर्धा सखे वि शिक्षेत्यब्रवीत ।
अथैत वाजा अमृतस्य पन्थां गणं देवानामृभवः सुहस्ताः॥ ३ ॥

किंमयः स्विच्चमस एष आस यं काव्येन चतुरो विचक्र ।
अथा सुनुध्वं सवनं मदाय पात ऋभवो मधुनः सोम्यस्य ॥ ४ ॥
शच्याकर्त पितरा युवाना शच्याकर्त चमसं देवपानम् ।
शच्या हरी धनुतरावतष्टेन्द्रवाहावृभवो वाजरत्नाः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठो वर्गः ॥ ६ ॥

यो वः सुनोत्यभिपित्वे अह्नां तीव्रं वाजासः सवनं मदाय ।
तस्मै रयिमृभवः सर्ववीरमा तक्षत वृषणो मन्दसानाः ॥ ६ ॥
प्रातः सुतमपिबो हर्यश्व माध्यन्दिनं सवनं केवलं ते ।
समृभुभिः पिबस्व रत्नधेभिः सखीँर्याँ इन्द्र चकृषे सुकृत्या ॥ ७ ॥
ये देवासो अभवता सुकृत्या श्येनाइवेदधि दिवि निषेद ।
ते रत्नं धात शवसो नपातः सौधन्वना अभवतामृतासः ॥ ८ ॥
यत्तृतीयं सवनं रत्नधेयमकृणुध्वं स्वपस्या सुहस्ताः ।
तदृभवः परिषिक्तं व एतत्सं मदेभिरिन्द्रियेभिः पिबध्वम् ॥ ९ ॥

[३६] षट्त्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—वामदेवः ॥ देवता—ऋभवः ॥ छन्दः—१, ६, ८ स्वराट्त्रिष्टुप्; २-५ विराड्जगती; ७ जगती; ९ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१, ६, ८, ९ धैवतः; २-५, ७ निषादः ॥

अथ सप्तमो वर्गः ॥ ७ ॥

अनश्वो जातो अनभीशुरुक्थ्यो३ रथस्त्रिचक्रः परि वर्तते रजः ।
महत्तद्वो देव्यस्य प्रवाचनं द्यामृभवः पृथिवीं यच्च पुष्यथ ॥ १ ॥
रथं ये चक्रुः सुवृतं सुचेतसोऽविह्वरन्तं मनसस्परि ध्यया ।
ताँ ऊ न्व१स्य सवनस्य पीतय आ वो वाजा ऋभवो वेदयामसि ॥ २ ॥
तद्वो वाजा ऋभवः सुप्रवाचनं देवेषु विभ्वो अभवन्महित्वनम् ।
जिव्री यत्सन्ता पितरा सनाजुरा पुनर्युवाना चरथाय तक्षथ ॥ ३ ॥
एकं वि चक्र चमसं चतुर्वयं निश्चर्मणो गामरिणीत धीतिभिः ।
अथा देवेष्वमृतत्वमानश श्रुष्टी वाजा ऋभवस्तद्व उक्थ्यम् ॥ ४ ॥

ऋभुतो रयिः प्रथमश्रवस्तमो वाजश्रुतासो यमजीजनन्नरः ।
विभ्वतष्टो विदथेषु प्रवाच्यो यं देवासोऽवथा स विचर्षणिः ॥ ५ ॥

अथाष्टमो वर्गः ॥ ८ ॥

स वाज्यर्वा स ऋषिर्वचस्यया स शूरो अस्ता पृतनासु दुष्टरः ।
स रायस्पोषं स सुवीर्यं दधे यं वाजो विभ्वाँ ऋभवो यमाविषुः ॥ ६ ॥
श्रेष्ठं वः पेशो अधि धायि दर्शतं स्तोमो वाजा ऋभवस्तं जुजुष्टन ।
धीरासो हि ष्ठा कवयो विपश्चितस्तान्व एना ब्रह्मणा वेदयामसि ॥ ७ ॥
यूयमस्मभ्यं धिषणाभ्यस्परि विद्वांसो विश्वा नर्याणि भोजना ।
द्युमन्तं वाजं वृषशुष्ममुत्तममा नो रयिमृभवस्तक्षता वयः ॥ ८ ॥
इह प्रजामिह रयिं रराणा इह श्रवो वीरवत्तक्षता नः ।
येन वयं चितयेमात्यन्यान्तं वाजं चित्रमृभवो ददा नः ॥ ९ ॥

[३७] सप्तत्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—वामदेवः ॥ देवता—ऋभवः ॥ छन्दः—१ विराट्त्रिष्टुप्; २ त्रिष्टुप्; ३, ८ निचृत्त्रिष्टुप्; ४ पङ्क्तिः; ५, ७ अनुष्टुप्; ६ निचृदनुष्टुप् ॥ स्वरः—१-३, ८ धैवतः; ४ पञ्चमः; ५-७ गान्धारः ॥

अथ नवमो वर्गः ॥ ९ ॥

उप नो वाजा अध्वरमृभुक्षा देवा यात पथिभिर्देवयानैः ।
यथा यज्ञं मनुषो विक्ष्वा३सु दधिध्वे रण्वाः सुदिनेष्वह्नाम् ॥ १ ॥
ते वो हृदे मनसे सन्तु यज्ञा जुष्टासो अद्य घृतनिर्णिजो गुः ।
प्र वः सुतासो हरयन्त पूर्णाः क्रत्वे दक्षाय हर्षयन्त पीताः ॥ २ ॥
त्र्युदायं देवहितं यथा वः स्तोमो वाजा ऋभुक्षणो ददे वः ।
जुह्वे मनुष्वदुपरासु विक्षु युष्मे सचा बृहद्दिवेषु सोमम् ॥ ३ ॥
पीवोअश्वाः शुचद्रथा हि भूतायःशिप्रा वाजिनः सुनिष्काः ।
इन्द्रस्य सूनो शवसो नपातोऽनु वश्चेत्यग्रियं मदाय ॥ ४ ॥
ऋभुमृभुक्षणो रयिं वाजे वाजिन्तमं युजम् ।
इन्द्रस्वन्तं हवामहे सदासातममश्विनम् ॥ ५ ॥

अथ दशमो वर्गः ॥ १० ॥

सेदुभवो यमवथ यूयमिन्द्रश्च मर्त्यम् ।
स धीभिरस्तु सनिता मेधसाता सो अर्वता ॥ ६ ॥
वि नो वाजा ऋभुक्षणः पथश्चितन यष्टवे ।
अस्मभ्यं सूरयः स्तुता विश्वा आशास्तरीषणि ॥ ७ ॥
तं नो वाजा ऋभुक्षण इन्द्र नासत्या रयिम् ।
समश्वं चर्षणिभ्य आ पुरु शस्त मघत्तये ॥ ८ ॥

[३८] अष्टात्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—वामदेवः ॥ देवता—१ द्यावापृथिव्यौ; २-१० दधिक्राः ॥ छन्दः—१, ४ विराट्पङ्क्तिः; २, ३ त्रिष्टुप्; ५, ८-१० निचृत्त्रिष्टुप्; ६ भुरिक्पङ्क्तिः; ७ विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१, ४, ६, पञ्चमः; २, ३, ५, ७-१० धैवतः ॥

अथैकादशो वर्गः ॥ ११ ॥

उतो हि वां दात्रा सन्ति पूर्वा या पूरुभ्यस्त्रसदस्युर्नितोशे ।
क्षेत्रासां ददथुरुर्वरासां घनं दस्युभ्यो अभिभूतिमुग्रम् ॥ १ ॥
उत वाजिनं पुरुनिष्षिध्वानं दधिक्रामु ददथुर्विश्वकृष्टिम् ।
ऋजिप्यं श्येनं प्रुषितप्सुमाशुं चर्कृत्यमर्यो नृपतिं न शूरम् ॥ २ ॥
यं सीमनु प्रवतेव द्रवन्तं विश्वः पूरुर्मदति हर्षमाणः ।
पड्भिर्गृध्यन्तं मेधयुं न शूरं रथतुरं वातमिव ध्रजन्तम् ॥ ३ ॥
यः स्मारुन्धानो गध्या समत्सु सनुतरश्चरति गोषु गच्छन् ।
आविर्ऋजीको विदथा निचिक्यत्तिरो अरतिं पर्याप आयोः ॥ ४ ॥
उत स्मैनं वस्त्रमथिं न तायुमनु क्रोशन्ति क्षितयो भरेषु ।
नीचायमानं जसुरिं न श्येनं श्रवश्चाच्छा पशुमच्च यूथम् ॥ ५ ॥

अथ द्वादशो वर्गः ॥ १२ ॥

उत स्मासु प्रथमः सरिष्यन्नि वेवेति श्रेणिभी रथानाम् ।
स्रजं कृण्वानो जन्यो न शुभ्वा रेणुं रेरिहत्किरणं ददश्वान् ॥ ६ ॥

उत स्य वाजी सहुरिर्ऋतावा शुश्रूषमाणस्तन्वा समर्ये ।
तुरं यतीषु तुरयन्नृजिप्योऽधि भ्रुवोः किरते रेणुमृञ्जन् ॥ ७ ॥
उत स्मास्य तन्यतोरिव द्योर्ऋघायतो अभियुजो भयन्ते ।
यदा सहस्रमभि षीमयोधीद्दुर्वर्तुः स्मा भवति भीम ऋञ्जन् ॥ ८ ॥
उत स्मास्य पनयन्ति जना जूतिं कृष्टिप्रो अभिभूतिमाशोः ।
उतैनमाहुः समिथे वियन्तः परा दधिक्रा असरत्सहस्रैः ॥ ९ ॥
आ दधिक्राः शवसा पञ्च कृष्टीः सूर्यइव ज्योतिषापस्ततान ।
सहस्रसाः शतसा वाज्यर्वा पृणक्तु मध्वा समिमा वचांसि ॥ १० ॥

[३९] एकोनचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—वामदेवः ॥ देवता—दधिक्राः ॥ छन्दः—१, ३, ५ निचृत्त्रिष्टुप्; २, ४ स्वराट्पङ्क्तिः; ६ अनुष्टुप् ॥ स्वरः—१, ३, ५ धैवतः; २, ४ पञ्चमः; ६ गान्धारः ॥

अथ त्रयोदशो वर्गः ॥ १३ ॥

आशुं दधिक्रां तमु नु ष्टवाम दिवस्पृथिव्या उत चर्किराम ।
उच्छन्तीर्मामुषसः सूदयन्त्वति विश्वानि दुरितानि पर्षन् ॥ १ ॥
महश्चर्कर्म्यर्वतः क्रतुप्रा दधिक्राव्णः पुरुवारस्य वृष्णः ।
यं पूरुभ्यो दीदिवांसं नाग्निं ददथुर्मित्रावरुणा ततुरिम् ॥ २ ॥
यो अश्वस्य दधिक्राव्णो अकारीत्समिद्धे अग्रा उषसो व्युष्टौ ।
अनागसं तमदितिः कृणोतु स मित्रेण वरुणेना सजोषाः ॥ ३ ॥
दधिक्राव्ण इष ऊर्जो महो यदमन्महि मरुतां नाम भद्रम् ।
स्वस्तये वरुणं मित्रमग्निं हवामह इन्द्रं वज्रबाहुम् ॥ ४ ॥
इन्द्रमिवेदुभये वि ह्वयन्त उदीराणा यज्ञमुपप्रयन्तः ।
दधिक्रामु सूदनं मर्त्याय ददथुर्मित्रावरुणा नो अश्वम् ॥ ५ ॥
दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः ।
सुरभि नो मुखा करत्प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥ ६ ॥

[४०] चत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—वामदेवः ॥ देवता—१-४ दधिक्रावा; ५ सूर्यः ॥ छन्दः—१ निचृत्त्रिष्टुप्; २ त्रिष्टुप्; ३ स्वराट्त्रिष्टुप्; ४ भुरिक्त्रिष्टुप्; ५ निचृज्जगती ॥ स्वरः—१-४ धैवतः; ५ निषादः ॥

अथ चतुर्दशो वर्गः ॥ १४ ॥

दधिक्राव्ण इदु नु चर्किराम विश्वा इन्मामुषसः सूदयन्तु ।
अपामग्नेरुषसः सूर्यस्य बृहस्पतेराङ्गिरसस्य जिष्णोः ॥ १ ॥
सत्वा भरिषो गविषो दुवन्यसच्छ्रवस्यादिष उषसस्तुरण्यसत् ।
सत्यो द्रवो द्रवरः पतङ्गरो दधिक्रावेषमूर्जं स्वर्जनत् ॥ २ ॥
उत स्मास्य द्रवतस्तुरण्यतः पर्णं न वेरनु वाति प्रगर्धिनः ।
श्येनस्येव ध्रजतो अङ्कसं परि दधिक्राव्णः सहोर्जा तरित्रतः ॥ ३ ॥
उत स्य वाजी क्षिपणिं तुरण्यति ग्रीवायां बद्धो अपिकक्ष आसनि ।
क्रतुं दधिक्रा अनु संतवीत्वत्पथामङ्कांस्यन्वापनीफणत् ॥ ४ ॥
हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् ।
नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतम् ॥ ५ ॥

[४१] एकचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—वामदेवः ॥ देवता—इन्द्रावरुणौ ॥ छन्दः—१, ५, ९, ११ त्रिष्टुप्; २, ४ निचृत्त्रिष्टुप्; ३, ६ विराट्त्रिष्टुप्; ७ पङ्क्तिः; ८, १० स्वराट्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१-६, ९, ११ धैवतः; ७, ८, १० पञ्चमः ॥

अथ पञ्चदशो वर्गः ॥ १५ ॥

इन्द्रा को वां वरुणा सुम्नमाप स्तोमो हविष्माँ अमृतो न होता ।
यो वां हृदि क्रतुमाँ अस्मदुक्तः पस्पर्शदिन्द्रावरुणा नमस्वान् ॥ १ ॥
इन्द्रा ह यो वरुणा चक्र आपी देवौ मर्तः सख्याय प्रयस्वान् ।
स हन्ति वृत्रा समिथेषु शत्रूनवोभिर्वा महद्भिः स प्र शृण्वे ॥ २ ॥
इन्द्रा ह रत्नं वरुणा धेष्ठेत्था नृभ्यः शशमानेभ्यस्ता ।
यदी सखाया सख्याय सोमैः सुतेभिः सुप्रयसा मादयैते ॥ ३ ॥
इन्द्रा युवं वरुणा दिद्युमस्मिन्नोजिष्ठमुग्रा नि वधिष्टं वज्रम् ।
यो नो दुरेवो वृकतिर्दभीतिस्तस्मिन्मिमाथामभिभूत्योजः ॥ ४ ॥
इन्द्रा युवं वरुणा भूतमस्या धियः प्रेतारा वृषभेव धेनोः ।
सा नो दुहीयद्यवसेव गत्वी सहस्रधारा पयसा मही गौः ॥ ५ ॥

अथ षोडशो वर्गः ॥ १६ ॥

तोके हिते तनय उर्वरासु सूरो दृशीके वृषणश्च पौंस्ये ।
इन्द्रा नो अत्र वरुणा स्यातामवोभिर्दस्मा परितक्म्यायाम् ॥ ६ ॥
युवामिद्ध्यवसे पूर्व्याय परि प्रभूती गविषः स्वापी ।
वृणीमहे सख्याय प्रियाय शूरा मंहिष्ठा पितरेव शंभू ॥ ७ ॥
ता वां धियोऽवसे वाजयन्तीराजिं न जग्मुर्युवयूः सुदानू ।
श्रिये न गाव उप सोममस्थुरिन्द्रं गिरो वरुणं मे मनीषाः ॥ ८ ॥
इमा इन्द्रं वरुणं मे मनीषा अग्मन्नुप द्रविणमिच्छमानाः ।
उपेमस्थुर्जोष्टार इव वस्वो रघ्वीरिव श्रवसो भिक्षमाणाः ॥ ९ ॥
अश्व्यस्य त्मना रथ्यस्य पुष्टेर्नित्यस्य रायः पतयः स्याम ।
ता चक्राणा ऊतिभिर्नव्यसीभिरस्मत्रा रायो नियुतः सचन्ताम् ॥ १० ॥
आ नो बृहन्ता बृहतीभिरूती इन्द्र यातं वरुण वाजसातौ ।
यद्दिद्यवः पृतनासु प्रक्रीळान्तस्य वां स्याम सनितार आजेः ॥ ११ ॥

[४२] द्विचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—त्रसदस्युः पौरुकुत्स्यः ॥ देवता—१-६ आत्मा; ७-१० इन्द्रावरुणौ ॥ छन्दः—१-४, ६, ९ निचृत्त्रिष्टुप्; ५ निचृत्पङ्क्तिः; ७ विराट्त्रिष्टुप्; ८ भुरिक्त्रिष्टुप्; १० त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१-४, ६-१० धैवतः; ५ पञ्चमः ॥

अथ सप्तदशो वर्गः ॥

मम द्विता राष्ट्रं क्षत्रियस्य विश्वायोर्विश्वे अमृता यथा नः ।
क्रतुं सचन्ते वरुणस्य देवा राजामि कृष्टेरुपमस्य वव्रेः ॥ १ ॥
अहं राजा वरुणो मह्यं तान्यसुर्याणि प्रथमा धारयन्त ।
क्रतुं सचन्ते वरुणस्य देवा राजामि कृष्टेरुपमस्य वव्रेः ॥ २ ॥
अहमिन्द्रो वरुणस्ते महित्वोर्वी गभीरे रजसी सुमेके ।
त्वष्टेव विश्वा भुवनानि विद्वान्त्समैरयं रोदसी धारयं च ॥ ३ ॥
अहमपो अपिन्वमुक्षमाणा धारयं दिवं सदन ऋतस्य ।
ऋतेन पुत्रो अदितेर्ऋतावोत त्रिधातु प्रथयद्वि भूम ॥ ४ ॥

मां नरः स्वश्वा वाजयन्तो मां वृताः समरणे हवन्ते।
कृणोम्याजिं मघवाहमिन्द्र इयर्मि रेणुमभिभूत्योजाः ॥ ५ ॥

अथाष्टादशो वर्गः ॥ १८ ॥

अहं ता विश्वा चकरं नकिर्मा दैव्यं सहो वरते अप्रतीतम्।
यन्मा सोमासो ममदन्यदुक्थोभे भयेते रजसी अपारे ॥ ६ ॥
विदुष्टे विश्वा भुवनानि तस्य ता प्र ब्रवीषि वरुणाय वेधः।
त्वं वृत्राणि शृण्विषे जघन्वान्त्वं वृताँ अरिणा इन्द्र सिन्धून् ॥ ७ ॥
अस्माकमत्र पितरस्त आसन्त्सप्त ऋषयो दौर्गहे बध्यमाने।
त आयजन्त त्रसदस्युमस्या इन्द्रं न वृत्रतुरमर्धदेवम् ॥ ८ ॥
पुरुकुत्सानी हि वामदाशद्धव्येभिरिन्द्रावरुणा नमोभिः ।
अथा राजानं त्रसदस्युमस्या वृत्रहणं ददथुरर्धदेवम् ॥ ९ ॥
राया वयं ससवांसो मदेम हव्येन देवा यवसेन गावः।
तां धेनुमिन्द्रावरुणा युवं नो विश्वाहा धत्तमनपस्फुरन्तीम् ॥ १० ॥

[४३] त्रिचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—पुरुमीळ्हाजमीळ्हौ सौहोत्रौ ॥ देवता—अश्विनौ ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप्; २, ३, ५-७ निचृत्त्रिष्टुप्; ४ स्वराट्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१-३, ५-७ धैवतः; ४ पञ्चमः ॥

अथैकोनविंशो वर्गः ॥ १९ ॥

क उ श्रवत्कतमो यज्ञियानां वन्दारु देवः कतमो जुषाते।
कस्येमां देवीममृतेषु प्रेष्ठां हृदि श्रेषाम् सुष्टुतिं सुहव्याम् ॥ १ ॥
को मृळाति कतम आगमिष्ठो देवानामु कतमः शंभविष्ठः ।
रथं कमाहुर्द्रवदश्वमाशुं यं सूर्यस्य दुहितावृणीत ॥ २ ॥
मक्षू हि ष्मा गच्छथ ईवतो द्यूनिन्द्रो न शक्तिं परितक्म्यायाम्।
दिव आजाता दिव्या सुपर्णा कया शचीनां भवथः शचिष्ठा ॥ ३ ॥
का वां भूदुपमातिः कया न आश्विना गमथो हूयमाना।
को वां महश्चित्त्यजसो अभीक उरुष्यतं माध्वी दस्रा न ऊती ॥ ४ ॥

उरु वां रथः परि नक्षति द्यामा यत्समुद्रादभि वर्तते वाम्।
मध्वा माध्वी मधु वां प्रुषायन्यत्सीं वां पृक्षो भुरजन्त पक्वाः ॥ ५ ॥
सिन्धुर्ह वां रसया सिञ्चदश्वान्घृणा वयोऽरुषासः परि ग्मन्।
तदू षु वामजिरं चेति यानं येन पती भवथः सूर्यायाः ॥ ६ ॥
इहेह यद्वां समना पपृक्षे सेयमस्मे सुमतिर्वाजरत्ना ।
उरुष्यतं जरितारं युवं ह श्रितः कामो नासत्या युवद्रिक् ॥ ७ ॥

[४४] चतुश्चत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—पुरुमीळ्हाजमीळ्हौ सौहोत्रौ ॥ देवता—अश्विनौ ॥ छन्दः—१, ३, ६, ७ निचृत्त्रिष्टुप्; २ त्रिष्टुप्; ५ विराट्त्रिष्टुप्; ४ भुरिक्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१-३, ५-७ धैवतः; ४ पञ्चमः ॥

अथ विंशो वर्गः ॥ २० ॥

तं वां रथं वयमद्या हुवेम पृथुज्रयमश्विना संगतिं गोः।
यः सूर्यां वहति वन्धुरायुर्गिर्वाहसं पुरुतमं वसूयुम् ॥ १ ॥
युवं श्रियमश्विना देवता तां दिवो नपाता वनथः शचीभिः।
युवोर्वपुरभि पृक्षः सचन्ते वहन्ति यत्ककुहासो रथे वाम् ॥ २ ॥
को वामद्या करते रातहव्य ऊतये वा सुतपेयाय वार्कैः।
ऋतस्य वा वनुषे पूर्व्याय नमो येमानो अश्विना ववर्तत् ॥ ३ ॥
हिरण्ययेन पुरुभू रथेनेमं यज्ञं नासत्योप यातम् ।
पिबाथ इन्मधुनः सोम्यस्य दधथो रत्नं विधते जनाय ॥ ४ ॥
आ नो यातं दिवो अच्छा पृथिव्या हिरण्ययेन सुवृता रथेन।
मा वामन्ये नि यमन्देवयन्तः सं यद्ददे नाभिः पूर्व्या वाम् ॥ ५ ॥
नू नो रयिं पुरुवीरं बृहन्तं दस्रा मिमाथामुभयेष्वस्मे ।
नरो यद्वामश्विना स्तोममावन्त्सधस्तुतिमाजमीळ्हासो अग्मन् ॥ ६ ॥
इहेह यद्वां समना पपृक्षे सेयमस्मे सुमतिर्वाजरत्ना ।
उरुष्यतं जरितारं युवं ह श्रितः कामो नासत्या युवद्रिक् ॥ ७ ॥

[४५] पञ्चचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—वामदेवः ॥ देवता—अश्विनौ ॥ छन्दः—१, ३, ४ जगती; २ भुरिक्त्रिष्टुप्; ५ निचृज्जगती; ६ विराड्जगती; ७ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१, ३-६ निषादः; २, ७ धैवतः ॥

अथैकविंशो वर्गः ॥ २१ ॥

एष स्य भानुरुदियर्ति युज्यते रथः परिज्मा दिवो अस्य सानवि ।
पृक्षासो अस्मिन्मिथुना अधि त्रयो दृतिस्तुरीयो मधुनो वि रप्शते ॥ १ ॥
उद्वां पृक्षासो मधुमन्त ईरते रथा अश्वास उषसो व्युष्टिषु ।
अपोर्णुवन्तस्तम आ परीवृतं स्व१र्ण शुक्रं तन्वन्त आ रजः ॥ २ ॥
मध्वः पिबतं मधुपेभिरासभिरुत प्रियं मधुने युञ्जाथां रथम् ।
आ वर्तनिं मधुना जिन्वथस्पथो दृतिं वहेथे मधुमन्तमश्विना ॥ ३ ॥
हंसासो ये वां मधुमन्तो अस्रिधो हिरण्यपर्णा उहुव उषर्बुधः ।
उदप्रुतो मन्दिनो मन्दिनिस्पृशो मध्वो न मक्षः सवनानि गच्छथः ॥ ४ ॥
स्वध्वरासो मधुमन्तो अग्नय उस्रा जरन्ते प्रति वस्तोरश्विना ।
यन्निक्तहस्तस्तरणिर्विचक्षणः सोमं सुषाव मधुमन्तमद्रिभिः ॥ ५ ॥
आकेनिपासो अहभिर्दविध्वतः स्व१र्ण शुक्रं तन्वन्त आ रजः ।
सूरश्चिदश्वान्युयुजान ईयते विश्वाँ अनु स्वधया चेतथस्पथः ॥ ६ ॥
प्र वामवोचमश्विना धियंधा रथः स्वश्वो अजरो यो अस्ति ।
येन सद्यः परि रजांसि याथो हविष्मन्तं तरणिं भोजमच्छ ॥ ७ ॥

पञ्चमोऽनुवाकः

[४६] षट्चत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—वामदेवः ॥ देवता—इन्द्रवायू ॥ छन्दः—१ विराड्गायत्री; २, ३, ५-७ गायत्री; ४ निचृद्गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

अथ द्वाविंशो वर्गः ॥ २२ ॥

अग्रं पिबा मधूनां सुतं वायो दिविष्टिषु । त्वं हि पूर्वपा असि ॥ १ ॥
शतेना नो अभिष्टिभिर्नियुत्वाँ इन्द्रसारथिः । वायो सुतस्य तृम्पतम् ॥ २ ॥
आ वां सहस्रं हरय इन्द्रवायू अभि प्रयः । वहन्तु सोमपीतये ॥ ३ ॥
रथं हिरण्यवन्धुरमिन्द्रवायू स्वध्वरम् । आ हि स्थाथो दिविस्पृशम् ॥ ४ ॥
रथेन पृथुपाजसा दाश्वांसमुप गच्छतम् । इन्द्रवायू इहा गतम् ॥ ५ ॥
इन्द्रवायू अयं सुतस्तं देवेभिः सजोषसा । पिबतं दाशुषो गृहे ॥ ६ ॥

इह प्रयाणमस्तु वामिन्द्रवायू विमोचनम् । इह वां सोमपीतये ॥ ७ ॥

[४७] सप्तचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—वामदेवः ॥ देवता—१ वायुः; २-४ इन्द्रवायू ॥ छन्दः—१, ३ अनुष्टुप्; २ भुरिगुष्णिक्; ४ निचृदनुष्टुप् ॥ स्वरः—१, ३, ४ गान्धारः; २ ऋषभः ॥

अथ त्रयोविंशो वर्गः ॥ २३ ॥

वायो शुक्रो अयामि ते मध्वो अग्रं दिविष्टिषु ।
आ याहि सोमपीतये स्पार्हो देव नियुत्वता ॥ १ ॥
इन्द्रश्च वायवेषां सोमानां पीतिमर्हथः ।
युवां हि यन्तीन्दवो निम्नमापो न सध्र्यक् ॥ २ ॥
वायविन्द्रश्च शुष्मिणा सरथं शवसस्पती ।
नियुत्वन्ता न ऊतय आ यातं सोमपीतये ॥ ३ ॥
या वां सन्ति पुरुस्पृहो नियुतो दाशुषे नरा ।
अस्मे ता यज्ञवाहसेन्द्रवायू नि यच्छतम् ॥ ४ ॥

[४८] अष्टचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—वामदेवः ॥ देवता—वायुः ॥ छन्दः—१ निचृदनुष्टुप्; २ अनुष्टुप्; ३-५ भुरिगनुष्टुप् ॥ स्वरः—गान्धारः ॥

अथ चतुर्विंशो वर्गः ॥ २४ ॥

विहि होत्रा अवीता विपो न रायो अर्यः ।
वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥ १ ॥
निर्युवाणो अशस्तीर्नियुत्वाँ इन्द्रसारथिः ।
वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥ २ ॥
अनु कृष्णे वसुधिती येमाते विश्वपेशसा ।
वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥ ३ ॥
वहन्तु त्वा मनोयुजो युक्तासो नवतिर्नव ।
वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥ ४ ॥
वायो शतं हरीणां युवस्व पोष्याणाम् ।
उत वा ते सहस्रिणो रथ आ यातु पाजसा ॥ ५ ॥

[४९] एकोनपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—वामदेवः ॥ देवता—इन्द्राबृहस्पती ॥ छन्दः—१ निचृद्गायत्री; २-६ गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

अथ पञ्चविंशो वर्गः ॥ २५ ॥

इदं वामास्ये हविः प्रियमिन्द्राबृहस्पती। उक्थं मदश्च शस्यते ॥ १ ॥
अयं वां परि षिच्यते सोम इन्द्राबृहस्पती। चारुर्मदाय पीतये ॥ २ ॥
आ न इन्द्राबृहस्पती गृहमिन्द्रश्च गच्छतम्। सोमपा सोमपीतये ॥ ३ ॥
अस्मे इन्द्राबृहस्पती रयिं धत्तं शतग्विनम्। अश्वावन्तं सहस्रिणम् ॥ ४ ॥
इन्द्राबृहस्पती वयं सुते गीर्भिर्हवामहे। अस्य सोमस्य पीतये ॥ ५ ॥
सोममिन्द्राबृहस्पती पिबतं दाशुषो गृहे। मादयेथां तदोकसा ॥ ६ ॥

[५०] पञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—वामदेवः ॥ देवता—१-९ बृहस्पतिः; १०, ११, इन्द्राबृहस्पती ॥ छन्दः—१-३, ६, ७, ९ निचृत्त्रिष्टुप्; ४, ५, ११, विराट्त्रिष्टुप्; ८, १० त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

अथ षड्विंशो वर्गः ॥ २६ ॥

यस्तस्तम्भ सहसा वि ज्मो अन्तान्बृहस्पतिस्त्रिषधस्थो रवेण।
तं प्रत्नास ऋषयो दीध्यानाः पुरो विप्रा दधिरे मन्द्रजिह्वम् ॥ १ ॥
धुनेतयः सुप्रकेतं मदन्तो बृहस्पते अभि ये नस्ततस्रे ।
पृषन्तं सृप्रमदब्धमूर्वं बृहस्पते रक्षतादस्य योनिम् ॥ २ ॥
बृहस्पते या परमा परावदत आ त ऋतस्पृशो नि षेदुः।
तुभ्यं खाता अवता अद्रिदुग्धा मध्वः श्चोतन्त्यभितो विरप्शम् ॥ ३ ॥
बृहस्पतिः प्रथमं जायमानो महो ज्योतिषः परमे व्योमन्।
सप्तास्यस्तुविजातो रवेण वि सप्तरश्मिरधमत्तमांसि ॥ ४ ॥
स सुष्टुभा स ऋक्वता गणेन वलं रुरोज फलिगं रवेण ।
बृहस्पतिरुस्रिया हव्यसूदः कनिक्रदद्वावशतीरुदाजत् ॥ ५ ॥

अथ सप्तविंशो वर्गः ॥ २७ ॥

एवा पित्रे विश्वदेवाय वृष्णे यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः।
बृहस्पते सुप्रजा वीरवन्तो वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ६ ॥

स इद्राजा प्रतिजन्यानि विश्वा शुष्मेण तस्थावभि वीर्येण।
बृहस्पतिं यः सुभृतं बिभर्ति वल्गूयति वन्दते पूर्वभाजम् ॥ ७ ॥
स इत्क्षेति सुधित ओकसि स्वे तस्मा इळा पिन्वते विश्वदानीम्।
तस्मै विशः स्वयमेवा नमन्ते यस्मिन्ब्रह्मा राजनि पूर्व एति ॥ ८ ॥
अप्रतीतो जयति सं धनानि प्रतिजन्यान्युत या सजन्या।
अवस्यवे यो वरिवः कृणोति ब्रह्मणे राजा तमवन्ति देवाः ॥ ९ ॥
इन्द्रश्च सोमं पिबतं बृहस्पतेऽस्मिन्यज्ञे मन्दसाना वृषण्वसू।
आ वां विशन्त्विन्दवः स्वाभुवोऽस्मे रयिं सर्ववीरं नि यच्छतम् ॥ १० ॥
बृहस्पत इन्द्र वर्धतं नः सचा सा वां सुमतिर्भूत्वस्मे ।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरन्धीर्जजस्तमर्यो वनुषामरातीः ॥ ११ ॥

इति तृतीयाऽष्टके सप्तमोऽध्यायः ॥

अथ तृतीयाष्टकेऽष्टमोऽध्यायः

[५१] एकपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—वामदेवः ॥ देवता—उषाः ॥ छन्दः—१, ५, ८ त्रिष्टुप्; २ पङ्क्तिः; ३ विराट्त्रिष्टुप्; ४, ६, ७, ९, ११ निचृत्त्रिष्टुप्; १० भुरिक्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१, ३-९, ११ धैवतः; २, १० पञ्चमः ॥

अथ प्रथमो वर्गः ॥ १ ॥

इदमु त्यत्पुरुतमं पुरस्ताज्ज्योतिस्तमसो वयुनावदस्थात्।
नूनं दिवो दुहितरो विभातीर्गातुं कृणवन्नुषसो जनाय ॥ १ ॥
अस्थुरु चित्रा उषसः पुरस्तान्मिताइव स्वरवोऽध्वरेषु।
व्यू व्रजस्य तमसो द्वारोच्छन्तीरव्रञ्छुचयः पावकाः ॥ २ ॥
उच्छन्तीरद्य चितयन्त भोजान्राधोदेयायोषसो मघोनीः।
अचित्रे अन्तः पणयः ससन्त्वबुध्यमानास्तमसो विमध्ये ॥ ३ ॥
कुवित्स देवीः सनयो नवो वा यामो बभूयादुषसो वो अद्य।
येना नवग्वे अङ्गिरे दशग्वे सप्तास्ये रेवती रेवदूष ॥ ४ ॥

यूयं हि देवीर्ऋतयुग्भिरश्वैः परिप्रयाथ भुवनानि सद्यः।
प्रबोधयन्तीरुषसः ससन्तं द्विपाच्चतुष्पाच्चरथाय जीवम्॥ ५॥

अथ द्वितीयो वर्गः॥ २॥

क्व स्विदासां कतमा पुराणी यया विधाना विदधुर्ऋभूणाम्।
शुभं यच्छुभ्रा उषसश्चरन्ति न वि ज्ञायन्ते सदृशीरजुर्याः॥ ६॥
ता घा ता भद्रा उषसः पुरासुरभिष्टिद्युम्ना ऋतजातसत्याः।
यास्वीजानः शशमान उक्थैः स्तुवञ्छंसन्द्रविणं सद्य आप॥ ७॥
ता आ चरन्ति समना पुरस्तात्समानतः समना पप्रथानाः।
ऋतस्य देवीः सदसो बुधाना गवां न सर्गा उषसो जरन्ते॥ ८॥
ता इन्न्वेऽ३व समना समानीरमीतवर्णा उषसश्चरन्ति।
गूहन्तीरभ्वमसितं रुशद्भिः शुक्रास्तनूभिः शुचयो रुचानाः॥ ९॥
रयिं दिवो दुहितरो विभातीः प्रजावन्तं यच्छतास्मासु देवीः।
स्योनादा वः प्रतिबुध्यमानाः सुवीर्यस्य पतयः स्याम॥ १०॥
तद्वो दिवो दुहितरो विभातीरुप ब्रुव उषसो यज्ञकेतुः।
वयं स्याम यशसो जनेषु तद् द्यौश्च धत्तां पृथिवी च देवी॥ ११॥

[५२] द्विपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—वामदेवः॥ देवता—उषाः॥ छन्दः—१-४, ६, निचृद्गायत्री; ५, ७, गायत्री॥
स्वरः—षड्जः॥

अथ तृतीयो वर्गः॥ ३॥

प्रति ष्या सूनरी जनी व्युच्छन्ती परि स्वसुः। दिवो अदर्शि दुहिता॥ १॥
अश्वेव चित्रारुषी माता गवामृतावरी। सखाभूदश्विनोरुषाः॥ २॥
उत सखास्यश्विनोरुत माता गवामसि। उतोषो वस्व ईशिषे॥ ३॥
यावयद् द्वेषसं त्वा चिकित्वित्सूनृतावरि। प्रति स्तोमैरभुत्स्महि॥ ४॥
प्रति भद्रा अदृक्षत गवां सर्गा न रश्मयः। ओषा अप्रा उरु ज्रयः॥ ५॥
आपप्रुषी विभावरि व्यावर्ज्योतिषा तमः। उषो अनु स्वधामव॥ ६॥
आ द्यां तनोषि रश्मिभिरान्तरिक्षमुरु प्रियम्। उषः शुक्रेण शोचिषा॥ ७॥

[५३] त्रिपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—वामदेवः॥ देवता—सविता॥ छन्दः—१, ३, ६, ७ निचृज्जगती;
२ विराड्जगती; ४ स्वराड्जगती; ५ जगती॥ स्वरः—निषादः॥

अथ चतुर्थो वर्गः॥ ४॥

तद्देवस्य सवितुर्वार्यं महद् वृणीमहे असुरस्य प्रचेतसः।
छर्दिर्येन दाशुषे यच्छति त्मना तन्नो महाँ उदयान्देवो अक्तुभिः॥ १॥
दिवो धर्ता भुवनस्य प्रजापतिः पिशङ्गं द्रापिं प्रति मुञ्चते कविः।
विचक्षणः प्रथयन्नापृणन्नुर्वजीजनत्सविता सुम्नमुक्थ्यम्॥ २॥
आप्रा रजांसि दिव्यानि पार्थिवा श्लोकं देवः कृणुते स्वाय धर्मणे।
प्र बाहू अस्राक्सविता सवीमनि निवेशयन्प्रसुवन्नक्तुभिर्जगत्॥ ३॥
अदाभ्यो भुवनानि प्रचाकशद् व्रतानि देवः सविताभि रक्षते।
प्रास्राग्बाहू भुवनस्य प्रजाभ्यो धृतव्रतो महो अज्मस्य राजति॥ ४॥
त्रिरन्तरिक्षं सविता महित्वना त्री रजांसि परिभूस्त्रीणि रोचना।
तिस्रो दिवः पृथिवीस्तिस्र इन्वति त्रिभिर्व्रतैरभि नो रक्षति त्मना॥ ५॥
बृहत्सुम्नः प्रसवीता निवेशनो जगतः स्थातुरुभयस्य यो वशी।
स नो देवः सविता शर्म यच्छत्वस्मे क्षयाय त्रिवरूथमंहसः॥ ६॥
आगन्देव ऋतुभिर्वर्धतु क्षयं दधातु नः सविता सुप्रजामिषम्।
स नः क्षपाभिरहभिश्च जिन्वतु प्रजावन्तं रयिमस्मे समिन्वतु॥ ७॥

[५४] चतुःपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—वामदेवः॥ देवता—सविता॥ छन्दः—१ भुरिक्त्रिष्टुप्; २ निचृत्त्रिष्टुप्;
३-५ स्वराट्त्रिष्टुप्; ६ त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

अथ पञ्चमो वर्गः॥ ५॥

अभूद्देवः सविता वन्द्यो नु न इदानीमह्न उपवाच्यो नृभिः।
वि यो रत्ना भजति मानवेभ्यः श्रेष्ठं नो अत्र द्रविणं यथा दधत्॥ १॥
देवेभ्यो हि प्रथमं यज्ञियेभ्योऽमृतत्वं सुवसि भागमुत्तमम्।
आदिद्दामानं सवितर्व्यूर्णुषेऽनूचीना जीविता मानुषेभ्यः॥ २॥

अचित्ती यच्चकृमा दैव्ये जने दीनैर्दक्षैः प्रभूती पूरुषत्वता।
देवेषु च सवितर्मानुषेषु च त्वं नो अत्र सुवतादनागसः॥३॥
न प्रमिये सवितुर्दैव्यस्य तद्यथा विश्वं भुवनं धारयिष्यति।
यत्पृथिव्या वरिमन्ना स्वङ्गुरिर्वर्ष्मन्दिवः सुवति सत्यमस्य तत्॥४॥
इन्द्रज्येष्ठान्बृहद्भ्यः पर्वतेभ्यः क्षयाँ एभ्यः सुवसि पस्त्यावतः।
यथायथा पतयन्तो वियेमिर एवैव तस्थुः सवितः सवाय ते॥५॥
ये ते त्रिरहन्त्सवितः सवासो दिवेदिवे सौभगमासुवन्ति।
इन्द्रो द्यावापृथिवी सिन्धुरद्भिरादित्यैर्नो अदितिः शर्म यंसत्॥६॥

[५५] पञ्चपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—वामदेवः॥ देवता—विश्वे देवाः॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप्; २, ४ निचृत्त्रिष्टुप्; ३, ५ भुरिक्पङ्क्तिः; ६, ७ स्वराट्पङ्क्तिः; ८, ९ विराड्गायत्री; १० गायत्री॥ स्वरः—१, २, ४ धैवतः; ३, ५-७ पञ्चमः; ८-१० षड्जः॥

अथ षष्ठो वर्गः॥६॥

को वस्त्राता वसवः को वरूता द्यावाभूमी अदिते त्रासीथां नः।
सहीयसो वरुण मित्र मर्तात्को वोऽध्वरे वरिवो धाति देवाः॥१॥
प्र ये धामानि पूर्व्याण्यर्चान्वि यदुच्छान्वियोतारो अमूराः।
विधातारो वि ते दधुरजस्रा ऋतधीतयो रुरुचन्त दस्माः॥२॥
प्र पस्त्या३मदितिं सिन्धुमर्कैः स्वस्तिमीळे सख्याय देवीम्।
उभे यथा नो अहनी निपात उषासानक्ता करतामदब्धे॥३॥
व्यर्यमा वरुणश्चेति पन्थामिषस्पतिः सुवितं गातुमग्निः।
इन्द्राविष्णू नृवदु षु स्तवाना शर्म नो यन्तममवद्वरूथम्॥४॥
आ पर्वतस्य मरुतामवांसि देवस्य त्रातुरव्रि भगस्य।
पात्पतिर्जन्यादंहसो नो मित्रो मित्रियादुत न उरुष्येत्॥५॥

अथ सप्तमो वर्गः॥७॥

नू रोदसी अहिना बुध्न्येन स्तुवीत देवी अप्येभिरिष्टैः।
समुद्रं न संचरणे सनिष्यवो घर्मस्वरसो नद्यो३ अप व्रन्॥६॥

देवैर्नो देव्यदितिर्नि पातु देवस्त्राता त्रायतामप्रयुच्छन्।
नहि मित्रस्य वरुणस्य धासिमर्हामसि प्रमियं सान्वग्नेः॥७॥
अग्निरीशे वसव्यस्याग्निर्महः सौभगस्य। तान्यस्मभ्यं रासते॥८॥
उषो मघोन्या वह सूनृते वार्या पुरु। अस्मभ्यं वाजिनीवति॥९॥
तत्सु नः सविता भगो वरुणो मित्रो अर्यमा। इन्द्रो नो राधसा गमत्॥१०॥

[५६] षट्पञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—वामदेवः॥ देवता—द्यावापृथिव्यौ॥ छन्दः—१, २ त्रिष्टुप्; ३ भुरिक्पङ्क्तिः; ४ विराट्त्रिष्टुप्; ५ निचृद्गायत्री; ६ विराड्गायत्री; ७ गायत्री॥ स्वरः—१, २, ४ धैवतः; ३ पञ्चमः; ५-७ षड्जः॥

अथाष्टमो वर्गः॥

मही द्यावापृथिवी इह ज्येष्ठे रुचा भवतां शुचयद्भिरर्कैः।
यत्सीं वरिष्ठे बृहती विमिन्वन्रुवद्धोक्षा पप्रथानेभिरेवैः॥१॥
देवी देवेभिर्यजते यजत्रैरमिनती तस्थतुरुक्षमाणे।
ऋतावरी अद्रुहा देवपुत्रे यज्ञस्य नेत्री शुचयद्भिरर्कैः॥२॥
स इत्स्वपा भुवनेष्वास य इमे द्यावापृथिवी जजान।
उर्वी गभीरे रजसी सुमेके अवंशे धीरः शच्या समैरत्॥३॥
नू रोदसी बृहद्भिर्नो वरूथैः पत्नीवद्भिरिषयन्ती सजोषाः।
उरूची विश्वे यजते नि पातं धिया स्याम रथ्यः सदासाः॥४॥
प्र वां महि द्यवी अभ्युपस्तुतिं भरामहे। शुची उप प्रशस्तये॥५॥
पुनाने तन्वा मिथः स्वेन दक्षेण राजथः। ऊह्याथे सनादृतम्॥६॥
मही मित्रस्य साधथस्तरन्ती पिप्रती ऋतम्। परि यज्ञं नि षेदथुः॥७॥

[५७] सप्तपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—वामदेवः॥ देवता—१-३ क्षेत्रपतिः; ४ शुनः; ५, ८ शुनासीरौ; ६, ७ सीता॥ छन्दः—१, ४, ६, ७ अनुष्टुप्; २, ३, ८ त्रिष्टुप्; ५ पुरउष्णिक्॥ स्वरः—१, ४, ६, ७ गान्धारः; २, ३, ८ धैवतः; ५ ऋषभः॥

अथ नवमो वर्गः॥९॥

क्षेत्रस्य पतिना वयं हितेनेव जयामसि।
गामश्वं पोषयित्वा स नो मृळातीदृशे॥१॥

क्षेत्रस्य पते मधुमन्तमूर्मिं धेनुरिव पयो अस्मासु धुक्ष्व ।
मधुश्चुतं घृतमिव सुपूतमृतस्य नः पतयो मृळयन्तु ॥२॥
मधुमतीरोषधीर्द्याव आपो मधुमन्नो भवत्वन्तरिक्षम् ।
क्षेत्रस्य पतिर्मधुमान्नो अस्त्वरिष्यन्तो अन्वेनं चरेम ॥३॥
शुनं वाहाः शुनं नरः शुनं कृषतु लाङ्गलम् ।
शुनं वरत्रा बध्यन्तां शुनमष्ट्रामुदिङ्गय ॥४॥
शुनासीराविमां वाचं जुषेथां यद्दिवि चक्रथुः पयः ।
तेनेमामुप सिञ्चतम् ॥५॥
अर्वाची सुभगे भव सीते वन्दामहे त्वा ।
यथा नः सुभगाससि यथा नः सुफलाससि ॥६॥
इन्द्रः सीतां नि गृह्णातु तां पूषानु यच्छतु ।
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम् ॥७॥
शुनं नः फाला वि कृषन्तु भूमिं शुनं कीनाशा अभि यन्तु वाहैः ।
शुनं पर्जन्यो मधुना पयोभिः शुनासीरा शुनमस्मासु धत्तम् ॥८॥

[५८] अष्टपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—वामदेवः॥ देवता—अग्निः सूर्यो वाऽपो वा गावो वा घृतं वा ॥ छन्दः—१, ६, ७ निचृत् त्रिष्टुप्; २, ४, ८-१० त्रिष्टुप्; ३ भुरिक्पङ्क्तिः; ५ निचृदुष्णिक्; ११ स्वराट्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—१, २, ४, ६-१० धैवतः; ३ पञ्चमः; ५ ऋषभः॥

अथ दशमो वर्गः॥ १०॥

समुद्रादूर्मिर्मधुमाँ उदारदुपांशुना सममृतत्वमानट् ।
घृतस्य नाम गुह्यं यदस्ति जिह्वा देवानाममृतस्य नाभिः ॥१॥
वयं नाम प्र ब्रवामा घृतस्यास्मिन्यज्ञे धारयामा नमोभिः ।
उप ब्रह्मा शृणवच्छस्यमानं चतुःशृङ्गोऽवमीद्गौर एतत् ॥२॥
चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य ।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्याँ आ विवेश ॥३॥

त्रिधा हितं पणिभिर्गुह्यमानं गवि देवासो घृतमन्वविन्दन् ।
इन्द्र एकं सूर्य एकं जजान वेनादेकं स्वधया निष्टतक्षुः ॥४॥
एता अर्षन्ति हृद्यात्समुद्राच्छतव्रजा रिपुणा नावचक्षे ।
घृतस्य धारा अभि चाकशीमि हिरण्ययो वेतसो मध्य आसाम् ॥५॥

अथ एकादशो वर्गः॥ ११॥

सम्यक्स्रवन्ति सरितो न धेना अन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः ।
एते अर्षन्त्यूर्मयो घृतस्य मृगाइव क्षिपणोरीषमाणाः ॥६॥
सिन्धोरिव प्राध्वने शूघनासो वातप्रमियः पतयन्ति यह्वाः ।
घृतस्य धारा अरुषो न वाजी काष्ठा भिन्दन्नूर्मिभिः पिन्वमानः ॥७॥
अभि प्रवन्त समनेव योषाः कल्याण्य१ः स्मयमानासो अग्निम् ।
घृतस्य धाराः समिधो नसन्त ता जुषाणो हर्यति जातवेदाः ॥८॥
कन्याइव वहतुमेतवा उ अञ्ज्यञ्जाना अभि चाकशीमि ।
यत्र सोमः सूयते यत्र यज्ञो घृतस्य धारा अभि तत्पवन्ते ॥९॥
अभ्यर्षत सुष्टुतिं गव्यमाजिमस्मासु भद्रा द्रविणानि धत्त ।
इमं यज्ञं नयत देवता नो घृतस्य धारा मधुमत्पवन्ते ॥१०॥
धामन्ते विश्वं भुवनमधि श्रितमन्तः समुद्रे हृद्य१न्तरायुषि ।
अपामनीके समिथे य आभृतस्तमश्याम मधुमन्तं त ऊर्मिम् ॥११॥

इति चतुर्थं मण्डलम्॥

अथ पञ्चमं मण्डलम्

प्रथमोऽनुवाकः [१] प्रथमं सूक्तम्

ऋषिः—बुधगविष्ठिरावात्रेयौ ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१, ३, ४, ६, ११, १२ निचृत्त्रिष्टुप्; २, ७, १० त्रिष्टुप्; ५, ८ स्वराट्पङ्क्तिः; ९ पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१-४, ६, ७, १०-१२ धैवतः; ५, ८, ९ पञ्चमः ॥

अथ द्वादशो वर्गः ॥ १२ ॥

अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम् ।
यह्वाइव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सिस्रते नाकमच्छ ॥ १ ॥
अबोधि होता यजथाय देवानूर्ध्वो अग्निः सुमनाः प्रातरस्थात् ।
समिद्धस्य रुशददर्शि पाजो महान्देवस्तमसो निरमोचि ॥ २ ॥
यदीं गणस्य रशनामजीगः शुचिरङ्क्ते शुचिभिर्गोभिरग्निः ।
आद्दक्षिणा युज्यते वाजयन्त्युत्तानामूर्ध्वो अधयज्जुहूभिः ॥ ३ ॥
अग्निमच्छा देवयतां मनांसि चक्षूंषीव सूर्ये सं चरन्ति ।
यदीं सुवाते उषसा विरूपे श्वेतो वाजी जायते अग्रे अह्नाम् ॥ ४ ॥
जनिष्ट हि जेन्यो अग्रे अह्नां हितो हितेष्वरुषो वनेषु ।
दमेदमे सप्त रत्ना दधानोऽग्निर्होता नि षसादा यजीयान् ॥ ५ ॥
अग्निर्होता न्यसीदद्यजीयानुपस्थे मातुः सुरभा उ लोके ।
युवा कविः पुरुनिःष्ठ ऋतावा धर्ता कृष्टीनामुत मध्य इद्धः ॥ ६ ॥

अथ त्रयोदशो वर्गः ॥ १३ ॥

प्र णु त्यं विप्रमध्वरेषु साधुमग्निं होतारमीळते नमोभिः ।
आ यस्ततान रोदसी ऋतेन नित्यं मृजन्ति वाजिनं घृतेन ॥ ७ ॥
मार्जाल्यो मृज्यते स्वे दमूनाः कविप्रशस्तो अतिथिः शिवो नः ।
सहस्रशृङ्गो वृषभस्तदोजा विश्वाँ अग्ने सहसा प्रास्यन्यान् ॥ ८ ॥
प्र सद्यो अग्ने अत्येष्यन्यानाविर्यस्मै चारुतमो बभूथ ।
ईळेन्यो वपुष्यो विभावा प्रियो विशामतिथिर्मानुषीणाम् ॥ ९ ॥

तुभ्यं भरन्ति क्षितयो यविष्ठ बलिमग्ने अन्तित ओत दूरात् ।
आ भन्दिष्ठस्य सुमतिं चिकिद्धि बृहत्ते अग्ने महि शर्म भद्रम् ॥ १० ॥
आद्य रथं भानुमो भानुमन्तमग्ने तिष्ठ यजतेभिः समन्तम् ।
विद्वान्पथीनामुर्व१न्तरिक्षमेह देवान्हविरद्याय वक्षि ॥ ११ ॥
अवोचाम कवये मेध्याय वचो वन्दारु वृषभाय वृष्णे ।
गविष्ठिरो नमसा स्तोममग्नौ दिवीव रुक्ममुरुव्यञ्चमश्रेत् ॥ १२ ॥

[२] द्वितीयं सूक्तम्

ऋषिः—१, ३-८, १०-१२ कुमार आत्रेयो, वृशो वा जार उभौ वा; २, ९ वृशो जारः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१, ३, ७, ८ त्रिष्टुप्; २ स्वराट्पङ्क्तिः; ४, ५, ९, १० निचृत्त्रिष्टुप्; ६ भुरिक्पङ्क्तिः; ११ विराट्त्रिष्टुप्; १२ निचृदतिजगती ॥ स्वरः—१, ३-५, ७-११ धैवतः; २, ६ पञ्चमः; १२ निषादः ॥

अथ चतुर्दशो वर्गः ॥ १४ ॥

कुमारं माता युवतिः समुब्धं गुहा बिभर्ति न ददाति पित्रे ।
अनीकमस्य न मिनज्जनासः पुरः पश्यन्ति निहितमरतौ ॥ १ ॥
कमेतं त्वं युवते कुमारं पेषी बिभर्षि महिषी जजान ।
पूर्वीर्हि गर्भः शरदो ववर्धापश्यं जातं यदसूत माता ॥ २ ॥
हिरण्यदन्तं शुचिवर्णमारात्क्षेत्रादपश्यमायुधा मिमानम् ।
ददानो अस्मा अमृतं विपृक्वत्किं मामनिन्द्राः कृणवन्ननुक्थाः ॥ ३ ॥
क्षेत्रादपश्यं सनुतश्चरन्तं सुमद्यूथं न पुरु शोभमानम् ।
न ता अगृभ्रन्नजनिष्ट हि षः पलिक्नीरिद्युवतयो भवन्ति ॥ ४ ॥
के मे मर्यकं वि यवन्त गोभिर्न येषां गोपा अरणश्चिदास ।
य ईं जगृभुरव ते सृजन्त्वाजाति पश्व उप नश्चिकित्वान् ॥ ५ ॥
वसां राजानं वसतिं जनानामरातयो नि दधुर्मर्त्येषु ।
ब्रह्माण्यत्रेरव तं सृजन्तु निन्दितारो निन्द्यासो भवन्तु ॥ ६ ॥

अथ पञ्चदशो वर्गः ॥ १५ ॥

शुनश्चिच्छेपं निदितं सहस्राद्यूपादमुञ्चो अशमिष्ट हि षः ।
एवास्मदग्ने वि मुमुग्धि पाशान्होतश्चिकित्व इह तू निषद्य ॥ ७ ॥

हृणीयमानो अप हि मदैयेः प्र मे देवानां व्रतपा उवाच।
इन्द्रो विद्वाँ अनु हि त्वा चचक्ष तेनाहमग्ने अनुशिष्ट आगाम्॥ ८॥
वि ज्योतिषा बृहता भात्यग्निराविर्विश्वानि कृणुते महित्वा।
प्रादेवीर्मायाः सहते दुरेवाः शिशीते शृङ्गे रक्षसे विनिक्षे॥ ९॥
उत स्वानासो दिवि षन्त्वग्नेस्तिग्मायुधा रक्षसे हन्तवा उ।
मदे चिदस्य प्र रुजन्ति भामा न वरन्ते परिबाधो अदेवीः॥ १०॥
एतं ते स्तोमं तुविजात विप्रो रथं न धीरः स्वपा अतक्षम्।
यदीदग्ने प्रति त्वं देव हर्याः स्वर्वतीरप एना जयेम॥ ११॥
तुविग्रीवो वृषभो वावृधानोऽशत्र्वर्यः समजाति वेदः।
इतीममग्निममृता अवोचन्बर्हिष्मते मनवे शर्म यंसद्धविष्मते
मनवे शर्म यंसत्॥ १२॥

[३] तृतीयं सूक्तम्

ऋषिः—वसुश्रुत आत्रेयः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—१ निचृत्पङ्क्तिः; २, ३, ५, ९, १२ निचृत्त्रिष्टुप्; ४, १० त्रिष्टुप्; ६ स्वराट्त्रिष्टुप्; ७, ८ विराट्त्रिष्टुप्; ११ भुरिक्पङ्क्तिः॥ स्वरः—१, ११ पञ्चमः; २-१०, १२ धैवतः॥

अथ षोडशो वर्गः॥ १६॥

त्वमग्ने वरुणो जायसे यत्त्वं मित्रो भवसि यत्समिद्धः।
त्वे विश्वे सहसस्पुत्र देवास्त्वमिन्द्रो दाशुषे मर्त्याय॥ १॥
त्वमर्यमा भवसि यत्कनीनां नाम स्वधावन्गुह्यं बिभर्षि।
अञ्जन्ति मित्रं सुधितं न गोभिर्यद्दम्पती समनसा कृणोषि॥ २॥
तव श्रिये मरुतो मर्जयन्त रुद्र यत्ते जनिम चारु चित्रम्।
पदं यद्विष्णोरुपमं निधायि तेन पासि गुह्यं नाम गोनाम्॥ ३॥
तव श्रिया सुदृशो देव देवाः पुरू दधाना अमृतं सपन्त।
होतारमग्निं मनुषो नि षेदुर्दशस्यन्त उशिजः शंसमायोः॥ ४॥
न त्वद्धोता पूर्वो अग्ने यजीयान्न काव्यैः परो अस्ति स्वधावः।
विशश्च यस्या अतिथिर्भवासि स यज्ञेन वनवद्देव मर्तान्॥ ५॥

वयमग्ने वनुयाम त्वोता वसूयवो हविषा बुध्यमानाः।
वयं समर्ये विदथेष्वह्नां वयं राया सहसस्पुत्र मर्तान्॥ ६॥

अथ सप्तदशो वर्गः॥ १७॥

यो न आगो अभ्येनो भरात्यधीदघमघशंसे दधात।
जही चिकित्वो अभिशस्तिमेतामग्ने यो नो मर्चयति द्वयेन॥ ७॥
त्वामस्या व्युषि देव पूर्वे दूतं कृण्वाना अयजन्त हव्यैः।
संस्थे यदग्न ईयसे रयीणां देवो मर्तैर्वसुभिरिध्यमानः॥ ८॥
अव स्पृधि पितरं योधि विद्वान्पुत्रो यस्ते सहसः सून ऊहे।
कदा चिकित्वो अभि चक्षसे नोऽग्ने कदाँ ऋतचिद्यातयासे॥ ९॥
भूरि नाम वन्दमानो दधाति पिता वसो यदि तज्जोषयासे।
कुविद्देवस्य सहसा चकानः सुम्नमग्निर्वनते वावृधानः॥ १०॥
त्वमङ्ग जरितारं यविष्ठ विश्वान्यग्ने दुरिताति पर्षि।
स्तेना अदृश्रन्रिपवो जनासोऽज्ञातकेता वृजिना अभूवन्॥ ११॥
इमे यामासस्त्वद्रिगभूवन्वसवे वा तदिदागो अवाचि।
नाहायमग्निरभिशस्तये नो न रीषते वावृधानः परा दात्॥ १२॥

[४] चतुर्थं सूक्तम्

ऋषिः—वसुश्रुत आत्रेयः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—१, १०, ११ भुरिक्पङ्क्तिः; २, ९ विराट्त्रिष्टुप्; ३, ६, ८ निचृत्त्रिष्टुप्; ४, ७ स्वराट्पङ्क्तिः; ५ त्रिष्टुप्॥ स्वरः—१, ४, ७, १०, ११ पञ्चमः; २, ३, ५, ६, ८, ९ धैवतः॥

अथाष्टादशो वर्गः॥ १८॥

त्वामग्ने वसुपतिं वसूनामभि प्र मन्दे अध्वरेषु राजन्।
त्वया वाजं वाजयन्तो जयेमाभि ष्याम पृत्सुतीर्मर्त्यानाम्॥ १॥
हव्यवाळग्निरजरः पिता नो विभुर्विभावा सुदृशीको अस्मे।
सुगार्हपत्याः समिषो दिदीह्यस्मद्र्यक्सं मिमीहि श्रवांसि॥ २॥
विशां कविं विश्पतिं मानुषीणां शुचिं पावकं घृतपृष्ठमग्निम्।
नि होतारं विश्वविदं दधिध्वे स देवेषु वनते वार्याणि॥ ३॥

जुषस्वाग्न इळया सजोषा यतमानो रश्मिभिः सूर्यस्य।
जुषस्व नः समिधं जातवेद आ च देवान्हविरद्याय वक्षि॥ ४॥
जुष्टो दमूना अतिथिर्दुरोण इमं नो यज्ञमुप याहि विद्वान्।
विश्वा अग्ने अभियुजो विहत्या शत्रूयतामा भरा भोजनानि॥ ५॥

अथैकोनविंशो वर्गः॥ १९॥

वधेन दस्युं प्र हि चातयस्व वयः कृण्वानस्तन्वे३ स्वायै।
पिपर्षि यत्सहसस्पुत्र देवान्त्सो अग्ने पाहि नृतम वाजे अस्मान्॥ ६॥
वयं ते अग्न उक्थैर्विधेम वयं हव्यैः पावक भद्रशोचे।
अस्मे रयिं विश्ववारं समिन्वास्मे विश्वानि द्रविणानि धेहि॥ ७॥
अस्माकमग्ने अध्वरं जुषस्व सहसः सूनो त्रिषधस्थ हव्यम्।
वयं देवेषु सुकृतः स्याम शर्मणा नस्त्रिवरूथेन पाहि॥ ८॥
विश्वानि नो दुर्गहा जातवेदः सिन्धुं न नावा दुरिताति पर्षि।
अग्ने अत्रिवन्नमसा गृणानो३ऽस्माकं बोध्यविता तनूनाम्॥ ९॥
यस्त्वा हृदा कीरिणा मन्यमानोऽमर्त्यं मर्त्यो जोहवीमि।
जातवेदो यशो अस्मासु धेहि प्रजाभिरग्ने अमृतत्वमश्याम्॥ १०॥
यस्मै त्वं सुकृते जातवेद उ लोकमग्ने कृणवः स्योनम्।
अश्विनं स पुत्रिणं वीरवन्तं गोमन्तं रयिं नशते स्वस्ति॥ ११॥

[५] पञ्चमं सूक्तम्

ऋषिः—वसुश्रुत आत्रेयः॥ देवता—आप्रियः॥ छन्दः—१, ५-७, ९, १० गायत्री; २ आर्च्युष्णिक्; ३, ८ निचृद्गायत्री; ४ पिपीलिकामध्यागायत्री; ११ विराड्गायत्री॥ स्वरः—१, ३-११ षड्जः; २ ऋषभः॥

अथ विंशो वर्गः॥ २०॥

सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन। अग्नये जातवेदसे॥ १॥
नराशंसः सुषूदतीमं यज्ञमदाभ्यः। कविर्हि मधुहस्त्यः॥ २॥
ईळितो अग्न आ वहेन्द्रं चित्रमिह प्रियम्। सुखै रथेभिरूतये॥ ३॥

ऊर्णम्रदा वि प्रथस्वाभ्य१र्का अनूषत। भवा नः शुभ्र सातये॥ ४॥
देवीर्द्वारो वि श्रयध्वं सुप्रायणा न ऊतये। प्रप्र यज्ञं पृणीतन॥ ५॥

अथैकविंशो वर्गः॥ २१॥

सुप्रतीके वयोवृधा यह्वी ऋतस्य मातरा। दोषामुषासमीमहे॥ ६॥
वातस्य पत्मन्नीळिता दैव्या होतारा मनुषः। इमं नो यज्ञमा गतम्॥ ७॥
इळा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः। बर्हिः सीदन्त्वस्रिधः॥ ८॥
शिवस्त्वष्टरिहा गहि विभुः पोष उत त्मना। यज्ञेयज्ञे न उदव॥ ९॥
यत्र वेत्थ वनस्पते देवानां गुह्या नामानि। तत्र हव्यानि गामय॥ १०॥
स्वाहाग्नये वरुणाय स्वाहेन्द्राय मरुद्भ्यः। स्वाहा देवेभ्यो हविः॥ ११॥

[६] षष्ठं सूक्तम्

ऋषिः—वसुश्रुत आत्रेयः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—१, ८, ९ निचृत्पङ्क्तिः; २, ५ पङ्क्तिः; ३, ४ स्वराड्बृहती; ६, १० भुरिग्बृहती; ७ विराट्पङ्क्तिः॥ स्वरः—१, २, ५, ७-९ पञ्चमः; ३, ४, ६, १० मध्यमः॥

अथ द्वाविंशो वर्गः॥ २२॥

अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः।
अस्तमर्वन्त आशवोऽस्तं नित्यासो वाजिन इषं स्तोतृभ्य आ भर॥ १॥
सो अग्निर्यो वसुर्गृणे सं यमायन्ति धेनवः।
समर्वन्तो रघुद्रुवः सं सुजातासः सूरय इषं स्तोतृभ्य आ भर॥ २॥
अग्निर्हि वाजिनं विशे ददाति विश्वचर्षणिः।
अग्नी राये स्वाभुवं स प्रीतो याति वार्यमिषं स्तोतृभ्य आ भर॥ ३॥
आ ते अग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम्।
यद्ध स्या ते पनीयसी समिद्दीदयति द्यवीषं स्तोतृभ्य आ भर॥ ४॥
आ ते अग्न ऋचा हविः शुक्रस्य शोचिषस्पते।
सुश्चन्द्र दस्म विश्पते हव्यवाट् तुभ्यं हूयत इषं स्तोतृभ्य आ भर॥ ५॥

अथ त्रयोविंशो वर्गः॥ २३॥

प्रो त्ये अग्नयोऽग्निषु विश्वं पुष्यन्ति वार्यम्।
ते हिन्विरे त इन्विरे त इषणयन्त्यानुषगिषं स्तोतृभ्य आ भर॥ ६॥

तव त्ये अग्ने अर्चयो महि व्राधन्त वाजिनः ।
ये पत्वभिः शफानां व्रजा भुरन्त गोनामिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥७॥
नवा नो अग्न आ भर स्तोतृभ्यः सुक्षितीरिषः ।
ते स्याम य आनृचुस्त्वादूतासो दमेदम इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥८॥
उभे सुश्चन्द्र सर्पिषो दर्वी श्रीणीष आसनि ।
उतो न उत्पुपूर्या उक्थेषु शवसस्पत इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥९॥
एवाँ अग्निमजुर्यमुर्गीर्भिर्यज्ञेभिरानुषक् ।
दधदस्मे सुवीर्यमुत त्यदाश्वश्व्यमिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥१०॥

[७] सप्तमं सूक्तम्

ऋषिः—इष आत्रेयः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१ विराडनुष्टुप्; २ अनुष्टुप्; ३ भुरिगनुष्टुप्; ४, ५, ८, ९ निचृदनुष्टुप्; ६, ७ स्वराडुष्णिक्; १० निचृद्बृहती ॥ स्वरः—१-५, ८, ९ गान्धारः; ६, ७ ऋषभः; १० मध्यमः ॥

अथ चतुर्विंशो वर्गः ॥ २४ ॥

सखायः सं वः सम्यञ्चमिषं स्तोमं चाग्नये ।
वर्षिष्ठाय क्षितीनामूर्जो नप्त्रे सहस्वते ॥१॥
कुत्रा चिद्यस्य समृतौ रण्वा नरो नृषदने ।
अर्हन्तश्चिद्यमिन्धते संजनयन्ति जन्तवः ॥२॥
सं यदिषो वनामहे सं हव्या मानुषाणाम् ।
उत द्युम्नस्य शवस ऋतस्य रश्मिमा ददे ॥३॥
स स्मा कृणोति केतुमा नक्तं चिद् दूर आ सते ।
पावको यद्वनस्पतीन्प्र स्मा मिनात्यजरः ॥४॥
अव स्म यस्य वेषणे स्वेदं पथिषु जुह्वति ।
अभीमह स्वजेन्यं भूमा पृष्ठेव रुरुहुः ॥५॥

अथ पञ्चविंशो वर्गः ॥ २५ ॥

यं मर्त्यः पुरुस्पृहं विदद्विश्वस्य धायसे ।
प्र स्वादनं पितूनामस्ततातिं चिदायवे ॥६॥
स हि ष्मा धन्वाक्षितं दाता न दात्या पशुः ।
हिरिश्मश्रुः शुचिदन्नृभुरनिभृष्टतविषिः ॥७॥

शुचिः ष्म यस्मा अत्रिवत्प्र स्वधितीव रीयते ।
सुषूरसूत माता क्राणा यदानशे भगम् ॥८॥
आ यस्ते सर्पिरासुतेऽग्ने शमस्ति धायसे ।
ऐषु द्युम्नमुत श्रव आ चित्तं मर्त्येषु धाः ॥९॥
इति चिन्मन्युमध्रिजस्त्वादातमा पशुं ददे ।
आदग्ने अपृणतोऽत्रिः सासह्याद्दस्यूनिषः सासह्यान्नॄन् ॥१०॥

[८] अष्टमं सूक्तम्

ऋषिः—इष आत्रेयः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१, ५ विराट्त्रिष्टुप्; २ भुरिक्त्रिष्टुप्; ३, ४, निचृज्जगती; ६, ७ विराड्जगती ॥ स्वरः—१, २, ५ धैवतः; ३, ४, ६, ७ निषादः ॥

अथ षड्विंशो वर्गः ॥ २६ ॥

त्वामग्न ऋतायवः समीधिरे प्रत्नं प्रत्नास ऊतये सहस्कृत ।
पुरुश्चन्द्रं यजतं विश्वधायसं दमूनसं गृहपतिं वरेण्यम् ॥१॥
त्वामग्ने अतिथिं पूर्व्यं विशः शोचिष्केशं गृहपतिं नि षेदिरे ।
बृहत्केतुं पुरुरूपं धनस्पृतं सुशर्माणं स्ववसं जरद्विषम् ॥२॥
त्वामग्ने मानुषीरीळते विशो होत्राविदं विविचिं रत्नधातमम् ।
गुहा सन्तं सुभग विश्वदर्शतं तुविष्वणसं सुयजं घृतश्रियम् ॥३॥
त्वामग्ने धर्णसिं विश्वधा वयं गीर्भिर्गृणन्तो नमसोप सेदिम ।
स नो जुषस्व समिधानो अङ्गिरो देवो मर्तस्य यशसा सुदीतिभिः ॥४॥
त्वमग्ने पुरुरूपो विशेविशे वयो दधासि प्रत्नथा पुरुष्टुत ।
पुरूण्यन्ना सहसा वि राजसि त्विषिः सा ते तित्विषाणस्य नाधृषे ॥५॥
त्वामग्ने समिधानं यविष्ठ्य देवा दूतं चक्रिरे हव्यवाहनम् ।
उरुज्रयसं घृतयोनिमाहुतं त्वेषं चक्षुर्दधिरे चोदयन्मति ॥६॥
त्वामग्ने प्रदिव आहुतं घृतैः सुम्नायवः सुषमिधा समीधिरे ।
स वावृधान ओषधीभिरुक्षितो३ऽभि ज्रयांसि पार्थिवा वि तिष्ठसे ॥७॥

इति तृतीयाष्टकेऽष्टमोऽध्यायः ॥

इति तृतीयोऽष्टकः ॥

अथ चतुर्थाऽष्टके प्रथमोऽध्यायः

[९] नवमं सूक्तम्

ऋषिः—गय आत्रेयः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—१ स्वराडुष्णिक्; २ निचृदनुष्टुप्; ३, ४ भुरिगुष्णिक्; ५ स्वराड्बृहती; ६ विराडनुष्टुप्; ७ पङ्क्तिः॥ स्वरः—१, ३, ४ ऋषभः; २, ६ गान्धारः; ५ मध्यमः; ७ पञ्चमः॥

अथ प्रथमो वर्गः॥ १॥

त्वामग्ने हविष्मन्तो देवं मर्तास ईळते ।
मन्ये त्वा जातवेदसं स हव्या वक्ष्यानुषक् ॥ १ ॥
अग्निर्होता दास्वतः क्षयस्य वृक्तबर्हिषः ।
सं यज्ञासश्चरन्ति यं सं वाजासः श्रवस्यवः ॥ २ ॥
उत स्म यं शिशुं यथा नवं जनिष्टारणी ।
धर्तारं मानुषीणां विशामग्निं स्वध्वरम् ॥ ३ ॥
उत स्म दुर्गृभीयसे पुत्रो न ह्वार्याणाम् ।
पुरू यो दग्धासि वनाग्ने पशुर्न यवसे ॥ ४ ॥
अध स्म यस्यार्चयः सम्यक्संयन्ति धूमिनः ।
यदीमह त्रितो दिव्युप ध्मातेव धमति शिशीते ध्मातरी यथा ॥ ५ ॥
तवाहमग्न ऊतिभिर्मित्रस्य च प्रशस्तिभिः ।
द्वेषोयुतो न दुरिता तुर्याम मर्त्यानाम् ॥ ६ ॥
तं नो अग्ने अभी नरो रयिं सहस्व आ भर ।
स क्षेपयत्स पोषयद्भुवद्वाजस्य सातय उतैधि पृत्सु नो वृधे ॥ ७ ॥

[१०] दशमं सूक्तम्

ऋषिः—गय आत्रेयः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—१, ६ निचृदनुष्टुप्; २, ३ भुरिगुष्णिक्; ४ स्वराड्बृहती; ५ अनुष्टुप्; ७ निचृत्पङ्क्तिः॥ स्वरः—१, ५, ६ गान्धारः; २, ३ ऋषभः; ४ मध्यमः; ७ पञ्चमः॥

अथ द्वितीयो वर्गः॥ २॥

अग्न ओजिष्ठमा भर द्युम्नमस्मभ्यमध्रिगो ।
प्र नो राया परीणसा रत्सि वाजाय पन्थाम् ॥ १ ॥

त्वं नो अग्ने अद्भुत क्रत्वा दक्षस्य मंहना ।
त्वे असुर्य१मारुहत्क्राणा मित्रो न यज्ञियः ॥ २ ॥
त्वं नो अग्न एषां गयं पुष्टिं च वर्धय ।
ये स्तोमेभिः प्र सूरयो नरो मघान्यानशुः ॥ ३ ॥
ये अग्ने चन्द्र ते गिरः शुम्भन्त्यश्वराधसः ।
शुष्मेभिः शुष्मिणो नरो दिवश्चिद्येषां बृहत्सुकीर्तिर्बोधति त्मना ॥ ४ ॥
तव त्ये अग्ने अर्चयो भ्राजन्तो यन्ति धृष्णुया ।
परिज्मानो न विद्युतः स्वानो रथो न वाजयुः ॥ ५ ॥
नू नो अग्न ऊतये सबाधसश्च रातये ।
अस्माकासश्च सूरयो विश्वा आशास्तरीषणि ॥ ६ ॥
त्वं नो अग्ने अङ्गिरः स्तुतः स्तवान आ भर ।
होतर्विभ्वासहं रयिं स्तोतृभ्यः स्तवसे च न उतैधि पृत्सु नो वृधे ॥ ७ ॥

[११] एकादशं सूक्तम्

ऋषिः—सुतम्भर आत्रेयः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—१, ३, ५, निचृज्जगती; २ जगती; ४, ६ विराड्जगती॥ स्वरः—निषादः॥

अथ तृतीयो वर्गः॥ ३॥

जनस्य गोपा अजनिष्ट जागृविरग्निः सुदक्षः सुविताय नव्यसे ।
घृतप्रतीको बृहता दिविस्पृशा द्युमद्वि भाति भरतेभ्यः शुचिः ॥ १ ॥
यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरोहितमग्निं नरस्त्रिषधस्थे समीधिरे ।
इन्द्रेण देवैः सरथं स बर्हिषि सीदन्नि होता यजथाय सुक्रतुः ॥ २ ॥
असंमृष्टो जायसे मात्रोः शुचिर्मन्द्रः कविरुदतिष्ठो विवस्वतः ।
घृतेन त्वावर्धयन्नग्न आहुत धूमस्ते केतुरभवद्दिवि श्रितः ॥ ३ ॥
अग्निर्नो यज्ञमुप वेतु साधुयाग्निं नरो वि भरन्ते गृहेगृहे ।
अग्निर्दूतो अभवद्धव्यवाहनोऽग्निं वृणाना वृणते कविक्रतुम् ॥ ४ ॥

तुभ्येदमग्ने मधुमत्तमं वचस्तुभ्यं मनीषा इयमस्तु शं हृदे।
त्वां गिरः सिन्धुमिवावनीर्महीरा पृणन्ति शवसा वर्धयन्ति च॥ ५॥
त्वामग्ने अङ्गिरसो गुहा हितमन्वविन्दञ्छिश्रियाणं वनेवने।
स जायसे मथ्यमानः सहो महत्त्वामाहुः सहसस्पुत्रमङ्गिरः॥ ६॥

[१२] द्वादशं सूक्तम्

ऋषिः—सुतम्भर आत्रेयः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—१, २, स्वराट्पङ्क्तिः; ३-५ त्रिष्टुप्; ६ निचृत्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—१, २ पञ्चमः; ३-६ धैवतः॥

अथ चतुर्थो वर्गः॥ ४॥

प्राग्नये बृहते यज्ञियाय ऋतस्य वृष्णे असुराय मन्म।
घृतं न यज्ञ आस्ये३ सुपूतं गिरं भरे वृषभाय प्रतीचीम्॥ १॥
ऋतं चिकित्व ऋतमिच्चिकिद्ध्यृतस्य धारा अनु तृन्धि पूर्वीः।
नाहं यातुं सहसा न द्वयेन ऋतं सपाम्यरुषस्य वृष्णः॥ २॥
कया नो अग्न ऋतयन्नृतेन भुवो नवेदा उचथस्य नव्यः।
वेदा मे देव ऋतुपा ऋतूनां नाहं पतिं सनितुरस्य रायः॥ ३॥
के ते अग्ने रिपवे बन्धनासः के पायवः सनिषन्त द्युमन्तः।
के धासिमग्ने अनृतस्य पान्ति क आसतो वचसः सन्ति गोपाः॥ ४॥
सखायस्ते विषुणा अग्न एते शिवासः सन्तो अशिवा अभूवन्।
अधूर्षत स्वयमेते वचोभिर्ऋजूयते वृजिनानि ब्रुवन्तः॥ ५॥
यस्ते अग्ने नमसा यज्ञमीट्ट ऋतं स पात्यरुषस्य वृष्णः।
तस्य क्षयः पृथुरा साधुरेतु प्रसर्स्राणस्य नहुषस्य शेषः॥ ६॥

[१३] त्रयोदशं सूक्तम्

ऋषिः—सुतम्भर आत्रेयः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—१, ४, ५ निचृद्गायत्री; २, ६ गायत्री; ३ विराड्गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

अथ पञ्चमो वर्गः॥ ५॥

अर्चन्तस्त्वा हवामहेऽर्चन्तः समिधीमहि। अग्ने अर्चन्त ऊतये॥ १॥
अग्नेः स्तोमं मनामहे सिध्रमद्य दिविस्पृशः। देवस्य द्रविणस्यवः॥ २॥

अग्निर्जुषत नो गिरो होता यो मानुषेष्वा। स यक्षद्दैव्यं जनम्॥ ३॥
त्वमग्ने सप्रथा असि जुष्टो होता वरेण्यः। त्वया यज्ञं वि तन्वते॥ ४॥
त्वामग्ने वाजसातमं विप्रा वर्धन्ति सुष्टुतम्। स नो रास्व सुवीर्यम्॥ ५॥
अग्ने नेमिरराँइव देवाँस्त्वं परिभूरसि। आ राधश्चित्रमृञ्जसे॥ ६॥

[१४] चतुर्दशं सूक्तम्

ऋषिः—सुतम्भर आत्रेयः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—१, ४-६ निचृद्गायत्री; २ विराड्गायत्री; ३ गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

अथ षष्ठो वर्गः॥ ६॥

अग्निं स्तोमेन बोधय समिधानो अमर्त्यम्। हव्या देवेषु नो दधत्॥ १॥
तमध्वरेष्वीळते देवं मर्ता अमर्त्यम्। यजिष्ठं मानुषे जने॥ २॥
तं हि शश्वन्त ईळते स्रुचा देवं घृतश्चुता। अग्निं हव्याय वोळ्हवे॥ ३॥
अग्निर्जातो अरोचत घ्नन्दस्यूञ्ज्योतिषा तमः। अविन्दद् गा अपः स्वः॥ ४॥
अग्निमीळेन्यं कविं घृतपृष्ठं सपर्यत। वेतु मे शृणवद्धवम्॥ ५॥
अग्निं घृतेन वावृधुः स्तोमेभिर्विश्वचर्षणिम्। स्वाधीभिर्वचस्युभिः॥ ६॥

द्वितीयोऽनुवाकः

[१५] पञ्चदशं सूक्तम्

ऋषिः—धरुण आङ्गिरसः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—१, ५ स्वराट्पङ्क्तिः; २, ४ त्रिष्टुप्; ३ विराट्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—१, ५ पञ्चमः; २-४ धैवतः॥

अथ सप्तमो वर्गः॥ ७॥

प्र वेधसे कवये वेद्याय गिरं भरे यशसे पूर्व्याय।
घृतप्रसत्तो असुरः सुशेवो रायो धर्ता धरुणो वस्वो अग्निः॥ १॥
ऋतेन ऋतं धरुणं धारयन्त यज्ञस्य शाके परमे व्योमन्।
दिवो धर्मन्धरुणे सेदुषो नॄञ्जातैरजाताँ अभि ये ननक्षुः॥ २॥
अंहोयुवस्तन्वस्तन्वते वि वयो महद्दुष्टरं पूर्व्याय।
स संवतो नवजातस्तुतुर्यात्सिंहं न क्रुद्धमभितः परि ष्ठुः॥ ३॥
मातेव यद्भरसे पप्रथानो जनंजनं धायसे चक्षसे च।
वयोवयो जरसे यद्दधानः परि त्मना विषुरूपो जिगासि॥ ४॥

वाजो नु ते शवसस्पात्वन्तमुरुं दोघं धरुणं देव रायः।
पदं न तायुर्गुहा दधानो महो राये चितयन्नत्रिमस्पः ॥५॥

[१६] षोडशं सूक्तम्

ऋषिः—पूरुरात्रेयः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१-३ विराडनुष्टुप्; ४ भुरिगुष्णिक्;
५ बृहती ॥ स्वरः—१-३ गान्धारः; ४ ऋषभः; ५ मध्यमः ॥

अथाष्टमो वर्गः ॥ ८ ॥

बृहद्वयो हि भानवेऽर्चा देवायाग्नये ।
यं मित्रं न प्रशस्तिभिर्मर्तासो दधिरे पुरः ॥१॥
स हि द्युभिर्जनानां होता दक्षस्य बाह्वोः ।
वि हव्यमग्निरानुषग्भगो न वारमृण्वति ॥२॥
अस्य स्तोमे मघोनः सख्ये वृद्धशोचिषः ।
विश्वा यस्मिन्तुविष्वणि समर्ये शुष्ममादधुः ॥३॥
अधा ह्यग्न एषां सुवीर्यस्य मंहना ।
तमिद्यह्वं न रोदसी परि श्रवो बभूवतुः ॥४॥
नू न एहि वार्यमग्ने गृणान आ भर ।
ये वयं ये च सूरयः स्वस्ति धामहे सचोतैधि पृत्सु नो वृधे ॥५॥

[१७] सप्तदशं सूक्तम्

ऋषिः—पूरुरात्रेयः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१ भुरिगुष्णिक्; २ अनुष्टुप्; ३ निचृदनुष्टुप्;
४ विराडनुष्टुप्; ५ भुरिग्बृहती ॥ स्वरः—१ ऋषभः; २-४ गान्धारः; ५ मध्यमः ॥

अथ नवमो वर्गः ॥ ९ ॥

आ यज्ञैर्देव मर्त्य इत्था तव्यांसमूतये ।
अग्निं कृते स्वध्वरे पूरुरीळीतावसे ॥१॥
अस्य हि स्वयशस्तर आसा विधर्मन्मन्यसे ।
तं नाकं चित्रशोचिषं मन्द्रं परो मनीषया ॥२॥
अस्य वासा उ अर्चिषा य आयुक्त तुजा गिरा।
दिवो न यस्य रेतसा बृहच्छोचन्त्यर्चयः ॥३॥

अस्य क्रत्वा विचेतसो दस्मस्य वसु रथ आ ।
अधा विश्वासु हव्योऽग्निर्विक्षु प्र शस्यते ॥४॥
नू न इद्धि वार्यमासा सचन्त सूरयः ।
ऊर्जो नपादभिष्टये पाहि शग्धि स्वस्तय उतैधि पृत्सु नो वृधे ॥५॥

[१८] अष्टादशं सूक्तम्

ऋषिः—द्वितो मृक्तवाहा आत्रेयः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१, ४ विराडनुष्टुप्; २ निचृदनुष्टुप्;
३ भुरिगुष्णिक्; ५ भुरिग्बृहती ॥ स्वरः—१, २, ४ गान्धारः; ३ ऋषभः; ५ मध्यमः ॥

अथ दशमो वर्गः ॥ १० ॥

प्रातरग्निः पुरुप्रियो विशः स्तवेतातिथिः ।
विश्वानि यो अमर्त्यो हव्या मर्तेषु रण्यति ॥१॥
द्विताय मृक्तवाहसे स्वस्य दक्षस्य मंहना ।
इन्दुं स धत्त आनुषक्स्तोता चित्ते अमर्त्य ॥२॥
तं वो दीर्घायुशोचिषं गिरा हुवे मघोनाम् ।
अरिष्टो येषां रथो व्यश्वदावन्नीयते ॥३॥
चित्रा वा येषु दीधितिरासन्नुक्था पान्ति ये ।
स्तीर्णं बर्हिः स्वर्णरे श्रवांसि दधिरे परि ॥४॥
ये मे पञ्चाशतं ददुरश्वानां सधस्तुति ।
द्युमदग्ने महि श्रवो बृहत्कृधि मघोनां नृवदमृत नृणाम् ॥५॥

[१९] एकोनविंशं सूक्तम्

ऋषिः—वव्रिरात्रेयः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१ गायत्री; २ निचृद्गायत्री; ३ अनुष्टुप्;
४ भुरिगुष्णिक्; ५ निचृत्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१, २ षड्जः; ३ गान्धारः;
४ ऋषभः; ५ पञ्चमः ॥

अथैकादशो वर्गः ॥ ११ ॥

अभ्यवस्थाः प्र जायन्ते प्र वव्रेर्वव्रिश्चिकेत। उपस्थे मातुर्वि चष्टे ॥१॥
जुहुरे वि चितयन्तोऽनिमिषं नृम्णं पान्ति। आ दृळ्हां पुरं विविशुः ॥२॥
आ श्वैत्रेयस्य जन्तवो द्युमद्वर्धन्त कृष्टयः ।
निष्कग्रीवो बृहदुक्थ एना मध्वा न वाजयुः ॥३॥

प्रियं दुग्धं न काम्यमजामि जाम्योः सचा ।
घर्मो न वाजजठरोऽदब्धः शश्वतो दभः ॥ ४ ॥
क्रीळन्नो रश्म आ भुवः सं भस्मना वायुना वेविदानः ।
ता अस्य सन्धृषजो न तिग्माः सुसंशिता वक्ष्यो वक्षणेस्थाः ॥ ५ ॥

[२०] विंशं सूक्तम्

ऋषिः—प्रयस्वन्त आत्रेयाः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१, ३ विराडनुष्टुप्; २ निचृदनुष्टुप्; ४ पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१-३ गान्धारः; ४ पञ्चमः ॥

अथ द्वादशो वर्गः ॥ १२ ॥

यमग्ने वाजसातम त्वं चिन्मन्यसे रयिम् ।
तं नो गीर्भिः श्रवाय्यं देवत्रा पनया युजम् ॥ १ ॥
ये अग्ने नेरयन्ति ते वृद्धा उग्रस्य शवसः ।
अप द्वेषो अप ह्वरोऽन्यव्रतस्य सश्चिरे ॥ २ ॥
होतारं त्वा वृणीमहेऽग्ने दक्षस्य साधनम् ।
यज्ञेषु पूर्व्यं गिरा प्रयस्वन्तो हवामहे ॥ ३ ॥
इत्था यथा त ऊतये सहसावन्दिवेदिवे ।
राय ऋताय सुक्रतो गोभिः ष्याम सधमादो वीरैः स्याम सधमादः ॥ ४ ॥

[२१] एकविंशं सूक्तम्

ऋषिः—सस आत्रेयः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१ अनुष्टुप्; २ भुरिगुष्णिक्; ३ स्वराडुष्णिक्; ४ निचृद्बृहती ॥ स्वरः—१ गान्धारः; २, ३ ऋषभः; ४ मध्यमः ॥

अथ त्रयोदशो वर्गः ॥ १३ ॥

मनुष्वत्त्वा नि धीमहि मनुष्वत्समिधीमहि ।
अग्ने मनुष्वदङ्गिरो देवान्देवयते यज ॥ १ ॥
त्वं हि मानुषे जनेऽग्ने सुप्रीत इध्यसे ।
स्रुचस्त्वा यन्त्यानुषक्सुजात सर्पिरासुते ॥ २ ॥
त्वां विश्वे सजोषसो देवासो दूतमक्रत ।
सपर्यन्तस्त्वा कवे यज्ञेषु देवमीळते ॥ ३ ॥

देवं वो देवयज्ययाग्निमीळीत मर्त्यः ।
समिद्धः शुक्र दीदिह्यृतस्य योनिमासदः ससस्य योनिमासदः ॥ ४ ॥

[२२] द्वाविंशं सूक्तम्

ऋषिः—विश्वसामा आत्रेयः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१ विराडनुष्टुप्; २, ३ स्वराडुष्णिक्; ४ बृहती ॥ स्वरः—१ गान्धारः; २, ३ ऋषभः; ४ मध्यमः ॥

अथ चतुर्दशो वर्गः ॥ १४ ॥

प्र विश्वसामन्नत्रिवदर्चा पावकशोचिषे ।
यो अध्वरेष्वीड्यो होता मन्द्रतमो विशि ॥ १ ॥
न्य१ग्निं जातवेदसं दधाता देवमृत्विजम् ।
प्र यज्ञ एत्वानुषगद्या देवव्यचस्तमः ॥ २ ॥
चिकित्विन्मनसं त्वा देवं मर्तास ऊतये ।
वरेण्यस्य तेऽवस इयानासो अमन्महि ॥ ३ ॥
अग्ने चिकिद्ध्य१स्य न इदं वचः सहस्य ।
तं त्वा सुशिप्र दम्पते स्तोमैर्वर्धन्त्यत्रयो गीर्भिः शुम्भन्त्यत्रयः ॥ ४ ॥

[२३] त्रयोविंशं सूक्तम्

ऋषिः—द्युम्नो विश्वचर्षणिः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१, २ निचृदनुष्टुप्; ३ विराडनुष्टुप्; ४ निचृत्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१-३ गान्धारः; ४ पञ्चमः ॥

अथ पञ्चदशो वर्गः ॥ १५ ॥

अग्ने सहन्तमा भर द्युम्नस्य प्रासहा रयिम् ।
विश्वा यश्चर्षणीरभ्या३सा वाजेषु सासहत् ॥ १ ॥
तमग्ने पृतनाषहं रयिं सहस्व आ भर ।
त्वं हि सत्यो अद्भुतो दाता वाजस्य गोमतः ॥ २ ॥
विश्वे हि त्वा सजोषसो जनासो वृक्तबर्हिषः ।
होतारं सद्मसु प्रियं व्यन्ति वार्या पुरु ॥ ३ ॥
स हि ष्मा विश्वचर्षणिरभिमाति सहो दधे ।
अग्ने एषु क्षयेष्वा रेवन्नः शुक्र दीदिहि द्युमत्पावक दीदिहि ॥ ४ ॥

[२४] चतुर्विंशं सूक्तम्

ऋषिः—बन्धुः सुबन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुश्च गौपायना लौपायना वा ॥ देवता—अग्निः ॥
छन्दः—१ साम्नी बृहती २, ३, ४ भुरिग्बृहती ॥ स्वरः—मध्यमः ॥

अथ षोडशो वर्गः ॥ १६ ॥

अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः ॥ १ ॥
वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमं रयिं दाः ॥ २ ॥
स नो बोधि श्रुधी हवमुरुष्या णो अघायतः समस्मात् ॥ ३ ॥
तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ॥ ४ ॥

[२५] पञ्चविंशं सूक्तम्

ऋषिः—वसूयव आत्रेयः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१, ८ निचृदनुष्टुप्; २, ५, ६, ९ अनुष्टुप्; ३, ७ विराडनुष्टुप्; ४ भुरिगुष्णिक् ॥ स्वरः—१-३, ५-९ गान्धारः; ४ ऋषभः ॥

अथ सप्तदशो वर्गः ॥ १७ ॥

अच्छा वो अग्निमवसे देवं गासि स नो वसुः ।
रासत्पुत्र ऋषूणामृतावा पर्षति द्विषः ॥ १ ॥
स हि सत्यो यं पूर्वे चिद्देवासश्चिद्यमीधिरे ।
होतारं मन्द्रजिह्वमित्सुदीतिभिर्विभावसुम् ॥ २ ॥
स नो धीती वरिष्ठया श्रेष्ठया च सुमत्या ।
अग्ने रायो दिदीहि नः सुवृक्तिभिर्वरेण्य ॥ ३ ॥
अग्निर्देवेषु राजत्यग्निर्मर्तेष्वाविशन् ।
अग्निर्नो हव्यवाहनोऽग्निं धीभिः सपर्यत ॥ ४ ॥
अग्निस्तुविश्रवस्तमं तुविब्रह्माणमुत्तमम् ।
अतूर्तं श्रावयत्पतिं पुत्रं ददाति दाशुषे ॥ ५ ॥

अथाष्टादशो वर्गः ॥

अग्निर्ददाति सत्पतिं सासाह यो युधा नृभिः ।
अग्निरत्यं रघुष्यदं जेतारमपराजितम् ॥ ६ ॥
यद्वाहिष्ठं तदग्नये बृहदर्च विभावसो ।
महिषीव त्वद्रयिस्त्वद्वाजा उदीरते ॥ ७ ॥

तव द्युमन्तो अर्चयो ग्रावेवोच्यते बृहत् ।
उतो ते तन्यतुर्यथा स्वानो अर्त त्मना दिवः ॥ ८ ॥
एवाँ अग्निं वसूयवः सहसानं ववन्दिम ।
स नो विश्वा अति द्विषः पर्षन्नावेव सुक्रतुः ॥ ९ ॥

[२६] षड्विंशं सूक्तम्

ऋषिः—वसूयव आत्रेयः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१, ९ गायत्री; २-६, ८ निचृद्गायत्री; ७ विराड्गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

अथैकोनविंशो वर्गः ॥ १९ ॥

अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया । आ देवान्वक्षि यक्षि च ॥ १ ॥
तं त्वा घृतस्नवीमहे चित्रभानो स्वर्दृशम् । देवाँ आ वीतये वह ॥ २ ॥
वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तं समिधीमहि । अग्ने बृहन्तमध्वरे ॥ ३ ॥
अग्ने विश्वेभिरा गहि देवेभिर्हव्यदातये । होतारं त्वा वृणीमहे ॥ ४ ॥
यजमानाय सुन्वत आग्ने सुवीर्यं वह । देवैरा सत्सि बर्हिषि ॥ ५ ॥

अथ विंशो वर्गः ॥ २० ॥

समिधानः सहस्रजिदग्ने धर्माणि पुष्यसि । देवानां दूत उक्थ्यः ॥ ६ ॥
न्य१ग्निं जातवेदसं होत्रवाहं यविष्ठ्यम् । दधाता देवमृत्विजम् ॥ ७ ॥
प्र यज्ञ एत्वानुषगद्या देवव्यचस्तमः । स्तृणीत बर्हिरासदे ॥ ८ ॥
एदं मरुतो अश्विना मित्रः सीदन्तु वरुणः । देवासः सर्वया विशा ॥ ९ ॥

[२७] सप्तविंशं सूक्तम्

ऋषिः—त्र्यरुणस्त्रैवृष्णस्त्रसदस्युश्च पौरुकुत्स्य अश्वमेधश्च भारतोऽत्रिर्वा ॥ देवता—१-५ अग्निः; ६ इन्द्राग्नी ॥ छन्दः—१, ३ निचृत्त्रिष्टुप्; २ विराट्त्रिष्टुप्; ४ निचृदनुष्टुप्; ५, ६ भुरिगुष्णिक् ॥ स्वरः—१-३ धैवतः; ४ गान्धारः; ५, ६ ऋषभः ॥

अथैकविंशो वर्गः ॥ २१ ॥

अनस्वन्ता सत्पतिर्मामहे मे गावा चेतिष्ठो असुरो मघोनः ।
त्रैवृष्णो अग्ने दशभिः सहस्रैर्वैश्वानर त्र्यरुणश्चिकेत ॥ १ ॥
यो मे शता च विंशतिं च गोनां हरी च युक्ता सुधुरा ददाति ।
वैश्वानर सुष्टुतो वावृधानोऽग्ने यच्छ त्र्यरुणाय शर्म ॥ २ ॥

एवा ते अग्ने सुमतिं चकानो नविष्ठाय नवमं त्रसदस्युः ।
यो मे गिरस्तुविजातस्य पूर्वीर्युक्तेनाभि त्र्यरुणो गृणाति ॥ ३ ॥
यो म इति प्रवोचत्यश्वमेधाय सूरये ।
दददृचा सनिं यते ददन्मेधामृतायते ॥ ४ ॥
यस्य मा परुषाः शतमुद्धर्षयन्त्युक्षणः ।
अश्वमेधस्य दानाः सोमाइव त्र्याशिरः ॥ ५ ॥
इन्द्राग्नी शतदाव्न्यश्वमेधे सुवीर्यम् ।
क्षत्रं धारयतं बृहद्दिवि सूर्यमिवाजरम् ॥ ६ ॥

[२८] अष्टाविंशं सूक्तम्

ऋषिः—विश्ववारात्रेयी ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप्; २ विराट्त्रिष्टुप्; ३ निचृत्त्रिष्टुप्; ४ निचृदनुष्टुप्; ५, ६ विराड्गायत्री ॥ स्वरः—१-३ धैवतः; ४ गान्धारः; ५, ६ षड्जः ॥

अथ द्वाविंशो वर्गः ॥ २२ ॥

समिद्धो अग्निर्दिवि शोचिरश्रेत्प्रत्यङ्ङुषसमुर्विया वि भाति ।
एति प्राची विश्ववारा नमोभिर्देवाँ ईळाना हविषा घृताची ॥ १ ॥
समिध्यमानो अमृतस्य राजसि हविष्कृण्वन्तं सचसे स्वस्तये ।
विश्वं स धत्ते द्रविणं यमिन्वस्यातिथ्यमग्ने नि च धत्त इत्पुरः ॥ २ ॥
अग्ने शर्ध महते सौभगाय तव द्युम्नान्युत्तमानि सन्तु ।
सं जास्पत्यं सुयममा कृणुष्व शत्रूयतामभि तिष्ठा महांसि ॥ ३ ॥
समिद्धस्य प्रमहसोऽग्ने वन्दे तव श्रियम् ।
वृषभो द्युम्नवाँ असि समध्वरेष्विध्यसे ॥ ४ ॥
समिद्धो अग्न आहुत देवान्यक्षि स्वध्वर । त्वं हि हव्यवाळसि ॥ ५ ॥
आ जुहोता दुवस्यताग्निं प्रयत्यध्वरे । वृणीध्वं हव्यवाहनम् ॥ ६ ॥

[२९] एकोनत्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—गौरिवीतिः शाक्त्यः ॥ देवता—१-८, ९[१]-१५ इन्द्रः; ९[२] इन्द्रः उशना वा ॥ छन्दः—१ भुरिक् पङ्क्तिः; २, ४, ७ त्रिष्टुप्; ३, ५, ६, ९-११ निचृत्त्रिष्टुप्; ८ स्वराट्पङ्क्तिः; १२-१५ विराट् त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१, ८ पञ्चमः; २-७, ९-१५ धैवतः ॥

अथ त्रयोविंशो वर्गः ॥ २३ ॥

त्र्यर्यमा मनुषो देवताता त्री रोचना दिव्या धारयन्त ।
अर्चन्ति त्वा मरुतः पूतदक्षास्त्वमेषामृषिरिन्द्रासि धीरः ॥ १ ॥
अनु यदीं मरुतो मन्दसानमार्चन्निन्द्रं पपिवांसं सुतस्य ।
आदत्त वज्रमभि यदहिं हन्नपो यह्वीरसृजत्सर्तवा उ ॥ २ ॥
उत ब्रह्माणो मरुतो मे अस्येन्द्रः सोमस्य सुषुतस्य पेयाः ।
तद्धि हव्यं मनुषे गा अविन्ददहन्नहिं पपिवाँ इन्द्रो अस्य ॥ ३ ॥
आद्रोदसी वितरं वि ष्कभायत्संविव्यानश्चिद्भियसे मृगं कः ।
जिगर्तिमिन्द्रो अपजर्गुराणः प्रति श्वसन्तमव दानवं हन् ॥ ४ ॥
अध क्रत्वा मघवन्तुभ्यं देवा अनु विश्वे अददुः सोमपेयम् ।
यत्सूर्यस्य हरितः पतन्तीः पुरः सतीरुपरा एतशे कः ॥ ५ ॥

अथ चतुर्विंशो वर्गः ॥ २४ ॥

नव यदस्य नवतिं च भोगान्त्साकं वज्रेण मघवा विवृश्चत् ।
अर्चन्तीन्द्रं मरुतः सधस्थे त्रैष्टुभेन वचसा बाधत द्याम् ॥ ६ ॥
सखा सख्ये अपचत्तूयमग्निरस्य क्रत्वा महिषा त्री शतानि ।
त्री साकमिन्द्रो मनुषः सरांसि सुतं पिबद्वृत्रहत्याय सोमम् ॥ ७ ॥
त्री यच्छता महिषाणामघो मास्त्री सरांसि मघवा सोम्यापाः ।
कारं न विश्वे अह्वन्त देवा भरमिन्द्राय यदहिं जघान ॥ ८ ॥
उशना यत्सहस्यै३रयातं गृहमिन्द्र जूजुवानेभिरश्वैः ।
वन्वानो अत्र सरथं ययाथ कुत्सेन देवैरवनोर्ह शुष्णम् ॥ ९ ॥
प्रान्यच्चक्रमवृहः सूर्यस्य कुत्सायान्यद्वरिवो यातवेऽकः ।
अनासो दस्यूँरमृणो वधेन नि दुर्योण आवृणङ्मृध्रवाचः ॥ १० ॥

अथ पञ्चविंशो वर्गः ॥ २५ ॥

स्तोमासस्त्वा गौरिवीतेरवर्धन्नरन्धयो वैदथिनाय पिप्रुम् ।
आ त्वामृजिश्वा सख्याय चक्रे पचन्पक्तीरपिबः सोममस्य ॥ ११ ॥

नवग्वासः सुतसोमास इन्द्रं दशग्वासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः।
गव्यं चिदूर्वमपिधानवन्तं तं चिन्नरः शशमाना अप व्रन्॥ १२॥
कथो नु ते परि चराणि विद्वान्वीर्या मघवन्या चकर्थ।
या चो नु नव्या कृणवः शविष्ठ प्रेदु ता ते विदथेषु ब्रवाम॥ १३॥
एता विश्वा चकृवाँ इन्द्र भूर्यपरीतो जनुषा वीर्येण ।
या चिन्नु वज्रिन्कृणवो दधृष्वान्न ते वर्ता तविष्या अस्ति तस्याः॥ १४॥
इन्द्र ब्रह्म क्रियमाणा जुषस्व या ते शविष्ठ नव्या अकर्म।
वस्त्रेव भद्रा सुकृता वसूयू रथं न धीरः स्वपा अतक्षम्॥ १५॥

[३०] त्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—बभ्रुरात्रेयः॥ देवता—इन्द्र ऋणञ्चयश्च॥ छन्दः—१-५, ८, ९ निचृत्त्रिष्टुप्; ६, १३ पङ्क्तिः; ७, ११, १२ त्रिष्टुप्; १० विराट्त्रिष्टुप्; १४, १५ स्वराट्पङ्क्तिः॥ स्वरः—१-५, ७-१२ धैवतः; ६, १३-१५ पञ्चमः॥

अथ षड्विंशो वर्गः॥ २६॥

क्व१स्य वीरः को अपश्यदिन्द्रं सुखरथमीयमानं हरिभ्याम्।
यो राया वज्री सुतसोममिच्छन्तदोको गन्ता पुरुहूत ऊती॥ १॥
अवाचचक्षं पदमस्य सस्वरुग्रं निधातुरन्वायमिच्छन् ।
अपृच्छमन्याँ उत ते म आहुरिन्द्रं नरो बुबुधाना अशेम ॥ २॥
प्र नु वयं सुते या ते कृतानीन्द्र ब्रवाम यानि नो जुजोषः।
वेददविद्वाञ्छृणवच्च विद्वान्वहतेऽयं मघवा सर्वसेनः ॥ ३॥
स्थिरं मनश्चकृषे जात इन्द्र वेषीदेको युधये भूयसश्चित् ।
अश्मानं चिच्छवसा दिद्युतो वि विदो गवामूर्वमुस्रियाणाम् ॥ ४॥
परो यत्त्वं परम आजनिष्ठाः परावति श्रुत्यं नाम बिभ्रत् ।
अतश्चिदिन्द्रादभयन्त देवा विश्वा अपो अजयद्दासपत्नीः ॥ ५॥

अथ सप्तविंशो वर्गः॥ २७॥

तुभ्येदेते मरुतः सुशेवा अर्चन्त्यर्कं सुन्वन्त्यन्धः ।
अहिमोहानमप आशयानं प्र मायाभिर्मायिनं सक्षदिन्द्रः ॥ ६॥

वि षू मृधो जनुषा दानमिन्वन्नहन्गवा मघवन्त्संचकानः ।
अत्रा दासस्य नमुचेः शिरो यदवर्तयो मनवे गातुमिच्छन् ॥ ७॥
युजं हि मामकृथा आदिदिन्द्र शिरो दासस्य नमुचेर्मथायन् ।
अश्मानं चित्स्वर्य१ं वर्तमानं प्र चक्रियेव रोदसी मरुद्भ्यः ॥ ८॥
स्त्रियो हि दास आयुधानि चक्रे किं मा करन्नबला अस्य सेनाः।
अन्तर्ह्यख्यदुभे अस्य धेने अथोप प्रैद्युधये दस्युमिन्द्रः ॥ ९॥
समत्र गावोऽभितोऽनवन्तेहेह वत्सैर्वियुता यदासन् ।
सं ता इन्द्रो असृजदस्य शाकैर्यदीं सोमासः सुषुता अमन्दन्॥ १०॥

अथाष्टाविंशो वर्गः॥ २८॥

यदीं सोमा बभ्रुधूता अमन्दन्नरोरवीद् वृषभः सादनेषु ।
पुरन्दरः पपिवाँ इन्द्रो अस्य पुनर्गवामददादुस्रियाणाम् ॥ ११॥
भद्रमिदं रुशमा अग्ने अक्रन्गवां चत्वारि ददतः सहस्रा ।
ऋणंचयस्य प्रयता मघानि प्रत्यग्रभीष्म नृतमस्य नृणाम् ॥ १२॥
सुपेशसं माव सृजन्त्यस्तं गवां सहस्रै रुशमासो अग्ने ।
तीव्रा इन्द्रममन्दुः सुतासोऽक्तोर्व्युष्टौ परितक्म्यायाः ॥ १३॥
औच्छत्सा रात्री परितक्म्या याँ ऋणंचये राजनि रुशमानाम् ।
अत्यो न वाजी रघुरज्यमानो बभ्रुश्चत्वार्यसनत्सहस्रा ॥ १४॥
चतुःसहस्रं गव्यस्य पश्वः प्रत्यग्रभीष्म रुशमेष्वग्ने ।
घर्मश्चित्तप्तः प्रवृजे य आसीदयस्मयस्तम्वादाम विप्राः ॥ १५॥

[३१] एकत्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—अवस्युरात्रेयः॥ देवता—१-८[२], १०-१३ इन्द्रः; ८[३] इन्द्रःकुत्सो वा; ८[४] इन्द्रः उशना वा; ९ इन्द्रः कुत्सश्च॥ छन्दः—१, २, ५, ७, ९, ११ निचृत्त्रिष्टुप्; ३, ४, ६, १० त्रिष्टुप्; ८, १२ स्वराट्पङ्क्तिः; १३ विराट्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—१-७, ९-११, १३ धैवतः; ८, १२ पञ्चमः॥

अथैकोनत्रिंशो वर्गः॥ २९॥

इन्द्रो रथाय प्रवतं कृणोति यमध्यस्थान्मघवा वाजयन्तम्।
यूथेव पश्वो व्युनोति गोपा अरिष्टो याति प्रथमः सिषासन्॥ १॥

आ प्र द्रव हरिवो मा वि वेनः पिशङ्गराते अभि नः सचस्व।
नहि त्वदिन्द्र वस्यो अन्यदस्त्यमेनाँश्चिज्जनिवतश्चकर्थ॥ २॥
उद्यत्सहः सहस आजनिष्ट देदिष्ट इन्द्र इन्द्रियाणि विश्वा।
प्राचोदयत्सुदुघा वव्रे अन्तर्वि ज्योतिषा संववृत्वत्तमोऽवः॥ ३॥
अनवस्ते रथमश्वाय तक्षन्त्वष्टा वज्रं पुरुहूत द्युमन्तम्।
ब्रह्माण इन्द्रं महयन्तो अर्कैरवर्धयन्नहये हन्तवा उ॥ ४॥
वृष्णे यत्ते वृषणो अर्कमर्चानिन्द्र ग्रावाणो अदितिः सजोषाः।
अनश्वासो ये पवयोऽरथा इन्द्रेषिता अभ्यवर्तन्त दस्यून्॥ ५॥

अथ त्रिंशो वर्गः॥ ३०॥

प्र ते पूर्वाणि करणानि वोचं प्र नूतना मघवन्या चकर्थ।
शक्तीवो यद्विभरा रोदसी उभे जयन्नपो मनवे दानुचित्राः॥ ६॥
तदिन्नु ते करणं दस्म विप्राहिं यद् घ्नन्नोजो अत्रामिमीथाः।
शुष्णस्य चित्परि माया अगृभ्णाः प्रपित्वं यन्नप दस्यूँरसेधः॥ ७॥
त्वमपो यदवे तुर्वशायारमयः सुदुघाः पार इन्द्र ।
उग्रमयातमवहो ह कुत्सं सं ह यद्वामुशनारन्त देवाः ॥ ८॥
इन्द्राकुत्सा वहमाना रथेना वामत्या अपि कर्णे वहन्तु।
निः षीमद्भ्यो धमथो निः षधस्थान्मघोनो हृदो वरथस्तमांसि॥ ९॥
वातस्य युक्तान्त्सुयुजश्चिदश्वान्कविश्चिदेषो अजगन्नवस्युः।
विश्वे ते अत्र मरुतः सखाय इन्द्र ब्रह्माणि तविषीमवर्धन्॥ १०॥

अथैकत्रिंशो वर्गः॥ ३१॥

सूरश्चिद्रथं परितक्म्यायां पूर्वं करदुपरं जूजुवांसम् ।
भरच्चक्रमेतशः सं रिणाति पुरो दधत्सनिष्यति क्रतुं नः॥ ११॥
आयं जना अभिचक्षे जगामेन्द्रः सखायं सुतसोममिच्छन्।
वदन्ग्रावाव वेदिं भ्रियाते यस्य जीरमध्वर्यवश्चरन्ति ॥ १२॥

ये चाकनन्त चाकनन्त नू ते मर्ता अमृत मो ते अंह आरन्।
वावन्धि यज्यूँरुत तेषु धेह्योजो जनेषु येषु ते स्याम॥ १३॥

[३२] द्वात्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—गातुरात्रेयः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१, ७, ९, ११ त्रिष्टुप्; २-४, १०, १२ निचृत्त्रिष्टुप्; ५, ८ स्वराट्पङ्क्तिः; ६ भुरिक्पङ्क्तिः॥ स्वरः—१-४, ७, ९-१२ धैवतः; ५, ६, ८ पञ्चमः॥

अथ द्वात्रिंशो वर्गः॥ ३२॥

अदर्दरुत्समसृजो वि खानि त्वमर्णवान्बद्बधानाँ अरम्णाः ।
महान्तमिन्द्र पर्वतं वि यद्वः सृजो वि धारा अव दानवं हन्॥ १॥
त्वमुत्साँ ऋतुभिर्बद्बधानाँ अरंह ऊधः पर्वतस्य वज्रिन् ।
अहिं चिदुग्र प्रयुतं शयानं जघन्वाँ इन्द्र तविषीमधत्थाः ॥ २॥
त्यस्य चिन्महतो निर्मृगस्य वधर्जघान तविषीभिरिन्द्रः ।
य एक इदप्रतिर्मन्यमान आदस्मादन्यो अजनिष्ट तव्यान् ॥ ३॥
त्यं चिदेषां स्वधया मदन्तं मिहो नपातं सुवृधं तमोगाम् ।
वृषप्रभर्मा दानवस्य भामं वज्रेण वज्री नि जघान शुष्णम् ॥ ४॥
त्यं चिदस्य क्रतुभिर्निषत्तममर्मणो विददिदस्य मर्म ।
यदीं सुक्षत्र प्रभृता मदस्य युयुत्सन्तं तमसि हर्म्ये धाः ॥ ५॥
त्यं चिदित्था कत्पयं शयानमसूर्ये तमसि वावृधानम् ।
तं चिन्मन्दानो वृषभः सुतस्योच्चैरिन्द्रो अपगूर्या जघान ॥ ६॥

अथ त्रयस्त्रिंशो वर्गः॥ ३३॥

उद्यदिन्द्रो महते दानवाय वधर्यमिष्ट सहो अप्रतीतम् ।
यदीं वज्रस्य प्रभृतौ ददाभ विश्वस्य जन्तोरधमं चकार ॥ ७॥
त्यं चिदर्णं मधुपं शयानमसिन्वं वव्रं मह्याददुग्रः ।
अपादमत्रं महता वधेन नि दुर्योण आवृणङ्मृध्रवाचम् ॥ ८॥
को अस्य शुष्मं तविषीं वरात एको धना भरते अप्रतीतः।
इमे चिदस्य ज्रयसो नु देवी इन्द्रस्यौजसो भियसा जिहाते॥ ९॥

न्यस्मै देवी स्वधितिर्जिहीत इन्द्राय गातुरुशतीव येमे ।
सं यदोजो युवते विश्वमाभिरनु स्वधाव्ने क्षितयो नमन्त ॥ १० ॥
एकं नु त्वा सत्पतिं पाञ्चजन्यं जातं शृणोमि यशसं जनेषु ।
तं मे जगृभ्र आशसो नविष्ठं दोषा वस्तोर्हवमानास इन्द्रम् ॥ ११ ॥
एवा हि त्वामृतुथा यातयन्तं मघा विप्रेभ्यो ददतं शृणोमि ।
किं ते ब्रह्माणो गृहते सखायो ये त्वाया निदधुः काममिन्द्र ॥ १२ ॥

इति चतुर्थाष्टके प्रथमोऽध्यायः ॥

अथ चतुर्थाष्टके द्वितीयोऽध्यायः

तृतीयोऽनुवाकः

[३३] त्रयस्त्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—संवरणः प्राजापत्यः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१, २, ७ पङ्क्तिः; ३ निचृत्पङ्क्तिः; ४, १० भुरिक्पङ्क्तिः; ५, ६ स्वराट्पङ्क्तिः; ८ त्रिष्टुप्; ९ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१-७, १० पञ्चमः; ८, ९ धैवतः ॥

अथ प्रथमो वर्गः ॥ १ ॥

महि महे तवसे दीध्ये नॄनिन्द्रायेत्था तवसे अतव्यान् ।
यो अस्मै सुमतिं वाजसातौ स्तुतो जने समर्यश्चिकेत ॥ १ ॥
स त्वं न इन्द्र धियसानो अर्कैर्हरीणां वृषन्योक्त्रमश्रेः ।
या इत्था मघवन्ननु जोषं वक्षो अभि प्रार्यः सक्षि जनान् ॥ २ ॥
न ते त इन्द्राभ्य१स्मदृष्वायुक्तासो अब्रह्मता यदसन् ।
तिष्ठा रथमधि तं वज्रहस्ता रश्मिं देव यमसे स्वश्वः ॥ ३ ॥
पुरू यत्त इन्द्र सन्त्युक्था गवे चकर्थोर्वरासु युध्यन् ।
ततक्षे सूर्याय चिदोकसि स्वे वृषा समत्सु दासस्य नाम चित् ॥ ४ ॥
वयं ते त इन्द्र ये च नरः शर्धो जज्ञाना याताश्च रथाः ।
आस्माञ्जगम्यादहिशुष्म सत्वा भगो न हव्यः प्रभृथेषु चारुः ॥ ५ ॥

अथ द्वितीयो वर्गः ॥ २ ॥

पपृक्षेण्यमिन्द्र त्वे ह्योजो नृम्णानि च नृतमानो अमर्तः ।
स न एनीं वसवानो रयिं दाः प्रार्यः स्तुषे तुविमघस्य दानम् ॥ ६ ॥

एवा न इन्द्रोतिभिरव पाहि गृणतः शूर कारून् ।
उत त्वचं ददतो वाजसातौ पिप्रीहि मध्वः सुषुतस्य चारोः ॥ ७ ॥
उत त्ये मा पौरुकुत्स्यस्य सूरेस्त्रसदस्योर्हिरणिनो रराणाः ।
वहन्तु मा दश श्येतासो अस्य गैरिक्षितस्य क्रतुभिर्नु सश्चे ॥ ८ ॥
उत त्ये मा मारुताश्वस्य शोणाः क्रत्वामघासो विदथस्य रातौ ।
सहस्रा मे च्यवतानो ददान आनूकमर्यो वपुषे नार्चत् ॥ ९ ॥
उत त्ये मा ध्वन्यस्य जुष्टा लक्ष्मण्यस्य सुरुचो यतानाः ।
मह्ना रायः संवरणस्य ऋषेर्व्रजं न गावः प्रयता अपि ग्मन् ॥ १० ॥

[३४] चतुस्त्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—संवरणः प्राजापत्यः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१ भुरिक्त्रिष्टुप्; २, ४, ५ निचृज्जगती; ३, ७ जगती; ६, ९ त्रिष्टुप्; ८ विराड्जगती ॥ स्वरः—१, ६, ९ धैवतः; २-५, ७, ८ निषादः ॥

अथ तृतीयो वर्गः ॥ ३ ॥

अजातशत्रुमजरा स्वर्वत्यनु स्वधामिता दस्ममीयते ।
सुनोतन पचत ब्रह्मवाहसे पुरुष्टुताय प्रतरं दधातन ॥ १ ॥
आ यः सोमेन जठरमपिप्रतामन्दत मघवा मध्वो अन्धसः ।
यदीं मृगाय हन्तवे महावधः सहस्रभृष्टिमुशना वधं यमत् ॥ २ ॥
यो अस्मै घ्रंस उत वा य ऊधनि सोमं सुनोति भवति द्युमाँ अह ।
अपाप शक्रस्ततनुष्टिमूहति तनूशुभ्रं मघवा यः कवासखः ॥ ३ ॥
यस्यावधीत्पितरं यस्य मातरं यस्य शक्रो भ्रातरं नात ईषते ।
वेतीद्वस्य प्रयता यतंकरो न किल्बिषादीषते वस्व आकरः ॥ ४ ॥
न पञ्चभिर्दशभिर्वष्ट्यारभं नासुन्वता सचते पुष्यता चन ।
जिनाति वेदमुया हन्ति वा धुनिरा देवयुं भजति गोमति व्रजे ॥ ५ ॥

अथ चतुर्थो वर्गः ॥ ४ ॥

वित्वक्षणः समृतौ चक्रमासजोऽसुन्वतो विषुणः सुन्वतो वृधः ।
इन्द्रो विश्वस्य दमिता विभीषणो यथावशं नयति दासमार्यः ॥ ६ ॥

समीं पणेरजति भोजनं मुषे वि दाशुषे भजति सूनरं वसु।
दुर्गे चन ध्रियते विश्व आ पुरु जनो यो अस्य तविषीमचुक्रुधत्॥ ७॥
सं यज्जनौ सुधनौ विश्वशर्धसाववेदिन्द्रो मघवा गोषु शुभ्रिषु।
युजं ह्य१न्यमकृत प्रवेपन्युदीं गव्यं सृजते सत्वभिर्धुनिः॥ ८॥
सहस्रसामाग्निवेशिं गृणीषे शत्रिमग्न उपमां केतुमर्यः।
तस्मा आपः संयतः पीपयन्त तस्मिन्क्षत्रममवत्त्वेषमस्तु॥ ९॥

[३५] पञ्चत्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—प्रभूवसुराङ्गिरसः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१ निचृदनुष्टुप्; ३ भुरिगनुष्टुप्; ७ अनुष्टुप्; २ भुरिगुष्णिक्; ४-६ स्वराडुष्णिक्; ८ भुरिग्बृहती॥ स्वरः—१, ३, ७ गान्धारः; २, ४-६ ऋषभः; ८ मध्यमः॥

अथ पञ्चमो वर्गः॥ ५॥

यस्ते साधिष्ठोऽवस इन्द्र क्रतुष्टमा भर।
अस्मभ्यं चर्षणीसहं सस्निं वाजेषु दुष्टरम्॥ १॥
यदिन्द्र ते चतस्रो यच्छूर सन्ति तिस्रः।
यद्वा पञ्च क्षितीनामवस्तत्सु न आ भर॥ २॥
आ तेऽवो वरेण्यं वृषन्तमस्य हूमहे।
वृषजूतिर्हि जज्ञिष आभूभिरिन्द्र तुर्वणिः॥ ३॥
वृषा ह्यसि राधसे जज्ञिषे वृष्णि ते शवः।
स्वक्षत्रं ते धृषन्मनः सत्राहमिन्द्र पौंस्यम्॥ ४॥
त्वं तमिन्द्र मर्त्यममित्रयन्तमद्रिवः।
सर्वरथा शतक्रतो नि याहि शवसस्पते॥ ५॥

अथ षष्ठो वर्गः॥ ६॥

त्वामिद् वृत्रहन्तम जनासो वृक्तबर्हिषः।
उग्रं पूर्वीषु पूर्व्यं हवन्ते वाजसातये॥ ६॥
अस्माकमिन्द्र दुष्टरं पुरोयावानमाजिषु।
सयावानं धनेधने वाजयन्तमवा रथम्॥ ७॥

अस्माकमिन्द्रेहि नो रथमवा पुरंन्ध्या।
वयं शविष्ठ वार्यं दिवि श्रवो दधीमहि दिवि स्तोमं मनामहे॥ ८॥

[३६] षट्त्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—प्रभूवसुराङ्गिरसः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१, ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप्; २, ६ त्रिष्टुप्; ३ जगती॥ स्वरः—१, २, ४-६ धैवतः; ३ निषादः॥

अथ सप्तमो वर्गः॥ ७॥

स आ गमदिन्द्रो यो वसूनां चिकेतद्दातुं दामनो रयीणाम्।
धन्वचरो न वंसगस्तृषाणश्चकमानः पिबतु दुग्धमंशुम्॥ १॥
आ ते हनू हरिवः शूर शिप्रे रुहत्सोमो न पर्वतस्य पृष्ठे।
अनु त्वा राजन्नर्वतो न हिन्वन्गीर्भिर्मदेम पुरुहूत विश्वे॥ २॥
चक्रं न वृत्तं पुरुहूत वेपते मनो भिया मे अमतेरिदद्रिवः।
रथादधि त्वा जरिता सदावृध कुविन्नु स्तोषन्मघवन्पुरूवसुः॥ ३॥
एष ग्रावेव जरिता त इन्द्रेयर्ति वाचं बृहदाशुषाणः।
प्र सव्येन मघवन्यंसि रायः प्र दक्षिणिद्धरिवो मा वि वेनः॥ ४॥
वृषा त्वा वृषणं वर्धतु द्यौर्वृषा वृषभ्यां वहसे हरिभ्याम्।
स नो वृषा वृषरथः सुशिप्र वृषक्रतो वृषा वज्रिन्भरे धाः॥ ५॥
यो रोहितौ वाजिनौ वाजिनीवान्त्रिभिः शतैः सचमानावदिष्ट।
यूने समस्मै क्षितयो नमन्तां श्रुतरथाय मरुतो दुवोया॥ ६॥

[३७] सप्तत्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—अत्रिः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१ निचृत्पङ्क्तिः; २ विराट्त्रिष्टुप्; ३-५ निचृत्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—१ पञ्चमः; २-५ धैवतः॥

अथाष्टमो वर्गः॥ ८॥

सं भानुना यतते सूर्यस्याजुह्वानो घृतपृष्ठः स्वञ्चाः।
तस्मा अमृध्रा उषसो व्युच्छान्य इन्द्राय सुनवामेत्याह॥ १॥
समिद्धाग्निर्वनवत्स्तीर्णबर्हिर्युक्तग्रावा सुतसोमो जराते।
ग्रावाणो यस्येषिरं वदन्त्ययदध्वर्युर्हविषाव सिन्धुम्॥ २॥

वधूरियं पतिमिच्छन्त्येति य ईं वहाते महिषीमिषिराम् ।
आस्य श्रवस्याद्रथ आ च घोषात्पुरू सहस्रा परि वर्तयाते ॥ ३ ॥
न स राजा व्यथते यस्मिन्निन्द्रस्तीव्रं सोमं पिबति गोसखायम् ।
आ सत्वनैरजति हन्ति वृत्रं क्षेति क्षितीः सुभगो नाम पुष्यन् ॥ ४ ॥
पुष्यात्क्षेमे अभि योगे भवात्युभे वृतौ संयती सं जयाति ।
प्रियः सूर्ये प्रियो अग्ना भवाति य इन्द्राय सुतसोमो ददाशत् ॥ ५ ॥

[३८] अष्टात्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—अत्रिः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१ अनुष्टुप्; २-४ निचृदनुष्टुप्; ५ विराडनुष्टुप् ॥ स्वरः—गान्धारः ॥

अथ नवमो वर्गः ॥ ९ ॥

उरोष्ट इन्द्र राधसो विभ्वी रातिः शतक्रतो ।
अधा नो विश्वचर्षणे द्युम्ना सुक्षत्र मंहय ॥ १ ॥
यदीमिन्द्र श्रवाय्यमिषं शविष्ठ दधिषे ।
पप्रथे दीर्घश्रुत्तमं हिरण्यवर्ण दुष्टरम् ॥ २ ॥
शुष्मासो ये ते अद्रिवो मेहना केतसापः ।
उभा देवावभिष्टये दिवश्च ग्मश्च राजथः ॥ ३ ॥
उतो नो अस्य कस्य चिद्दक्षस्य तव वृत्रहन् ।
अस्मभ्यं नृम्णमा भरास्मभ्यं नृमणस्यसे ॥ ४ ॥
नू त आभिरभिष्टिभिस्तव शर्मञ्छतक्रतो ।
इन्द्र स्याम सुगोपाः शूर स्याम सुगोपाः ॥ ५ ॥

[३९] एकोनचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—अत्रिः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१ विराडनुष्टुप्; २, ३ निचृदनुष्टुप्; ४ स्वराडुष्णिक्; ५ बृहती ॥ स्वरः—१-३ गान्धारः; ४ ऋषभः; ५ मध्यमः ॥

अथ दशमो वर्गः ॥ १० ॥

यदिन्द्र चित्र मेहनास्ति त्वादातमद्रिवः ।
राधस्तन्नो विदद्वस उभयाहस्त्या भर ॥ १ ॥

यन्मन्यसे वरेण्यमिन्द्र द्युक्षं तदा भर ।
विद्याम तस्य ते वयमकूपारस्य दावने ॥ २ ॥
यत्ते दित्सु प्रराध्यं मनो अस्ति श्रुतं बृहत् ।
तेन दृळ्हा चिदद्रिव आ वाजं दर्षि सातये ॥ ३ ॥
मंहिष्ठं वो मघोनां राजानं चर्षणीनाम् ।
इन्द्रमुप प्रशस्तये पूर्वीभिर्जुजुषे गिरः ॥ ४ ॥
अस्मा इत्काव्यं वच उक्थमिन्द्राय शंस्यम् ।
तस्मा उ ब्रह्मवाहसे गिरो वर्धन्त्यत्रयो गिरः शुम्भन्त्यत्रयः ॥ ५ ॥

[४०] चत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—अत्रिः ॥ देवता—१-४ इन्द्रः; ५ सूर्यः; ६-९ अत्रिः ॥ छन्दः—१ निचृदुष्णिक्; २, ३ उष्णिक्; ४ त्रिष्टुप्; ५, ६, ८ निचृत्त्रिष्टुप्; ७ भुरिक्पङ्क्तिः; ९ स्वराडुष्णिक् ॥ स्वरः—१-३, ९ ऋषभः; ४-६, ८ धैवतः; ७ पञ्चमः ॥

अथ एकादशो वर्गः ॥ ११ ॥

आ याह्यद्रिभिः सुतं सोमं सोमपते पिब । वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम ॥ १ ॥
वृषा ग्रावा वृषा मदो वृषा सोमो अयं सुतः । वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम ॥ २ ॥
वृषा त्वा वृषणं हुवे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः । वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम ॥ ३ ॥
ऋजीषी वज्री वृषभस्तुराषाट्छुष्मी राजा वृत्रहा सोमपावा ।
युक्त्वा हरिभ्यामुप यासदर्वाङ्माध्यन्दिने सवने मत्सदिन्द्रः ॥ ४ ॥
यत्त्वा सूर्य स्वर्भानुस्तमसाविध्यदासुरः ।
अक्षेत्रविद्यथा मुग्धो भुवनान्यदीधयुः ॥ ५ ॥

अथ द्वादशो वर्गः ॥ १२ ॥

स्वर्भानोरध यदिन्द्र माया अवो दिवो वर्तमाना अवाहन् ।
गूळ्हं सूर्यं तमसापव्रतेन तुरीयेण ब्रह्मणाविन्ददत्रिः ॥ ६ ॥
मा मामिमं तव सन्तमत्र इरस्या द्रुग्धो भियसा नि गारीत् ।
त्वं मित्रो असि सत्यराधास्तौ मेहावतं वरुणश्च राजा ॥ ७ ॥

ग्राव्णो ब्रह्मा युयुजानः सपर्यन्कीरिणा देवान्नमसोपशिक्षन्।
अत्रिः सूर्यस्य दिवि चक्षुराधात्स्वर्भानोरप माया अघुक्षत् ॥८॥
यं वै सूर्यं स्वर्भानुस्तमसाविध्यदासुरः ।
अत्रयस्तमन्वविन्दन्नह्य१न्ये अशक्नुवन् ॥९॥

[४१] एकचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—अत्रिः॥ देवता—विश्वे देवाः॥ छन्दः—१, २, ६, १५, १८ त्रिष्टुप्; ३, ७, ८, १४, १९ पङ्क्तिः; ४, १३ विराट्त्रिष्टुप्; ५, ९-१२ भुरिक्पङ्क्तिः; १६ जगती; १७ निचृज्जगती; २० याजुषीपङ्क्तिः॥ स्वरः—१, २, ४, ६, १३, १५, १८ धैवतः; ३, ५, ७-१२, १४, १९, २० पञ्चमः; १६, १७ निषादः॥

अथ त्रयोदशो वर्गः॥ १३॥

को नु वां मित्रावरुणावृतायन्दिवो वा महः पार्थिवस्य वा दे।
ऋतस्य वा सदसि त्रासीथां नो यज्ञायते वा पशुषो न वाजान्॥१॥
ते नो मित्रो वरुणो अर्यमायुरिन्द्र ऋभुक्षा मरुतो जुषन्त।
नमोभिर्वा ये दधते सुवृक्तिं स्तोमं रुद्राय मीळ्हुषे सजोषाः॥२॥
आ वां येष्ठाश्विना हुवध्यै वातस्य पत्मन्रथ्यस्य पुष्टौ।
उत वा दिवो असुराय मन्म प्रान्धांसीव यज्यवे भरध्वम्॥३॥
प्र सक्षणो दिव्यः कण्वहोता त्रितो दिवः सजोषा वातो अग्निः।
पूषा भगः प्रभृथे विश्वभोजा आजिं न जग्मुराश्वश्वतमाः॥४॥
प्र वो रयिं युक्ताश्वं भरध्वं राय एषेऽवसे दधीत धीः।
सुशेव एवैरौशिजस्य होता ये व एवा मरुतस्तुराणाम्॥५॥

अथ चतुर्दशो वर्गः॥ १४॥

प्र वो वायुं रथयुजं कृणुध्वं प्र देवं विप्रं पनितारमर्कैः।
इषुध्यव ऋतसापः पुरन्धीर्वस्वीर्नो अत्र पत्नीरा धिये धुः॥६॥
उप व एषे वन्द्येभिः शूषैः प्र यह्वी दिवश्चितयद्भिरर्कैः।
उषासानक्ता विदुषीव विश्वमा हा वहतो मर्त्याय यज्ञम्॥७॥
अभि वो अर्चे पोष्यावतो नॄन्वास्तोष्पतिं त्वष्टारं रराणः।
धन्या सजोषा धिषणा नमोभिर्वनस्पतींरोषधी राय एषे॥८॥

तुजे नस्तने पर्वताः सन्तु स्वैतवो ये वसवो न वीराः।
पनित आप्त्यो यजतः सदा नो वर्धान्नः शंसं नर्यो अभिष्टौ॥९॥
वृष्णो अस्तोषि भूम्यस्य गर्भं त्रितो नपातमपां सुवृक्ति।
गृणीते अग्निरेतरी न शूषैः शोचिष्केशो नि रिणाति वना॥१०॥

अथ पञ्चदशो वर्गः॥ १५॥

कथा महे रुद्रियाय ब्रवाम कद्राये चिकितुषे भगाय।
आप ओषधीरुत नोऽवन्तु द्यौर्वना गिरयो वृक्षकेशाः॥११॥
शृणोतु न ऊर्जां पतिर्गिरः स नभस्तरीयाँ इषिरः परिज्मा।
शृण्वन्त्वापः पुरो न शुभ्राः परि स्रुचो बबृहाणस्याद्रेः॥१२॥
विदा चिन्नु महान्तो ये व एवा ब्रवाम दस्मा वार्यं दधानाः।
वयश्चन सुभ्व१ आव यन्ति क्षुभा मर्तमनुयतं वधस्नैः॥१३॥
आ दैव्यानि पार्थिवानि जन्मापश्चाच्छा सुमखाय वोचम्।
वर्धन्तां द्यावो गिरश्चन्द्राग्रा उदा वर्धन्तामभिषाता अर्णाः॥१४॥
पदेपदे मे जरिमा नि धायि वरूत्री वा शक्रा या पायुभिश्च।
सिषक्तु माता मही रसा नः स्मत्सूरिभिर्ऋजुहस्त ऋजुवनिः॥१५॥

अथ षोडशो वर्गः॥ १६॥

कथा दाशेम नमसा सुदानूनेवया मरुतो अच्छोक्तौ प्रश्रवसो मरुतो
अच्छोक्तौ। मा नोऽहिर्बुध्न्यो रिषे धादस्माकं भूदुपमातिवनिः ॥१६॥
इति चिन्नु प्रजायै पशुमत्यै देवासो वनते मर्त्यो व आ देवासो
वनते मर्त्यो वः। अत्रा शिवां तन्वो धासिमस्या
जरां चिन्मे निर्ऋतिर्जग्रसीत ॥१७॥
तां वो देवाः सुमतिमूर्जयन्तीमिषमश्याम वसवः शसा गोः ।
सा नः सुदानुर्मृळयन्ती देवी प्रति द्रवन्ती सुविताय गम्याः ॥१८॥
अभि न इळा यूथस्य माता स्मन्नदीभिरुर्वशी वा गृणातु ।
उर्वशी वा बृहद्दिवा गृणानाभ्यूर्ण्वाना प्रभृथस्यायोः ॥१९॥
सिषक्तु न ऊर्जव्यस्य पुष्टेः ॥२०॥

[४२] द्विचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—अत्रिः ॥ देवता—विश्वे देवाः ॥ छन्दः—१, ४, ६, ११, १२, १५, १६, १८ निचृत्त्रिष्टुप्; २ विराट्त्रिष्टुप्; ३, ५, ७-९, १३, १४ त्रिष्टुप्; १० भुरिक्पङ्क्तिः; १७ याजुषीपङ्क्तिः ॥ स्वरः—१-९, ११-१६, १८ धैवतः; १०, १७ पञ्चमः ॥

अथ सप्तदशो वर्गः ॥ १७ ॥

प्र शन्तमा वरुणं दीधिती गीर्मित्रं भगमदितिं नूनमश्याः ।
पृषद्योनिः पञ्चहोता शृणोत्वतूर्तपन्था असुरो मयोभुः ॥ १ ॥
प्रति मे स्तोममदितिर्जगृभ्यात्सूनुं न माता हृद्यं सुशेवम् ।
ब्रह्म प्रियं देवहितं यदस्त्यहं मित्रे वरुणे यन्मयोभु ॥ २ ॥
उदीरय कवितमं कवीनामुनत्तैनमभि मध्वा घृतेन ।
स नो वसूनि प्रयता हितानि चन्द्राणि देवः सविता सुवाति ॥ ३ ॥
समिन्द्र णो मनसा नेषि गोभिः सं सूरिभिर्हरिवः सं स्वस्ति ।
सं ब्रह्मणा देवहितं यदस्ति सं देवानां सुमत्या यज्ञियानाम् ॥ ४ ॥
देवो भगः सविता रायो अंश इन्द्रो वृत्रस्य संजितो धनानाम् ।
ऋभुक्षा वाज उत वा पुरन्धिरवन्तु नो अमृतासस्तुरासः ॥ ५ ॥

अथाष्टादशो वर्गः ॥ १८ ॥

मरुत्वतो अप्रतीतस्य जिष्णोरजूर्यतः प्र ब्रवामा कृतानि ।
न ते पूर्वे मघवन्नापरासो न वीर्यं१ नूतनः कश्चनाप ॥ ६ ॥
उप स्तुहि प्रथमं रत्नधेयं बृहस्पतिं सनितारं धनानाम् ।
यः शंसते स्तुवते शंभविष्ठः पुरूवसुरागमज्जोहुवानम् ॥ ७ ॥
तवोतिभिः सचमाना अरिष्टा बृहस्पते मघवानः सुवीराः ।
ये अश्वदा उत वा सन्ति गोदा ये वस्त्रदाः सुभगास्तेषु रायः ॥ ८ ॥
विसर्माणं कृणुहि वित्तमेषां ये भुञ्जते अपृणन्तो न उक्थैः ।
अपव्रतान्प्रसवे वावृधानान् ब्रह्मद्विषः सूर्याद्यावयस्व ॥ ९ ॥
य ओहते रक्षसो देववीतावचक्रेभिस्तं मरुतो नि यात ।
यो वः शमीं शशमानस्य निन्दात्तुच्छ्यान्कामान्करते सिष्विदानः ॥ १० ॥

अथैकोनविंशो वर्गः ॥ १९ ॥

तमु ष्टुहि यः स्विषुः सुधन्वा यो विश्वस्य क्षयति भेषजस्य ।
यक्ष्वा महे सौमनसाय रुद्रं नमोभिर्देवमसुरं दुवस्य ॥ ११ ॥
दमूनसो अपसो ये सुहस्ता वृष्णः पत्नीर्नद्यो विभ्वतष्टाः ।
सरस्वती बृहद्दिवोत राका दशस्यन्तीर्वरिवस्यन्तु शुभ्राः ॥ १२ ॥
प्र सू महे सुशरणाय मेधां गिरं भरे नव्यसीं जायमानाम् ।
य आहना दुहितुर्वक्षणासु रूपा मिनानो अकृणोदिदं नः ॥ १३ ॥
प्र सुष्टुतिः स्तनयन्तं रुवन्तमिळस्पतिं जरितर्नूनमश्याः ।
यो अब्दिमाँ उदनिमाँ इयर्ति प्र विद्युता रोदसी उक्षमाणः ॥ १४ ॥
एष स्तोमो मारुतं शर्धो अच्छा रुद्रस्य सूनूँर्युवन्यूँरुदश्याः ।
कामो राये हवते मा स्वस्त्युप स्तुहि पृषदश्वाँ अयासः ॥ १५ ॥
प्रैष स्तोमः पृथिवीमन्तरिक्षं वनस्पतीँरोषधी राये अश्याः ।
देवोदेवः सुहवो भूतु मह्यं मा नो माता पृथिवी दुर्मतौ धात् ॥ १६ ॥
उरौ देवा अनिबाधे स्याम ॥ १७ ॥
समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम ।
आ नो रयिं वहतमोत वीराना विश्वान्यमृता सौभगानि ॥ १८ ॥

[४३] त्रिचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—अत्रिः ॥ देवता—विश्वे देवाः ॥ छन्दः—१, ३, ६, ८, ९, १७ निचृत्त्रिष्टुप्; २, ४, ५, १०-१२, १५ त्रिष्टुप्; ७, १३ विराट्त्रिष्टुप्; १४ भुरिक्पङ्क्तिः; १६ याजुषीपङ्क्तिः ॥ स्वरः—१-१३, १५, १७ धैवतः; १४, १६ पञ्चमः ॥

अथ विंशो वर्गः ॥ २० ॥

आ धेनवः पयसा तूर्ण्यर्था अमर्धन्तीरुप नो यन्तु मध्वा ।
महो राये बृहतीः सप्त विप्रो मयोभुवो जरिता जोहवीति ॥ १ ॥
आ सुष्टुती नमसा वर्तयध्यै द्यावा वाजाय पृथिवी अमृध्रे ।
पिता माता मधुवचाः सुहस्ता भरेभरे नो यशसावविष्टाम् ॥ २ ॥
अध्वर्यवश्चकृवांसो मधूनि प्र वायवे भरत चारु शुक्रम् ।
होतेव नः प्रथमः पाह्यस्य देव मध्वो ररिमा ते मदाय ॥ ३ ॥

दश क्षिपो युञ्जते बाहू अद्रिं सोमस्य या शमितारा सुहस्ता।
मध्वो रसं सुगभस्तिर्गिरिष्ठां चनिश्चदद्दुदुहे शुक्रमंशुः॥ ४॥
असावि ते जुजुषाणाय सोमः क्रत्वे दक्षाय बृहते मदाय।
हरी रथे सुधुरा योगे अर्वागिन्द्र प्रिया कृणुहि हूयमानः॥ ५॥

अथैकविंशो वर्गः॥ २१॥

आ नो महीमरमतिं सजोषा ग्नां देवीं नमसा रातहव्याम्।
मधोर्मदाय बृहतीमृतज्ञामाग्ने वह पथिभिर्देवयानैः॥ ६॥
अञ्जन्ति यं प्रथयन्तो न विप्रा वपावन्तं नाग्निना तपन्तः।
पितुर्न पुत्र उपसि प्रेष्ठ आ घर्मो अग्निमृतयन्नसादि॥ ७॥
अच्छा मही बृहती शन्तमा गीर्दूतो न गन्त्वश्विना हुवध्यै।
मयोभुवा सरथा यातमर्वाग्गन्तं निधिं धुरमाणिर्न नाभिम्॥ ८॥
प्र तव्यसो नमउक्तिं तुरस्याहं पूष्ण उत वायोरदिक्षि।
या राधसा चोदितारा मतीनां या वाजस्य द्रविणोदा उत त्मन्॥ ९॥
आ नामभिर्मरुतो वक्षि विश्वाना रूपेभिर्जातवेदो हुवानः।
यज्ञं गिरो जरितुः सुष्टुतिं च विश्वे गन्त मरुतो विश्व ऊती॥ १०॥

अथ द्वाविंशो वर्गः॥ २२॥

आ नो दिवो बृहतः पर्वतादा सरस्वती यजता गन्तु यज्ञम्।
हवं देवी जुजुषाणा घृताची शग्मां नो वाचमुशती शृणोतु॥ ११॥
आ वेधसं नीलपृष्ठं बृहन्तं बृहस्पतिं सदने सादयध्वम्।
सादद्योनिं दम आ दीदिवांसं हिरण्यवर्णमरुषं सपेम॥ १२॥
आ धर्णसिर्बृहद्दिवो रराणो विश्वेभिर्गन्त्वोमभिर्हुवानः।
ग्ना वसान ओषधीरमृध्रस्त्रिधातुशृङ्गो वृषभो वयोधाः॥ १३॥
मातुष्पदे परमे शुक्र आयोर्विपन्यवो रास्पिरासो अग्मन्।
सुशेव्यं नमसा रातहव्याः शिशुं मृजन्त्यायवो न वासे॥ १४॥
बृहद्वयो बृहते तुभ्यमग्ने धियाजुरो मिथुनासः सचन्त।
देवोदेवः सुहवो भूतु मह्यं मा नो माता पृथिवी दुर्मतौ धात्॥ १५॥

उरौ देवा अनिबाधे स्याम॥ १६॥
समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम।
आ नो रयिं वहतमोत वीराना विश्वान्यमृता सौभगानि॥ १७॥

[४४] चतुश्चत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—अवत्सारः काश्यप अन्ये च दृष्टलिङ्गाः॥ देवता—विश्वे देवाः॥ छन्दः—१, १३ विराट् जगती; २-६ निचृज्जगती; ८, ९, १२ जगती; ७ भुरिक्त्रिष्टुप्; १०, ११ स्वराट्त्रिष्टुप्; १४ विराट्त्रिष्टुप्; १५ त्रिष्टुप्॥ स्वरः—१-६, ८, ९, १२, १३, निषादः; ७, १०, ११, १४, १५ धैवतः॥

अथ त्रयोविंशो वर्गः॥ २३॥

तं प्रत्नथा पूर्वथा विश्वथेमथा ज्येष्ठतातिं बर्हिषदं स्वर्विदम्।
प्रतीचीनं वृजनं दोहसे गिराशुं जयन्तमनु यासु वर्धसे॥ १॥
श्रिये सुदृशीरुपरस्य याः स्वर्विरोचमानः ककुभामचोदते।
सुगोपा असि न दभाय सुक्रतो परो मायाभिर्ऋत आस नाम ते॥ २॥
अत्यं हविः सचते सच्च धातु चारिष्टगातुः स होता सहोभरिः।
प्रसर्स्राणो अनु बर्हिर्वृषा शिशुर्मध्ये युवाजरो विस्रुहा हितः॥ ३॥
प्र व एते सुयुजो यामन्निष्टये नीचीरमुष्मै यम्य ऋतावृधः।
सुयन्तुभिः सर्वशासैरभीशुभिः क्रिविर्नामानि प्रवणे मुषायति॥ ४॥
संजर्भुराणस्तरुभिः सुतेगृभं वयाकिनं चित्तगर्भासु सुस्वरुः।
धारवाकेष्वृजुगाथ शोभसे वर्धस्व पत्नीरभि जीवो अध्वरे॥ ५॥

अथ चतुर्विंशो वर्गः॥ २४॥

यादृगेव ददृशे तादृगुच्यते सं छायया दधिरे सिध्रयाप्स्वा।
महीमस्मभ्यमुरुषामुरु ज्रयो बृहत्सुवीरमनपच्युतं सहः॥ ६॥
वेत्यग्रुर्जनिवान्वा अति स्पृधः समर्यता मनसा सूर्यः कविः।
घ्रंसं रक्षन्तं परि विश्वतो गयमस्माकं शर्म वनवत्स्वावसुः॥ ७॥
ज्यायांसमस्य यतुनस्य केतुन ऋषिस्वरं चरति यासु नाम ते।
यादृश्मिन्धायि तमपस्यया विदद्य उ स्वयं वहते सो अरं करत्॥ ८॥

समुद्रमासामव तस्थे अग्रिमा न रिष्यति सवनं यस्मिन्नायता।
अत्रा न हार्दि क्रवणस्य रेजते यत्रा मतिर्विद्यते पूतबन्धनी॥ ९॥
स हि क्षत्रस्य मनसस्य चित्तिभिरेवावदस्य यजतस्य सध्रेः।
अवत्सारस्य स्पृणवाम रण्वभिः शविष्ठं वाजं विदुषा चिदर्ध्यम्॥ १०॥

अथ पञ्चविंशो वर्गः॥ २५॥

श्येन आसामदितिः कक्ष्यो३ मदो विश्ववारस्य यजतस्य मायिनः।
समन्यमन्यमर्थयन्त्येतवे विदुर्विषाणं परिपानमन्ति ते ॥ ११॥
सदापृणो यजतो वि द्विषो वधीद्बाहुवृक्तः श्रुतवित्तर्यो वः सचा।
उभा स वरा प्रत्येति भाति च यदीं गणं भजते सुप्रयावभिः॥ १२॥
सुतंभरो यजमानस्य सत्पतिर्विश्वासामूधः स धियामुदञ्चनः।
भरद्धेनू रसवच्छिश्रिये पयोऽनुब्रुवाणो अध्येति न स्वपन्॥ १३॥
यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार तमु सामानि यन्ति।
यो जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः॥ १४॥
अग्निर्जागार तमृचः कामयन्तेऽग्निर्जागार तमु सामानि यन्ति।
अग्निर्जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः॥ १५॥

चतुर्थोऽनुवाकः

[४५] पञ्चचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—सदापृण आत्रेयः॥ देवता—विश्वे देवाः॥ छन्दः—१, २ पङ्क्तिः; ३ विराट्त्रिष्टुप्; ४, ६, ७ निचृत्त्रिष्टुप्; ५, ९, ११ भुरिक्पङ्क्तिः; ८, १० स्वराट्पङ्क्तिः॥ स्वरः—१, २, ५, ८-११ पञ्चमः; ३, ४, ६, ७ धैवतः॥

अथ षड्विंशो वर्गः॥ २६॥

विदा दिवो विष्यन्नद्रिमुक्थैरायत्या उषसो अर्चिनो गुः ।
अपावृत व्रजिनीरुत्स्वर्गाद्वि दुरो मानुषीर्देव आवः ॥ १॥
वि सूर्यो अमतिं न श्रियं सादोर्वाद् गवां माता जानती गात्।
धन्वर्णसो नद्य१ः खादोअर्णाः स्थूणेव सुमिता दृंहत द्यौः॥ २॥
अस्मा उक्थाय पर्वतस्य गर्भो महीनां जनुषे पूर्व्याय ।
वि पर्वतो जिहीत साधत द्यौराविवासन्तो दसयन्त भूम॥ ३॥

सूक्तेभिर्वो वचोभिर्देवजुष्टैरिन्द्रा न्व१ग्नी अवसे हुवध्यै।
उक्थेभिर्हि ष्मा कवयः सुयज्ञा आविवासन्तो मरुतो यजन्ति॥ ४॥
एतो न्व१द्य सुध्यो३ भवाम प्र दुच्छुना मिनवामा वरीयः।
आरे द्वेषांसि सनुतर्दधामायाम प्राञ्चो यजमानमच्छ॥ ५॥

अथ सप्तविंशो वर्गः॥ २७॥

एता धियं कृणवामा सखायोऽप या माताँ ऋणुत व्रजं गोः।
यया मनुर्विशिशिप्रं जिगाय यया वणिग्वङ्कुरापा पुरीषम्॥ ६॥
अनूनोदत्र हस्तयतो अद्रिरार्चन्येन दश मासो नवग्वाः।
ऋतं यती सरमा गा अविन्दद्विश्वानि सत्याङ्गिराश्चकार॥ ७॥
विश्वे अस्या व्युषि माहिनायाः सं यद् गोभिरङ्गिरसो नवन्त।
उत्स आसां परमे सधस्थ ऋतस्य पथा सरमा विदद् गाः॥ ८॥
आ सूर्यो यातु सप्ताश्वः क्षेत्रं यदस्योर्विया दीर्घयाथे ।
रघुः श्येनः पतयदन्धो अच्छा युवा कविर्दीदयद् गोषु गच्छन्॥ ९॥
आ सूर्यो अरुहच्छुक्रमर्णोऽयुक्त यद्धरितो वीतपृष्ठाः ।
उद्ना न नावमनयन्त धीरा आशृण्वतीरापो अर्वागतिष्ठन्॥ १०॥
धियं वो अप्सु दधिषे स्वर्षां ययातरन्दश मासो नवग्वाः।
अया धिया स्याम देवगोपा अया धिया तुतुर्यामात्यंहः॥ ११॥

[४६] षट्चत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—प्रतिक्षत्र आत्रेयः॥ देवता—१-६ विश्वे देवाः; ७, ८ देवपत्न्यः॥ छन्दः—१ भुरिग्जगती; २, ८ निचृत्पङ्क्तिः; ३, ५, ६ निचृज्जगती; ४, ७ जगती॥ स्वरः—१, ३-७ निषादः; २, ८ पञ्चमः॥

अथ अष्टाविंशो वर्गः॥ २८॥

हयो न विद्वाँ अयुजि स्वयं धुरि तां वहामि प्रतरणीमवस्युवम्।
नास्या वश्मि विमुचं नावृतं पुनर्विद्वान्पथः पुरएत ऋजु नेषति॥ १॥
अग्न इन्द्र वरुण मित्र देवाः शर्धः प्र यन्त मारुतोत विष्णो।
उभा नासत्या रुद्रो अध ग्नाः पूषा भगः सरस्वती जुषन्त॥ २॥

इन्द्राग्नी मित्रावरुणादितिं स्वः पृथिवीं द्यां मरुतः पर्वताँ अपः ।
हुवे विष्णुं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं भगं नु शंसं सवितारमूतये ॥ ३ ॥
उत नो विष्णुरुत वातो अस्रिधो द्रविणोदा उत सोमो मयस्करत् ।
उत ऋभव उत राये नो अश्विनोत त्वष्टोत विभ्वानु मंसते ॥ ४ ॥
उत त्यन्नो मारुतं शर्ध आ गमद्दिविक्षयं यजतं बर्हिरासदे ।
बृहस्पतिः शर्म पूषोत नो यमद्वरूथ्यं१ वरुणो मित्रो अर्यमा ॥ ५ ॥
उत त्ये नः पर्वतासः सुशस्तयः सुदीतयो नद्य१स्त्रामणे भुवन् ।
भगो विभक्ता शवसावसा गमदुरुव्यचा अदितिः श्रोतु मे हवम् ॥ ६ ॥
देवानां पत्नीरुशतीरवन्तु नः प्रावन्तु नस्तुजये वाजसातये ।
याः पार्थिवासो या अपामपि व्रते ता नो देवीः सुहवाः शर्म यच्छत ॥ ७ ॥
उत ग्ना व्यन्तु देवपत्नीरिन्द्राण्य१ग्नाय्यश्विनी राट् ।
आ रोदसी वरुणानी शृणोतु व्यन्तु देवीर्य ऋतुर्जनीनाम् ॥ ८ ॥

इति चतुर्थाष्टके द्वितीयोऽध्यायः ॥

अथ चतुर्थाष्टके तृतीयोऽध्यायः

[४७] सप्तचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—प्रतिरथ आत्रेयः ॥ देवता—विश्वे देवाः ॥ छन्दः—१-३, ७ त्रिष्टुप्; ४ भुरिक्त्रिष्टुप्; ५ भुरिक्पङ्क्तिः; ६ विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१-४, ६, ७ धैवतः; ५ पञ्चमः ॥

अथ प्रथमो वर्गः ॥ १ ॥

प्रयुञ्जती दिव एति ब्रुवाणा मही माता दुहितुर्बोधयन्ती ।
आविवासन्ती युवतिर्मनीषा पितृभ्य आ सदने जोहुवाना ॥ १ ॥
अजिरासस्तदप ईयमाना आतस्थिवांसो अमृतस्य नाभिम् ।
अनन्तास उरवो विश्वतः सीं परि द्यावापृथिवी यन्ति पन्थाः ॥ २ ॥
उक्षा समुद्रो अरुषः सुपर्णः पूर्वस्य योनिं पितुरा विवेश ।
मध्ये दिवो निहितः पृश्निरश्मा वि चक्रमे रजसस्पात्यन्तौ ॥ ३ ॥
चत्वार ईं बिभ्रति क्षेमयन्तो दश गर्भं चरसे धापयन्ते ।
त्रिधातवः परमा अस्य गावो दिवश्चरन्ति परि सद्यो अन्तान् ॥ ४ ॥

इदं वपुर्निवचनं जनासश्चरन्ति यन्नद्यस्तस्थुरापः ।
द्वे यदीं बिभृतो मातुरन्ये इहेह जाते यम्या३ सबन्धू ॥ ५ ॥
वि तन्वते धियो अस्मा अपांसि वस्त्रा पुत्राय मातरो वयन्ति ।
उपप्रक्षे वृषणो मोदमाना दिवस्पथा वध्वो यन्त्यच्छ ॥ ६ ॥
तदस्तु मित्रावरुणा तदग्ने शं योरस्मभ्यमिदमस्तु शस्तम् ।
अशीमहि गाधमुत प्रतिष्ठां नमो दिवे बृहते सादनाय ॥ ७ ॥

[४८] अष्टचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—प्रतिभानुरात्रेयः ॥ देवता—विश्वे देवाः ॥ छन्दः—१, ३, स्वराट्त्रिष्टुप्; २, ४, ५ निचृज्जगती ॥ स्वरः—१, ३ धैवतः; २, ४, ५ निषादः ॥

अथ द्वितीयो वर्गः ॥ २ ॥

कदु प्रियाय धाम्ने मनामहे स्वक्षत्राय स्वयशसे महे वयम् ।
आमेन्यस्य रजसो यदभ्र आँ अपो वृणाना वितनोति मायिनी ॥ १ ॥
ता अत्नत वयुनं वीरवक्षणं समान्या वृतया विश्वमा रजः ।
अपो अपाचीरपरा अपेजते प्र पूर्वाभिस्तिरते देवयुर्जनः ॥ २ ॥
आ ग्रावभिरहन्येभिरक्तुभिर्वरिष्ठं वज्रमा जिघर्ति मायिनि ।
शतं वा यस्य प्रचरन्त्स्वे दमे संवर्तयन्तो वि च वर्तयन्नहा ॥ ३ ॥
तामस्य रीतिं परशोरिव प्रत्यनीकमख्यं भुजे अस्य वर्पसः ।
सचा यदि पितुमन्तमिव क्षयं रत्नं दधाति भरहूतये विशे ॥ ४ ॥
स जिह्वया चतुरनीक ऋञ्जते चारु वसानो वरुणो यतन्नरिम् ।
न तस्य विद्म पुरुषत्वता वयं यतो भगः सविता दाति वार्यम् ॥ ५ ॥

[४९] एकोनपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—प्रतिप्रभ आत्रेयः ॥ देवता—विश्वे देवाः ॥ छन्दः—१, २, ४ भुरिक्त्रिष्टुप्; ३ निचृत्त्रिष्टुप्; ५ स्वराट्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१-४ धैवतः; ५ पञ्चमः ॥

अथ तृतीयो वर्गः ॥ ३ ॥

देवं वो अद्य सवितारमेषे भगं च रत्नं विभजन्तमायोः ।
आ वां नरा पुरुभुजा ववृत्यां दिवेदिवे चिदश्विना सखीयन् ॥ १ ॥

प्रति प्रयाणमसुरस्य विद्वान्त्सूक्तैर्देवं सवितारं दुवस्य ।
उप ब्रुवीत नमसा विजानञ्ज्येष्ठं च रत्नं विभजन्तमायोः ॥ २ ॥
अदत्रया दयते वार्याणि पूषा भगो अदितिर्वस्त उस्रः ।
इन्द्रो विष्णुर्वरुणो मित्रो अग्निरहानि भद्रा जनयन्त दस्माः ॥ ३ ॥
तन्नो अनर्वा सविता वरूथं तत्सिन्धव इषयन्तो अनु ग्मन् ।
उप यद्वोचे अध्वरस्य होता रायः स्याम पतयो वाजरत्नाः ॥ ४ ॥
प्र ये वसुभ्य ईवदा नमो दुर्ये मित्रे वरुणे सूक्तवाचः ।
अवैत्वभ्वं कृणुता वरीयो दिवस्पृथिव्योरवसा मदेम ॥ ५ ॥

[५०] पञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—स्वस्त्यात्रेयः ॥ देवता—विश्वे देवाः ॥ छन्दः—१ स्वराडुष्णिक्; २ निचृदुष्णिक्; ३ भुरिगुष्णिक्; ४, ५ निचृदनुष्टुप् ॥ स्वरः—१-३ ऋषभः; ४, ५ गान्धारः ॥

अथ चतुर्थो वर्गः ॥ ४ ॥

विश्वो देवस्य नेतुर्मर्तो वुरीत सख्यम् ।
विश्वो राय इषुध्यति द्युम्नं वृणीत पुष्यसे ॥ १ ॥
ते ते देव नेतर्ये चेमाँ अनुशसे ।
ते राया ते ह्या३पृचे सचेमहि सचथ्यैः ॥ २ ॥
अतो न आ नॄनतिथीनतः पत्नीर्दशस्यत ।
आरे विश्वं पथेष्ठां द्विषो युयोतु यूयुविः ॥ ३ ॥
यत्र वह्निरभिहितो दुद्रवद् द्रोण्यः पशुः ।
नृमणा वीरपस्त्योऽर्णा धीरेव सनिता ॥ ४ ॥
एष ते देव नेता रथस्पतिः शं रयिः ।
शं राये शं स्वस्तय इषःस्तुतो मनामहे देवस्तुतो मनामहे ॥ ५ ॥

[५१] एकपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—स्वस्त्यात्रेयः ॥ देवता—विश्वे देवाः ॥ छन्दः—१ गायत्री; २-४ निचृद्गायत्री; ५, ८-१० निचृद् उष्णिक्; ६ उष्णिक्; ७ विराडुष्णिक्; ११ निचृत्त्रिष्टुप्; १२ त्रिष्टुप्; १३ पङ्क्तिः; १४, १५ अनुष्टुप् ॥ स्वरः—१-४ षड्जः; ५-१० ऋषभः; ११, १२ धैवतः; १३ पञ्चमः; १४, १५ गान्धारः ॥

अथ पञ्चमो वर्गः ॥ ५ ॥

अग्ने सुतस्य पीतये विश्वैरूमेभिरा गहि । देवेभिर्हव्यदातये ॥ १ ॥
ऋतधीतय आ गत सत्यधर्माणो अध्वरम् । अग्नेः पिबत जिह्वया ॥ २ ॥
विप्रेभिर्विप्र सन्त्य प्रातर्यावभिरा गहि । देवेभिः सोमपीतये ॥ ३ ॥
अयं सोमश्चमू सुतोऽमत्रे परि षिच्यते । प्रिय इन्द्राय वायवे ॥ ४ ॥
वायवा याहि वीतये जुषाणो हव्यदातये ।
पिबा सुतस्यान्धसो अभि प्रयः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठो वर्गः ॥ ६ ॥

इन्द्रश्च वायवेषां सुतानां पीतिमर्हथः ।
ताञ्जुषेथामरेपसावभि प्रयः ॥ ६ ॥
सुता इन्द्राय वायवे सोमासो दध्याशिरः ।
निम्नं न यन्ति सिन्धवोऽभि प्रयः ॥ ७ ॥
सजूर्विश्वेभिर्देवेभिरश्विभ्यामुषसा सजूः ।
आ याह्यग्ने अत्रिवत्सुते रण ॥ ८ ॥
सजूर्मित्रावरुणाभ्यां सजूः सोमेन विष्णुना ।
आ याह्यग्ने अत्रिवत्सुते रण ॥ ९ ॥
सजूरादित्यैर्वसुभिः सजूरिन्द्रेण वायुना ।
आ याह्यग्ने अत्रिवत्सुते रण ॥ १० ॥

अथ सप्तमो वर्गः ॥ ७ ॥

स्वस्ति नो मिमीतामश्विना भगः स्वस्ति देव्यदितिरनर्वणः ।
स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः स्वस्ति द्यावापृथिवी सुचेतुना ॥ ११ ॥
स्वस्तये वायुमुप ब्रवामहै सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः ।
बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तय आदित्यासो भवन्तु नः ॥ १२ ॥
विश्वे देवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये ।
देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये स्वस्ति नो रुद्रः पात्वंहसः ॥ १३ ॥
स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति ।
स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्ति नो अदिते कृधि ॥ १४ ॥

स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव ।
पुनर्ददताघ्नता जानता सं गमेमहि ॥ १५ ॥

[५२] द्विपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—श्यावाश्व आत्रेयः ॥ देवता—मरुतः ॥ छन्दः—१, ४, ५, १५ विराडनुष्टुप्; २, ७, १० निचृद् अनुष्टुप्; ३, ९, ११ विराडुष्णिक्; ६ पङ्क्तिः; ८, १२, १३ अनुष्टुप्; १४, १७ बृहती; १६ निचृद्बृहती ॥ स्वरः—१, २, ४, ५, ७, ८, १०, १२, १३, १५ गान्धारः; ३, ९, ११ ऋषभः; ६ पञ्चमः; १४, १६, १७ मध्यमः ॥

अथाष्टमो वर्गः ॥ ८ ॥

प्र श्यावाश्व धृष्णुयार्चा मरुद्भिर्ऋक्वभिः ।
ये अद्रोघमनुष्वधं श्रवो मदन्ति यज्ञियाः ॥ १ ॥
ते हि स्थिरस्य शवसः सखायः सन्ति धृष्णुया ।
ते यामन्ना धृषद्विनस्त्मना पान्ति शश्वतः ॥ २ ॥
ते स्पन्द्रासो नोक्षणोऽति ष्कन्दन्ति शर्वरीः ।
मरुतामधा महो दिवि क्षमा च मन्महे ॥ ३ ॥
मरुत्सु वो दधीमहि स्तोमं यज्ञं च धृष्णुया ।
विश्वे ये मानुषा युगा पान्ति मर्त्यं रिषः ॥ ४ ॥
अर्हन्तो ये सुदानवो नरो असामिशवसः ।
प्र यज्ञं यज्ञियेभ्यो दिवो अर्चा मरुद्भ्यः ॥ ५ ॥

अथ नवमो वर्गः ॥ ९ ॥

आ रुक्मैरा युधा नर ऋष्वा ऋष्टीरसृक्षत ।
अन्वेनाँ अह विद्युतो मरुतो जज्झतीरिव भानुरर्त त्मना दिवः ॥ ६ ॥
ये वावृधन्त पार्थिवा य उरावन्तरिक्ष आ ।
वृजने वा नदीनां सधस्थे वा महो दिवः ॥ ७ ॥
शर्धो मारुतमुच्छंस सत्यशवसमृभ्वसम् ।
उत स्म ते शुभे नरः प्र स्पन्द्रा युजत त्मना ॥ ८ ॥
उत स्म ते परुष्ण्यामूर्णा वसत शुन्ध्यवः ।
उत पव्या रथानामद्रिं भिन्दन्त्योजसा ॥ ९ ॥

आपथयो विपथयोऽन्तस्पथा अनुपथाः ।
एतेभिर्मह्यं नामभिर्यज्ञं विष्टार ओहते ॥ १० ॥

अथ दशमो वर्गः ॥ १० ॥

अधा नरो न्योहतेऽधा नियुत ओहते ।
अधा पारावता इति चित्रा रूपाणि दर्श्या ॥ ११ ॥
छन्दःस्तुभः कुभन्यव उत्समा कीरिणो नृतुः ।
ते मे के चिन्न तायव ऊमा आसन्दृशि त्विषे ॥ १२ ॥
य ऋष्वा ऋष्टिविद्युतः कवयः सन्ति वेधसः ।
तमृषे मारुतं गणं नमस्या रमया गिरा ॥ १३ ॥
अच्छ ऋषे मारुतं गणं दाना मित्रं न योषणा ।
दिवो वा धृष्णव ओजसा स्तुता धीभिरिषण्यत ॥ १४ ॥
नू मन्वान एषां देवाँ अच्छा न वक्षणा ।
दाना सचेत सूरिभिर्यामश्रुतेभिरञ्जिभिः ॥ १५ ॥
प्र ये मे बन्ध्वेषे गां वोचन्त सूरयः पृश्निं वोचन्त मातरम् ।
अधा पितरमिष्मिणं रुद्रं वोचन्त शिक्वसः ॥ १६ ॥
सप्त मे सप्त शाकिन एकमेका शता ददुः ।
यमुनायामधि श्रुतमुद्राधो गव्यं मृजे नि राधो अश्व्यं मृजे ॥ १७ ॥

[५३] त्रिपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—श्यावाश्व आत्रेयः ॥ देवता—मरुतः ॥ छन्दः—१ भुरिग्गायत्री; २ निचृद्बृहती; ३ अनुष्टुप्; ४, ५ उष्णिक्; ६, १६ पङ्क्तिः; ७, १३ निचृत्पङ्क्तिः; ८, १२ गायत्री; ९ स्वराड्बृहती; १०, १५ विराडुष्णिक्; ११ निचृदुष्णिक्; १४ बृहती ॥ स्वरः—१, ८, १२ षड्जः; २, ९, १४ मध्यमः; ३ गान्धारः; ४, ५, १०, ११, १५ ऋषभः; ६, ७, १३, १६ पञ्चमः ॥

अथैकादशो वर्गः ॥ ११ ॥

को वेद जानमेषां को वा पुरा सुम्नेष्वास मरुताम् ।
यद्युयुज्रे किलास्यः ॥ १ ॥
ऐतान्रथेषु तस्थुषः कः शुश्राव कथा ययुः ।
कस्मै सस्रुः सुदासे अन्वापय इळाभिर्वृष्टयः सह ॥ २ ॥

ते म आहुर्य आययुरुप द्युभिर्विभिर्मदे ।
नरो मर्या अरेपस इमान्पश्यन्निति ष्टुहि ॥ ३ ॥
ये अञ्जिषु ये वाशीषु स्वभानवः स्रक्षु रुक्मेषु खादिषु ।
श्राया रथेषु धन्वसु ॥ ४ ॥
युष्माकं स्मा रथाँ अनु मुदे दधे मरुतो जीरदानवः ।
वृष्टी द्यावो यतीरिव ॥ ५ ॥

अथ द्वादशो वर्गः ॥ १२ ॥

आ यं नरः सुदानवो ददाशुषे दिवः कोशमचुच्यवुः ।
वि पर्जन्यं सृजन्ति रोदसी अनु धन्वना यन्ति वृष्टयः ॥ ६ ॥
ततृदानाः सिन्धवः क्षोदसा रजः प्र सस्रुर्धेनवो यथा ।
स्यन्ना अश्वाइवाध्वनो विमोचने वि यद्वर्तन्त एन्यः ॥ ७ ॥
आ यात मरुतो दिव आन्तरिक्षादमादुत । माव स्थात परावतः ॥ ८ ॥
मा वो रसानितभा कुभा क्रुमुर्मा वः सिन्धुर्नि रीरमत् ।
मा वः परि ष्ठात्सरयुः पुरीषिण्यस्मे इत्सुम्नमस्तु वः ॥ ९ ॥
तं वः शर्धं रथानां त्वेषं गणं मारुतं नव्यसीनाम् ।
अनु प्र यन्ति वृष्टयः ॥ १० ॥

अथ त्रयोदशो वर्गः ॥ १३ ॥

शर्धंशर्धं व एषां व्रातंव्रातं गणंगणं सुशस्तिभिः ।
अनु क्रामेम धीतिभिः ॥ ११ ॥
कस्मा अद्य सुजाताय रातहव्याय प्र ययुः ।
एना यामेन मरुतः ॥ १२ ॥
येन तोकाय तनयाय धान्यं बीजं वहध्वे अक्षितम् ।
अस्मभ्यं तद्धत्तन यद्व ईमहे राधो विश्वायु सौभगम् ॥ १३ ॥
अतीयाम निदस्तिरः स्वस्तिभिर्हित्वावद्यमरातीः ।
वृष्ट्वी शं योराप उस्त्रि भेषजं स्याम मरुतः सह ॥ १४ ॥

सुदेवः समहासति सुवीरो नरो मरुतः स मर्त्यः ।
यं त्रायध्वे स्याम ते ॥ १५ ॥
स्तुहि भोजान्त्स्तुवतो अस्य यामनि रणन्गावो न यवसे ।
यतः पूर्वाँइव सखीँरनु ह्वय गिरा गृणीहि कामिनः ॥ १६ ॥

[५४] चतुःपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—श्यावाश्व आत्रेयः ॥ देवता—मरुतः ॥ छन्दः—१, ३, ७, १२ जगती; २ विराड्जगती; ४, ८, १० भुरिक्त्रिष्टुप्; ५, ९, १३, १४ त्रिष्टुप्; ६ भुरिग्जगती; ११, १५ निचृज्जगती ॥ स्वरः—१-३, ६, ७, ११, १२, १५ निषादः; ४, ५, ८-१०, १३, १४ धैवतः ॥

अथ चतुर्दशो वर्गः ॥ १४ ॥

प्र शर्धाय मारुताय स्वभानव इमां वाचमनजा पर्वतच्युते ।
घर्मस्तुभे दिव आ पृष्ठयज्वने द्युम्नश्रवसे महि नृम्णमर्चत ॥ १ ॥
प्र वो मरुतस्तविषा उदन्यवो वयोवृधो अश्वयुजः परिज्रयः ।
सं विद्युता दधति वाशति त्रितः स्वरन्त्यापोऽवना परिज्रयः ॥ २ ॥
विद्युन्महसो नरो अश्मदिद्यवो वातत्विषो मरुतः पर्वतच्युतः ।
अब्दया चिन्मुहुरा ह्रादुनीवृतः स्तनयदमा रभसा उदोजसः ॥ ३ ॥
व्यक्तून्रुद्रा व्यहानि शिक्वसो व्यन्तरिक्षं वि रजांसि धूतयः ।
वि यदज्राँ अजथ नाव ईं यथा वि दुर्गाणि मरुतो नाह रिष्यथ ॥ ४ ॥
तद्वीर्यं वो मरुतो महित्वनं दीर्घं ततान सूर्यो न योजनम् ।
एता न यामे अगृभीतशोचिषोऽनश्वदां यन्न्ययातना गिरिम् ॥ ५ ॥

अथ पञ्चदशो वर्गः ॥ १५ ॥

अभ्राजि शर्धो मरुतो यदर्णसं मोषथा वृक्षं कपनेव वेधसः ।
अध स्मा नो अरमतिं सजोषसश्चक्षुरिव यन्तमनु नेषथा सुगम् ॥ ६ ॥
न स जीयते मरुतो न हन्यते न स्रेधति न व्यथते न रिष्यति ।
नास्य राय उप दस्यन्ति नोतय ऋषिं वा यं राजानं वा सुषूदथ ॥ ७ ॥
नियुत्वन्तो ग्रामजितो यथा नरोऽर्यमणो न मरुतः कवन्धिनः ।
पिन्वन्त्युत्सं यदिनासो अस्वरन्व्युन्दन्ति पृथिवीं मध्वो अन्धसा ॥ ८ ॥

प्रवत्वतीयं पृथिवी मरुद्भ्यः प्रवत्वती द्यौर्भवति प्रयद्भ्यः।
प्रवत्वतीः पथ्या अन्तरिक्ष्याः प्रवत्वन्तः पर्वता जीरदानवः॥ ९ ॥
यन्मरुतः सभरसः स्वर्णरः सूर्य उदिते मदथा दिवो नरः।
न वोऽश्वाः श्रथयन्ताह सिस्रतः सद्यो अस्याध्वनः पारमश्नुथ॥ १० ॥

अथ षोडशो वर्गः ॥ १६ ॥

अंसेषु व ऋष्टयः पत्सु खादयो वक्षःसु रुक्मा मरुतो रथे शुभः।
अग्निभ्राजसो विद्युतो गभस्त्योः शिप्राः शीर्षसु वितता हिरण्ययीः॥ ११ ॥
तं नाकमर्यो अगृभीतशोचिषं रुशत्पिप्पलं मरुतो वि धूनुथ ।
समच्यन्त वृजनातित्विषन्त यत्स्वरन्ति घोषं विततमृतायवः ॥ १२ ॥
युष्मादत्तस्य मरुतो विचेतसो रायः स्याम रथ्यो३ वयस्वतः।
न यो युच्छति तिष्यो३ यथा दिवो३ऽस्मे रारन्त मरुतः सहस्रिणम्॥ १३ ॥
यूयं रयिं मरुतः स्पार्हवीरं यूयमृषिमवथ सामविप्रम् ।
यूयमर्वन्तं भरताय वाजं यूयं धत्थ राजानं श्रुष्टिमन्तम् ॥ १४ ॥
तद्वो यामि द्रविणं सद्यऊतयो येना स्व१र्ण ततनाम नॄँरभि।
इदं सु मे मरुतो हर्यता वचो यस्य तरेम तरसा शतं हिमाः॥ १५ ॥

[५५] पञ्चपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—श्यावाश्व आत्रेयः॥ देवता—मरुतः॥ छन्दः—१, ५ जगती; २, ४, ७, ८ निचृज्जगती; ३ स्वराट्त्रिष्टुप्; ६, १० निचृत्त्रिष्टुप्; ९ विराड्जगती॥ स्वरः—१, २, ४, ५, ७-९ निषादः; ३, ६, १० धैवतः॥

अथ सप्तदशो वर्गः ॥

प्रयज्यवो मरुतो भ्राजदृष्टयो बृहद्वयो दधिरे रुक्मवक्षसः।
ईयन्ते अश्वैः सुयमेभिराशुभिः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत॥ १ ॥
स्वयं दधिध्वे तविषीं यथा विद बृहन्महान्त उर्विया वि राजथ।
उतान्तरिक्षं ममिरे व्योजसा शुभं यातामनु रथा अवृत्सत॥ २ ॥
साकं जाताः सुभ्वः साकमुक्षिताः श्रिये चिदा प्रतरं वावृधुर्नरः।
विरोकिणः सूर्यस्येव रश्मयः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत॥ ३ ॥

आभूषेण्यं वो मरुतो महित्वनं दिदृक्षेण्यं सूर्यस्येव चक्षणम्।
उतो अस्माँ अमृतत्वे दधातन शुभं यातामनु रथा अवृत्सत॥ ४ ॥
उदीरयथा मरुतः समुद्रतो यूयं वृष्टिं वर्षयथा पुरीषिणः।
न वो दस्रा उप दस्यन्ति धेनवः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत॥ ५ ॥

अथ अष्टादशो वर्गः ॥ १८ ॥

यदश्वान्धूर्षु पृषतीरयुग्ध्वं हिरण्ययान्प्रत्यत्काँ अमुग्ध्वम् ।
विश्वा इत्स्पृधो मरुतो व्यस्यथ शुभं यातामनु रथा अवृत्सत॥ ६ ॥
न पर्वता न नद्यो वरन्त वो यत्राचिध्वं मरुतो गच्छथेदु तत्।
उत द्यावापृथिवी याथना परि शुभं यातामनु रथा अवृत्सत॥ ७ ॥
यत्पूर्व्यं मरुतो यच्च नूतनं यदुद्यते वसवो यच्च शस्यते।
विश्वस्य तस्य भवथा नवेदसः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत॥ ८ ॥
मृळत नो मरुतो मा वधिष्टनास्मभ्यं शर्म बहुलं वि यन्तन।
अधि स्तोत्रस्य सख्यस्य गातन शुभं यातामनु रथा अवृत्सत॥ ९ ॥
यूयमस्मान्नयत वस्यो अच्छा निरंहतिभ्यो मरुतो गृणानाः।
जुषध्वं नो हव्यदातिं यजत्रा वयं स्याम पतयो रयीणाम्॥ १० ॥

[५६] षट्पञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—श्यावाश्व आत्रेयः॥ देवता—मरुतः॥ छन्दः—१, २, ५ निचृद्बृहती; ३ विराट्पङ्क्तिः; ४ विराड्बृहती; ६, ७ निचृत्पङ्क्तिः; ८, ९ बृहती॥ स्वरः—१, २, ४, ५, ८, ९ मध्यमः; ३, ६, ७ पञ्चमः॥

अथ एकोनविंशो वर्गः ॥ १९ ॥

अग्ने शर्धन्तमा गणं पिष्टं रुक्मेभिरञ्जिभिः ।
विशो अद्य मरुतामव ह्वये दिवश्चिद्रोचनादधि ॥ १ ॥
यथा चिन्मन्यसे हृदा तदिन्मे जग्मुराशसः ।
ये ते नेदिष्ठं हवनान्यागमन्तान्वर्ध भीमसंदृशः ॥ २ ॥
मीळ्हुष्मतीव पृथिवी पराहता मदन्त्येत्यस्मदा ।
ऋक्षो न वो मरुतः शिमीवाँ अमो दुध्रो गौरिव भीमयुः॥ ३ ॥

नि ये रिणन्त्योजसा वृथा गावो न दुर्धुरः ।
अश्मानं चित्स्वर्यं१ पर्वतं गिरिं प्र च्यावयन्ति यामभिः ॥ ४ ॥
उत्तिष्ठ नूनमेषां स्तोमैः समुक्षितानाम् ।
मरुतां पुरुतममपूर्व्यं गवां सर्गमिव ह्वये ॥ ५ ॥

अथ विंशो वर्गः ॥ २० ॥

युङ्ग्ध्वं ह्यरुषी रथे युङ्ग्ध्वं रथेषु रोहितः ।
युङ्ग्ध्वं हरी अजिरा धुरि वोळ्हवे वहिष्ठा धुरि वोळ्हवे ॥ ६ ॥
उत स्य वाज्यरुषस्तुविष्वणिरिह स्म धायि दर्शतः ।
मा वो यामेषु मरुतश्चिरं करत्प्र तं रथेषु चोदत ॥ ७ ॥
रथं नु मारुतं वयं श्रवस्युमा हुवामहे ।
आ यस्मिन्तस्थौ सुरणानि बिभ्रती सचा मरुत्सु रोदसी ॥ ८ ॥
तं वः शर्धं रथेशुभं त्वेषं पनस्युमा हुवे ।
यस्मिन्सुजाता सुभगा महीयते सचा मरुत्सु मीळ्हुषी ॥ ९ ॥

पञ्चमोऽनुवाकः

[५७] सप्तपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—श्यावाश्व आत्रेयः ॥ देवता—मरुतः ॥ छन्दः—१, ४, ५ जगती; २, ६ विराड्जगती; ३ निचृज्जगती; ७ विराट्त्रिष्टुप्; ८ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१-६ निषादः; ७, ८ धैवतः ॥

अथैकविंशो वर्गः ॥ २१ ॥

आ रुद्रास इन्द्रवन्तः सजोषसो हिरण्यरथाः सुविताय गन्तन ।
इयं वो अस्मत्प्रति हर्यते मतिस्तृष्णजे न दिव उत्सा उदन्यवे ॥ १ ॥
वाशीमन्त ऋष्टिमन्तो मनीषिणः सुधन्वान इषुमन्तो निषङ्गिणः ।
स्वश्वाः स्थ सुरथाः पृश्निमातरः स्वायुधा मरुतो याथना शुभम् ॥ २ ॥
धूनुथ द्यां पर्वतान्दाशुषे वसु नि वो वना जिहते यामनो भिया ।
कोपयथ पृथिवीं पृश्निमातरः शुभे यदुग्राः पृषतीरयुग्ध्वम् ॥ ३ ॥
वातत्विषो मरुतो वर्षनिर्णिजो यमाइव सुसदृशः सुपेशसः ।
पिशङ्गाश्वा अरुणाश्वा अरेपसः प्रत्वक्षसो महिना द्यौरिवोरवः ॥ ४ ॥

पुरुद्रप्सा अञ्जिमन्तः सुदानवस्त्वेषसंदृशो अनवभ्रराधसः ।
सुजातासो जनुषा रुक्मवक्षसो दिवो अर्का अमृतं नाम भेजिरे ॥ ५ ॥

अथ द्वाविंशो वर्गः ॥ २२ ॥

ऋष्टयो वो मरुतो अंसयोरधि सह ओजो बाह्वोर्वो बलं हितम् ।
नृम्णा शीर्षस्वायुधा रथेषु वो विश्वा वः श्रीरधि तनूषु पिपिशे ॥ ६ ॥
गोमदश्वावद्रथवत्सुवीरं चन्द्रवद्राधो मरुतो ददा नः ।
प्रशस्तिं नः कृणुत रुद्रियासो भक्षीय वोऽवसो दैव्यस्य ॥ ७ ॥
हये नरो मरुतो मृळता नस्तुवीमघासो अमृता ऋतज्ञाः ।
सत्यश्रुतः कवयो युवानो बृहद्गिरयो बृहदुक्षमाणाः ॥ ८ ॥

[५८] अष्टपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—श्यावाश्व आत्रेयः ॥ देवता—मरुतः ॥ छन्दः—१, ३, ४, ६, ८ निचृत्त्रिष्टुप्; २, ५ त्रिष्टुप्; ७ भुरिक्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१-६, ८ धैवतः; ७ पञ्चमः ॥

अथ त्रयोविंशो वर्गः ॥ २३ ॥

तमु नूनं तविषीमन्तमेषां स्तुषे गणं मारुतं नव्यसीनाम् ।
य आश्वश्वा अमवद्वहन्त उतेशिरे अमृतस्य स्वराजः ॥ १ ॥
त्वेषं गणं तवसं खादिहस्तं धुनिव्रतं मायिनं दातिवारम् ।
मयोभुवो ये अमिता महित्वा वन्दस्व विप्र तुविराधसो नॄन् ॥ २ ॥
आ वो यन्तूदवाहासो अद्य वृष्टिं ये विश्वे मरुतो जुनन्ति ।
अयं यो अग्निर्मरुतः समिद्ध एतं जुषध्वं कवयो युवानः ॥ ३ ॥
यूयं राजानमिर्यं जनाय विभ्वतष्टं जनयथा यजत्राः ।
युष्मदेति मुष्टिहा बाहुजूतो युष्मत्सदश्वो मरुतः सुवीरः ॥ ४ ॥
अराइवेदचरमा अहेव प्रप्र जायन्ते अकवा महोभिः ।
पृश्नेः पुत्रा उपमासो रभिष्ठाः स्वया मत्या मरुतः सं मिमिक्षुः ॥ ५ ॥
यत्प्रायासिष्ट पृषतीभिरश्वैर्वीळुपविभिर्मरुतो रथेभिः ।
क्षोदन्त आपो रिणते वनान्यवोस्रियो वृषभः क्रन्दतु द्यौः ॥ ६ ॥
प्रथिष्ट यामन्पृथिवी चिदेषां भर्तेव गर्भं स्वमिच्छवो धुः ।
वातान्ह्यश्वान्धुर्यायुयुज्रे वर्षं स्वेदं चक्रिरे रुद्रियासः ॥ ७ ॥

हये नरो मरुतो मृळता नस्तुवीमघासो अमृता ऋतज्ञाः ।
सत्यश्रुतः कवयो युवानो बृहद्गिरयो बृहदुक्षमाणाः ॥ ८ ॥

[५९] एकोनषष्टीतमं सूक्तम्

ऋषिः—श्यावाश्व आत्रेयः ॥ देवता—मरुतः ॥ छन्दः—१, ४ विराड्जगती; २, ३, ६ निचृज्जगती; ५ जगती; ७ स्वराट्त्रिष्टुप्; ८ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१-६ निषादः; ७, ८ धैवतः ॥

अथ चतुर्विंशो वर्गः ॥ २४ ॥

प्र वः स्पळक्रन्त्सुविताय दावनेऽर्चा दिवे प्र पृथिव्या ऋतं भरे ।
उक्षन्ते अश्वान्तरुषन्त आ रजोऽनु स्वं भानुं श्रथयन्ते अर्णवैः ॥ १ ॥
अमादेषां भियसा भूमिरेजति नौर्न पूर्णा क्षरति व्यथिर्यती ।
दूरेदृशो ये चितयन्त एमभिरन्तर्महे विदथे येतिरे नरः ॥ २ ॥
गवामिव श्रियसे शृङ्गमुत्तमं सूर्यो न चक्षू रजसो विसर्जने ।
अत्याइव सुभ्व१श्चारवः स्थन मर्याइव श्रियसे चेतथा नरः ॥ ३ ॥
को वो महान्ति महतामुदश्नवत्कस्काव्या मरुतः को ह पौंस्या ।
यूयं ह भूमिं किरणं न रेजथ प्र यद्भरध्वे सुविताय दावने ॥ ४ ॥
अश्वाइवेदरुषासः सबन्धवः शूराइव प्रयुधः प्रोत युयुधुः ।
मर्याइव सुवृधो वावृधुर्नरः सूर्यस्य चक्षुः प्र मिनन्ति वृष्टिभिः ॥ ५ ॥
ते अज्येष्ठा अकनिष्ठास उद्भिदोऽमध्यमासो महसा वि वावृधुः ।
सुजातासो जनुषा पृश्निमातरो दिवो मर्या आ नो अच्छा जिगातन ॥ ६ ॥
वयो न ये श्रेणीः पप्तुरोजसान्तान्दिवो बृहतः सानुनस्परि ।
अश्वास एषामुभये यथा विदुः प्र पर्वतस्य नभनूँरचुच्यवुः ॥ ७ ॥
मिमातु द्यौरदितिर्वीतये नः सं दानुचित्रा उषसो यतन्ताम् ।
आचुच्यवुर्दिव्यं कोशमेत ऋषे रुद्रस्य मरुतो गृणानाः ॥ ८ ॥

[६०] षष्टीतमं सूक्तम्

ऋषिः—श्यावाश्व आत्रेयः ॥ देवता—मरुतो वाग्निश्च ॥ छन्दः—१, ३-५ निचृत्त्रिष्टुप्; २ भुरिक्त्रिष्टुप्; ६ विराट्त्रिष्टुप्; ७, ८ जगती ॥ स्वरः—१-६ धैवतः; ७, ८ निषादः ॥

अथ पञ्चविंशो वर्गः ॥ २५ ॥

ईळे अग्निं स्ववसं नमोभिरिह प्रसत्तो वि चयत्कृतं नः ।
रथैरिव प्र भरे वाजयद्भिः प्रदक्षिणिन्मरुतां स्तोममृध्याम् ॥ १ ॥
आ ये तस्थुः पृषतीषु श्रुतासु सुखेषु रुद्रा मरुतो रथेषु ।
वना चिदुग्रा जिहते नि वो भिया पृथिवी चिद्रेजते पर्वतश्चित् ॥ २ ॥
पर्वतश्चिन्महि वृद्धो बिभाय दिवश्चित्सानु रेजत स्वने वः ।
यत्क्रीळथ मरुत ऋष्टिमन्त आपइव सध्र्यञ्चो धवध्वे ॥ ३ ॥
वराइवेद्रैवतासो हिरण्यैरभि स्वधाभिस्तन्वः पिपिश्रे ।
श्रिये श्रेयांसस्तवसो रथेषु सत्रा महांसि चक्रिरे तनूषु ॥ ४ ॥
अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय ।
युवा पिता स्वपा रुद्र एषां सुदुघा पृश्निः सुदिना मरुद्भ्यः ॥ ५ ॥
यदुत्तमे मरुतो मध्यमे वा यद्वावमे सुभगासो दिवि ष्ठ ।
अतो नो रुद्रा उत वा न्व१स्याग्ने वित्ताद्धविषो यद्यजाम ॥ ६ ॥
अग्निश्च यन्मरुतो विश्ववेदसो दिवो वहध्व उत्तरादधि ष्णुभिः ।
ते मन्दसाना धुनयो रिशादसो वामं धत्त यजमानाय सुन्वते ॥ ७ ॥
अग्ने मरुद्भिः शुभयद्भिर्ऋक्वभिः सोमं पिब मन्दसानो गणश्रिभिः ।
पावकेभिर्विश्वमिन्वेभिरायुभिर्वैश्वानर प्रदिवा केतुना सजूः ॥ ८ ॥

[६१] एकषष्टीतमं सूक्तम्

ऋषिः—श्यावाश्व आत्रेयः ॥ देवता—१-४, ११-१६ मरुतः; ५-८ शशीयसी तरन्तमहिषी; ९ पुरुमीळ्हो वैददश्विः; १० तरन्तो वैददश्विः; १७, १८, १९ रथवीतिर्दार्भ्यः ॥ छन्दः—१-४, ६-८, १०-१९ गायत्री; ५ अनुष्टुप्; ९ सतोबृहती ॥ स्वरः—१-४, ६-८, १०-१९ षड्जः; ५ गान्धारः; ९ मध्यमः ॥

अथ षड्विंशो वर्गः ॥ २६ ॥

के ष्ठा नरः श्रेष्ठतमा य एकएक आयय । परमस्याः परावतः ॥ १ ॥
क्व१ वोऽश्वाः क्वा३भीशवः कथं शेक कथा यय । पृष्ठे सदो नसोर्यमः ॥ २ ॥
जघने चोद एषां वि सक्थानि नरो यमुः । पुत्रकृथे न जनयः ॥ ३ ॥
परा वीरास एतन मर्यासो भद्रजानयः । अग्नितपो यथासथ ॥ ४ ॥

सनत्साश्व्यं पशुमुत गव्यं शतावयम् ।
श्यावाश्वस्तुताय या दोर्वीरायोपबर्बृहत् ॥ ५ ॥

अथ सप्तविंशो वर्गः ॥ २७ ॥

उत त्वा स्त्री शशीयसी पुंसो भवति वस्यसी । अदेवत्रादराधसः ॥ ६ ॥
वि या जानाति जसुरिं वि तृष्यन्तं वि कामिनम् । देवत्रा कृणुते मनः ॥ ७ ॥
उत घा नेमो अस्तुतः पुमाँ इति ब्रुवे पणिः । स वैरदेय इत्समः ॥ ८ ॥
उत मेऽरपद्युवतिर्ममन्दुषी प्रति श्यावाय वर्तनिम् ।
वि रोहिता पुरुमीळ्हाय येमतुर्विप्राय दीर्घयशसे ॥ ९ ॥
यो मे धेनूनां शतं वैददश्विर्यथा ददत् । तरन्तइव मंहना ॥ १० ॥

अथाष्टाविंशो वर्गः ॥ २८ ॥

य ईं वहन्त आशुभिः पिबन्तो मदिरं मधु । अत्र श्रवांसि दधिरे ॥ ११ ॥
येषां श्रियाधि रोदसी विभ्राजन्ते रथेष्वा । दिवि रुक्मइवोपरि ॥ १२ ॥
युवा स मारुतो गणस्त्वेषरथो अनेद्यः । शुभंयावाप्रतिष्कुतः ॥ १३ ॥
को वेद नूनमेषां यत्रा मदन्ति धूतयः । ऋतजाता अरेपसः ॥ १४ ॥
यूयं मर्तं विपन्यवः प्रणेतार इत्था धिया । श्रोतारो यामहूतिषु ॥ १५ ॥

अथैकोनत्रिंशो वर्गः ॥ २९ ॥

ते नो वसूनि काम्या पुरुश्चन्द्रा रिशादसः । आ यज्ञियासो ववृत्तन ॥ १६ ॥
एतं मे स्तोममूर्म्ये दार्भ्याय परा वह । गिरो देवि रथीरिव ॥ १७ ॥
उत मे वोचतादिति सुतसोमे रथवीतौ । न कामो अप वेति मे ॥ १८ ॥
एष क्षेति रथवीतिर्मघवा गोमतीरनु । पर्वतेष्वपश्रितः ॥ १९ ॥

[६२] द्विषष्टीतमं सूक्तम्

ऋषिः—श्रुतविदात्रेयः ॥ देवता—मित्रावरुणौ ॥ छन्दः—१, २ त्रिष्टुप्; ३-६ निचृत्त्रिष्टुप्; ७-९ विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

अथ त्रिंशो वर्गः ॥ ३० ॥

ऋतेन ऋतमपिहितं ध्रुवं वां सूर्यस्य यत्र विमुचन्त्यश्वान् ।
दश शता सह तस्थुस्तदेकं देवानां श्रेष्ठं वपुषामपश्यम् ॥ १ ॥

तत्सु वां मित्रावरुणा महित्वमीर्मा तस्थुषीरहभिर्दुदुह्रे ।
विश्वाः पिन्वथः स्वसरस्य धेना अनु वामेकः पविरा ववर्त ॥ २ ॥
अधारयतं पृथिवीमुत द्यां मित्रराजाना वरुणा महोभिः ।
वर्धयतमोषधीः पिन्वतं गा अव वृष्टिं सृजतं जीरदानू ॥ ३ ॥
आ वामश्वासः सुयुजो वहन्तु यतरश्मय उप यन्त्वर्वाक् ।
घृतस्य निर्णिगनु वर्तते वामुप सिन्धवः प्रदिवि क्षरन्ति ॥ ४ ॥
अनु श्रुताममतिं वर्धदुर्वीं बर्हिरिव यजुषा रक्षमाणा ।
नमस्वन्ता धृतदक्षाधि गर्ते मित्रासाथे वरुणेळास्वन्तः ॥ ५ ॥

अथ एकत्रिंशो वर्गः ॥ ३१ ॥

अक्रविहस्ता सुकृते परस्पा यं त्रासाथे वरुणेळास्वन्तः ।
राजाना क्षत्रमहृणीयमाना सहस्रस्थूणं बिभृथः सह द्वौ ॥ ६ ॥
हिरण्यनिर्णिगयो अस्य स्थूणा वि भ्राजते दिव्य१श्वाजनीव ।
भद्रे क्षेत्रे निमिता तिल्विले वा सनेम मध्वो अधिगर्त्यस्य ॥ ७ ॥
हिरण्यरूपमुषसो व्युष्टावयःस्थूणमुदिता सूर्यस्य ।
आ रोहथो वरुण मित्र गर्तमतश्चक्षाथे अदितिं दितिं च ॥ ८ ॥
यद्बंहिष्ठं नातिविधे सुदानू अच्छिद्रं शर्म भुवनस्य गोपा ।
तेन नो मित्रावरुणावविष्टं सिषासन्तो जिगीवांसः स्याम ॥ ९ ॥

इति चतुर्थाष्टके तृतीयोऽध्यायः ॥

अथ चतुर्थाष्टके चतुर्थोऽध्यायः

[६३] त्रिषष्टीतमं सूक्तम्

ऋषिः—अर्चनाना आत्रेयः ॥ देवता—मित्रावरुणौ ॥ छन्दः—१, २, ४, ७ निचृज्जगती; ३, ५, ६ जगती ॥ स्वरः—निषादः ॥

अथ प्रथमो वर्गः ॥ १ ॥

ऋतस्य गोपावधि तिष्ठथो रथं सत्यधर्माणा परमे व्योमनि ।
यमत्र मित्रावरुणावथो युवं तस्मै वृष्टिर्मधुमत्पिन्वते दिवः ॥ १ ॥

सम्राजावस्य भुवनस्य राजथो मित्रावरुणा विदथे स्वर्दृशा ।
वृष्टिं वां राधो अमृतत्वमीमहे द्यावापृथिवी वि चरन्ति तन्यवः ॥ २ ॥
सम्राजा उग्रा वृषभा दिवस्पती पृथिव्या मित्रावरुणा विचर्षणी ।
चित्रेभिरभ्रैरुप तिष्ठथो रवं द्यां वर्षयथो असुरस्य मायया ॥ ३ ॥
माया वां मित्रावरुणा दिवि श्रिता सूर्यो ज्योतिश्चरति चित्रमायुधम् ।
तमभ्रेण वृष्ट्या गूहथो दिवि पर्जन्य द्रप्सा मधुमन्त ईरते ॥ ४ ॥
रथं युञ्जते मरुतः शुभे सुखं शूरो न मित्रावरुणा गविष्टिषु ।
रजांसि चित्रा वि चरन्ति तन्यवो दिवः सम्राजा पयसा न उक्षतम् ॥ ५ ॥
वाचं सु मित्रावरुणाविरावतीं पर्जन्यश्चित्रां वदति त्विषीमतीम् ।
अभ्रा वसत मरुतः सु मायया द्यां वर्षयतमरुणामरेपसम् ॥ ६ ॥
धर्मणा मित्रावरुणा विपश्चिता व्रता रक्षेथे असुरस्य मायया ।
ऋतेन विश्वं भुवनं वि राजथः सूर्यमा धत्थो दिवि चित्र्यं रथम् ॥ ७ ॥

[६४] चतुःषष्टीतमं सूक्तम्

ऋषिः—अर्चनाना आत्रेयः ॥ देवता—मित्रावरुणौ ॥ छन्दः—१, २ विराडनुष्टुप्; ३, ५ भुरिगुष्णिक्; ४ उष्णिक्; ६ निचृदनुष्टुप्; ७ निचृत्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१, २, ६ गान्धारः; ३-५ ऋषभः; ७ पञ्चमः ॥

अथ द्वितीयो वर्गः ॥ २ ॥

वरुणं वो रिशादसमृचा मित्रं हवामहे ।
परि व्रजेव बाह्वोर्जगन्वांसा स्वर्णरम् ॥ १ ॥
ता बाहवा सुचेतुना प्र यन्तमस्मा अर्चते ।
शेवं हि जार्यं वां विश्वासु क्षासु जोगुवे ॥ २ ॥
यन्नूनमश्यां गतिं मित्रस्य यायां पथा ।
अस्य प्रियस्य शर्मण्यहिंसानस्य सश्चिरे ॥ ३ ॥
युवाभ्यां मित्रावरुणोपमं धेयामृचा ।
यद्ध क्षये मघोनां स्तोतॄणां च स्पूर्धसे ॥ ४ ॥

आ नो मित्र सुदीतिभिर्वरुणश्च सधस्थ आ ।
स्वे क्षये मघोनां सखीनां च वृधसे ॥ ५ ॥
युवं नो येषु वरुण क्षत्रं बृहच्च बिभृथः ।
उरु णो वाजसातये कृतं राये स्वस्तये ॥ ६ ॥
उच्छन्त्यां मे यजता देवक्षत्रे रुशद्गवि ।
सुतं सोमं न हस्तिभिरा पड्भिर्धावतं नरा बिभ्रतावर्चनानसम् ॥ ७ ॥

[६५] पञ्चषष्टीतमं सूक्तम्

ऋषिः—रातहव्य आत्रेयः ॥ देवता—मित्रावरुणौ ॥ छन्दः—१, ४ अनुष्टुप्; २ निचृदनुष्टुप्; ३ स्वराडुष्णिक्; ५ भुरिगुष्णिक्; ६ विराट्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१, २, ४ गान्धारः; ३, ५ ऋषभः; ६ पञ्चमः ॥

अथ तृतीयो वर्गः ॥ ३ ॥

यश्चिकेत स सुक्रतुर्देवत्रा स ब्रवीतु नः ।
वरुणो यस्य दर्शतो मित्रो वा वनते गिरः ॥ १ ॥
ता हि श्रेष्ठवर्चसा राजाना दीर्घश्रुत्तमा ।
ता सत्पती ऋतावृध ऋतावाना जनेजने ॥ २ ॥
ता वामियानोऽवसे पूर्वा उप ब्रुवे सचा ।
स्वश्वासः सु चेतुना वाजाँ अभि प्रदावने ॥ ३ ॥
मित्रो अंहोश्चिदादुरु क्षयाय गातुं वनते ।
मित्रस्य हि प्रतूर्वतः सुमतिरस्ति विधतः ॥ ४ ॥
वयं मित्रस्यावसि स्याम सप्रथस्तमे ।
अनेहसस्त्वोतयः सत्रा वरुणशेषसः ॥ ५ ॥
युवं मित्रेमं जनं यतथः सं च नयथः ।
मा मघोनः परि ख्यतं मो अस्माकमृषीणां गोपीथे न उरुष्यतम् ॥ ६ ॥

[६६] षट्षष्टीतमं सूक्तम्

ऋषिः—रातहव्य आत्रेयः ॥ देवता—मित्रावरुणौ ॥ छन्दः—१, ५, ६ विराडनुष्टुप्; २ निचृदनुष्टुप्; ३, ४ स्वराडनुष्टुप् ॥ स्वरः—गान्धारः ॥

अथ चतुर्थो वर्गः ॥ ४ ॥

आ चिकितान सुक्रतू देवौ मर्त रिशादसा ।
वरुणाय ऋतपेशसे दधीत प्रयसे महे ॥ १ ॥
ता हि क्षत्रमविह्रुतं सम्यगसुर्य१माशाते ।
अध व्रतेव मानुषं स्व१र्ण धायि दर्शतम् ॥ २ ॥
ता वामेषे रथानामुर्वीं गव्यूतिमेषाम् ।
रातहव्यस्य सुष्टुतिं दधृक्स्तोमैर्मनामहे ॥ ३ ॥
अधा हि काव्या युवं दक्षस्य पूर्भिरद्भुता ।
नि केतुना जनानां चिकेथे पूतदक्षसा ॥ ४ ॥
तदृतं पृथिवि बृहच्छ्रव एष ऋषीणाम् ।
ज्रयसानावरं पृथ्वति क्षरन्ति यामभिः ॥ ५ ॥
आ यद्वामीयचक्षसा मित्र वयं च सूरयः ।
व्यचिष्ठे बहुपाय्ये यतेमहि स्वराज्ये ॥ ६ ॥

[६७] सप्तषष्टीतमं सूक्तम्

ऋषिः—यजत आत्रेयः ॥ देवता—मित्रावरुणौ ॥ छन्दः—१, २, ४ निचृदनुष्टुप्;
३, ५ विराडनुष्टुप् ॥ स्वरः—गान्धारः ॥

अथ पञ्चमो वर्गः ॥ ५ ॥

बळित्था देव निष्कृतमादित्या यजतं बृहत् ।
वरुण मित्रार्यमन्वर्षिष्ठं क्षत्रमाशाथे ॥ १ ॥
आ यद्योनिं हिरण्ययं वरुण मित्र सदथः ।
धर्तारा चर्षणीनां यन्तं सुम्नं रिशादसा ॥ २ ॥
विश्वे हि विश्ववेदसो वरुणो मित्रो अर्यमा ।
व्रता पदेव सश्चिरे पान्ति मर्त्यं रिषः ॥ ३ ॥
ते हि सत्या ऋतस्पृश ऋतावानो जनेजने ।
सुनीथासः सुदानवोंऽहोश्चिदुरुचक्रयः ॥ ४ ॥
को नु वां मित्रास्तुतो वरुणो वा तनूनाम् ।
तत्सु वामेषते मतिरत्रिभ्य एषते मतिः ॥ ५ ॥

[६८] अष्टषष्टीतमं सूक्तम्

ऋषिः—यजत आत्रेयः ॥ देवता—मित्रावरुणौ ॥ छन्दः—१, २ गायत्री;
३, ४ निचृद्गायत्री; ५ विराड्गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

अथ षष्ठो वर्गः ॥ ६ ॥

प्र वो मित्राय गायत वरुणाय विपा गिरा । महिक्षत्रावृतं बृहत् ॥ १ ॥
सम्राजा या घृतयोनी मित्रश्चोभा वरुणश्च । देवा देवेषु प्रशस्ता ॥ २ ॥
ता नः शक्तं पार्थिवस्य महो रायो दिव्यस्य । महि वां क्षत्रं देवेषु ॥ ३ ॥
ऋतमृतेन सपन्तेषिरं दक्षमाशाते । अद्रुहा देवौ वर्धेते ॥ ४ ॥
वृष्टिद्यावा रीत्यापेषस्पती दानुमत्याः । बृहन्तं गर्तमाशाते ॥ ५ ॥

[६९] एकोनसप्ततितमं सूक्तम्

ऋषिः—उरुचक्रिरात्रेयः ॥ देवता—मित्रावरुणौ ॥ छन्दः—१, २ निचृत्त्रिष्टुप्;
३, ४ विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

अथ सप्तमो वर्गः ॥ ७ ॥

त्री रोचना वरुण त्रीँरुत द्यून्त्रीणि मित्र धारयथो रजांसि ।
वावृधानावमतिं क्षत्रियस्यानु व्रतं रक्षमाणावजुर्यम् ॥ १ ॥
इरावतीर्वरुण धेनवो वां मधुमद्वां सिन्धवो मित्र दुह्रे ।
त्रयस्तस्थुर्वृषभासस्तिसृणां धिषणानां रेतोधा वि द्युमन्तः ॥ २ ॥
प्रातर्देवीमदितिं जोहवीमि मध्यन्दिन उदिता सूर्यस्य ।
राये मित्रावरुणा सर्वतातेळे तोकाय तनयाय शं योः ॥ ३ ॥
या धर्तारा रजसो रोचनस्योतादित्या दिव्या पार्थिवस्य ।
न वां देवा अमृता आ मिनन्ति व्रतानि मित्रावरुणा ध्रुवाणि ॥ ४ ॥

[७०] सप्ततितमं सूक्तम्

ऋषिः—उरुचक्रिरात्रेयः ॥ देवता—मित्रावरुणौ ॥ छन्दः—गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

अथाष्टमो वर्गः ॥ ८ ॥

पुरूरुणा चिद्ध्यस्त्यवो नूनं वां वरुण । मित्र वंसि वां सुमतिम् ॥ १ ॥
ता वां सम्यगद्रुह्वाणेषमश्याम धायसे । वयं ते रुद्रा स्याम ॥ २ ॥
पातं नो रुद्रा पायुभिरुत त्रायेथां सुत्रात्रा । तुर्याम दस्यून्तनूभिः ॥ ३ ॥

मा कस्याद्भुतक्रतू यक्षं भुजेमा तनूभिः। मा शेषसा मा तनसा ॥ ४ ॥

[७१] एकसप्ततितमं सूक्तम्

ऋषिः—बाहुवृक्त आत्रेयः ॥ देवता—मित्रावरुणौ ॥ छन्दः—गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

अथ नवमो वर्गः ॥ ९ ॥

आ नो गन्तं रिशादसा वरुण मित्र बर्हणा। उपेमं चारुमध्वरम् ॥ १ ॥
विश्वस्य हि प्रचेतसा वरुण मित्र राजथः। ईशाना पिप्यतं धियः ॥ २ ॥
उप नः सुतमा गतं वरुण मित्र दाशुषः। अस्य सोमस्य पीतये ॥ ३ ॥

[७२] द्विसप्ततितमं सूक्तम्

ऋषिः—बाहुवृक्त आत्रेयः ॥ देवता—मित्रावरुणौ ॥ छन्दः—उष्णिक् ॥ स्वरः—ऋषभः ॥

अथ दशमो वर्गः ॥ १० ॥

आ मित्रे वरुणे वयं गीर्भिर्जुहुमो अत्रिवत्। नि बर्हिषि सदतं सोमपीतये ॥ १ ॥
व्रतेन स्थो ध्रुवक्षेमा धर्मणा यातयज्जना। नि बर्हिषि सदतं सोमपीतये ॥ २ ॥
मित्रश्च नो वरुणश्च जुषेतां यज्ञमिष्टये। नि बर्हिषि सदतां सोमपीतये ॥ ३ ॥

षष्ठोऽनुवाकः

[७३] त्रिसप्ततितमं सूक्तम्

ऋषिः—पौर आत्रेयः ॥ देवता—अश्विनौ ॥ छन्दः—१, २, ४, ५, ७ निचृदनुष्टुप्; ३, ६, ८, ९ अनुष्टुप्; १० विराडनुष्टुप् ॥ स्वरः—गान्धारः ॥

अथैकादशो वर्गः ॥ ११ ॥

यदद्य स्थः परावति यदर्वावत्यश्विना ।
यद्वा पुरू पुरुभुजा यदन्तरिक्ष आ गतम् ॥ १ ॥
इह त्या पुरुभूतमा पुरू दंसांसि बिभ्रता ।
वरस्या याम्यध्रिगू हुवे तुविष्टमा भुजे ॥ २ ॥
ईर्मान्यद्वपुषे वपुश्चक्रं रथस्य येमथुः ।
पर्यन्या नाहुषा युगा मह्ना रजांसि दीयथः ॥ ३ ॥
तदू षु वामेना कृतं विश्वा यद्वामनु ष्टवे ।
नाना जातावरेपसा समस्मे बन्धुमेयथुः ॥ ४ ॥
आ यद्वां सूर्या रथं तिष्ठद्रघुष्यदं सदा ।
परि वामरुषा वयो घृणा वरन्त आतपः ॥ ५ ॥

अथ द्वादशो वर्गः ॥ १२ ॥

युवोरत्रिश्चिकेतति नरा सुम्नेन चेतसा ।
घर्मं यद्वामरेपसं नासत्यास्ना भुरण्यति ॥ ६ ॥
उग्रो वां ककुहो ययिः शृण्वे यामेषु सन्तनिः ।
यद्वां दंसोभिरश्विनात्रिर्नरावर्वर्तति ॥ ७ ॥
मध्व ऊ षु मधूयुवा रुद्रा सिषक्ति पिप्युषी ।
यत्समुद्राति पर्षथः पक्वाः पृक्षो भरन्त वाम् ॥ ८ ॥
सत्यमिद्वा उ अश्विना युवामाहुर्मयोभुवा ।
ता यामन्यामहूतमा यामन्ना मृळयत्तमा ॥ ९ ॥
इमा ब्रह्माणि वर्धनाश्विभ्यां सन्तु शन्तमा ।
या तक्षाम रथाँ इवावोचाम बृहन्नमः ॥ १० ॥

[७४] चतुःसप्ततितमं सूक्तम्

ऋषिः—पौर आत्रेयः ॥ देवता—अश्विनौ ॥ छन्दः—१, २, १० विराडनुष्टुप्; ३ अनुष्टुप्; ४-६, ९, निचृदनुष्टुप्; ७ विराडुष्णिक्; ८ निचृदुष्णिक् ॥ स्वरः—१-६, ९, १० गान्धारः; ७, ८ ऋषभः ॥

अथ त्रयोदशो वर्गः ॥ १३ ॥

कूष्ठो देवावश्विनाद्या दिवो मनावसू ।
तच्छ्रवथो वृषणवसू अत्रिर्वामा विवासति ॥ १ ॥
कुह त्या कुह नु श्रुता दिवि देवा नासत्या ।
कस्मिन्ना यतथो जने को वां नदीनां सचा ॥ २ ॥
कं याथः कं ह गच्छथः कमच्छा युञ्जाथे रथम् ।
कस्य ब्रह्माणि रण्यथो वयं वामुश्मसीष्टये ॥ ३ ॥
पौरं चिद्ध्युदप्रुतं पौर पौराय जिन्वथः ।
यदीं गृभीततातये सिंहमिव द्रुहस्पदे ॥ ४ ॥
प्र च्यवानाज्जुजुरुषो वव्रिमत्कं न मुञ्चथः ।
युवा यदी कृथः पुनरा काममृण्वे वध्वः ॥ ५ ॥

अथ चतुर्दशो वर्गः ॥ १४ ॥

अस्ति हि वामिह स्तोता स्मसि वां सन्दृशि श्रिये ।
नू श्रुतं म आ गतमवोभिर्वाजिनीवसू ॥ ६ ॥
को वामद्य पुरूणामा वव्ने मर्त्यानाम् ।
को विप्रो विप्रवाहसा को यज्ञैर्वाजिनीवसू ॥ ७ ॥
आ वां रथो रथानां येष्ठो यात्वश्विना ।
पुरू चिदस्मयुस्तिर आङ्गूषो मर्त्येष्वा ॥ ८ ॥
शमू षु वां मधूयुवास्माकमस्तु चर्कृतिः ।
अर्वाचीना विचेतसा विभिः श्येनेव दीयतम् ॥ ९ ॥
अश्विना यद्ध कर्हि चिच्छुश्रूयातमिमं हवम् ।
वस्वीरू षु वां भुजः पृञ्चन्ति सु वां पृचः ॥ १० ॥

[७५] पञ्चसप्ततितमं सूक्तम्

ऋषिः—अवस्युरात्रेयः ॥ देवता—अश्विनौ ॥ छन्दः—१,३ पङ्क्तिः; २, ४, ६-८ निचृत्पङ्क्तिः; ५ स्वराट्पङ्क्तिः; ९ विराट्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—पञ्चमः ॥

अथ पञ्चदशो वर्गः ॥ १५ ॥

प्रति प्रियतमं रथं वृषणं वसुवाहनम् ।
स्तोता वामश्विनावृषिः स्तोमेन प्रति भूषति माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ १ ॥
अत्यायातमश्विना तिरो विश्वा अहं सना ।
दस्रा हिरण्यवर्तनी सुषुम्ना सिन्धुवाहसा माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ २ ॥
आ नो रत्नानि बिभ्रतावश्विना गच्छतं युवम् ।
रुद्रा हिरण्यवर्तनी जुषाणा वाजिनीवसू माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ ३ ॥
सुष्टुभो वां वृषण्वसू रथे वाणीच्याहिता ।
उत वां ककुहो मृगः पृक्षः कृणोति वापुषो माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ ४ ॥
बोधिन्मनसा रथ्येषिरा हवनश्रुता ।
विभिश्च्यवानमश्विना नि याथो अद्वयाविनं माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ ५ ॥

अथ षोडशो वर्गः ॥ १६ ॥

आ वां नरा मनोयुजोऽश्वासः प्रुषितप्सवः ।
वयो वहन्तु पीतये सह सुम्नेभिरश्विना माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ ६ ॥

अश्विनावेह गच्छतं नासत्या मा वि वेनतम् ।
तिरश्चिदर्यया परि वर्तिर्यातमदाभ्या माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ ७ ॥
अस्मिन्यज्ञे अदाभ्या जरितारं शुभस्पती ।
अवस्युमश्विना युवं गृणन्तमुप भूषथो माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ ८ ॥
अभूदुषा रुशत्पशुराग्निरधाय्यृत्वियः ।
अयोजि वां वृषण्वसू रथो दस्रावमर्त्यो माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ ९ ॥

[७६] षट्सप्ततितमं सूक्तम्

ऋषिः—अत्रिः ॥ देवता—अश्विनौ ॥ छन्दः—१,२ स्वराट्पङ्क्तिः; ३-५ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१, २ पञ्चमः; ३-५ धैवतः ॥

अथ सप्तदशो वर्गः ॥ १७ ॥

आ भात्यग्निरुषसामनीकमुद्विप्राणां देवया वाचो अस्थुः ।
अर्वाञ्चा नूनं रथ्येह यातं पीपिवांसमश्विना घर्ममच्छ ॥ १ ॥
न संस्कृतं प्र मिमीतो गमिष्ठान्ति नूनमश्विनोपस्तुतेह ।
दिवाभिपित्वेऽवसागमिष्ठा प्रत्यवर्तिं दाशुषे शंभविष्ठा ॥ २ ॥
उता यातं संगवे प्रातरह्नो मध्यन्दिन उदिता सूर्यस्य ।
दिवा नक्तमवसा शन्तमेन नेदानीं पीतिरश्विना ततान ॥ ३ ॥
इदं हि वां प्रदिवि स्थानमोक इमे गृहा अश्विनेदं दुरोणम् ।
आ नो दिवो बृहतः पर्वतादाद्भ्यो यातमिषमूर्जं वहन्ता ॥ ४ ॥
समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम ।
आ नो रयिं वहतमोत वीराना विश्वान्यमृता सौभगानि ॥ ५ ॥

[७७] सप्तसप्ततितमं सूक्तम्

ऋषिः—अत्रिः ॥ देवता—अश्विनौ ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

अथाष्टादशो वर्गः ॥ १८ ॥

प्रातर्यावाणा प्रथमा यजध्वं पुरा गृध्रादररुषः पिबातः ।
प्रातर्हि यज्ञमश्विना दधाते प्र शंसन्ति कवयः पूर्वभाजः ॥ १ ॥
प्रातर्यजध्वमश्विना हिनोत न सायमस्ति देवया अजुष्टम् ।
उतान्यो अस्मद्यजते वि चावः पूर्वःपूर्वो यजमानो वनीयान् ॥ २ ॥

हिरण्यत्वङ्मधुवर्णो घृतस्नुः पृक्षो वहन्ना रथो वर्तते वाम्।
मनोजवा अश्विना वातरंहा येनातियाथो दुरितानि विश्वा ॥ ३ ॥
यो भूयिष्ठं नासत्याभ्यां विवेष चनिष्ठं पित्वो ररते विभागे।
स तोकमस्य पीपरच्छमीभिरनूर्ध्वभासः सदमित्तुतुर्यात् ॥ ४ ॥
समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम ।
आ नो रयिं वहतमोत वीराना विश्वान्यमृता सौभगानि ॥ ५ ॥

[७८] अष्टसप्ततितमं सूक्तम्

ऋषिः—सप्तवध्रिरात्रेयः ॥ देवता—अश्विनौ ॥ छन्दः—१-३ उष्णिक्; ४ निचृत्त्रिष्टुप्; ५, ६ अनुष्टुप्; ७-९ निचृदनुष्टुप्॥ स्वरः—१-३ ऋषभः; ४ धैवतः; ५-९ गान्धारः ॥

अथ एकोनविंशो वर्गः ॥ १९ ॥

अश्विनावेह गच्छतं नासत्या मा वि वेनतम्। हंसाविव पततमा सुताँ उप ॥ १ ॥
अश्विना हरिणाविव गौराविवानु यवसम्। हंसाविव पततमा सुताँ उप ॥ २ ॥
अश्विना वाजिनीवसू जुषेथां यज्ञमिष्टये। हंसाविव पततमा सुताँ उप ॥ ३ ॥
अत्रिर्यद्वामवरोहन्नृबीसमजोहवीन्नाधमानेव योषा ।
श्येनस्य चिज्जवसा नूतनेनागच्छतमश्विना शन्तमेन ॥ ४ ॥

अथ विंशो वर्गः ॥ २० ॥

वि जिहीष्व वनस्पते योनिः सूष्यन्त्याइव ।
श्रुतं मे अश्विना हवं सप्तवध्रिं च मुञ्चतम् ॥ ५ ॥
भीताय नाधमानाय ऋषये सप्तवध्रये ।
मायाभिरश्विना युवं वृक्षं सं च वि चाचथः ॥ ६ ॥
यथा वातः पुष्करिणीं समिङ्गयति सर्वतः ।
एवा ते गर्भ एजतु निरैतु दशमास्यः ॥ ७ ॥
यथा वातो यथा वनं यथा समुद्र एजति ।
एवा त्वं दशमास्य सहावेहि जरायुणा ॥ ८ ॥

दश मासाञ्छशयानः कुमारो अधि मातरि ।
निरैतु जीवो अक्षतो जीवो जीवन्त्या अधि ॥ ९ ॥

[७९] एकोनाशीतितमं सूक्तम्

ऋषिः—सत्यश्रवा आत्रेयः ॥ देवता—उषाः ॥ छन्दः—१ स्वराड्ब्राह्मीगायत्री; २, ३, ७ भुरिग्बृहती; ४, ५, ८ पङ्क्तिः; ६, ९ निचृत्पङ्क्तिः; १० स्वराड्बृहती ॥ स्वरः—१ षड्जः; २, ३, ७, १० मध्यमः; ४-६, ८, ९ पञ्चमः ॥

अथैकविंशो वर्गः ॥ २१ ॥

महे नो अद्य बोधयोषो राये दिवित्मती ।
यथा चिन्नो अबोधयः सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥ १ ॥
या सुनीथे शौचद्रथे व्यौच्छो दुहितर्दिवः ।
सा व्युच्छ सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥ २ ॥
सा नो अद्याभरद्वसुर्व्युच्छा दुहितर्दिवः ।
यो व्यौच्छः सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥ ३ ॥
अभि ये त्वा विभावरि स्तोमैर्गृणन्ति वह्नयः ।
मघैर्मघोनि सुश्रियो दामन्वन्तः सुरातयः सुजाते अश्वसूनृते ॥ ४ ॥
यच्चिद्धि ते गणा इमे छदयन्ति मघत्तये ।
परि चिद्वष्टयो दधुर्ददतो राधो अह्रयं सुजाते अश्वसूनृते ॥ ५ ॥

अथ द्वाविंशो वर्गः ॥ २२ ॥

ऐषु धा वीरवद्यश उषो मघोनि सूरिषु ।
ये नो राधांस्यह्रया मघवानो अरासत सुजाते अश्वसूनृते ॥ ६ ॥
तेभ्यो द्युम्नं बृहद्यश उषो मघोन्या वह ।
ये नो राधांस्यश्व्या गव्या भजन्त सूरयः सुजाते अश्वसूनृते ॥ ७ ॥
उत नो गोमतीरिष आ वहा दुहितर्दिवः ।
साकं सूर्यस्य रश्मिभिः शुक्रैः शोचद्भिरर्चिभिः सुजाते अश्वसूनृते ॥ ८ ॥
व्युच्छा दुहितर्दिवो मा चिरं तनुथा अपः ।
नेत्त्वा स्तेनं यथा रिपुं तपाति सूरो अर्चिषा सुजाते अश्वसूनृते ॥ ९ ॥

एतावद्वेदुषस्त्वं भूयो वा दातुमर्हसि ।
या स्तोतृभ्यो विभावर्युच्छन्ती न प्रमीयसे सुजाते अश्वसूनृते ॥१०॥

[८०] अशीतितमं सूक्तम्

ऋषिः—सत्यश्रवा आत्रेयः ॥ देवता—उषाः ॥ छन्दः—१, ६ निचृत्त्रिष्टुप्; २ विराट्त्रिष्टुप्; ३-५ भुरिक्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१, २, ६, धैवतः; ३-५ पञ्चमः ॥

अथ त्रयोविंशो वर्गः ॥ २३ ॥

द्युतद्यामानं बृहतीमृतेन ऋतावरीमरुणप्सुं विभातीम् ।
देवीमुषसं स्वरावहन्तीं प्रति विप्रासो मतिभिर्जरन्ते ॥ १ ॥
एषा जनं दर्शता बोधयन्ती सुगान्पथः कृण्वती यात्यग्रे ।
बृहद्रथा बृहती विश्वमिन्वोषा ज्योतिर्यच्छत्यग्रे अह्नाम् ॥ २ ॥
एषा गोभिररुणेभिर्युजानास्रेधन्ती रयिमप्रायु चक्रे ।
पथो रदन्ती सुविताय देवी पुरुष्टुता विश्ववारा वि भाति ॥ ३ ॥
एषा व्येनी भवति द्विबर्हा आविष्कृण्वाना तन्वं पुरस्तात् ।
ऋतस्य पन्थामन्वेति साधु प्रजानतीव न दिशो मिनाति ॥ ४ ॥
एषा शुभ्रा न तन्वो विदानोर्ध्वेव स्नाती दृशये नो अस्थात् ।
अप द्वेषो बाधमाना तमांस्युषा दिवो दुहिता ज्योतिषागात् ॥ ५ ॥
एषा प्रतीची दुहिता दिवो नॄन्योषेव भद्रा नि रिणीते अप्सः ।
व्यूर्ण्वती दाशुषे वार्याणि पुनर्ज्योतिर्युवतिः पूर्वथाकः ॥ ६ ॥

[८१] एकाशीतितमं सूक्तम्

ऋषिः—श्यावाश्व आत्रेयः ॥ देवता—सविता ॥ छन्दः—१, ५ जगती; २ विराड्जगती; ३ स्वराट्त्रिष्टुप्; ४ निचृज्जगती ॥ स्वरः—१, २, ४, ५ निषादः; ३ धैवतः ॥

अथ चतुर्विंशो वर्गः ॥ २४ ॥

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः ।
वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ॥ १ ॥
विश्वा रूपाणि प्रति मुञ्चते कविः प्रासावीद्भद्रं द्विपदे चतुष्पदे ।
वि नाकमख्यत्सविता वरेण्योऽनु प्रयाणमुषसो वि राजति ॥ २ ॥

यस्य प्रयाणमन्वन्य इद्ययुर्देवा देवस्य महिमानमोजसा ।
यः पार्थिवानि विममे स एतशो रजांसि देवः सविता महित्वना ॥ ३ ॥
उत यासि सवितस्त्रीणि रोचनोत सूर्यस्य रश्मिभिः समुच्यसि ।
उत रात्रीमुभयतः परीयस उत मित्रो भवसि देव धर्मभिः ॥ ४ ॥
उतेशिषे प्रसवस्य त्वमेक इदुत पूषा भवसि देव यामभिः ।
उतेदं विश्वं भुवनं वि राजसि श्यावाश्वस्ते सवितः स्तोममानशे ॥ ५ ॥

[८२] द्व्यशीतितमं सूक्तम्

ऋषिः—श्यावाश्व आत्रेयः ॥ देवता—सविता ॥ छन्दः—१ निचृदनुष्टुप्; २, ४, ९ निचृद्गायत्री; ३, ५-७ गायत्री; ८ विराड्गायत्री ॥ स्वरः—१ गान्धारः; २-९ षड्जः ॥

अथ पञ्चविंशो वर्गः ॥ २५ ॥

तत्सवितुर्वृणीमहे वयं देवस्य भोजनम् ।
श्रेष्ठं सर्वधातमं तुरं भगस्य धीमहि ॥ १ ॥
अस्य हि स्वयशस्तरं सवितुः कच्चन प्रियम् । न मिनन्ति स्वराज्यम् ॥ २ ॥
स हि रत्नानि दाशुषे सुवाति सविता भगः । तं भागं चित्रमीमहे ॥ ३ ॥
अद्या नो देव सवितः प्रजावत्सावीः सौभगम् । परा दुःष्वप्न्यं सुव ॥ ४ ॥
विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥ ५ ॥

अथ षड्विंशो वर्गः ॥ २६ ॥

अनागसो अदितये देवस्य सवितुः सवे । विश्वा वामानि धीमहि ॥ ६ ॥
आ विश्वदेवं सत्पतिं सूक्तैरद्या वृणीमहे । सत्यसवं सवितारम् ॥ ७ ॥
य इमे उभे अहनी पुर एत्यप्रयुच्छन् । स्वाधीर्देवः सविता ॥ ८ ॥
य इमा विश्वा जातान्याश्रावयति श्लोकेन । प्र च सुवाति सविता ॥ ९ ॥

[८३] त्र्यशीतितमं सूक्तम्

ऋषिः—अत्रिः ॥ देवता—पृथिवी ॥ छन्दः—१ निचृत्त्रिष्टुप्; २ स्वराट्त्रिष्टुप्; ३ भुरिक्त्रिष्टुप्; ४ निचृज्जगती; ५, ६ त्रिष्टुप्; ७ विराट्त्रिष्टुप्; ८, १० भुरिक्पङ्क्तिः; ९ निचृदनुष्टुप् ॥ स्वरः—१-३, ५-७ धैवतः; ४ निषादः; ८, १० पञ्चमः; ९ गान्धारः ॥

अथ सप्तविंशो वर्गः ॥ २७ ॥

अच्छा वद तवसं गीर्भिराभिः स्तुहि पर्जन्यं नमसा विवास।
कनिक्रदद् वृषभो जीरदानू रेतो दधात्योषधीषु गर्भम् ॥ १ ॥
वि वृक्षान् हन्त्युत हन्ति रक्षसो विश्वं बिभाय भुवनं महावधात्।
उतानागा ईषते वृष्ण्यावतो यत्पर्जन्यः स्तनयन् हन्ति दुष्कृतः ॥ २ ॥
रथीव कशयाश्वाँ अभिक्षिपन्नाविर्दूतान्कृणुते वर्ष्याँ३ अह।
दूरात्सिंहस्य स्तनथा उदीरते यत्पर्जन्यः कृणुते वर्ष्यं१ नभः ॥ ३ ॥
प्र वाता वान्ति पतयन्ति विद्युत उदोषधीर्जिहते पिन्वते स्वः।
इरा विश्वस्मै भुवनाय जायते यत्पर्जन्यः पृथिवीं रेतसावति ॥ ४ ॥
यस्य व्रते पृथिवी नन्नमीति यस्य व्रते शफवज्जर्भुरीति।
यस्य व्रत ओषधीर्विश्वरूपाः स नः पर्जन्य महि शर्म यच्छ ॥ ५ ॥

अथाष्टाविंशो वर्गः ॥ २८ ॥

दिवो नो वृष्टिं मरुतो ररीध्वं प्र पिन्वत वृष्णो अश्वस्य धाराः।
अर्वाङेतेन स्तनयित्नुनेह्यपो निषिञ्चन्नसुरः पिता नः ॥ ६ ॥
अभि क्रन्द स्तनय गर्भमा धा उदन्वता परि दीया रथेन।
दृतिं सु कर्ष विषितं न्यञ्चं समा भवन्तूद्वतो निपादाः ॥ ७ ॥
महान्तं कोशमुदचा नि षिञ्च स्यन्दन्तां कुल्या विषिताः पुरस्तात्।
घृतेन द्यावापृथिवी व्युन्धि सुप्रपाणं भवत्वघ्न्याभ्यः ॥ ८ ॥
यत्पर्जन्य कनिक्रदत्स्तनयन् हंसि दुष्कृतः।
प्रतीदं विश्वं मोदते यत्किं च पृथिव्यामधि ॥ ९ ॥
अवर्षीर्वर्षमुदु षू गृभायाकर्धन्वान्यत्येतवा उ।
अजीजन ओषधीर्भोजनाय कमुत प्रजाभ्योऽविदो मनीषाम् ॥ १० ॥

[८४] चतुरशीतितमं सूक्तम्

ऋषिः—अत्रिः ॥ देवता—पृथिवी ॥ छन्दः—१, २ निचृदनुष्टुप्; ३ विराडनुष्टुप् ॥ स्वरः—गान्धारः ॥

अथैकोनत्रिंशो वर्गः ॥ २९ ॥

बळित्था पर्वतानां खिद्रं बिभर्षि पृथिवि।
प्र या भूमिं प्रवत्वति मह्ना जिनोषि महिनि ॥ १ ॥
स्तोमासस्त्वा विचारिणि प्रति ष्टोभन्त्यक्तुभिः।
प्र या वाजं न हेषन्तं पेरुमस्यस्यर्जुनि ॥ २ ॥
दृळ्हा चिद्या वनस्पतीन्क्ष्मया दर्धर्ष्योजसा।
यत्ते अभ्रस्य विद्युतो दिवो वर्षन्ति वृष्टयः ॥ ३ ॥

[८५] पञ्चाशीतितमं सूक्तम्

ऋषिः—अत्रिः ॥ देवता—वरुणः ॥ छन्दः—१, २ विराट्त्रिष्टुप्; ३, ४, ६, ८ निचृत् त्रिष्टुप्; ५ स्वराट्पङ्क्तिः; ७ ब्राह्म्युष्णिक् ॥ स्वरः—१-४, ६, ८ धैवतः; ५ पञ्चमः; ७ ऋषभः ॥

अथ त्रिंशो वर्गः ॥ ३० ॥

प्र सम्राजे बृहदर्चा गभीरं ब्रह्म प्रियं वरुणाय श्रुताय।
वि यो जघान शमितेव चर्मोपस्तिरे पृथिवीं सूर्याय ॥ १ ॥
वनेषु व्य१न्तरिक्षं ततान वाजमर्वत्सु पय उस्रियासु।
हृत्सु क्रतुं वरुणो अप्स्व१ग्निं दिवि सूर्यमदधात्सोममद्रौ ॥ २ ॥
नीचीनबारं वरुणः कवन्धं प्र ससर्ज रोदसी अन्तरिक्षम्।
तेन विश्वस्य भुवनस्य राजा यवं न वृष्टिर्व्युनत्ति भूम ॥ ३ ॥
उनत्ति भूमिं पृथिवीमुत द्यां यदा दुग्धं वरुणो वष्ट्यादित्।
समभ्रेण वसत पर्वतासस्तविषीयन्तः श्रथयन्त वीराः ॥ ४ ॥
इमामू ष्वासुरस्य श्रुतस्य महीं मायां वरुणस्य प्र वोचम्।
मानेनेव तस्थिवाँ अन्तरिक्षे वि यो ममे पृथिवीं सूर्येण ॥ ५ ॥

अथ एकत्रिंशो वर्गः ॥ ३१ ॥

इमामू नु कवितमस्य मायां महीं देवस्य नकिरा दधर्ष।
एकं यदुद्ना न पृणन्त्येनीरासिञ्चन्तीरवनयः समुद्रम् ॥ ६ ॥
अर्यम्यं वरुण मित्र्यं वा सखायं वा सदमिद् भ्रातरं वा।
वेशं वा नित्यं वरुणारणं वा यत्सीमागश्चकृमा शिश्रथस्तत् ॥ ७ ॥

कितवासो यद्रिरिपुर्न दीवि यद्वा घा सत्यमुत यन्न विद्म।
सर्वा ता वि ष्य शिथिरेव देवाधा ते स्याम वरुण प्रियासः ॥ ८ ॥

[८६] षडशीतितमं सूक्तम्

ऋषिः—अत्रिः ॥ देवता—इन्द्राग्नी ॥ छन्दः—१, ४, ५ स्वराडुष्णिक्; २, ३ विराडनुष्टुप्; ६ विराट्पूर्वानुष्टुप् ॥ स्वरः—१, ४, ५ ऋषभः; २, ३, ६ गान्धारः ॥

अथ द्वात्रिंशो वर्गः ॥ ३२ ॥

इन्द्राग्नी यमवथ उभा वाजेषु मर्त्यम् ।
दृळ्हा चित्स प्र भेदति द्युम्ना वाणीरिव त्रितः ॥ १ ॥
या पृतनासु दुष्टरा या वाजेषु श्रवाय्या ।
या पञ्च चर्षणीरभीन्द्राग्नी ता हवामहे ॥ २ ॥
तयोरिदमवच्छवस्तिग्मा दिद्युन्मघोनोः ।
प्रति द्रुणा गभस्त्योर्गवां वृत्रघ्न एषते ॥ ३ ॥
ता वामेषे रथानामिन्द्राग्नी हवामहे ।
पती तुरस्य राधसो विद्वांसा गिर्वणस्तमा ॥ ४ ॥
ता वृधन्तावनु द्यून्मर्ताय देवावदभा ।
अर्हन्ता चित्पुरो दधेऽशेव देवावर्वते ॥ ५ ॥
एवेन्द्राग्निभ्यामहावि हव्यं शूष्यं घृतं न पूतमद्रिभिः ।
ता सूरिषु श्रवो बृहद्रयिं गृणत्सु दिधृतमिषं गृणत्सु दिधृतम् ॥ ६ ॥

[८७] सप्ताशीतितमं सूक्तम्

ऋषिः—एवयामरुदात्रेयः ॥ देवता—मरुतः ॥ छन्दः—१ अतिजगती; २, ८ स्वराड्जगती; ३, ६, ७ भुरिग्जगती; ४ निचृज्जगती; ५, ९ विराड्जगती ॥ स्वरः—निषादः ॥

अथ त्रयस्त्रिंशो वर्गः ॥ ३३ ॥

प्र वो महे मतयो यन्तु विष्णवे मरुत्वते गिरिजा एवयामरुत्।
प्र शर्धाय प्रयज्यवे सुखादये तवसे भन्ददिष्टये धुनिव्रताय शवसे ॥ १ ॥
प्र ये जाता महिना ये च नु स्वयं प्र विद्मना ब्रुवत एवयामरुत्।
क्रत्वा तद्वो मरुतो नाधृषे शवो दाना मह्ना तदेषामधृष्टासो नाद्रयः ॥ २ ॥

प्र ये दिवो बृहतः शृण्विरे गिरा सुशुक्वानः सुभ्व एवयामरुत्।
न येषामिरी सधस्थ ईष्ट आँ अग्नयो न स्वविद्युतः प्र स्पन्द्रासो धुनीनाम् ॥ ३ ॥
स चक्रमे महतो निरुरुक्रमः समानस्मात्सदस एवयामरुत् ।
यदायुक्त त्मना स्वादधि ष्णुभिर्विष्पर्धसो विमहसो जिगाति
शेवृधो नृभिः ॥ ४ ॥
स्वनो न वोऽमवान्रेजयद् वृषा त्वेषो ययिस्तविष एवयामरुत् ।
येना सहन्त ऋञ्जत स्वरोचिषः स्थारश्मानो हिरण्ययाः
स्वायुधास इष्मिणः ॥ ५ ॥

अथ चतुस्त्रिंशो वर्गः ॥ ३४ ॥

अपारो वो महिमा वृद्धशवसस्त्वेषं शवोऽवत्वेवयामरुत् ।
स्थातारो हि प्रसितौ संदृशि स्थन ते न उरुष्यता निदः शुशुक्वांसो नाग्नयः ॥ ६ ॥
ते रुद्रासः सुमखा अग्नयो यथा तुविद्युम्ना अवन्त्वेवयामरुत् ।
दीर्घं पृथु पप्रथे सद्म पार्थिवं येषामज्मेष्वा महः शर्धांस्यद्भुतैनसाम् ॥ ७ ॥
अद्वेषो नो मरुतो गातुमेतन श्रोता हवं जरितुरेवयामरुत् ।
विष्णोर्महः समन्यवो युयोतन स्मद्रथ्यो३ न दंसनाप द्वेषांसि सनुतः ॥ ८ ॥
गन्ता नो यज्ञं यज्ञियाः सुशमि श्रोता हवमरक्ष एवयामरुत्।
ज्येष्ठासो न पर्वतासो व्योमनि यूयं तस्य प्रचेतसः स्यात दुर्धर्तवो निदः ॥ ९ ॥

इति पञ्चमं मण्डलम् ॥

अथ षष्ठं मण्डलम्

प्रथमोऽनुवाकः [१] प्रथमं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—१, ७, १३ भुरिक्पङ्क्तिः; २ स्वराट्पङ्क्तिः; ३, ४, ६, ११, १२ निचृत्त्रिष्टुप्; ५ पङ्क्तिः; ८, १० त्रिष्टुप्; ९ विराट्त्रिष्टुप्॥
स्वरः—१, २, ५, ७, १३ पञ्चमः; ३, ४, ६, ८-१२ धैवतः॥

अथ पञ्चत्रिंशो वर्गः॥ ३५॥

त्वं ह्यग्ने प्रथमो मनोतास्या धियो अभवो दस्म होता।
त्वं सीं वृषन्नकृणोर्दुष्टरीतु सहो विश्वस्मै सहसे सहध्यै॥ १॥
अधा होता न्यसीदो यजीयानिळस्पद इषयन्नीड्यः सन्।
तं त्वा नरः प्रथमं देवयन्तो महो राये चितयन्तो अनु ग्मन्॥ २॥
वृतेव यन्तं बहुभिर्वसव्यै३स्त्वे रयिं जागृवांसो अनु ग्मन्।
रुशन्तमग्निं दर्शतं बृहन्तं वपावन्तं विश्वहा दीदिवांसम्॥ ३॥
पदं देवस्य नमसा व्यन्तः श्रवस्यवः श्रव आपन्नमृक्तम्।
नामानि चिद्दधिरे यज्ञियानि भद्रायां ते रणयन्त सन्दृष्टौ॥ ४॥
त्वां वर्धन्ति क्षितयः पृथिव्यां त्वां राय उभयासो जनानाम्।
त्वं त्राता तरणे चेत्यो भूः पिता माता सदमिन्मानुषाणाम्॥ ५॥

अथ षट्त्रिंशो वर्गः॥ ३६॥

सपर्येण्यः स प्रियो विक्ष्व१ग्निर्होता मन्द्रो नि षसादा यजीयान्।
तं त्वा वयं दम आ दीदिवांसमुप ज्ञुबाधो नमसा सदेम॥ ६॥
तं त्वा वयं सुध्यो३ नव्यमग्ने सुम्नायव ईमहे देवयन्तः।
त्वं विशो अनयो दीद्यानो दिवो अग्ने बृहता रोचनेन॥ ७॥
विशां कविं विश्पतिं शश्वतीनां नितोशनं वृषभं चर्षणीनाम्।
प्रेतीषणिमिषयन्तं पावकं राजन्तमग्निं यजतं रयीणाम्॥ ८॥
सो अग्न ईजे शशमे च मर्तो यस्त आनट् समिधा हव्यदातिम्।
य आहुतिं परि वेदा नमोभिर्विश्वेत्स वामा दधते त्वोतः॥ ९॥

अस्मा उ ते महि महे विधेम नमोभिरग्ने समिधोत हव्यैः।
वेदी सूनो सहसो गीर्भिरुक्थैरा ते भद्रायां सुमतौ यतेम॥ १०॥
आ यस्ततन्थ रोदसी वि भासा श्रवोभिश्च श्रवस्य१स्तरुत्रः।
बृहद्भिर्वाजैः स्थविरेभिरस्मे रेवद्भिरग्ने वितरं वि भाहि॥ ११॥
नृवद्वसो सदमिद्धेह्यस्मे भूरि तोकाय तनयाय पश्वः।
पूर्वीरिषो बृहतीरारेअघा अस्मे भद्रा सौश्रवसानि सन्तु॥ १२॥
पुरूण्यग्ने पुरुधा त्वाया वसूनि राजन्वसुता ते अश्याम्।
पुरूणि हि त्वे पुरुवार सन्त्यग्ने वसु विधते राजनि त्वे॥ १३॥

इति चतुर्थाष्टके चतुर्थोऽध्यायः॥

अथ चतुर्थाष्टके पञ्चमोऽध्यायः

[२] द्वितीयं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—१, ९ भुरिगुष्णिक्; २ स्वराडुष्णिक्; ३, ४ अनुष्टुप्; ५, ६, १० निचृदनुष्टुप्; ७ निचृदुष्णिक्; ८ उष्णिक्; ११ भुरिगतिजगती॥
स्वरः—१, २, ७-९ ऋषभः; ३-६, १० गान्धारः; ११ निषादः॥

अथ प्रथमो वर्गः॥ १॥

त्वं हि क्षैतवद्यशोऽग्ने मित्रो न पत्यसे।
त्वं विचर्षणे श्रवो वसो पुष्टिं न पुष्यसि॥ १॥
त्वां हि ष्मा चर्षणयो यज्ञेभिर्गीर्भिरीळते।
त्वां वाजी यात्यवृको रजस्तूर्विश्वचर्षणिः॥ २॥
सजोषस्त्वा दिवो नरो यज्ञस्य केतुमिन्धते।
यद्ध स्य मानुषो जनः सुम्नायुर्जुह्वे अध्वरे॥ ३॥
ऋधद्यस्ते सुदानवे धिया मर्तः शशमते।
ऊती ष बृहतो दिवो द्विषो अंहो न तरति॥ ४॥
समिधा यस्त आहुतिं निशितिं मर्त्यो नशत्।
वयावन्तं स पुष्यति क्षयमग्ने शतायुषम्॥ ५॥

अथ द्वितीयो वर्गः ॥ २ ॥

त्वेषस्ते धूम ऋण्वति दिवि षञ्छुक्र आततः ।
सूरो न हि द्युता त्वं कृपा पावक रोचसे ॥ ६ ॥
अधा हि विक्ष्वीड्योऽसि प्रियो नो अतिथिः ।
रण्वः पुरीव जूर्यः सूनुर्न त्रययाय्यः ॥ ७ ॥
क्रत्वा हि द्रोणे अज्यसेऽग्ने वाजी न कृत्व्यः ।
परिज्मेव स्वधा गयोऽत्यो न ह्वार्यः शिशुः ॥ ८ ॥
त्वं त्या चिदच्युताग्ने पशुर्न यवसे ।
धामा ह यत्ते अजर वना वृश्चन्ति शिक्वसः ॥ ९ ॥
वेषि ह्यध्वरीयतामग्ने होता दमे विशाम् ।
समृधो विश्पते कृणु जुषस्व हव्यमङ्गिरः ॥ १० ॥
अच्छा नो मित्रमहो देव देवानग्ने वोचः सुमतिं रोदस्योः ।
वीहि स्वस्तिं सुक्षितिं दिवो नॄन्द्विषो अंहांसि
दुरिता तरेम ता तरेम तवावसा तरेम ॥ ११ ॥

[३] तृतीयं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१, ३, ४ त्रिष्टुप्; २, ५-७ निचृत्त्रिष्टुप्; ८ भुरिक्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१-७ धैवतः; ८ पञ्चमः ॥

अथ तृतीयो वर्गः ॥ ३ ॥

अग्ने स क्षेषदृतपा ऋतेजा उरु ज्योतिर्नशते देवयुष्टे ।
यं त्वं मित्रेण वरुणः सजोषा देव पासि त्यजसा मर्तमंहः ॥ १ ॥
ईजे यज्ञेभिः शशमे शमीभिरृधद्वारायाग्नये ददाश ।
एवा चन तं यशसामजुष्टिर्नांहो मर्तं नशते न प्रदृप्तिः ॥ २ ॥
सूरो न यस्य दृशतिररेपा भीमा यदेति शुचतस्त आ धीः ।
हेषस्वतः शुरुधो नायमक्तोः कुत्रा चिद्रण्वो वसतिर्वनेजाः ॥ ३ ॥
तिग्मं चिदेम महि वर्पो अस्य भसदश्वो न यमसान आसा ।
विजेहमानः परशुर्न जिह्वां द्रविर्न द्रावयति दारु धक्षत् ॥ ४ ॥

स इदस्तेव प्रति धादसिष्यञ्छिशीत तेजोऽयसो न धाराम् ।
चित्रध्रजतिररतिर्यो अक्तोर्वेर्न द्रुषद्वा रघुपत्मजंहाः ॥ ५ ॥

अथ चतुर्थो वर्गः ॥ ४ ॥

स ईं रेभो न प्रति वस्त उस्राः शोचिषा रारपीति मित्रमहाः ।
नक्तं य ईमरुषो यो दिवा नॄनमर्त्यो अरुषो यो दिवा नॄन् ॥ ६ ॥
दिवो न यस्य विधतो नवीनोद् वृषा रुक्ष ओषधीषु नूनोत् ।
घृणा न यो ध्रजसा पत्मना यन्ना रोदसी वसुना दं सुपत्नी ॥ ७ ॥
धायोभिर्वा यो युज्येभिरर्कैर्विद्युन्न दविद्योत्स्वेभिः शुष्मैः ।
शर्धो वा यो मरुतां ततक्ष ऋभुर्न त्वेषो रभसानो अद्यौत् ॥ ८ ॥

[४] चतुर्थं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप्; २, ५-७ भुरिक्पङ्क्तिः; ३, ४ निचृत्पङ्क्तिः; ८ पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१ धैवतः २-८ पञ्चमः ॥

अथ पञ्चमो वर्गः ॥ ५ ॥

यथा होतर्मनुषो देवताता यज्ञेभिः सूनो सहसो यजासि ।
एवा नो अद्य समना समानानुशन्नग्न उशतो यक्षि देवान् ॥ १ ॥
स नो विभावा चक्षणिर्न वस्तोरग्निर्वन्दारु वेद्यश्चनो धात् ।
विश्वायुर्यो अमृतो मर्त्येषूषर्भुद्भूदतिथिर्जातवेदाः ॥ २ ॥
द्यावो न यस्य पनयन्त्यभ्वं भासांसि वस्ते सूर्यो न शुक्रः ।
वि य इनोत्यजरः पावकोऽश्नस्य चिच्छिश्नथत्पूर्व्याणि ॥ ३ ॥
वद्मा हि सूनो अस्यद्मसद्वा चक्रे अग्निर्जनुषाज्मान्नम् ।
स त्वं न ऊर्जसन ऊर्जं धा राजेव जेरवृके क्षेष्यन्तः ॥ ४ ॥
नितिक्ति यो वारणमन्नमत्ति वायुर्न राष्ट्र्यत्येत्यक्तून् ।
तुर्याम यस्त आदिशामरातीरत्यो न हुतः पततः परिहुत् ॥ ५ ॥

अथ षष्ठो वर्गः ॥ ६ ॥

आ सूर्यो न भानुमद्भिरर्कैरग्ने ततन्थ रोदसी वि भासा ।
चित्रो नयत्परि तमांस्यक्तः शोचिषा पत्मन्नौशिजो न दीयन् ॥ ६ ॥

त्वां हि मन्द्रतममर्कशोकैर्ववृमहे महि नः श्रोष्यग्ने।
इन्द्रं न त्वा शवसा देवता वायुं पृणन्ति राधसा नृतमाः॥ ७॥
नू नो अग्नेऽवृकेभिः स्वस्ति वेषि रायः पथिभिः पर्ष्यंहः।
ता सूरिभ्यो गृणते रासि सुम्नं मदेम शतहिमाः सुवीराः॥ ८॥

[५] पञ्चमं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—१, ४ त्रिष्टुप्;
२, ५-७ निचृत्त्रिष्टुप्; ३ भुरिक्पङ्क्तिः॥ स्वरः—१, २,
४-७ धैवतः; ३ पञ्चमः॥

अथ सप्तमो वर्गः॥ ७॥

हुवे वः सूनुं सहसो युवानमद्रोघवाचं मतिभिर्यविष्ठम्।
य इन्वति द्रविणानि प्रचेता विश्ववाराणि पुरुवारो अध्रुक्॥ १॥
त्वे वसूनि पुर्वणीक होतर्दोषा वस्तोरेरिरे यज्ञियासः।
क्षामेव विश्वा भुवनानि यस्मिन्त्सं सौभगानि दधिरे पावके॥ २॥
त्वं विक्षु प्रदिवः सीद आसु क्रत्वा रथीरभवो वार्याणाम्।
अत इनोषि विधते चिकित्वो व्यानुषग्जातवेदो वसूनि॥ ३॥
यो नः सनुत्यो अभिदासदग्ने यो अन्तरो मित्रमहो वनुष्यात्।
तमजरेभिर्वृषभिस्तव स्वैस्तपा तपिष्ठ तपसा तपस्वान्॥ ४॥
यस्ते यज्ञेन समिधा य उक्थैरर्केभिः सूनो सहसो ददाशत्।
स मर्त्येष्वमृत प्रचेता राया द्युम्नेन श्रवसा वि भाति॥ ५॥
स तत्कृधीषितस्तूयमग्ने स्पृधो बाधस्व सहसा सहस्वान्।
यच्छस्यसे द्युभिरक्तो वचोभिस्तज्जुषस्व जरितुर्घोषि मन्म॥ ६॥
अश्याम तं काममग्ने तवोती अश्याम रयिं रयिवः सुवीरम्।
अश्याम वाजमभि वाजयन्तोऽश्याम द्युम्नमजराजरं ते॥ ७॥

[६] षष्ठं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—१-५ निचृत्त्रिष्टुप्;
६-७ त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

अथाष्टमो वर्गः॥ ८॥

प्र नव्यसा सहसः सूनुमच्छा यज्ञेन गातुमव इच्छमानः।
वृश्चद्वनं कृष्णयामं रुशन्तं वीती होतारं दिव्यं जिगाति॥ १॥
स श्वितानस्तन्यतू रोचनस्था अजरेभिर्नानदद्भिर्यविष्ठः।
यः पावकः पुरुतमः पुरूणि पृथून्यग्निरनुयाति भर्वन्॥ २॥
वि ते विष्वग्वातजूतासो अग्ने भामासः शुचे शुचयश्चरन्ति।
तुविम्रक्षासो दिव्या नवग्वा वना वनन्ति धृषता रुजन्तः॥ ३॥
ये ते शुक्रासः शुचयः शुचिष्मः क्षां वपन्ति विषितासो अश्वाः।
अध भ्रमस्त उर्विया वि भाति यातयमानो अधि सानु पृश्नेः॥ ४॥
अध जिह्वा पापतीति प्र वृष्णो गोषुयुधो नाशनिः सृजाना।
शूरस्येव प्रसितिः क्षातिरग्नेर्दुर्वर्तुर्भीमो दयते वनानि॥ ५॥
आ भानुना पार्थिवानि ज्रयांसि महस्तोदस्य धृषता ततन्थ।
स बाधस्वाप भया सहोभिः स्पृधो वनुष्यन्वनुषो नि जूर्व॥ ६॥
स चित्र चित्रं चितयन्तमस्मे चित्रक्षत्र चित्रतमं वयोधाम्।
चन्द्रं रयिं पुरुवीरं बृहन्तं चन्द्र चन्द्राभिर्गृणते युवस्व॥ ७॥

[७] सप्तमं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः॥ देवता—वैश्वानरः॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप्; २ निचृत्त्रिष्टुप्;
३ निचृत्पङ्क्तिः; ४ स्वराट्पङ्क्तिः; ५ पङ्क्तिः; ६ जगती; ७ स्वराट्त्रिष्टुप्॥
स्वरः—१, २, ७ धैवतः; ३-५ पञ्चमः; ६ निषादः॥

अथ नवमो वर्गः॥

मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निम्।
कविं सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः॥ १॥
नाभिं यज्ञानां सदनं रयीणां महामाहावमभि सं नवन्त।
वैश्वानरं रथ्यमध्वराणां यज्ञस्य केतुं जनयन्त देवाः॥ २॥
त्वद्विप्रो जायते वाज्यग्ने त्वद्वीरासो अभिमातिषाहः।
वैश्वानर त्वमस्मासु धेहि वसूनि राजन्त्स्पृहयाय्याणि॥ ३॥

त्वां विश्वे अमृत जायमानं शिशुं न देवा अभि सं नवन्ते।
तव क्रतुभिरमृतत्वमायन्वैश्वानर यत्पित्रोरदीदेः ॥४॥
वैश्वानर तव तानि व्रतानि महान्यग्ने नकिरा दधर्ष ।
यज्जायमानः पित्रोरुपस्थेऽविन्दः केतुं वयुनेष्वह्नाम् ॥५॥
वैश्वानरस्य विमितानि चक्षसा सानूनि दिवो अमृतस्य केतुना।
तस्येदु विश्वा भुवनाधि मूर्धनि वयाइव रुरुहुः सप्त विस्रुहः ॥६॥
वि यो रजांस्यमिमीत सुक्रतुर्वैश्वानरो वि दिवो रोचना कविः।
परि यो विश्वा भुवनानि पप्रथेऽदब्धो गोपा अमृतस्य रक्षिता ॥७॥

[८] अष्टमं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः॥ देवता—वैश्वानरः॥ छन्दः—१, ४ जगती; २, ३, ५ भुरिक्त्रिष्टुप्; ६ विराड्जगती; ७ त्रिष्टुप्॥ स्वरः—१, ४, ६ निषादः; २, ३, ५, ७ धैवतः॥

अथ दशमो वर्गः॥१०॥

पृक्षस्य वृष्णो अरुषस्य नू सहः प्र नु वोचं विदथा जातवेदसः।
वैश्वानराय मतिर्नव्यसी शुचिः सोमइव पवते चारुरग्नये ॥१॥
स जायमानः परमे व्योमनि व्रतान्यग्निर्व्रतपा अरक्षत।
व्य१न्तरिक्षममिमीत सुक्रतुर्वैश्वानरो महिना नाकमस्पृशत् ॥२॥
व्यस्तभ्नाद्रोदसी मित्रो अद्भुतोऽन्तर्वावदकृणोज्ज्योतिषा तमः।
वि चर्मणीव धिषणे अवर्तयद्वैश्वानरो विश्वमधत्त वृष्ण्यम् ॥३॥
अपामुपस्थे महिषा अगृभ्णत विशो राजानमुप तस्थुर्ऋग्मियम्।
आ दूतो अग्निमभरद्विवस्वतो वैश्वानरं मातरिश्वा परावतः ॥४॥
युगेयुगे विदथ्यं गृणद्भ्योऽग्ने रयिं यशसं धेहि नव्यसीम्।
पव्येव राजन्नघशंसमजर नीचा नि वृश्च वनिनं न तेजसा ॥५॥
अस्माकमग्ने मघवत्सु धारयानामि क्षत्रमजरं सुवीर्यम्।
वयं जयेम शतिनं सहस्रिणं वैश्वानर वाजमग्ने तवोतिभिः ॥६॥
अदब्धेभिस्तव गोपाभिरिष्टेऽस्माकं पाहि त्रिषधस्थ सूरीन्।
रक्षा च नो ददुषां शर्धो अग्ने वैश्वानर प्र च तारीः स्तवानः ॥७॥

[९] नवमं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः॥ देवता—वैश्वानरः॥ छन्दः—१ विराट्त्रिष्टुप्; २ भुरिक्पङ्क्तिः; ३, ४ पङ्क्तिः; ५ निचृत्त्रिष्टुप्; ६ त्रिष्टुप्; ७ भुरिग्जगती॥ स्वरः—१, ५, ६ धैवतः; २-४ पञ्चमः; ७ निषादः॥

अथैकादशो वर्गः॥११॥

अहश्च कृष्णमहरर्जुनं च वि वर्तेते रजसी वेद्याभिः।
वैश्वानरो जायमानो न राजावातिरज्ज्योतिषाग्निस्तमांसि ॥१॥
नाहं तन्तुं न वि जानाम्योतुं न यं वयन्ति समरेऽतमानाः।
कस्य स्वित्पुत्र इह वक्त्वानि परो वदात्यवरेण पित्रा ॥२॥
स इत्तन्तुं स वि जानात्योतुं स वक्त्वान्यृतुथा वदाति।
य ईं चिकेतदमृतस्य गोपा अवश्चरन्परो अन्येन पश्यन् ॥३॥
अयं होता प्रथमः पश्यतेममिदं ज्योतिरमृतं मर्त्येषु।
अयं स जज्ञे ध्रुव आ निषत्तोऽमर्त्यस्तन्वा३ वर्धमानः ॥४॥
ध्रुवं ज्योतिर्निहितं दृशये कं मनो जविष्ठं पतयत्स्वन्तः।
विश्वे देवाः समनसः सकेता एकं क्रतुमभि वि यन्ति साधु ॥५॥
वि मे कर्णा पतयतो वि चक्षुर्वी३दं ज्योतिर्हृदय आहितं यत्।
वि मे मनश्चरति दूरआधीः किं स्विद्वक्ष्यामि किमु नू मनिष्ये ॥६॥
विश्वे देवा अनमस्यन्भियानास्त्वामग्ने तमसि तस्थिवांसम्।
वैश्वानरोऽवतूतये नोऽमर्त्योऽवतूतये नः ॥७॥

[१०] दशमं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप्; २, ३, ६ निचृत्त्रिष्टुप्; ४ आर्चीपङ्क्तिः; ५ विराट्त्रिष्टुप्; ७ प्राजापत्याबृहती॥ स्वरः—१-३, ५, ६ धैवतः; ४ पञ्चमः; ७ मध्यमः॥

अथ द्वादशो वर्गः॥१२॥

पुरो वो मन्द्रं दिव्यं सुवृक्तिं प्रयति यज्ञे अग्निमध्वरे दधिध्वम्।
पुर उक्थेभिः स हि नो विभावा स्वध्वरा करति जातवेदाः ॥१॥
तमु द्युमः पुर्वणीक होतरग्ने अग्निभिर्मनुष इधानः ।
स्तोमं यमस्मै ममतेव शूषं घृतं न शुचि मतयः पवन्ते ॥२॥

पीपाय स श्रवसा मर्त्येषु यो अग्नये ददाश विप्र उक्थैः।
चित्राभिस्तमूतिभिश्चित्रशोचिर्व्रजस्य साता गोमतो दधाति॥ ३॥
आ यः पप्रौ जायमान उर्वी दूरेदृशा भासा कृष्णाध्वा।
अध बहु चित्तम ऊर्म्यायास्तिरः शोचिषा ददृशे पावकः॥ ४॥
नू नश्चित्रं पुरुवाजाभिरूती अग्ने रयिं मघवद्भ्यश्च धेहि।
ये राधसा श्रवसा चात्यन्यान्त्सुवीर्येभिश्चाभि सन्ति जनान्॥ ५॥
इमं यज्ञं चनो धा अग्न उशन्यं त आसानो जुहुते हविष्मान्।
भरद्वाजेषु दधिषे सुवृक्तिमवीर्वाजस्य गध्यस्य सातौ॥ ६॥
वि द्वेषांसीनुहि वर्धयेळां मदेम शतहिमाः सुवीराः॥ ७॥

[११] एकादशं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—१, ३, ५ निचृत्त्रिष्टुप्; २ निचृत्पङ्क्तिः; ४, ६ विराट्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—१, ३-६ धैवतः; २ पञ्चमः॥

अथ त्रयोदशो वर्गः॥ १३॥

यजस्व होतरिषितो यजीयानग्ने बाधो मरुतां न प्रयुक्ति।
आ नो मित्रावरुणा नासत्या द्यावा होत्राय पृथिवी ववृत्याः॥ १॥
त्वं होता मन्द्रतमो नो अध्रुगन्तर्देवो विदथा मर्त्येषु।
पावकया जुह्वा३ वह्निरासाग्ने यजस्व तन्वं१ तव स्वाम्॥ २॥
धन्या चिद्धि त्वे धिषणा वष्टि प्र देवाञ्जन्म गृणते यजध्यै।
वेपिष्ठो अङ्गिरसां यद्ध विप्रो मधु च्छन्दो भनति रेभ इष्टौ॥ ३॥
अदिद्युतत्स्वपाको विभावाग्ने यजस्व रोदसी उरूची।
आयुं न यं नमसा रातहव्या अञ्जन्ति सुप्रयसं पञ्च जनाः॥ ४॥
वृञ्जे ह यन्नमसा बर्हिरग्नावयामि स्रुग्घृतवती सुवृक्तिः।
अम्यक्षि सद्म सदने पृथिव्या अश्रायि यज्ञः सूर्ये न चक्षुः॥ ५॥
दशस्या नः पुर्वणीक होतर्देवेभिरग्ने अग्निभिरिधानः।
रायः सूनो सहसो वावसाना अति स्रसेम वृजनं नांहः॥ ६॥

[१२] द्वादशं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप्; २ निचृत्त्रिष्टुप्; ३ भुरिक्पङ्क्तिः; ४, ६ निचृत्पङ्क्तिः; ५ स्वराट्पङ्क्तिः॥ स्वरः—१, २ धैवतः; ३-६ पञ्चमः॥

अथ चतुर्दशो वर्गः॥ १४॥

मध्ये होता दुरोणे बर्हिषो राळग्निस्तोदस्य रोदसी यजध्यै।
अयं स सूनुः सहस ऋतावा दूरात्सूर्यो न शोचिषा ततान॥ १॥
आ यस्मिन्त्वे स्वपाके यजत्र यक्षद्राजन्त्सर्वतातेव नु द्यौः।
त्रिषधस्थस्ततरुषो न जंहो हव्या मघानि मानुषा यजध्यै॥ २॥
तेजिष्ठा यस्यारतिर्वनेराट् तोदो अध्वन्न वृधसानो अद्यौत्।
अद्रोघो न द्रविता चेतति त्मन्नमर्त्योऽ वर्त्र ओषधीषु॥ ३॥
सास्माकेभिरेतरी न शूषैरग्निः ष्टवे दम आ जातवेदाः।
द्र्वन्नो वन्वन् क्रत्वा नार्वोस्रः पितेव जारयायि यज्ञैः॥ ४॥
अध स्मास्य पनयन्ति भासो वृथा यत्तक्षदनुयाति पृथ्वीम्।
सद्यो यः स्पन्द्रो विषितो धवीयानृणो न तायुरति धन्वा राट्॥ ५॥
स त्वं नो अर्वन्निदाया विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिधानः।
वेषि रायो वि यासि दुच्छुना मदेम शतहिमाः सुवीराः॥ ६॥

[१३] त्रयोदशं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—१ पङ्क्तिः; २ स्वराट्पङ्क्तिः; ३, ४ विराट्त्रिष्टुप्; ५, ६ निचृत्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—१, २ पञ्चमः; ३-६ धैवतः॥

अथ पञ्चदशो वर्गः॥ १५॥

त्वद्विश्वा सुभग सौभगान्यग्ने वि यन्ति वनिनो न वयाः।
श्रुष्टी रयिर्वाजो वृत्रतूर्ये दिवो वृष्टिरीड्यो रीतिरपाम्॥ १॥
त्वं भगो न आ हि रत्नमिषे परिज्मेव क्षयसि दस्मवर्चाः।
अग्ने मित्रो न बृहत ऋतस्यासि क्षत्ता वामस्य देव भूरेः॥ २॥

स सत्पतिः शवसा हन्ति वृत्रमग्ने विप्रो वि पणेर्भर्ति वाजम् ।
यं त्वं प्रचेत ऋतजात राया सजोषा नप्त्रापां हिनोषि ॥ ३ ॥
यस्ते सूनो सहसो गीर्भिरुक्थैर्यज्ञैर्मर्तो निशितिं वेद्यानट् ।
विश्वं स देव प्रति वारमग्ने धत्ते धान्यं पत्यते वसव्यैः ॥ ४ ॥
ता नृभ्य आ सौश्रवसा सुवीराग्ने सूनो सहसः पुष्यसे धाः ।
कृणोषि यच्छवसा भूरि पश्वो वयो वृकायारये जसुरये ॥ ५ ॥
वद्मा सूनो सहसो नो विहाया अग्ने तोकं तनयं वाजि नो दाः ।
विश्वाभिर्गीर्भिरभि पूर्तिमश्यां मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ ६ ॥

[१४] चतुर्दशं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१, ३ भुरिगुष्णिक्; २ निचृदनुष्टुप्; ४ अनुष्टुप्; ५ विराडनुष्टुप्; ६ भुरिगतिजगती ॥ स्वरः—१, ३ ऋषभः; २, ४, ५ गान्धार; ६ निषादः ॥

अथ षोडशो वर्गः ॥ १६ ॥

अग्ना यो मर्त्यो दुवो धियं जुजोष धीतिभिः ।
भसन्नु ष प्र पूर्व्य इषं वुरीतावसे ॥ १ ॥
अग्निरिद्धि प्रचेता अग्निर्वेधस्तम ऋषिः ।
अग्निं होतारमीळते यज्ञेषु मनुषो विशः ॥ २ ॥
नाना ह्यग्नेऽवसे स्पर्धन्ते रायो अर्यः ।
तूर्वन्तो दस्युमायवो व्रतैः सीक्षन्तो अव्रतम् ॥ ३ ॥
अग्निरप्सामृतीषहं वीरं ददाति सत्पतिम् ।
यस्य त्रसन्ति शवसः संचक्षि शत्रवो भिया ॥ ४ ॥
अग्निर्हि विद्मना निदो देवो मर्तमुरुष्यति ।
सहावा यस्यावृतो रयिर्वाजेष्ववृतः ॥ ५ ॥
अच्छा नो मित्रमहो देव देवानग्ने वोचः सुमतिं रोदस्योः ।
वीहि स्वस्तिं सुक्षितिं दिवो नॄन्द्विषो अंहांसि ।
दुरिता तरेम ता तरेम तवावसा तरेम ॥ ६ ॥

[१५] पञ्चदशं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यो वीतहव्यो वा ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१, २, ५ निचृज्जगती; ३ निचृदतिजगती; ४, १४ भुरिक्त्रिष्टुप्; ६ निचृदतिशक्वरी; ७ जगती; ८ विराड्जगती; ९-११, १६, १९ त्रिष्टुप्; १२ पङ्क्तिः; १३ विराट्त्रिष्टुप्; १५ ब्राह्मीबृहती; १७ विराडनुष्टुप्; १८ स्वराड् अनुष्टुप् ॥ स्वरः—१-३, ५, ७, ८ निषादः; ४, ६, ९-११, १३, १४, १६, १९ धैवतः; १२ पञ्चमः; १५ मध्यमः; १७, १८ गान्धारः ॥

अथ सप्तदशो वर्गः ॥ १७ ॥

इममू षु वो अतिथिमुषर्बुधं विश्वासां विशां पतिमृञ्जसे गिरा ।
वेतीद्दिवो जनुषा कच्चिदा शुचिर्ज्योक्चिदत्ति गर्भो यदच्युतम् ॥ १ ॥
मित्रं न यं सुधितं भृगवो दधुर्वनस्पतावीड्यमूर्ध्वशोचिषम् ।
स त्वं सुप्रीतो वीतहव्ये अद्भुत प्रशस्तिभिर्महयसे दिवेदिवे ॥ २ ॥
स त्वं दक्षस्यावृको वृधो भूरर्यः परस्यान्तरस्य तरुषः ।
रायः सूनो सहसो मर्त्येष्वा छर्दिर्यच्छ वीतहव्याय सप्रथो
भरद्वाजाय सप्रथः ॥ ३ ॥
द्युतानं वो अतिथिं स्वर्णरमग्निं होतारं मनुषः स्वध्वरम् ।
विप्रं न द्युक्षवचसं सुवृक्तिभिर्हव्यवाहमरतिं देवमृञ्जसे ॥ ४ ॥
पावकया यश्चितयन्त्या कृपा क्षामन्रुरुच उषसो न भानुना ।
तूर्वन्न यामन्नेतशस्य नू रण आ यो घृणे न ततृषाणो अजरः ॥ ५ ॥

अथाष्टादशो वर्गः ॥ १८ ॥

अग्निमग्निं वः समिधा दुवस्यत प्रियंप्रियं वो अतिथिं गृणीषणि ।
उप वो गीर्भिरमृतं विवासत देवो देवेषु वनते हि
वार्यं देवो देवेषु वनते हि नो दुवः ॥ ६ ॥
समिद्धमग्निं समिधा गिरा गृणे शुचिं पावकं पुरो अध्वरे ध्रुवम् ।
विप्रं होतारं पुरुवारमद्रुहं कविं सुम्नैरीमहे जातवेदसम् ॥ ७ ॥
त्वां दूतमग्ने अमृतं युगेयुगे हव्यवाहं दधिरे पायुमीड्यम् ।
देवासश्च मर्तासश्च जागृविं विभुं विश्पतिं नमसा नि षेदिरे ॥ ८ ॥

विभूषन्नग्न उभयाँ अनु व्रता दूतो देवानां रजसी समीयसे ।
यत्ते धीतिं सुमतिमावृणीमहेऽध स्मा नस्त्रिवरूथः शिवो भव ॥ ९ ॥
तं सुप्रतीकं सुदृशं स्वञ्चमविद्वांसो विदुष्टरं सपेम ।
स यक्षद्विश्वा वयुनानि विद्वान्प्र हव्यमग्निरमृतेषु वोचत् ॥ १० ॥

अथैकोनविंशो वर्गः ॥ १९ ॥

तमग्ने पास्युत तं पिपर्षि यस्त आनट् कवये शूर धीतिम् ।
यज्ञस्य वा निशितिं वोदितिं वा तमित्पृणक्षि शवसोत राया ॥ ११ ॥
त्वमग्ने वनुष्यतो नि पाहि त्वमु नः सहसावन्नवद्यात् ।
सं त्वा ध्वस्मन्वदभ्येतु पाथः सं रयिः स्पृहयाय्यः सहस्री ॥ १२ ॥
अग्निर्होता गृहपतिः स राजा विश्वा वेद जनिमा जातवेदाः ।
देवानामुत यो मर्त्यानां यजिष्ठः स प्र यजतामृतावा ॥ १३ ॥
अग्ने यदद्य विशो अध्वरस्य होतः पावकशोचे वेष्ट्वं हि यज्वा ।
ऋता यजासि महिना वि यद्भूर्हव्या वह यविष्ठ या ते अद्य ॥ १४ ॥
अभि प्रयांसि सुधितानि हि ख्यो नि त्वा दधीत रोदसी यजध्यै ।
अवा नो मघवन्वाजसातावग्ने विश्वानि दुरिता तरेम ता
तरेम तवावसा तरेम ॥ १५ ॥

अथ विंशो वर्गः ॥ २० ॥

अग्ने विश्वेभिः स्वनीक देवैरूर्णावन्तं प्रथमः सीद योनिम् ।
कुलायिनं घृतवन्तं सवित्रे यज्ञं नय यजमानाय साधु ॥ १६ ॥
इममु त्यमथर्ववदग्निं मन्थन्ति वेधसः ।
यमङ्कूयन्तमानयन्नमूरं श्याव्याभ्यः ॥ १७ ॥
जनिष्वा देववीतये सर्वताता स्वस्तये ।
आ देवान्वक्ष्यमृताँ ऋतावृधो यज्ञं देवेषु पिस्पृशः ॥ १८ ॥
वयमु त्वा गृहपते जनानामग्ने अकर्म समिधा बृहन्तम् ।
अस्थूरि नो गार्हपत्यानि सन्तु तिग्मेन नस्तेजसा सं शिशाधि ॥ १९ ॥

द्वितीयोऽनुवाकः

[१६] षोडशं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१, ६, ७ आर्च्युष्णिक्; २-५, ८, ९, ११, १३-१५, १७, १८, २१, २४, २५, २८, ३२, ४० निचृद् गायत्री; १०, १९, २०, २२, २३, २९, ३१, ३४-३९, ४१ गायत्री; २६, ३० विराड्गायत्री; १२, १६, ३३, ४२, ४४ साम्नीत्रिष्टुप्; ४३, ४५ निचृत्त्रिष्टुप्; २७ आर्चीपङ्क्तिः; ४६ भुरिक्पङ्क्तिः; ४७, ४८ निचृदनुष्टुप्॥
स्वरः—१, ६, ७ ऋषभः; २-५, ८-११, १३-१५, १७-२६, २८-३२, ३४-४१, षड्जः; १२, १६, ३३, ४२-४५ धैवतः; २७, ४६ पञ्चमः; ४७, ४८ गान्धारः ॥

अथ एकविंशो वर्गः ॥ २१ ॥

त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः । देवेभिर्मानुषे जने ॥ १ ॥
स नो मन्द्राभिरध्वरे जिह्वाभिर्यजा महः । आ देवान्वक्षि यक्षि च ॥ २ ॥
वेत्था हि वेधो अध्वनः पथश्च देवाञ्जसा । अग्ने यज्ञेषु सुक्रतो ॥ ३ ॥
त्वामीळे अध द्विता भरतो वाजिभिः शुनम् । ईजे यज्ञेषु यज्ञियम् ॥ ४ ॥
त्वमिमा वार्या पुरु दिवोदासाय सुन्वते । भरद्वाजाय दाशुषे ॥ ५ ॥

अथ द्वाविंशो वर्गः ॥ २२ ॥

त्वं दूतो अमर्त्य आ वहा दैव्यं जनम् । शृण्वन्विप्रस्य सुष्टुतिम् ॥ ६ ॥
त्वामग्ने स्वाध्यो३ मर्तासो देववीतये । यज्ञेषु देवमीळते ॥ ७ ॥
तव प्र यक्षि सन्दृशमुत क्रतुं सुदानवः । विश्वे जुषन्त कामिनः ॥ ८ ॥
त्वं होता मनुर्हितो वह्निरासा विदुष्टरः । अग्ने यक्षि दिवो विशः ॥ ९ ॥
अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये । नि होता सत्सि बर्हिषि ॥ १० ॥

अथ त्रयोविंशो वर्गः ॥ २३ ॥

तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्धयामसि । बृहच्छोचा यविष्ठ्य ॥ ११ ॥
स नः पृथु श्रवाय्यमच्छा देव विवाससि । बृहदग्ने सुवीर्यम् ॥ १२ ॥
त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत । मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ॥ १३ ॥
तमु त्वा दध्यङ्ङृषिः पुत्र ईधे अथर्वणः । वृत्रहणं पुरन्दरम् ॥ १४ ॥
तमु त्वा पाथ्यो वृषा समीधे दस्युहन्तमम् । धनञ्जयं रणेरणे ॥ १५ ॥

अथ चतुर्विंशो वर्गः ॥ २४ ॥

एह्यू षु ब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरा गिरः । एभिर्वर्धास इन्दुभिः ॥ १६ ॥
यत्र क्व च ते मनो दक्षं दधस उत्तरम् । तत्रा सदः कृणवसे ॥ १७ ॥

नहि ते पूर्तमक्षिपद्भुवन्नेमानां वसो। अथा दुवो वनवसे ॥ १८ ॥
आग्निरगामि भारतो वृत्रहा पुरुचेतनः। दिवोदासस्य सत्पतिः ॥ १९ ॥
स हि विश्वाति पार्थिवा रयिं दाशन्महित्वना। वन्वन्नवातो अस्तृतः ॥ २० ॥

अथ पञ्चविंशो वर्गः ॥ २५ ॥

स प्रत्नवन्नवीयसाग्ने द्युम्नेन संयता। बृहत्ततन्थ भानुना ॥ २१ ॥
प्र वः सखायो अग्नये स्तोमं यज्ञं च धृष्णुया। अर्च गाय च वेधसे ॥ २२ ॥
स हि यो मानुषा युगा सीदद्धोता कविक्रतुः। दूतश्च हव्यवाहनः ॥ २३ ॥
ता राजाना शुचिव्रतादित्यान्मारुतं गणम्। वसो यक्षीह रोदसी ॥ २४ ॥
वस्वी ते अग्ने सन्दृष्टिरिषयते मर्त्याय। ऊर्जो नपादमृतस्य ॥ २५ ॥

अथ षड्विंशो वर्गः ॥ २६ ॥

क्रत्वा दा अस्तु श्रेष्ठोऽद्य त्वा वन्वन्त्सुरेक्णाः ।
मर्त आनाश सुवृक्तिम् ॥ २६ ॥
ते ते अग्ने त्वोता इषयन्तो विश्वमायुः ।
तरन्तो अर्यो अरातीर्वन्वन्तो अर्यो अरातीः ॥ २७ ॥

अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यासद्विश्वं न्य१त्रिणम्। अग्निर्नो वनते रयिम् ॥ २८ ॥
सुवीरं रयिमा भर जातवेदो विचर्षणे। जहि रक्षांसि सुक्रतो ॥ २९ ॥
त्वं नः पाह्यंहसो जातवेदो अघायतः। रक्षा णो ब्रह्मणस्कवे ॥ ३० ॥

अथ सप्तविंशो वर्गः ॥ २७ ॥

यो नो अग्ने दुरेव आ मर्तो वधाय दाशति। तस्मान्नः पाह्यंहसः ॥ ३१ ॥
त्वं तं देव जिह्वया परि बाधस्व दुष्कृतम्। मर्तो यो नो जिघांसति ॥ ३२ ॥
भरद्वाजाय सप्रथः शर्म यच्छ सहन्त्य। अग्ने वरेण्यं वसु ॥ ३३ ॥
अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद् द्रविणस्युर्विपन्यया। समिद्धः शुक्र आहुतः ॥ ३४ ॥
गर्भे मातुः पितुष्पिता विदिद्युतानो अक्षरे। सीदन्नृतस्य योनिमा ॥ ३५ ॥

अथाष्टाविंशो वर्गः ॥ २८ ॥

ब्रह्म प्रजावदा भर जातवेदो विचर्षणे। अग्ने यद्दीदयद्दिवि ॥ ३६ ॥
उप त्वा रण्वसन्दृशं प्रयस्वन्तः सहस्कृत। अग्ने ससृज्महे गिरः ॥ ३७ ॥

उप च्छायामिव घृणेरगन्म शर्म ते वयम्। अग्ने हिरण्यसंदृशः ॥ ३८ ॥
य उग्रइव शर्यहा तिग्मशृङ्गो न वंसगः। अग्ने पुरो रुरोजिथ ॥ ३९ ॥
आ यं हस्ते न खादिनं शिशुं जातं न बिभ्रति। विशामग्निं स्वध्वरम् ॥ ४० ॥

अथैकोनत्रिंशो वर्गः ॥ २९ ॥

प्र देवं देववीतये भरता वसुवित्तमम्। आ स्वे योनौ नि षीदतु ॥ ४१ ॥
आ जातं जातवेदसि प्रियं शिशीतातिथिम्। स्योन आ गृहपतिम् ॥ ४२ ॥
अग्ने युक्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः। अरं वहन्ति मन्यवे ॥ ४३ ॥
अच्छा नो याह्या वहाभि प्रयांसि वीतये। आ देवान्त्सोमपीतये ॥ ४४ ॥
उदग्ने भारत द्युमदजस्रेण दविद्युतत्। शोचा वि भाह्यजर ॥ ४५ ॥

अथ त्रिंशो वर्गः ॥ ३० ॥

वीती यो देवं मर्तो दुवस्येदग्निमीळीताध्वरे हविष्मान्।
होतारं सत्ययजं रोदस्योरुत्तानहस्तो नमसा विवासेत् ॥ ४६ ॥
आ ते अग्न ऋचा हविर्हृदा तष्टं भरामसि ।
ते ते भवन्तूक्षण ऋषभासो वशा उत ॥ ४७ ॥
अग्निं देवासो अग्रियमिन्धते वृत्रहन्तमम् ।
येना वसून्याभृता तृळ्हा रक्षांसि वाजिना ॥ ४८ ॥

इति चतुर्थाष्टके पञ्चमोऽध्यायः ॥

अथ चतुर्थाष्टके षष्ठोऽध्यायः

[१७] सप्तदशं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१-४, ११ त्रिष्टुप्; ५, ६, ८ विराट्त्रिष्टुप्; ७, ९, १०, १२, १४ निचृत्त्रिष्टुप्; १३ स्वराट्पङ्क्तिः; १५ आर्च्युष्णिक् ॥ स्वरः—१-१२, १४ धैवतः; १३ पञ्चमः; १५ ऋषभः ॥

अथ प्रथमो वर्गः ॥ १ ॥

पिबा सोममभि यमुग्र तर्द ऊर्वं गव्यं महि गृणान इन्द्र।
वि यो धृष्णो वधिषो वज्रहस्त विश्वा वृत्रममित्रिया शवोभिः ॥ १ ॥

स ईं पाहि य ऋजीषी तरुत्रो यः शिप्रवान्वृषभो यो मतीनाम्।
यो गोत्रभिद्वज्रभृद्यो हरिष्ठाः स इन्द्र चित्राँ अभि तृन्धि वाजान्॥ २ ॥
एवा पाहि प्रत्नथा मन्दतु त्वा श्रुधि ब्रह्म वावृधस्वोत गीर्भिः।
आविः सूर्यं कृणुहि पीपिहीषो जहि शत्रूँरभि गा इन्द्र तृन्धि॥ ३ ॥
ते त्वा मदा बृहदिन्द्र स्वधाव इमे पीता उक्षयन्त द्युमन्तम्।
महामनूनं तवसं विभूतिं मत्सरासो जर्हृषन्त प्रसाहम् ॥ ४ ॥
येभिः सूर्यमुषसं मन्दसानोऽवासयोऽप दृळ्हानि दर्द्रत् ।
महामद्रिं परि गा इन्द्र सन्तं नुत्था अच्युतं सदसस्परि स्वात्॥ ५ ॥

अथ द्वितीयो वर्गः॥ २॥

तव क्रत्वा तव तद्दंसनाभिरामासु पक्वं शच्या नि दीधः ।
और्णोर्दुर उस्रियाभ्यो वि दृळ्होदूर्वाद्गा असृजो अङ्गिरस्वान्॥ ६ ॥
पप्राथ क्षां महि दंसो व्यु१र्वीमुप द्यामृष्वो बृहदिन्द्र स्तभायः।
अधारयो रोदसी देवपुत्रे प्रत्ने मातरा यह्वी ऋतस्य ॥ ७ ॥
अध त्वा विश्वे पुर इन्द्र देवा एकं तवसं दधिरे भराय ।
अदेवो यदभ्यौहिष्ट देवान्त्स्वर्षाता वृणत इन्द्रमत्र ॥ ८ ॥
अध द्यौश्चित्ते अप सा नु वज्राद् द्वितानमद्भियसा स्वस्य मन्योः।
अहिं यदिन्द्रो अभ्योहसानं नि चिद्विश्वायुः शयथे जघान॥ ९ ॥
अध त्वष्टा ते मह उग्र वज्रं सहस्रभृष्टिं ववृतच्छताश्रिम्।
निकाममरमणसं येन नवन्तमहिं सं पिणगृजीषिन् ॥ १० ॥

अथ तृतीयो वर्गः॥ ३॥

वर्धान्यं विश्वे मरुतः सजोषाः पचच्छतं महिषाँ इन्द्र तुभ्यम्।
पूषा विष्णुस्त्रीणि सरांसि धावन्वृत्रहणं मदिरमंशुमस्मै॥ ११ ॥
आ क्षोदो महि वृतं नदीनां परिष्ठितमसृज ऊर्मिमपाम्।
तासामनु प्रवत इन्द्र पन्थां प्रार्दयो नीचीरपसः समुद्रम्॥ १२ ॥

एवा ता विश्वा चकृवांसमिन्द्रं महामुग्रमजुर्यं सहोदाम्।
सुवीरं त्वा स्वायुधं सुवज्रमा ब्रह्म नव्यमवसे ववृत्यात्॥ १३ ॥
स नो वाजाय श्रवस इषे च राये धेहि द्युमत इन्द्र विप्रान्।
भरद्वाजे नृवत इन्द्र सूरीन्दिवि च स्मैधि पार्ये न इन्द्र॥ १४ ॥
अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः॥ १५ ॥

[१८] अष्टादशं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१, ४, ९, १४ निचृत्त्रिष्टुप्; २, ८, ११, १३ त्रिष्टुप्; ३, १५ भुरिक्पङ्क्तिः; ५ स्वराट्पङ्क्तिः; ६ ब्राह्म्युष्णिक्; ७, १० विराट्त्रिष्टुप्; १२ भुरिक्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—१, २, ४, ७-१४ धैवतः; ३, ५, १५ पञ्चमः; ६ ऋषभः॥

अथ चतुर्थो वर्गः॥ ४॥

तमु ष्टुहि यो अभिभूत्योजा वन्वन्नवातः पुरुहूत इन्द्रः ।
अषाळ्हमुग्रं सहमानमाभिर्गीर्भिर्वर्ध वृषभं चर्षणीनाम् ॥ १ ॥
स युध्मः सत्वा खजकृत्समद्वा तुविम्रक्षो नदनुमाँ ऋजीषी।
बृहद्रेणुश्च्यवनो मानुषीणामेकः कृष्टीनामभवत्सहावा ॥ २ ॥
त्वं ह नु त्यददमायो दस्यूँरेकः कृष्टीरवनोरार्याय ।
अस्ति स्विन्नु वीर्यं१ तत्त इन्द्र न स्विदस्ति तदृतुथा वि वोचः॥ ३ ॥
सदिद्धि ते तुविजातस्य मन्ये सहः सहिष्ठ तुरतस्तुरस्य ।
उग्रमुग्रस्य तवसस्तवीयोऽरध्रस्य रध्रतुरो बभूव ॥ ४ ॥
तन्नः प्रत्नं सख्यमस्तु युष्मे इत्था वदद्भिर्वलमङ्गिरोभिः ।
हन्नच्युतच्युद्दस्मेषयन्तमृणोः पुरो वि दुरो अस्य विश्वाः ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमो वर्गः॥ ५॥

स हि धीभिर्हव्यो अस्त्युग्र ईशानकृन्महति वृत्रतूर्ये ।
स तोकसाता तनये स वज्री वितन्तसाय्यो अभवत्समत्सु॥ ६ ॥
स मज्मना जनिम मानुषाणाममर्त्येन नाम्नाति प्र सर्स्रे ।
स द्युम्नेन स शवसोत राया स वीर्येण नृतमः समोकाः॥ ७ ॥
स यो न मुहे न मिथू जनो भूत्सुमन्तुनामा चुमुरिं धुनिं च।
वृणक्पिप्रुं शम्बरं शुष्णमिन्द्रः पुरां च्यौत्नाय शयथाय नू चित्॥ ८ ॥

उदावता त्वक्षसा पन्यसा च वृत्रहत्याय रथमिन्द्र तिष्ठ।
धिष्व वज्रं हस्त आ दक्षिणत्राभि प्र मन्द पुरुदत्र मायाः ॥ ९ ॥
अग्निर्न शुष्कं वनमिन्द्र हेती रक्षो नि धक्ष्यशनिर्न भीमा।
गम्भीरय ऋष्वया यो रुरोजाध्वानयद्दुरिता दम्भयच्च ॥ १० ॥

अथ षष्ठो वर्गः ॥ ६ ॥

आ सहस्रं पथिभिरिन्द्र राया तुविद्युम्न तुविवाजेभिरर्वाक्।
याहि सूनो सहसो यस्य नू चिददेव ईशे पुरुहूत योतोः ॥ ११ ॥
प्र तुविद्युम्नस्य स्थविरस्य घृष्वेर्दिवो ररप्शे महिमा पृथिव्याः।
नास्य शत्रुर्न प्रतिमानमस्ति न प्रतिष्ठिः पुरुमायस्य सह्योः ॥ १२ ॥
प्र तत्ते अद्या करणं कृतं भूत्कुत्सं यदायुमतिथिग्वमस्मै।
पुरू सहस्रा नि शिशा अभि क्षामुत्तूर्वयाणं धृषता निनेथ ॥ १३ ॥
अनु त्वाहिघ्ने अध देव देवा मदन्विश्वे कवितमं कवीनाम्।
करो यत्र वरिवो बाधिताय दिवे जनाय तन्वे गृणानः ॥ १४ ॥
अनु द्यावापृथिवी तत्त ओजोऽमर्त्या जिहत इन्द्र देवाः।
कृष्वा कृत्नो अकृतं यत्ते अस्त्युक्थं नवीयो जनयस्व यज्ञैः ॥ १५ ॥

[१९] एकोनविंशं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१, ३, १३ भुरिक्पङ्क्तिः; २, ४, ६, ७ निचृत्त्रिष्टुप्; ५, १०-१२ विराट्त्रिष्टुप्; ८ त्रिष्टुप्; ९ पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१, ३, ९, १३ पञ्चमः; २, ४-८, १०-१२ धैवतः ॥

अथ सप्तमो वर्गः ॥ ७ ॥

महाँ इन्द्रो नृवदा चर्षणिप्रा उत द्विबर्हा अमिनः सहोभिः।
अस्मद्र्यग्वावृधे वीर्यायोरुः पृथुः सुकृतः कर्तृभिर्भूत् ॥ १ ॥
इन्द्रमेव धिषणा सातये धाद् बृहन्तमृष्वमजरं युवानम्।
अषाळ्हेन शवसा शूशुवांसं सद्यश्चिद्यो वावृधे असामि ॥ २ ॥
पृथू करस्ना बहुला गभस्ती अस्मद्र्य१क्सं मिमीहि श्रवांसि।
यूथेव पश्वः पशुपा दमूना अस्माँ इन्द्राभ्या ववृत्स्वाजौ ॥ ३ ॥

तं व इन्द्रं चतिनमस्य शाकैरिह नूनं वाजयन्तो हुवेम।
यथा चित्पूर्वे जरितार आसुरनेद्या अनवद्या अरिष्टाः ॥ ४ ॥
धृतव्रतो धनदाः सोमवृद्धः स हि वामस्य वसुनः पुरुक्षुः।
सं जग्मिरे पथ्या३ रायो अस्मिन्त्समुद्रे न सिन्धवो यादमानाः ॥ ५ ॥

अथाष्टमो वर्गः ॥ ८ ॥

शविष्ठं न आ भर शूर शव ओजिष्ठमोजो अभिभूत उग्रम्।
विश्वा द्युम्ना वृष्ण्या मानुषाणामस्मभ्यं दा हरिवो मादयध्यै ॥ ६ ॥
यस्ते मदः पृतनाषाळमृध्र इन्द्र तं न आ भर शूशुवांसम्।
येन तोकस्य तनयस्य सातौ मंसीमहि जिगीवांसस्त्वोताः ॥ ७ ॥
आ नो भर वृषणं शुष्ममिन्द्र धनस्पृतं शूशुवांसं सुदक्षम्।
येन वंसाम पृतनासु शत्रून्तवोतिभिरुत जामीँरजामीन् ॥ ८ ॥
आ ते शुष्मो वृषभ एतु पश्चादोत्तरादधरादा पुरस्तात्।
आ विश्वतो अभि समेत्वर्वाङिन्द्र द्युम्नं स्वर्वद्धेह्यस्मे ॥ ९ ॥
नृवत्त इन्द्र नृतमाभिरूती वंसीमहि वामं श्रोमतेभिः।
ईक्षे हि वस्व उभयस्य राजन्धा रत्नं महि स्थूरं बृहन्तम् ॥ १० ॥
मरुत्वन्तं वृषभं वावृधानमकवारिं दिव्यं शासमिन्द्रम्।
विश्वासाहमवसे नूतनायोग्रं सहोदामिह तं हुवेम ॥ ११ ॥
जनं वज्रिन्महि चिन्मन्यमानमेभ्यो नृभ्यो रन्धया येष्वस्मि।
अधा हि त्वा पृथिव्यां शूरसातौ हवामहे तनये गोष्वप्सु ॥ १२ ॥
वयं त एभिः पुरुहूत सख्यैः शत्रोःशत्रोरुत्तर इत्स्याम।
घ्नन्तो वृत्राण्युभयानि शूर राया मदेम बृहता त्वोताः ॥ १३ ॥

[२०] विंशं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१ आर्ष्यनुष्टुप्; २, ३, ७, १२ पङ्क्तिः; ४, ६ भुरिक्पङ्क्तिः; ५, ८, ९, ११ निचृत्त्रिष्टुप्; १० निचृत्पङ्क्तिः; १३ स्वराट्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१ गान्धारः; २-४, ६, ७, १०, १२, १३ पञ्चमः; ५, ८, ९, ११ धैवतः ॥

अथ नवमो वर्गः ॥ ९ ॥

द्यौर्न य इन्द्राभि भूमार्यस्तस्थौ रयिः शवसा पृत्सु जनान्।
तं नः सहस्रभरमुर्वरासां दद्धि सूनो सहसो वृत्रतुरम् ॥ १ ॥
दिवो न तुभ्यमन्विन्द्र सत्रासुर्यं देवेभिर्धायि विश्वम्।
अहिं यद् वृत्रमपो वव्रिवांसं हन्नृजीषिन्विष्णुना सचानः ॥ २ ॥
तूर्वन्नोजीयान्तवसस्तवीयान्कृतब्रह्मेन्द्रो वृद्धमहाः।
राजाभवन्मधुनः सोम्यस्य विश्वासां यत्पुरां दर्त्नुमावत् ॥ ३ ॥
शतैरपद्रन्पणय इन्द्रात्र दशोणये कवयेऽर्कसातौ।
वधैः शुष्णस्याशुषस्य मायाः पित्वो नारिरेचीत्किं चन प्र ॥ ४ ॥
महो द्रुहो अप विश्वायु धायि वज्रस्य यत्पतने पादि शुष्णः।
उरु ष सरथं सारथये करिन्द्रः कुत्साय सूर्यस्य सातौ ॥ ५ ॥

अथ दशमो वर्गः ॥ १० ॥

प्र श्येनो न मदिरमंशुमस्मै शिरो दासस्य नमुचेर्मथायन्।
प्रावन्नमीं साप्यं ससन्तं पृणग्राया समिषा सं स्वस्ति ॥ ६ ॥
वि पिप्रोरहिमायस्य दृळ्हाः पुरो वज्रिञ्छवसा न दर्दः।
सुदामन्तद्रेक्णो अप्रमृष्यमृजिश्वने दात्रं दाशुषे दाः ॥ ७ ॥
स वेतसुं दशमायं दशोणिं तूतुजिमिन्द्रः स्वभिष्टिसुम्नः।
आ तुग्रं शश्वदिभं द्योतनाय मातुर्न सीमुप सृजा इयध्यै ॥ ८ ॥
स ईं स्पृधो वनते अप्रतीतो बिभ्रद्वज्रं वृत्रहणं गभस्तौ।
तिष्ठद्धरी अध्यस्तेव गर्ते वचोयुजा वहत इन्द्रमृष्वम् ॥ ९ ॥
सनेम तेऽवसा नव्य इन्द्र प्र पूरवः स्तवन्त एना यज्ञैः।
सप्त यत्पुरः शर्म शारदीर्दर्द्धन्दासीः पुरुकुत्साय शिक्षन् ॥ १० ॥
त्वं वृध इन्द्र पूर्व्यो भूर्वरिवस्यन्नुशने काव्याय।
परा नववास्त्वमनुदेयं महे पित्रे ददाथ स्वं नपातम् ॥ ११ ॥
त्वं धुनिरिन्द्र धुनिमतीर्ऋणोरपः सीरा न स्रवन्तीः।
प्र यत्समुद्रमति शूर पर्षि पारया तुर्वशं यदुं स्वस्ति ॥ १२ ॥

तव ह त्यदिन्द्र विश्वमाजौ सस्तो धुनीचुमुरी या ह सिष्वप्।
दीदयदित्तुभ्यं सोमेभिः सुन्वन्दभीतिरिध्मभृतिः पक्थ्य१र्कैः ॥ १३ ॥

[२१] एकविंशं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१, २, ९, १०, १२ विराट्त्रिष्टुप्; ३, ७ निचृत्त्रिष्टुप्; ४-६, ११ त्रिष्टुप्; ८ स्वराड्बृहती ॥ स्वरः—१-७, ९-१२ धैवतः; ८ मध्यमः ॥

अथैकादशो वर्गः ॥ ११ ॥

इमा उ त्वा पुरुतमस्य कारोर्हव्यं वीर हव्या हवन्ते।
धियो रथेष्ठामजरं नवीयो रयिर्विभूतिरीयते वचस्या ॥ १ ॥
तमु स्तुष इन्द्रं यो विदानो गिर्वाहसं गीर्भिर्यज्ञवृद्धम्।
यस्य दिवमति मह्ना पृथिव्याः पुरुमायस्य रिरिचे महित्वम् ॥ २ ॥
स इत्तमोऽवयुनं ततन्वत्सूर्येण वयुनवच्चकार।
कदा ते मर्ता अमृतस्य धामेयक्षन्तो न मिनन्ति स्वधावः ॥ ३ ॥
यस्ता चकार स कुह स्विदिन्द्रः कमा जनं चरति कासु विक्षु।
कस्ते यज्ञो मनसे शं वराय को अर्क इन्द्र कतमः स होता ॥ ४ ॥
इदा हि ते वेविषतः पुराजाः प्रत्नास आसुः पुरुकृत्सखायः।
ये मध्यमास उत नूतनास उतावमस्य पुरुहूत बोधि ॥ ५ ॥

अथ द्वादशो वर्गः ॥ १२ ॥

तं पृच्छन्तोऽवरासः पराणि प्रत्ना त इन्द्र श्रुत्यानु येमुः।
अर्चामसि वीर ब्रह्मवाहो यादेव विद्म तात्त्वा महान्तम् ॥ ६ ॥
अभि त्वा पाजो रक्षसो वि तस्थे महि जज्ञानमभि तत्सु तिष्ठ।
तव प्रत्नेन युज्येन सख्या वज्रेण धृष्णो अप ता नुदस्व ॥ ७ ॥
स तु श्रुधीन्द्र नूतनस्य ब्रह्मण्यतो वीर कारुधायः।
त्वं ह्या३पिः प्रदिवि पितृणां शश्वद् बभूथ सुहव एष्टौ ॥ ८ ॥
प्रोतये वरुणं मित्रमिन्द्रं मरुतः कृष्वावसे नो अद्य।
प्र पूषणं विष्णुमग्निं पुरंधिं सवितारमोषधीः पर्वतांश्च ॥ ९ ॥

इम उ त्वा पुरुशाक प्रयज्यो जरितारो अभ्यर्चन्त्यर्कैः।
श्रुधी हवमा हुवतो हुवानो न त्वावाँ अन्यो अमृत त्वदस्ति॥ १०॥
नू म आ वाचमुप याहि विद्वान्विश्वेभिः सूनो सहसो यजत्रैः।
ये अग्निजिह्वा ऋतसाप आसुर्ये मनुं चक्रुरुपरं दसाय॥ ११॥
स नो बोधि पुरएता सुगेषूत दुर्गेषु पथिकृद्विदानः।
ये अश्रमास उरवो वहिष्ठास्तेभिर्न इन्द्राभि वक्षि वाजम्॥ १२॥

[२२] द्वाविंशं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१, ७ भुरिक्पङ्क्तिः; २, ४, ५ त्रिष्टुप्; ३ स्वराट्पङ्क्तिः; ६, ८ विराट्त्रिष्टुप्; ९, ११ निचृत्त्रिष्टुप्; १० पङ्क्तिः॥ स्वरः—१, ३, ७, १० पञ्चमः; २, ४-६, ८, ९, ११ धैवतः॥

अथ त्रयोदशो वर्गः॥ १३॥

य एक इद्धव्यश्चर्षणीनामिन्द्रं तं गीर्भिरभ्यर्च आभिः।
यः पत्यते वृषभो वृष्ण्यावान्त्सत्यः सत्वा पुरुमायः सहस्वान्॥ १॥
तमु नः पूर्वे पितरो नवग्वाः सप्त विप्रासो अभि वाजयन्तः।
नक्षद्दाभं ततुरिं पर्वतेष्ठामद्रोघवाचं मतिभिः शविष्ठम्॥ २॥
तमीमह इन्द्रमस्य रायः पुरुवीरस्य नृवतः पुरुक्षोः।
यो अस्कृधोयुरजरः स्वर्वान्तमा भर हरिवो मादयध्यै॥ ३॥
तन्नो वि वोचो यदि ते पुरा चिज्जरितार आनशुः सुम्नमिन्द्र।
कस्ते भागः किं वयो दुध्र खिद्वः पुरुहूत पुरूवसोऽसुरघ्नः॥ ४॥
तं पृच्छन्ती वज्रहस्तं रथेष्ठामिन्द्रं वेपी वक्वरी यस्य नू गीः।
तुविग्राभं तुविकूर्मिं रभोदां गातुमिषे नक्षते तुम्रमच्छ॥ ५॥

अथ चतुर्दशो वर्गः॥ १४॥

अया ह त्यं मायया वावृधानं मनोजुवा स्वतवः पर्वतेन।
अच्युता चिद्वीळिता स्वोजो रुजो वि दृळ्हा धृषता विरप्शिन्॥ ६॥
तं वो धिया नव्यस्या शविष्ठं प्रत्नं प्रत्नवत्परितंसयध्यै।
स नो वक्षदनिमानः सुवह्मेन्द्रो विश्वान्यति दुर्गहाणि॥ ७॥

आ जनाय द्रुह्वणे पार्थिवानि दिव्यानि दीपयोऽन्तरिक्षा।
तपा वृषन्विश्वतः शोचिषा तान्ब्रह्मद्विषे शोचय क्षामपश्च॥ ८॥
भुवो जनस्य दिव्यस्य राजा पार्थिवस्य जगतस्त्वेषसंदृक्।
धिष्व वज्रं दक्षिण इन्द्र हस्ते विश्वा अजुर्य दयसे वि मायाः॥ ९॥
आ संयतमिन्द्र णः स्वस्तिं शत्रुतूर्याय बृहतीममृध्राम्।
यया दासान्यार्याणि वृत्रा करो वज्रिन्त्सुतुका नाहुषाणि॥ १०॥
स नो नियुद्भिः पुरुहूत वेधो विश्ववाराभिरा गहि प्रयज्यो।
न या अदेवो वरते न देव आभिर्याहि तूयमा मद्र्यद्रिक्॥ ११॥

[२३] त्रयोविंशं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१, ३, ८, ९ निचृत्त्रिष्टुप्; २, ४ स्वराट्पङ्क्तिः; ५, ६, १० त्रिष्टुप्; ७ विराट्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—१, ३, ५-१० धैवतः; २, ४ पञ्चमः॥

अथ पञ्चदशो वर्गः॥ १५॥

सुत इत्त्वं निमिश्ल इन्द्र सोमे स्तोमे ब्रह्मणि शस्यमान उक्थे।
यद्वा युक्ताभ्यां मघवन्हरिभ्यां बिभ्रद्वज्रं बाह्वोरिन्द्र यासि॥ १॥
यद्वा दिवि पार्ये सुष्विमिन्द्र वृत्रहत्येऽवसि शूरसातौ।
यद्वा दक्षस्य बिभ्युषो अबिभ्यदरन्धयः शर्धत इन्द्र दस्यून्॥ २॥
पाता सुतमिन्द्रो अस्तु सोमं प्रणेनीरुग्रो जरितारमूती।
कर्ता वीराय सुष्वय उ लोकं दाता वसु स्तुवते कीरये चित्॥ ३॥
गन्तेयान्ति सवना हरिभ्यां बभ्रिर्वज्रं पपिः सोमं ददिर्गाः।
कर्ता वीरं नर्यं सर्ववीरं श्रोता हवं गृणतः स्तोमवाहाः॥ ४॥
अस्मै वयं यद्वावान तद्विविष्म इन्द्राय यो नः प्रदिवो अपस्कः।
सुते सोमे स्तुमसि शंसदुक्थेन्द्राय ब्रह्म वर्धनं यथासत्॥ ५॥

अथ षोडशो वर्गः॥ १६॥

ब्रह्माणि हि चकृषे वर्धनानि तावत्त इन्द्र मतिभिर्विविष्मः।
सुते सोमे सुतपाः शन्तमानि रान्द्र्या क्रियास्म वक्षणानि यज्ञैः॥ ६॥

स नो बोधि पुरोळाशं रराणः पिबा तु सोमं गोऋजीकमिन्द्र ।
एदं बर्हिर्यजमानस्य सीदोरुं कृधि त्वायत उ लोकम् ॥ ७ ॥
स मन्दस्वा ह्यनु जोषमुग्र प्र त्वा यज्ञास इमे अश्नुवन्तु ।
प्रेमे हवासः पुरुहूतमस्मे आ त्वेयं धीरवस इन्द्र यम्याः ॥ ८ ॥
तं वः सखायः सं यथा सुतेषु सोमेभिरीं पृणता भोजमिन्द्रम् ।
कुवित्तस्मा असति नो भराय न सुष्विमिन्द्रोऽवसे मृधाति ॥ ९ ॥
एवेदिन्द्रः सुते अस्तावि सोमे भरद्वाजेषु क्षयदिन्मघोनः ।
असद्यथा जरित्र उत सूरिरिन्द्रो रायो विश्ववारस्य दाता ॥ १० ॥

तृतीयोऽनुवाकः

[२४] चतुर्विंशं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१, २ भुरिक्पङ्क्तिः; ३, ५, ९ पङ्क्तिः; ४, ७ निचृत्त्रिष्टुप्; ६ ब्राह्मीबृहती; ८ त्रिष्टुप्; १० विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१-३, ५, ९ पञ्चमः; ४, ७, ८, १० धैवतः; ६ मध्यमः ॥

अथ सप्तदशो वर्गः ॥ १७ ॥

वृषा मद इन्द्रे श्लोक उक्था सचा सोमेषु सुतपा ऋजीषी ।
अर्चत्र्यो मघवा नृभ्य उक्थैर्द्युक्षो राजा गिरामक्षितोतिः ॥ १ ॥
ततुरिर्वीरो नर्यो विचेताः श्रोता हवं गृणत उर्व्यूतिः ।
वसुः शंसो नरां कारुधाया वाजी स्तुतो विदथे दाति वाजम् ॥ २ ॥
अक्षो न चक्र्योः शूर बृहन्प्र ते मह्ना रिरिचे रोदस्योः ।
वृक्षस्य नु ते पुरुहूत वया व्यू३तयो रुरुहुरिन्द्र पूर्वीः ॥ ३ ॥
शचीवतस्ते पुरुशाक शाका गवामिव स्रुतयः संचरणीः ।
वत्सानां न तन्तयस्त इन्द्र दामन्वन्तो अदामानः सुदामन् ॥ ४ ॥
अन्यदद्य कर्वरमन्यदु श्वोऽसच्च सन्मुहुराचक्रिरिन्द्रः ।
मित्रो नो अत्र वरुणश्च पूषार्यो वशस्य पर्येतास्ति ॥ ५ ॥

अथाष्टादशो वर्गः ॥ १८ ॥

वि त्वदापो न पर्वतस्य पृष्ठादुक्थेभिरिन्द्रानयन्त यज्ञैः ।
तं त्वाभिः सुष्टुतिभिर्वाजयन्त आजिं न जग्मुर्गिर्वाहो अश्वाः ॥ ६ ॥

न यं जरन्ति शरदो न मासा न द्याव इन्द्रमवकर्शयन्ति ।
वृद्धस्य चिद्वर्धतामस्य तनूः स्तोमेभिरुक्थैश्च शस्यमाना ॥ ७ ॥
न वीळवे नमते न स्थिराय न शर्धते दस्युजूताय स्तवान् ।
अज्रा इन्द्रस्य गिरयश्चिदृष्वा गम्भीरे चिद्भवति गाधमस्मै ॥ ८ ॥
गम्भीरेण न उरुणामत्रिन्प्रेषो यन्धि सुतपावन्वाजान् ।
स्था ऊ षु ऊर्ध्व ऊती अरिषण्यन्नक्तोर्व्युष्टौ परितक्म्यायाम् ॥ ९ ॥
सचस्व नायमवसे अभीक इतो वा तमिन्द्र पाहि रिषः ।
अमा चैनमरण्ये पाहि रिषो मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ १० ॥

[२५] पञ्चविंशं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१, ५ पङ्क्तिः; २, ७-९ निचृत्त्रिष्टुप्; ३ भुरिक्पङ्क्तिः; ४, ६ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१, ३, ५ पञ्चमः; २, ४, ६-९ धैवतः ॥

अथ एकोनविंशो वर्गः ॥ १९ ॥

या त ऊतिरवमा या परमा या मध्यमेन्द्र शुष्मिन्नस्ति ।
ताभिरू षु वृत्रहत्येऽवीर्न एभिश्च वाजैर्महान्न उग्र ॥ १ ॥
आभिः स्पृधो मिथतीररिषण्यन्नमित्रस्य व्यथया मन्युमिन्द्र ।
आभिर्विश्वा अभियुजो विषूचीरार्याय विशोऽव तारीर्दासीः ॥ २ ॥
इन्द्र जामय उत येऽजामयोऽर्वाचीनासो वनुषो युयुज्रे ।
त्वमेषां विथुरा शवांसि जहि वृष्ण्यानि कृणुही पराचः ॥ ३ ॥
शूरो वा शूरं वनते शरीरैस्तनूरुचा तरुषि यत्कृण्वैते ।
तोके वा गोषु तनये यदप्सु वि क्रन्दसी उर्वरासु ब्रवैते ॥ ४ ॥
नहि त्वा शूरो न तुरो न धृष्णुर्न त्वा योधो मन्यमानो युयोध ।
इन्द्र नकिष्ट्वा प्रत्यस्त्येषां विश्वा जातान्यभ्यसि तानि ॥ ५ ॥

अथ विंशो वर्गः ॥ २० ॥

स पत्यत उभयोर्नृम्णमयोर्यदी वेधसः समिथे हवन्ते ।
वृत्रे वा महो नृवति क्षये वा व्यचस्वन्ता यदि वितन्तसैते ॥ ६ ॥

अध स्मा ते चर्षणयो यदेजानिन्द्र त्रातोत भवा वरूता।
अस्माकासो ये नृतमासो अर्य इन्द्र सूरयो दधिरे पुरो नः॥ ७॥
अनु ते दायि मह इन्द्रियाय सत्रा ते विश्वमनु वृत्रहत्ये।
अनु क्षत्रमनु सहो यजत्रेन्द्र देवेभिरनु ते नृषह्ये॥ ८॥
एवा नः स्पृधः समजा समत्स्विन्द्र रारन्धि मिथतीरदेवीः।
विद्याम वस्तोरवसा गृणन्तो भरद्वाजा उत त इन्द्र नूनम्॥ ९॥

[२६] षड्विंशं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१ पङ्क्तिः; २, ४ भुरिक्पङ्क्तिः; ३ निचृत्पङ्क्तिः; ५ स्वराट्पङ्क्तिः; ६ विराट्त्रिष्टुप्; ७ त्रिष्टुप्; ८ निचृत्त्रिष्टुप्॥
स्वरः—१-५ पञ्चमः ६-८ धैवतः॥

अथैकविंशो वर्गः॥ २१॥

श्रुधी न इन्द्र ह्वयामसि त्वा महो वाजस्य सातौ वावृषाणाः।
सं यद्विशोऽयन्त शूरसाता उग्रं नोऽवः पार्ये अहन्दाः॥ १॥
त्वां वाजी हवते वाजिनेयो महो वाजस्य गध्यस्य सातौ।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं तरुत्रं त्वां चष्टे मुष्टिहा गोषु युध्यन्॥ २॥
त्वं कविं चोदयोऽर्कसातौ त्वं कुत्साय शुष्णं दाशुषे वर्क्।
त्वं शिरो अमर्मणः पराहन्नतिथिग्वाय शंस्यं करिष्यन्॥ ३॥
त्वं रथं प्र भरो योधमृष्वमावो युध्यन्तं वृषभं दशद्युम्।
त्वं तुग्रं वेतसवे सचाहन्त्वं तुजिं गृणन्तमिन्द्र तूतोः॥ ४॥
त्वं तदुक्थमिन्द्र बर्हणा कः प्र यच्छता सहस्रा शूर दर्षि।
अव गिरेर्दासं शम्बरं हन्प्रावो दिवोदासं चित्राभिरूती॥ ५॥

अथ द्वाविंशो वर्गः॥ २२॥

त्वं श्रद्धाभिर्मन्दसानः सोमैर्दभीतये चुमुरिमिन्द्र सिष्वप्।
त्वं रजिं पिठीनसे दशस्यन्षष्टिं सहस्रा शच्या सचाहन्॥ ६॥
अहं चन तत्सूरिभिरानश्यां तव ज्याय इन्द्र सुम्नमोजः।
त्वया यत्स्तवन्ते सधवीर वीरास्त्रिवरूथेन नहुषा शविष्ठ॥ ७॥

वयं ते अस्यामिन्द्र द्युम्नहूतौ सखायः स्याम महिन प्रेष्ठाः।
प्रातर्दनिः क्षत्रश्रीरस्तु श्रेष्ठो घने वृत्राणां सनये धनानाम्॥ ८॥

[२७] सप्तविंशं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः॥ देवता—१-७ इन्द्रः; ८ अभ्यावर्तिनश्चायमानस्य दानस्तुतिः॥
छन्दः—१, २ स्वराट्पङ्क्तिः; ३, ४ निचृत्त्रिष्टुप्; ५, ७, ८ त्रिष्टुप्; ६ ब्राह्म्युष्णिक्॥
स्वरः—१-२ पञ्चमः; ३-५, ७, ८ धैवतः; ६ ऋषभः॥

अथ त्रयोविंशो वर्गः॥ २३॥

किमस्य मदे किम्वस्य पीताविन्द्रः किमस्य सख्ये चकार।
रणा वा ये निषदि किं ते अस्य पुरा विविद्रे किमु नूतनासः॥ १॥
सदस्य मदे सद्वस्य पीताविन्द्रः सदस्य सख्ये चकार।
रणा वा ये निषदि सत्ते अस्य पुरा विविद्रे सदु नूतनासः॥ २॥
नहि नु ते महिमनः समस्य न मघवन्मघवत्त्वस्य विद्म।
न राधसोराधसो नूतनस्येन्द्र नकिर्ददृश इन्द्रियं ते॥ ३॥
एतत्त्यत्त इन्द्रियमचेति येनावधीर्वरशिखस्य शेषः।
वज्रस्य यत्ते निहतस्य शुष्मात्स्वनाच्चिदिन्द्र परमो ददार॥ ४॥
वधीदिन्द्रो वरशिखस्य शेषोऽभ्यावर्तिने चायमानाय शिक्षन्।
वृचीवतो यद्धरियूपीयायां हन्पूर्वे अर्धे भियसापरो दर्त्॥ ५॥

अथ चतुर्विंशो वर्गः॥ २४॥

त्रिंशच्छतं वर्मिण इन्द्र साकं यव्यावत्यां पुरुहूत श्रवस्या।
वृचीवन्तः शरवे पत्यमानाः पात्रा भिन्दाना न्यर्थान्यायन्॥ ६॥
यस्य गावावरुषा सूयवस्यू अन्तरू षु चरतो रेरिहाणा।
स सृञ्जयाय तुर्वशं परादाद् वृचीवतो दैववाताय शिक्षन्॥ ७॥
द्वयाँ अग्ने रथिनो विंशतिं गा वधूमतो मघवा मह्यं सम्राट्।
अभ्यावर्ती चायमानो ददाति दूणाशेयं दक्षिणा पार्थवानाम्॥ ८॥

[२८] अष्टाविंशं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः॥ देवता—१, ३-८[३] गावः; २, ८[४] गाव इन्द्रो वा॥ छन्दः—१, ७ निचृत्त्रिष्टुप्; २ स्वराट्त्रिष्टुप्; ३, ४ जगती; ५, ६ त्रिष्टुप्; ८ निचृदनुष्टुप्॥
स्वरः—१, २, ५-७ धैवतः; ३, ४ निषादः; ८ गान्धारः॥

अथ पञ्चविंशो वर्गः ॥ २५ ॥

आ गावो अग्मन्नुत भद्रमक्रन्त्सीदन्तु गोष्ठे रणयन्त्वस्मे ।
प्रजावतीः पुरुरूपा इह स्युरिन्द्राय पूर्वीरुषसो दुहानाः ॥ १ ॥
इन्द्रो यज्वने पृणते च शिक्षत्युपेद्ददाति न स्वं मुषायति ।
भूयोभूयो रयिमिदस्य वर्धयन्नभिन्ने खिल्ये नि दधाति देवयुम् ॥ २ ॥
न ता नशन्ति न दभाति तस्करो नासामामित्रो व्यथिरा दधर्षति ।
देवाँश्च याभिर्यजते ददाति च ज्योगित्ताभिः सचते गोपतिः सह ॥ ३ ॥
न ता अर्वा रेणुककाटो अश्नुते न संस्कृतत्रमुप यन्ति ता अभि ।
उरुगायमभयं तस्य ता अनु गावो मर्तस्य वि चरन्ति यज्वनः ॥ ४ ॥
गावो भगो गाव इन्द्रो मे अच्छान् गावः सोमस्य प्रथमस्य भक्षः ।
इमा या गावः स जनास इन्द्र इच्छामीद्धृदा मनसा चिदिन्द्रम् ॥ ५ ॥
यूयं गावो मेदयथा कृशं चिदश्रीरं चित्कृणुथा सुप्रतीकम् ।
भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो बृहद्वो वय उच्यते सभासु ॥ ६ ॥
प्रजावतीः सूयवसं रिशन्तीः शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्तीः ।
मा वः स्तेन ईशत माघशंसः परि वो हेती रुद्रस्य वृज्याः ॥ ७ ॥
उपेदमुपपर्चनमासु गोषूप पृच्यताम् ।
उप ऋषभस्य रेतस्युपेन्द्र तव वीर्ये ॥ ८ ॥

इति चतुर्थाष्टके षष्ठोऽध्यायः ॥

अथ चतुर्थाष्टके सप्तमोऽध्यायः

[२९] एकोनत्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१, ३, ५ निचृत्त्रिष्टुप्; २ भुरिक्पङ्क्तिः; ४ त्रिष्टुप्; ६ ब्राह्म्युष्णिक् ॥ स्वरः—१, ३-५ धैवतः; २ पञ्चमः; ६ ऋषभः ॥

अथ प्रथमो वर्गः ॥ १ ॥

इन्द्रं वो नरः सख्याय सेपुर्महो यन्तः सुमतये चकानाः ।
महो हि दाता वज्रहस्तो अस्ति महामु रण्वमवसे यजध्वम् ॥ १ ॥

आ यस्मिन्हस्ते नर्या मिमिक्षुरा रथे हिरण्यये रथेष्ठाः ।
आ रश्मयो गभस्त्योः स्थूरयोराध्वन्नश्वासो वृषणो युजानाः ॥ २ ॥
श्रिये ते पादा दुव आ मिमिक्षुर्धृष्णुर्वज्री शवसा दक्षिणावान् ।
वसानो अत्कं सुरभिं दृशे कं स्व१र्ण नृतविषिरो बभूथ ॥ ३ ॥
स सोम आमिश्लतमः सुतो भूद्यस्मिन्पक्तिः पच्यते सन्ति धानाः ।
इन्द्रं नरः स्तुवन्तो ब्रह्मकारा उक्था शंसन्तो देववाततमाः ॥ ४ ॥
न ते अन्तः शवसो धाय्यस्य वि तु बाबधे रोदसी महित्वा ।
आ ता सूरिः पृणति तूतुजानो यूथेवाप्सु समीजमान ऊती ॥ ५ ॥
एवेदिन्द्रः सुहव ऋष्वो अस्तूती अनूती हिरिशिप्रः सत्वा ।
एवा हि जातो असमात्योजाः पुरू च वृत्रा हनति नि दस्यून् ॥ ६ ॥

[३०] त्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१-३ निचृत्त्रिष्टुप्; ४ पङ्क्तिः; ५ ब्राह्म्युष्णिक् ॥ स्वरः—१-३ धैवतः; ४ पञ्चमः; ५ ऋषभः ॥

अथ द्वितीयो वर्गः ॥ २ ॥

भूय इद्वावृधे वीर्यायँ एको अजुर्यो दयते वसूनि ।
प्र रिरिचे दिव इन्द्रः पृथिव्या अर्धमिदस्य प्रति रोदसी उभे ॥ १ ॥
अधा मन्ये बृहदसुर्यमस्य यानि दाधार नकिरा मिनाति ।
दिवेदिवे सूर्यो दर्शतो भूद्वि सद्मान्युर्विया सुक्रतुर्धात् ॥ २ ॥
अद्या चिन्नू चित्तदपो नदीनां यदाभ्यो अरदो गातुमिन्द्र ।
नि पर्वता अद्मसदो न सेदुस्त्वया दृळ्हानि सुक्रतो रजांसि ॥ ३ ॥
सत्यमित्तन्न त्वावाँ अन्यो अस्तीन्द्र देवो न मर्त्यो ज्यायान् ।
अहन्नहिं परिशयानमर्णोऽवासृजो अपो अच्छा समुद्रम् ॥ ४ ॥
त्वमपो वि दुरो विषूचीरिन्द्र दृळ्हमरुजः पर्वतस्य ।
राजाभवो जगतश्चर्षणीनां साकं सूर्यं जनयन्द्यामुषासम् ॥ ५ ॥

[३१] एकत्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—सुहोत्रः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१ निचृत्त्रिष्टुप्; २ स्वराट्पङ्क्तिः; ३ पङ्क्तिः; ४ निचृदतिशक्वरी; ५ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१, ४, ५ धैवतः; २, ३ पञ्चमः ॥

अथ तृतीयो वर्गः ॥ ३ ॥

अभूरेको रयिपते रयीणामा हस्तयोरधिथा इन्द्र कृष्टीः ।
वि तोके अप्सु तनये च सूरेऽवोचन्त चर्षणयो विवाचः ॥ १ ॥
त्वद्भियेन्द्र पार्थिवानि विश्वाच्युता चिच्च्यावयन्ते रजांसि ।
द्यावाक्षामा पर्वतासो वनानि विश्वं दृळ्हं भयते अज्मन्ना ते ॥ २ ॥
त्वं कुत्सेनाभि शुष्णमिन्द्राशुषं युध्य कुयवं गविष्टौ ।
दश प्रपित्वे अध सूर्यस्य मुषायश्चक्रमविवे रपांसि ॥ ३ ॥
त्वं शतान्यव शम्बरस्य पुरो जघन्थाप्रतीनि दस्योः ।
अशिक्षो यत्र शच्या शचीवो दिवोदासाय सुन्वते
सुतक्रे भरद्वाजाय गृणते वसूनि ॥ ४ ॥
स सत्यसत्वन्महते रणाय रथमा तिष्ठ तुविनृम्ण भीमम् ।
याहि प्रपथिन्नवसोप मद्रिक्प्र च श्रुत श्रावय चर्षणिभ्यः ॥ ५ ॥

[३२] द्वात्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—सुहोत्रः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१ भुरिक्पङ्क्तिः; २ स्वराट्पङ्क्तिः; ३, ५ त्रिष्टुप्; ४ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१, २ पञ्चमः; ३-५ धैवतः ॥

अथ चतुर्थो वर्गः ॥ ४ ॥

अपूर्व्या पुरुतमान्यस्मै महे वीराय तवसे तुराय ।
विरप्शिने वज्रिणे शन्तमानि वचांस्यासा स्थविराय तक्षम् ॥ १ ॥
स मातरा सूर्येणा कवीनामवासयद्रुजदद्रिं गृणानः ।
स्वाधीभिर्ऋक्वभिर्वावशान उदुस्रियाणामसृजन्निदानम् ॥ २ ॥
स वह्निभिर्ऋक्वभिर्गोषु शश्वन्मितज्ञुभिः पुरुकृत्वा जिगाय ।
पुरः पुरोहा सखिभिः सखीयन्दृळ्हा रुरोज कविभिः कविः सन् ॥ ३ ॥
स नीव्याभिर्जरितारमच्छा महो वाजेभिर्महद्भिश्च शुष्मैः ।
पुरुवीराभिर्वृषभ क्षितीनामा गिर्वणः सुविताय प्र याहि ॥ ४ ॥
स सर्गेण शवसा तक्तो अत्यैरप इन्द्रो दक्षिणतस्तुराषाट् ।
इत्था सृजाना अनपावृदर्थं दिवेदिवे विविषुरप्रमृष्यम् ॥ ५ ॥

[३३] त्रयस्त्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—शुनहोत्रः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१-३ निचृत्पङ्क्तिः; ४ भुरिक्पङ्क्तिः; ५ स्वराट्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—पञ्चमः ॥

अथ पञ्चमो वर्गः ॥ ५ ॥

य ओजिष्ठ इन्द्र तं सु नो दा मदो वृषन्त्स्वभिष्टिर्दास्वान् ।
सौवश्व्यं यो वनवत्स्वश्वो वृत्रा समत्सु सासहदमित्रान् ॥ १ ॥
त्वां ही३न्द्रावसे विवाचो हवन्ते चर्षणयः शूरसातौ ।
त्वं विप्रेभिर्वि पणीँरशायस्त्वोत इत्सनिता वाजमर्वा ॥ २ ॥
त्वं ताँ इन्द्रोभयाँ अमित्रान्दासा वृत्राण्यार्या च शूर ।
वधीर्वनेव सुधितेभिरत्कैरा पृत्सु दर्षि नृणां नृतम ॥ ३ ॥
स त्वं न इन्द्राकवाभिरूती सखा विश्वायुरविता वृधे भूः ।
स्वर्षाता यद्ध्वयामसि त्वा युध्यन्तो नेमधिता पृत्सु शूर ॥ ४ ॥
नूनं न इन्द्रापराय च स्या भवा मृळीक उत नो अभिष्टौ ।
इत्था गृणन्तो महिनस्य शर्मन्दिवि ष्याम पार्ये गोषतमाः ॥ ५ ॥

[३४] चतुस्त्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—शुनहोत्रः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

अथ षष्ठो वर्गः ॥ ६ ॥

सं च त्वे जग्मुर्गिर इन्द्र पूर्वीर्वि च त्वद्यन्ति विभ्वो मनीषाः ।
पुरा नूनं च स्तुतय ऋषीणां पस्पृध्र इन्द्रे अध्युक्थार्का ॥ १ ॥
पुरुहूतो यः पुरुगूर्त ऋभ्वाँ एकः पुरुप्रशस्तो अस्ति यज्ञैः ।
रथो न महे शवसे युजानो३ऽस्माभिरिन्द्रो अनुमाद्यो भूत् ॥ २ ॥
न यं हिंसन्ति धीतयो न वाणीरिन्द्रं नक्षन्तीदभि वर्धयन्तीः ।
यदि स्तोतारः शतं यत्सहस्रं गृणन्ति गिर्वणसं शं तदस्मै ॥ ३ ॥
अस्मा एतद्दिव्य१र्चेव मासा मिमिक्ष इन्द्रे न्ययामि सोमः ।
जनं न धन्वन्नभि सं यदापः सत्रा वावृधुर्हवनानि यज्ञैः ॥ ४ ॥
अस्मा एतन्मह्याङ्गूषमस्मा इन्द्राय स्तोत्रं मतिभिरवाचि ।
असद्यथा महति वृत्रतूर्य इन्द्रो विश्वायुरविता वृधश्च ॥ ५ ॥

[३५] पञ्चत्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—नरः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१ विराट्त्रिष्टुप्; २ पङ्क्तिः; ३ निचृत्त्रिष्टुप्; ४, ५ त्रिष्टुप्॥ स्वरः—१, ३-५ धैवतः; २ पञ्चमः॥

अथ सप्तमो वर्गः॥७॥

कदा भुवन्रथक्षयाणि ब्रह्म कदा स्तोत्रे सहस्रपोष्यं दाः।
कदा स्तोमं वासयोऽस्य राया कदा धियः करसि वाजरत्नाः॥१॥
कर्हि स्वित्तदिन्द्र यन्नृभिर्नॄन्वीरैर्वीरान्नीळयासे जयाजीन्।
त्रिधातु गा अधि जयासि गोष्विन्द्र द्युम्नं स्वर्वद्धेह्यस्मे॥२॥
कर्हि स्वित्तदिन्द्र यज्जरित्रे विश्वप्सु ब्रह्म कृणवः शविष्ठ।
कदा धियो न नियुतो युवासे कदा गोमघा हवनानि गच्छाः॥३॥
स गोमघा जरित्रे अश्वश्चन्द्रा वाजश्रवसो अधि धेहि पृक्षः।
पीपिहीषः सुदुघामिन्द्र धेनुं भरद्वाजेषु सुरुचो रुरुच्याः॥४॥
तमा नूनं वृजनमन्यथा चिच्छूरो यच्छक्र वि दुरो गृणीषे।
मा निररं शुक्रदुघस्य धेनोराङ्गिरसान्ब्रह्मणा विप्र जिन्व॥५॥

[३६] षट्त्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—नरः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१ निचृत्त्रिष्टुप्; २ विराट्त्रिष्टुप्; ३ स्वराट् पङ्क्तिः; ४, ५ भुरिक्पङ्क्तिः॥ स्वरः—१, २ धैवतः; ३-५ पञ्चमः॥

अथाष्टमो वर्गः॥८॥

सत्रा मदासस्तव विश्वजन्याः सत्रा रायोऽध ये पार्थिवासः।
सत्रा वाजानामभवो विभक्ता यद्देवेषु धारयथा असुर्यम्॥१॥
अनु प्र येजे जन ओजो अस्य सत्रा दधिरे अनु वीर्याय।
स्यूमगृभे दुधयेऽर्वते च क्रतुं वृञ्जन्त्यपि वृत्रहत्ये ॥२॥
तं सध्रीचीरूतयो वृष्ण्यानि पौंस्यानि नियुतः सश्चुरिन्द्रम्।
समुद्रं न सिन्धव उक्थशुष्मा उरुव्यचसं गिर आ विशन्ति॥३॥
स रायस्खामुप सृजा गृणानः पुरुश्चन्द्रस्य त्वमिन्द्र वस्वः।
पतिर्बभूथासमो जनानामेको विश्वस्य भुवनस्य राजा॥४॥

स तु श्रुधि श्रुत्या यो दुवोयुर्द्यौर्न भूमाभि रायो अर्यः।
असो यथा नः शवसा चकानो युगेयुगे वयसा चेकितानः॥५॥

[३७] सप्तत्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१, ४, ५ विराट्त्रिष्टुप्; २, ३ निचृत्पङ्क्तिः॥ स्वरः—१, ४, ५ धैवतः; २, ३ पञ्चमः॥

अथ नवमो वर्गः॥९॥

अर्वाग्रथं विश्ववारं त उग्रेन्द्र युक्तासो हरयो वहन्तु।
कीरिश्चिद्धि त्वा हवते स्वर्वानृधीमहि सधमादस्ते अद्य॥१॥
प्रो द्रोणे हरयः कर्माग्मन्पुनानास ऋज्यन्तो अभूवन्।
इन्द्रो नो अस्य पूर्व्यः पपीयाद् द्युक्षो मदस्य सोम्यस्य राजा॥२॥
आसस्राणासः शवसानमच्छेन्द्रं सुचक्रे रथ्यासो अश्वाः।
अभि श्रव ऋज्यन्तो वहेयुर्नू चिन्नु वायोरमृतं वि दस्येत्॥३॥
वरिष्ठो अस्य दक्षिणामियर्तीन्द्रो मघोनां तुविकूर्मितमः।
यया वज्रिवः परियास्यंहो मघा च धृष्णो दयसे वि सूरीन्॥४॥
इन्द्रो वाजस्य स्थविरस्य दातेन्द्रो गीर्भिर्वर्धतां वृद्धमहाः।
इन्द्रो वृत्रं हनिष्ठो अस्तु सत्वा ता सूरिः पृणति तूतुजानः॥५॥

[३८] अष्टात्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१-३, ५ निचृत्त्रिष्टुप्; ४ त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

अथ दशमो वर्गः॥१०॥

अपादित उदु नश्चित्रतमो महीं भर्षद् द्युमतीमिन्द्रहूतिम्।
पन्यसीं धीतिं दैव्यस्य यामञ्जनस्य रातिं वनते सुदानुः॥१॥
दूराच्चिदा वसतो अस्य कर्णा घोषादिन्द्रस्य तन्यति ब्रुवाणः।
एयमेनं देवहूतिर्ववृत्यान्मद्र्य1गिन्द्रमियमृच्यमाना ॥२॥
तं वो धिया परमया पुराजामजरमिन्द्रमभ्यनूष्यर्कैः ।
ब्रह्मा च गिरो दधिरे समस्मिन्महाँश्च स्तोमो अधि वर्धदिन्द्रे॥३॥

वर्धाद्यं यज्ञ उत सोम इन्द्रं वर्धाद् ब्रह्म गिर उक्था च मन्म।
वर्धाहैनमुषसो यामन्नक्तोर्वर्धान्मासाः शरदो द्याव इन्द्रम् ॥ ४॥
एवा जज्ञानं सहसे असामि वावृधानं राधसे च श्रुताय ।
महामुग्रमवसे विप्र नूनमा विवासेम वृत्रतूर्येषु ॥ ५॥

[३९] एकोनचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१, ३, विराट्त्रिष्टुप्; २ त्रिष्टुप्; ४, ५ भुरिक्पङ्क्तिः॥ स्वरः—१-३ धैवतः; ४, ५ पञ्चमः॥

अथैकादशो वर्गः॥ ११॥

मन्द्रस्य कवेर्दिव्यस्य वह्नेर्विप्रमन्मनो वचनस्य मध्वः।
अपा नस्तस्य सचनस्य देवेषो युवस्व गृणते गोअग्राः॥ १॥
अयमुशानः पर्यद्रिमुस्रा ऋतधीतिभिर्ऋतयुग्युजानः ।
रुजदरुग्णं वि वलस्य सानुं पणीँर्वचोभिरभि योधदिन्द्रः॥ २॥
अयं द्योतयदद्युतो व्य१क्तून्दोषा वस्तोः शरद इन्दुरिन्द्र।
इमं केतुमदधुर्नू चिदह्नां शुचिजन्मन उषसश्चकार ॥ ३॥
अयं रोचयदरुचो रुचानो३ऽयं वासयद् व्यृ१तेन पूर्वीः।
अयमीयत ऋतयुग्भिरश्वैः स्वर्विदा नाभिना चर्षणिप्राः॥ ४॥
नू गृणानो गृणते प्रत्न राजन्निषः पिन्व वसुदेयाय पूर्वीः।
अप ओषधीरविषा वनानि गा अर्वतो नृनृचसे रिरीहि॥ ५॥

[४०] चत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१, ३ विराट्त्रिष्टुप्; २ त्रिष्टुप्; ४ भुरिक्पङ्क्तिः; ५ स्वराट्पङ्क्तिः॥ स्वरः—१-३ धैवतः; ४, ५ पञ्चमः॥

अथ द्वादशो वर्गः॥ १२॥

इन्द्र पिब तुभ्यं सुतो मदायाव स्य हरी वि मुचा सखाया।
उत प्र गाय गण आ निषद्याथा यज्ञाय गृणते वयो धाः॥ १॥
अस्य पिब यस्य जज्ञान इन्द्र मदाय क्रत्वे अपिबो विरप्शिन्।
तमु ते गावो नर आपो अद्रिरिन्दुं समह्यन्पीतये समस्मै॥ २॥

समिद्धे अग्नौ सुत इन्द्र सोम आ त्वा वहन्तु हरयो वहिष्ठाः।
त्वायता मनसा जोहवीमीन्द्रा याहि सुविताय महे नः॥ ३॥
आ याहि शश्वदुशता ययाथेन्द्र महा मनसा सोमपेयम्।
उप ब्रह्माणि शृणव इमा नोऽथा ते यज्ञस्तन्वे३ वयो धात्॥ ४॥
यदिन्द्र दिवि पार्ये यदृधग्यद्वा स्वे सदने यत्र वासि।
अतो नो यज्ञमवसे नियुत्वान्त्सजोषाः पाहि गिर्वणो मरुद्भिः॥ ५॥

[४१] एकचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१ विराट्त्रिष्टुप्; २-४ त्रिष्टुप्; ५ भुरिक्पङ्क्तिः॥ स्वरः—१-४ धैवतः; ५ पञ्चमः॥

अथ त्रयोदशो वर्गः॥ १३॥

अहेळमान उप याहि यज्ञं तुभ्यं पवन्त इन्दवः सुतासः।
गावो न वज्रिन्त्स्वमोको अच्छेन्द्रा गहि प्रथमो यज्ञियानाम्॥ १॥
या ते काकुत्सुकृता या वरिष्ठा यया शश्वत्पिबसि मध्व ऊर्मिम्।
तया पाहि प्र ते अध्वर्युरस्थात्सं ते वज्रो वर्ततामिन्द्र गव्युः॥ २॥
एष द्रप्सो वृषभो विश्वरूप इन्द्राय वृष्णे समकारि सोमः।
एतं पिब हरिवः स्थातरुग्र यस्येशिषे प्रदिवि यस्ते अन्नम्॥ ३॥
सुतः सोमो असुतादिन्द्र वस्यानयं श्रेयाञ्चिकितुषे रणाय।
एतं तितिर्व उप याहि यज्ञं तेन विश्वास्तविषीरा पृणस्व॥ ४॥
ह्वयामसि त्वेन्द्र याह्यर्वाङरं ते सोमस्तन्वे भवाति ।
शतक्रतो मादयस्वा सुतेषु प्रास्माँ अव पृतनासु प्र विक्षु ॥ ५॥

[४२] द्विचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१ स्वराडुष्णिक्; २ निचृदनुष्टुप्; ३ अनुष्टुप्; ४ भुरिगनुष्टुप्॥ स्वरः—१ ऋषभः; २-४ गान्धारः॥

अथ चतुर्दशो वर्गः॥ १४॥

प्रत्यस्मै पिपीषते विश्वानि विदुषे भर ।
अरंगमाय जग्मयेऽपश्चाद्दध्वने नरे ॥ १॥

एमेनं प्रत्येतन सोमेभिः सोमपातमम् ।
अमत्रेभिर्ऋजीषिणमिन्द्रं सुतेभिरिन्दुभिः ॥ २ ॥
यदी सुतेभिरिन्दुभिः सोमेभिः प्रतिभूषथ ।
वेदा विश्वस्य मेधिरो धृषत्तंतमिदेषते ॥ ३ ॥
अस्माअस्मा इदन्धसोऽध्वर्यो प्र भरा सुतम् ।
कुवित्समस्य जेन्यस्य शर्धतोऽभिशस्तेरवस्परत् ॥ ४ ॥

[४३] त्रिचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—उष्णिक् ॥ स्वरः—ऋषभः ॥

अथ पञ्चदशो वर्गः ॥

यस्य त्यच्छम्बरं मदे दिवोदासाय रन्धयः ।
अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥ १ ॥
यस्य तीव्रसुतं मदं मध्यमन्तं च रक्षसे ।
अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥ २ ॥
यस्य गा अन्तरश्मनो मदे दृळ्हा अवासृजः ।
अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥ ३ ॥
यस्य मन्दानो अन्धसो माघोनं दधिषे शवः ।
अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥ ४ ॥

चतुर्थोऽनुवाकः [४४] चतुश्चत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—शंयुर्बार्हस्पत्यः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१, ३, ४ निचृदनुष्टुप्; २, ५ स्वराडुष्णिक्; ६ आसुरीपङ्क्तिः; ७ भुरिक्पङ्क्तिः; ८ निचृत्पङ्क्तिः; ९, १२, १६ पङ्क्तिः; १०, ११, १३, २२ विराट्त्रिष्टुप्; १४, १५, १७, १८, २०, २४ निचृत्त्रिष्टुप्; १९, २१, २३ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१, ३, ४ गान्धारः; २, ५, ऋषभः; ६-९, १२, १६ पञ्चमः; १०, ११, १३-१५, १७-२४ धैवतः ॥

अथ षोडशो वर्गः ॥ १६ ॥

यो रयिवो रयिन्तमो यो द्युम्नैर्द्युम्नवत्तमः ।
सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः ॥ १ ॥

यः शग्मस्तुविशग्म ते रायो दामा मतीनाम् ।
सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः ॥ २ ॥
येन वृद्धो न शवसा तुरो न स्वाभिरूतिभिः ।
सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः ॥ ३ ॥
त्यमु वो अप्रहणं गृणीषे शवसस्पतिम् ।
इन्द्रं विश्वासाहं नरं मंहिष्ठं विश्वचर्षणिम् ॥ ४ ॥
यं वर्धयन्तीद्गिरः पतिं तुरस्य राधसः ।
तमिन्न्वस्य रोदसी देवी शुष्मं सपर्यतः ॥ ५ ॥

अथ सप्तदशो वर्गः ॥ १७ ॥

तद्व उक्थस्य बर्हणेन्द्रायोपस्तृणीषणि ।
विपो न यस्योतयो वि यद्रोहन्ति सक्षितः ॥ ६ ॥
अविदद्दक्षं मित्रो नवीयान्पपानो देवेभ्यो वस्यो अचैत् ।
ससवान्स्तौलाभिर्धौतरीभिरुरुष्या पायुरभवत्सखिभ्यः ॥ ७ ॥
ऋतस्य पथि वेधा अपायि श्रिये मनांसि देवासो अक्रन् ।
दधानो नाम महो वचोभिर्वपुर्दृशये वेन्यो व्यावः ॥ ८ ॥
द्युमत्तमं दक्षं धेह्यस्मे सेधा जनानां पूर्वीररातीः ।
वर्षीयो वयः कृणुहि शचीभिर्धनस्य सातावस्माँ अविड्ढि ॥ ९ ॥
इन्द्र तुभ्यमिन्मघवन्नभूम वयं दात्रे हरिवो मा वि वेनः ।
नकिरापिर्ददृशे मर्त्यत्रा किमङ्ग रध्रचोदनं त्वाहुः ॥ १० ॥

अथ अष्टादशो वर्गः ॥ १८ ॥

मा जस्वने वृषभ नो ररीथा मा ते रेवतः सख्ये रिषाम ।
पूर्वीष्ट इन्द्र निष्षिधो जनेषु जह्यसुष्वीन्प्र वृहापृणतः ॥ ११ ॥
उदभ्राणीव स्तनयन्नियर्तीन्द्रो राधांस्यश्व्यानि गव्या ।
त्वमसि प्रदिवः कारुधाया मा त्वादामान आ दभन्मघोनः ॥ १२ ॥
अध्वर्यो वीर प्र महे सुतानामिन्द्राय भर स ह्यस्य राजा ।
यः पूर्व्याभिरुत नूतनाभिर्गीर्भिर्वावृधे गृणतामृषीणाम् ॥ १३ ॥

अस्य मदे पुरु वर्पांसि विद्वानिन्द्रो वृत्राण्यप्रती जघान।
तमु प्र होषि मधुमन्तमस्मै सोमं वीराय शिप्रिणे पिबध्यै॥ १४॥
पाता सुतमिन्द्रो अस्तु सोमं हन्ता वृत्रं वज्रेण मन्दसानः।
गन्ता यज्ञं परावतश्चिदच्छा वसुर्धीनामविता कारुधायाः॥ १५॥

अथैकोनविंशो वर्गः॥ १९॥

इदं त्यत्पात्रमिन्द्रपानमिन्द्रस्य प्रियममृतमपायि ।
मत्सद्यथा सौमनसाय देवं व्य१स्मद् द्वेषो युयवद् व्यंहः॥ १६॥
एना मन्दानो जहि शूर शत्रूञ्जामिमजामिं मघवन्नमित्रान्।
अभिषेणाँ अभ्या३देदिशानान्पराच इन्द्र प्र मृणा जही च॥ १७॥
आसु ष्मा णो मघवन्निन्द्र पृत्स्व१स्मभ्यं महि वरिवः सुगं कः।
अपां तोकस्य तनयस्य जेष इन्द्र सूरीन्कृणुहि स्मा नो अर्धम्॥ १८॥
आ त्वा हरयो वृषणो युजाना वृषरथासो वृषरश्मयोऽत्याः।
अस्मत्राञ्चो वृषणो वज्रवाहो वृष्णे मदाय सुयुजो वहन्तु॥ १९॥
आ ते वृषन्वृषणो द्रोणमस्थुर्घृतप्रुषो नोर्मयो मदन्तः।
इन्द्र प्र तुभ्यं वृषभिः सुतानां वृष्णे भरन्ति वृषभाय सोमम्॥ २०॥

अथ विंशो वर्गः॥ २०॥

वृषासि दिवो वृषभः पृथिव्या वृषा सिन्धूनां वृषभः स्तियानाम्।
वृष्णे त इन्दुर्वृषभ पीपाय स्वादू रसो मधुपेयो वराय॥ २१॥
अयं देवः सहसा जायमान इन्द्रेण युजा पणिमस्तभायत्।
अयं स्वस्य पितुरायुधानीन्दुरमुष्णादशिवस्य मायाः ॥ २२॥
अयमकृणोदुषसः सुपत्नीरयं सूर्ये अदधाज्ज्योतिरन्तः ।
अयं त्रिधातु दिवि रोचनेषु त्रितेषु विन्ददमृतं निगूळ्हम्॥ २३॥
अयं द्यावापृथिवी वि ष्कभायदयं रथमयुनक्सप्तरश्मिम्।
अयं गोषु शच्या पक्वमन्तः सोमो दाधार दशयन्त्रमुत्सम्॥ २४॥

[४५] पञ्चचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—शंयुर्बार्हस्पत्यः॥ देवता—१-३० इन्द्रः; ३१-३३ बृबुस्तक्षा॥ छन्दः—१-३, ८, १४, २०-२४, २८, ३०, ३२ गायत्री; ४, ७, ९-१३, १५-१९, २५, २६, २९ निचृद्गायत्री; ५, ६, २७ विराड्गायत्री; ३१ आर्च्युष्णिक्; ३३ अनुष्टुप्॥ स्वरः—१-३०, ३२ षड्जः; ३१ ऋषभः; ३३ गान्धारः॥

अथैकविंशो वर्गः॥ २१॥

य आनयत्परावतः सुनीती तुर्वशं यदुम्। इन्द्रः स नो युवा सखा॥ १॥
अविप्रे चिद्वयो दधदनाशुना चिदर्वता। इन्द्रो जेता हितं धनम्॥ २॥
महीरस्य प्रणीतयः पूर्वीरुत प्रशस्तयः। नास्य क्षीयन्त ऊतयः॥ ३॥
सखायो ब्रह्मवाहसेऽर्चत प्र च गायत। स हि नः प्रमतिर्मही॥ ४॥
त्वमेकस्य वृत्रहन्नविता द्वयोरसि। उतेदृशे यथा वयम् ॥ ५॥

अथ द्वाविंशो वर्गः॥ २२॥

नयसीद्वति द्विषः कृणोष्युक्थशंसिनः। नृभिः सुवीर उच्यसे॥ ६॥
ब्रह्माणं ब्रह्मवाहसं गीर्भिः सखायमृग्मियम्। गां न दोहसे हुवे॥ ७॥
यस्य विश्वानि हस्तयोरूचुर्वसूनि नि द्विता। वीरस्य पृतनाषहः॥ ८॥
वि दृळ्हानि चिदद्रिवो जनानां शचीपते। वृह माया अनानत॥ ९॥
तमु त्वा सत्य सोमपा इन्द्र वाजानां पते। अहूमहि श्रवस्यवः॥ १०॥

अथ त्रयोविंशो वर्गः॥ २३॥

तमु त्वा यः पुरासिथ यो वा नूनं हिते धने। हव्यः स श्रुधी हवम्॥ ११॥
धीभिरर्वद्भिरर्वतो वाजाँ इन्द्र श्रवाय्यान्। त्वया जेष्म हितं धनम्॥ १२॥
अभूरु वीर गिर्वणो महाँ इन्द्र धने हिते। भरे वितन्तसाय्यः॥ १३॥
या त ऊतिरमित्रहन्मक्षूजवस्तमासति। तया नो हिनुही रथम् ॥ १४॥
स रथेन रथीतमोऽस्माकेनाभियुग्वना। जेषि जिष्णो हितं धनम्॥ १५॥

अथ चतुर्विंशो वर्गः॥ २४॥

य एक इत्तमु ष्टुहि कृष्टीनां विचर्षणिः। पतिर्जज्ञे वृषक्रतुः ॥ १६॥
यो गृणतामिदासिथापिरूती शिवः सखा। स त्वं न इन्द्र मृळय॥ १७॥
धिष्व वज्रं गभस्त्यो रक्षोहत्याय वज्रिवः। सासहीष्ठा अभि स्पृधः॥ १८॥

प्रत्नं रयीणां युजं सखायं कीरिचोदनम्। ब्रह्मवाहस्तमं हुवे ॥ १९ ॥
स हि विश्वानि पार्थिवाँ एको वसूनि पत्यते। गिर्वणस्तमो अध्रिगुः ॥ २० ॥

अथ पञ्चविंशो वर्गः ॥ २५ ॥

स नो नियुद्भिरा पृण कामं वाजेभिरश्विभिः। गोमद्भिर्गोपते धृषत् ॥ २१ ॥
तद्वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने। शं यद्गवे न शाकिने ॥ २२ ॥
न घा वसुर्नि यमते दानं वाजस्य गोमतः। यत्सीमुप श्रवद्गिरः ॥ २३ ॥
कुवित्सस्य प्र हि व्रजं गोमन्तं दस्युहा गमत्। शचीभिरप नो वरत् ॥ २४ ॥
इमा उ त्वा शतक्रतोऽभि प्र णोनुवुर्गिरः। इन्द्र वत्सं न मातरः ॥ २५ ॥

अथ षड्विंशो वर्गः ॥ २६ ॥

दूणाशं सख्यं तव गौरसि वीर गव्यते। अश्वो अश्वायते भव ॥ २६ ॥
स मन्दस्वा ह्यन्धसो राधसे तन्वा महे। न स्तोतारं निदे करः ॥ २७ ॥
इमा उ त्वा सुतेसुते नक्षन्ते गिर्वणो गिरः। वत्सं गावो न धेनवः ॥ २८ ॥
पुरूतमं पुरूणां स्तोतॄणां विवाचि। वाजेभिर्वाजयताम् ॥ २९ ॥
अस्माकमिन्द्र भूतु ते स्तोमो वाहिष्ठो अन्तमः। अस्मान्राये महे हिनु ॥ ३० ॥
अधि बृबुः पणीनां वर्षिष्ठे मूर्धन्नस्थात्। उरुः कक्षो न गाङ्ग्यः ॥ ३१ ॥
यस्य वायोरिव द्रवद्भद्रा रातिः सहस्रिणी। सद्यो दानाय मंहते ॥ ३२ ॥
तत्सु नो विश्वे अर्य आ सदा गृणन्ति कारवः ।
बृबुं सहस्रदातमं सूरिं सहस्रसातमम् ॥ ३३ ॥

[४६] षट्चत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—शंयुर्बार्हस्पत्यः॥ देवता—इन्द्रः प्रगाथो वा॥ छन्दः—१ निचृदनुष्टुप्; २ स्वराड्बृहती; ३, ४ भुरिग्बृहती; ५, ७ स्वराडनुष्टुप्; ६ ब्राह्मीगायत्री; ८, ९ विराड्बृहती; १० पङ्क्तिः; ११ निचृद्बृहती; १२, १४ विराट्पङ्क्तिः; १३ बृहती॥ स्वरः—१, ५, ७ गान्धारः; २-४, ८, ९, ११, १३ मध्यमः; ६ षड्जः; १०, १२, १४ पञ्चमः॥

अथ सप्तविंशो वर्गः ॥ २७ ॥

त्वामिद्धि हवामहे साता वाजस्य कारवः ।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥ १ ॥

स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया महः स्तवानो अद्रिवः।
गामश्वं रथ्यमिन्द्र सं किर सत्रा वाजं न जिग्युषे ॥ २ ॥
यः सत्राहा विचर्षणिरिन्द्रं तं हूमहे वयम् ।
सहस्रमुष्क तुविनृम्ण सत्पते भवा समत्सु नो वृधे ॥ ३ ॥
बाधसे जनान्वृषभेव मन्युना घृषौ मीळ्ह ऋचीषम।
अस्माकं बोध्यविता महाधने तनूष्वप्सु सूर्ये ॥ ४ ॥
इन्द्र ज्येष्ठं न आ भरँ ओजिष्ठं पपुरि श्रवः ।
येनेमे चित्र वज्रहस्त रोदसी ओभे सुशिप्र प्राः ॥ ५ ॥

अथाष्टाविंशो वर्गः ॥ २८ ॥

त्वामुग्रमवसे चर्षणीसहं राजन्देवेषु हूमहे ।
विश्वा सु नो विथुरा पिब्दना वसोऽमित्रान्सुषहान्कृधि ॥ ६ ॥
यदिन्द्र नाहुषीष्वाँ ओजो नृम्णं च कृष्टिषु ।
यद्वा पञ्च क्षितीनां द्युम्नमा भर सत्रा विश्वानि पौंस्या ॥ ७ ॥
यद्वा तृक्षौ मघवन्द्रुह्यावा जने यत्पूरौ कच्च वृष्ण्यम्।
अस्मभ्यं तद्रिरीहि सं नृषाह्येऽमित्रान्पृत्सु तुर्वणे ॥ ८ ॥
इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरूथं स्वस्तिमत् ।
छर्दिर्यच्छ मघवद्भ्यश्च मह्यं च यावया दिद्युमेभ्यः ॥ ९ ॥
ये गव्यता मनसा शत्रुमादभुरभिप्रघ्नन्ति धृष्णुया।
अध स्मा नो मघवन्निन्द्र गिर्वणस्तनूपा अन्तमो भव ॥ १० ॥

अथैकोनत्रिंशो वर्गः ॥ २९ ॥

अध स्मा नो वृधे भवेन्द्र नायमवा युधि ।
यदन्तरिक्षे पतयन्ति पर्णिनो दिद्यवस्तिग्ममूर्धानः ॥ ११ ॥
यत्र शूरासस्तन्वो वितन्वते प्रिया शर्म पितॄणाम्।
अध स्मा यच्छ तन्वे तने च छर्दिरचित्तं यावय द्वेषः ॥ १२ ॥
यदिन्द्र सर्गे अर्वतश्चोदयासे महाधने ।
असमने अध्वनि वृजिने पथि श्येनाँइव श्रवस्यतः ॥ १३ ॥

सिन्धूँरिव प्रवण आशुया यतो यदि क्लोशमनु ष्वणि ।
आ ये वयो न वर्वृतत्यामिषि गृभीता बाह्वोर्गवि ॥ १४ ॥

[४७] सप्तचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—गर्गः ॥ देवता—१-५ सोमः; ६-१९, २०[२], २१-३१ इन्द्रः; २०[१] लिङ्गोक्ताः; २२-२५ प्रस्तोकस्य सार्ञ्जयस्य दानस्तुतिः; २६-२८ रथः; २९-३१[१] दुन्दुभिः; ३१[२] दुन्दुभि इन्द्रश्च ॥ छन्दः—१, ३, ५, २१, २२, २८ निचृत्त्रिष्टुप्; ४, ८, ११ विराट्त्रिष्टुप्; ६, ७, १०, १५, १६, १८, २०, २९, ३० त्रिष्टुप्; २७ स्वराट्त्रिष्टुप्; २, ९, १२, १३, २६, ३१ भुरिक्पङ्क्तिः; १४, १७ स्वराट्पङ्क्तिः; १९ बृहती; २३ आसुरीपङ्क्तिः; २४, २५ विराड्गायत्री ॥ स्वरः—१, ३-८, १०, ११, १५, १६, १८, २०-२२, २७-३० धैवतः; २, ९, १२-१४, १७, २३, २६, ३१ पञ्चमः; १९ मध्यमः; २४, २५ षड्जः ॥

अथ त्रिंशो वर्गः ॥ ३० ॥

स्वादुष्किलायं मधुमाँ उतायं तीव्रः किलायं रसवाँ उतायम् ।
उतो न्व१स्य पपिवांसमिन्द्रं न कश्चन सहत आहवेषु ॥ १ ॥
अयं स्वादुरिह मदिष्ठ आस यस्येन्द्रो वृत्रहत्ये ममाद ।
पुरूणि यश्च्यौत्ना शम्बरस्य वि नवतिं नव च देह्यो३ हन् ॥ २ ॥
अयं मे पीत उदियर्ति वाचमयं मनीषामुशतीमजीगः ।
अयं षळुर्वीरमिमीत धीरो न याभ्यो भुवनं कच्चनारे ॥ ३ ॥
अयं स यो वरिमाणं पृथिव्या वर्ष्माणं दिवो अकृणोदयं सः ।
अयं पीयूषं तिसृषु प्रवत्सु सोमो दाधारोर्व१न्तरिक्षम् ॥ ४ ॥
अयं विदच्चित्रदृशीकमर्णः शुक्रसद्मनामुषसामनीके ।
अयं महान्महता स्कम्भनेनोद् द्यामस्तभ्नाद् वृषभो मरुत्वान् ॥ ५ ॥

अथैकत्रिंशो वर्गः ॥ ३१ ॥

धृषत्पिब कलशे सोममिन्द्र वृत्रहा शूर समरे वसूनाम् ।
माध्यन्दिने सवन आ वृषस्व रयिस्थानो रयिमस्मासु धेहि ॥ ६ ॥
इन्द्र प्र णः पुरएतेव पश्य प्र नो नय प्रतरं वस्यो अच्छ ।
भवा सुपारो अतिपारयो नो भवा सुनीतिरुत वामनीतिः ॥ ७ ॥
उरुं नो लोकमनु नेषि विद्वान्त्स्वर्वज्ज्योतिरभयं स्वस्ति ।
ऋष्वा त इन्द्र स्थविरस्य बाहू उप स्थेयाम शरणा बृहन्ता ॥ ८ ॥

वरिष्ठे न इन्द्र वन्धुरे धा वहिष्ठयोः शतावन्नश्वयोरा ।
इषमा वक्षीषां वर्षिष्ठां मा नस्तारीन्मघवन्रायो अर्यः ॥ ९ ॥
इन्द्र मृळ मह्यं जीवातुमिच्छ चोदय धियमयसो न धाराम् ।
यत्किं चाहं त्वायुरिदं वदामि तज्जुषस्व कृधि मा देववन्तम् ॥ १० ॥

अथ द्वात्रिंशो वर्गः ॥ ३२ ॥

त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवेहवे सुहवं शूरमिन्द्रम् ।
ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रं स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः ॥ ११ ॥
इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवोभिः सुमृळीको भवतु विश्ववेदाः ।
बाधतां द्वेषो अभयं कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥ १२ ॥
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ।
स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मे आराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु ॥ १३ ॥
अव त्वे इन्द्र प्रवतो नोर्मिर्गिरो ब्रह्माणि नियुतो धवन्ते ।
उरू न राधः सवना पुरूण्यपो गा वज्रिन्युवसे समिन्दून् ॥ १४ ॥
क ईं स्तवत्कः पृणात्को यजाते यदुग्रमिन्मघवा विश्वहावेत् ।
पादाविव प्रहरन्नन्यमन्यं कृणोति पूर्वमपरं शचीभिः ॥ १५ ॥

अथ त्रयस्त्रिंशो वर्गः ॥ ३३ ॥

शृण्वे वीर उग्रमुग्रं दमायन्नन्यमन्यमतिनेनीयमानः ।
एधमानद्विळुभयस्य राजा चोष्कूयते विश इन्द्रो मनुष्यान् ॥ १६ ॥
परा पूर्वेषां सख्या वृणक्ति वितर्तुराणो अपरेभिरेति ।
अनानुभूतीरवधून्वानः पूर्वीरिन्द्रः शरदस्तर्तरीति ॥ १७ ॥
रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय ।
इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरयः शता दश ॥ १८ ॥
युजानो हरिता रथे भूरि त्वष्टेह राजति ।
को विश्वाहा द्विषतः पक्ष आसत उतासीनेषु सूरिषु ॥ १९ ॥

अगव्यूति क्षेत्रमागन्म देवा उर्वी सती भूमिरंहूरणाभूत्।
बृहस्पते प्र चिकित्सा गविष्टावित्था सते जरित्र इन्द्र पन्थाम्॥ २० ॥

अथ चतुस्त्रिंशो वर्गः ॥ ३४ ॥

दिवेदिवे सदृशीरन्यमर्धं कृष्णा असेधदप सद्मनो जाः।
अर्हन्दासा वृषभो वस्नयन्तोदव्रजे वर्चिनं शम्बरं च ॥ २१ ॥
प्रस्तोक इन्नु राधसस्त इन्द्र दश कोशयीर्दश वाजिनोऽदात्।
दिवोदासादतिथिग्वस्य राधः शाम्बरं वसु प्रत्यग्रभीष्म॥ २२ ॥
दशाश्वान्दश कोशान्दश वस्त्राधिभोजना ।
दशो हिरण्यपिण्डान्दिवोदासादसानिषम् ॥ २३ ॥
दश रथान्प्रष्टिमतः शतं गा अथर्वभ्यः। अश्वथः पायवेऽदात्॥ २४ ॥
महि राधो विश्वजन्यं दधानान्भरद्वाजान्त्सार्ञ्जयो अभ्ययष्ट॥ २५ ॥

अथ पञ्चत्रिंशो वर्गः ॥ ३५ ॥

वनस्पते वीड्वङ्गो हि भूया अस्मत्सखा प्रतरणः सुवीरः।
गोभिः सन्नद्धो असि वीळयस्वास्थाता ते जयतु जेत्वानि॥ २६ ॥
दिवस्पृथिव्याः पर्योज उद्भृतं वनस्पतिभ्यः पर्याभृतं सहः।
अपामोज्मानं परि गोभिरावृतमिन्द्रस्य वज्रं हविषा रथं यज॥ २७ ॥
इन्द्रस्य वज्रो मरुतामनीकं मित्रस्य गर्भो वरुणस्य नाभिः।
सेमां नो हव्यदातिं जुषाणो देव रथ प्रति हव्या गृभाय॥ २८ ॥
उप श्वासय पृथिवीमुत द्यां पुरुत्रा ते मनुतां विष्ठितं जगत्।
स दुन्दुभे सजूरिन्द्रेण देवैर्दूराद्दवीयो अप सेध शत्रून्॥ २९ ॥
आ क्रन्दय बलमोजो न आ धा निः ष्टनिहि दुरिता बाधमानः।
अप प्रोथ दुन्दुभे दुच्छुना इत इन्द्रस्य मुष्टिरसि वीळयस्व॥ ३० ॥
आमूरज प्रत्यावर्तयेमाः केतुमद्दुन्दुभिर्वावदीति ।
समश्वपर्णाश्चरन्ति नो नरोऽस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु॥ ३१ ॥

इति चतुर्थाष्टके सप्तमोऽध्यायः ॥

अथ चतुर्थाष्टकेऽष्टमोऽध्यायः

[४८] अष्टचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—शंयुर्बार्हस्पत्यः (तृणपाणिकं पृश्निसूक्तम्)॥ देवता—१-१० अग्निः; ११, १२, २०, २१ मरुतः; १३-१५ मरुतो लिङ्गोक्ता वा; १६-१९ पूषा; २२ पृश्निर्वा भूमी वा॥ छन्दः—१, ४, ५, १४ बृहती; २ आर्चीजगती; ३, १९ विराड्बृहती; ६, ७, २१ महाबृहती; ८ महासतो-बृहती; ९ भुरिगनुष्टुप्; १०, १२, १७ भुरिग्बृहती; ११, १६, उष्णिक्; १३, १८ निचृदुष्णिक्; १५ निचृदतिजगती; २० स्वराडनुष्टुप्; २२ अनुष्टुप्॥ स्वरः—१, ३-८, १०, १२, १४, १७, १९, २१ मध्यमः; २, १५ निषादः; २१ धैवतः; ९, २०, २२ गान्धारः; ११, १३, १६, १८ ऋषभः॥

अथ प्रथमो वर्गः ॥ १ ॥

यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे ।
प्रप्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शंसिषम् ॥ १ ॥
ऊर्जो नपातं स हिनायमस्मयुर्दाशेम हव्यदातये ।
भुवद्वाजेष्वविता भुवद् वृध उत त्राता तनूनाम् ॥ २ ॥
वृषा ह्यग्ने अजरो महान्विभास्यर्चिषा ।
अजस्रेण शोचिषा शोशुचच्छुचे सुदीतिभिः सु दीदिहि॥ ३ ॥
महो देवान्यजसि यक्ष्यानुषक्तव क्रत्वोत दंसना ।
अर्वाचः सीं कृणुह्यग्नेऽवसे रास्व वाजोत वंस्व ॥ ४ ॥
यमापो अद्रयो वना गर्भमृतस्य पिप्रति ।
सहसा यो मथितो जायते नृभिः पृथिव्या अधि सानवि॥ ५ ॥

अथ द्वितीयो वर्गः ॥ २ ॥

आ यः पप्रौ भानुना रोदसी उभे धूमेन धावते दिवि ।
तिरस्तमो ददृश ऊर्म्यास्वा श्यावास्वरुषो वृषा श्यावा अरुषो वृषा॥ ६ ॥
बृहद्भिरग्ने अर्चिभिः शुक्रेण देव शोचिषा ।
भरद्वाजे समिधानो यविष्ठ्य रेवन्नः शुक्र दीदिहि द्युमत्पावक दीदिहि॥ ७ ॥
विश्वासां गृहपतिर्विशामसि त्वमग्ने मानुषीणाम् ।
शतं पूर्भिर्यविष्ठ पाह्यंहसः समेद्धारं शतं हिमाः स्तोतृभ्यो ये च ददति॥ ८ ॥

त्वं नश्चित्र ऊत्या वसो राधांसि चोदय ।
अस्य रायस्त्वमग्ने रथीरसि विदा गाधं तुचे तु नः ॥ ९ ॥
पर्षि तोकं तनयं पर्तृभिष्ट्वमदब्धैरप्रयुत्वभिः ।
अग्ने हेळांसि दैव्या युयोधि नोऽदेवानि ह्वरांसि च ॥ १० ॥

अथ तृतीयो वर्गः ॥ ३ ॥

आ सखायः सबर्दुघां धेनुमजध्वमुप नव्यसा वचः ।
सृजध्वमनपस्फुराम् ॥ ११ ॥
या शर्धाय मारुताय स्वभानवे श्रवोऽमृत्यु धुक्षत ।
या मृळीके मरुतां तुराणां या सुम्नैरेवयावरी ॥ १२ ॥
भरद्वाजायाव धुक्षत द्विता ।
धेनुं च विश्वदोहसमिषं च विश्वभोजसम् ॥ १३ ॥
तं व इन्द्रं न सुक्रतुं वरुणमिव मायिनम् ।
अर्यमणं न मन्द्रं सृप्रभोजसं विष्णुं न स्तुष आदिशे ॥ १४ ॥
त्वेषं शर्धो न मारुतं तुविष्वण्यनर्वाणं पूषणं सं यथा शता ।
सं सहस्रा कारिषच्चर्षणिभ्य आँ आविर्गूळ्हा वसू करत्
सुवेदा नो वसू करत् ॥ १५ ॥
आ मा पूषन्नुप द्रव शंसिषं नु ते अपिकर्ण आघृणे ।
अघा अर्यो अरातयः ॥ १६ ॥

अथ चतुर्थो वर्गः ॥ ४ ॥

मा काकम्बीरमुद् वृहो वनस्पतिमशस्तीर्वि हि नीनशः ।
मोत सूरो अह एवा चन ग्रीवा आदधते वेः ॥ १७ ॥
दृतेरिव तेऽवृकमस्तु सख्यम् ।
अच्छिद्रस्य दधन्वतः सुपूर्णस्य दधन्वतः ॥ १८ ॥
परो हि मर्त्यैरसि समो देवैरुत श्रिया ।
अभि ख्यः पूषन्पृतनासु नस्त्वमवा नूनं यथा पुरा ॥ १९ ॥
वामी वामस्य धूतयः प्रणीतिरस्तु सूनृता ।
देवस्य वा मरुतो मर्त्यस्य वेजानस्य प्रयज्यवः ॥ २० ॥

सद्यश्चिद्यस्य चर्कृतिः परि द्यां देवो नैति सूर्यः ।
त्वेषं शवो दधिरे नाम यज्ञियं मरुतो वृत्रहं शवो ज्येष्ठं वृत्रहं शवः ॥ २१ ॥
सकृद्ध द्यौरजायत सकृद्भूमिरजायत ।
पृश्न्या दुग्धं सकृत्पयस्तदन्यो नानु जायते ॥ २२ ॥

[४९] एकोनपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—ऋजिश्वाः ॥ देवता—विश्वे देवाः ॥ छन्दः—१, ३, ४, १०, ११ त्रिष्टुप्; २, १४ स्वराट्पङ्क्तिः; ५, ६, ९, १३ निचृत्त्रिष्टुप्; ७ ब्राह्म्युष्णिक्; ८, १२ विराट्त्रिष्टुप्; १५ अतिजगती ॥
स्वरः—१, ३-६, ८-१३ धैवतः; २, १४ पञ्चमः; ७ ऋषभः; १५ निषादः ॥

अथ पञ्चमो वर्गः ॥ ५ ॥

स्तुषे जनं सुव्रतं नव्यसीभिर्गीर्भिर्मित्रावरुणा सुम्नयन्ता ।
त आ गमन्तु त इह श्रुवन्तु सुक्षत्रासो वरुणो मित्रो अग्निः ॥ १ ॥
विशोविश ईड्यमध्वरेष्वदृप्तक्रतुमरतिं युवत्योः ।
दिवः शिशुं सहसः सूनुमग्निं यज्ञस्य केतुमरुषं यजध्यै ॥ २ ॥
अरुषस्य दुहितरा विरूपे स्तृभिरन्या पिपिशे सूरो अन्या ।
मिथस्तुरा विचरन्ती पावके मन्म श्रुतं नक्षत ऋच्यमाने ॥ ३ ॥
प्र वायुमच्छा बृहती मनीषा बृहद्रयिं विश्ववारं रथप्राम् ।
द्युतद्यामा नियुतः पत्यमानः कविः कविमियक्षसि प्रयज्यो ॥ ४ ॥
स मे वपुश्छदयदश्विनोर्यो रथो विरुक्मान्मनसा युजानः ।
येन नरा नासत्येषयध्यै वर्तिर्याथस्तनयाय त्मने च ॥ ५ ॥

अथ षष्ठो वर्गः ॥ ६ ॥

पर्जन्यवाता वृषभा पृथिव्याः पुरीषाणि जिन्वतमप्यानि ।
सत्यश्रुतः कवयो यस्य गीर्भिर्जगतः स्थातर्जगदा कृणुध्वम् ॥ ६ ॥
पावीरवी कन्या चित्रायुः सरस्वती वीरपत्नी धियं धात् ।
ग्नाभिरच्छिद्रं शरणं सजोषा दुराधर्षं गृणते शर्म यंसत् ॥ ७ ॥
पथस्पथः परिपतिं वचस्या कामेन कृतो अभ्यानळर्कम् ।
स नो रासच्छुरुधश्चन्द्राग्रा धियंधियं सीषधाति प्र पूषा ॥ ८ ॥

प्रथमभाजं यशसं वयोधां सुपाणिं देवं सुगभस्तिमृभ्वम् ।
होता यक्षद्यजतं पस्त्यानामग्निस्त्वष्टारं सुहवं विभावा ॥ ९ ॥
भुवनस्य पितरं गीर्भिराभी रुद्रं दिवा वर्धया रुद्रमक्तौ ।
बृहन्तमृष्वमजरं सुषुम्नमृधग्घुवेम कविनेषितासः ॥ १० ॥

अथ सप्तमो वर्गः ॥ ७ ॥

आ युवानः कवयो यज्ञियासो मरुतो गन्त गृणतो वरस्याम् ।
अचित्रं चिद्धि जिन्वथा वृधन्त इत्था नक्षन्तो नरो अङ्गिरस्वत् ॥ ११ ॥
प्र वीराय प्र तवसे तुरायाजा यूथेव पशुरक्षिरस्तम् ।
स पिस्पृशति तन्वि श्रुतस्य स्तृभिर्न नाकं वचनस्य विपः ॥ १२ ॥
यो रजांसि विममे पार्थिवानि त्रिश्चिद्विष्णुर्मनवे बाधिताय ।
तस्य ते शर्मन्नुपदद्यमाने राया मदेम तन्वा३ तना च ॥ १३ ॥
तन्नोऽहिर्बुध्न्यो अद्भिरर्कैस्तत्पर्वतस्तत्सविता चनो धात् ।
तदोषधीभिरभि रातिषाचो भगः पुरंधिर्जिन्वतु प्र राये ॥ १४ ॥
नू नो रयिं रथ्यं चर्षणिप्रां पुरुवीरं मह ऋतस्य गोपाम् ।
क्षयं दाताजरं येन जनान्त्स्पृधो अदेवीरभि च क्रमाम
विश आदेवीरभ्य१श्नवाम ॥ १५ ॥

पञ्चमोऽनुवाकः [५०] पञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—ऋजिश्वाः ॥ देवता—विश्वे देवाः ॥ छन्दः—१, ७ त्रिष्टुप्; २ स्वराट्पङ्क्तिः; ३, ५, ६, १०-१२ निचृत्त्रिष्टुप्; ४, ८, १३ विराट्त्रिष्टुप्; ९ पङ्क्तिः; १४ भुरिक्पङ्क्तिः; १५ निचृत्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१, ३-८, १०-१३ धैवतः; २, ९, १४, १५ पञ्चमः ॥

अथाष्टमो वर्गः ॥ ८ ॥

हुवे वो देवीमदितिं नमोभिर्मृळीकाय वरुणं मित्रमग्निम् ।
अभिक्षदामर्यमणं सुशेवं त्रातॄन्देवान्त्सवितारं भगं च ॥ १ ॥
सुज्योतिषः सूर्य दक्षपितॄननागास्त्वे सुमहो वीहि देवान् ।
द्विजन्मानो य ऋतसापः सत्याः स्वर्वन्तो यजता अग्निजिह्वाः ॥ २ ॥

उत द्यावापृथिवी क्षत्रमुरु बृहद्रोदसी शरणं सुषुम्ने ।
महस्करथो वरिवो यथा नोऽस्मे क्षयाय धिषणे अनेहः ॥ ३ ॥
आ नो रुद्रस्य सूनवो नमन्तामद्या हूतासो वसवोऽधृष्टाः ।
यदीमर्भे महति वा हितासो बाधे मरुतो अह्वाम देवान् ॥ ४ ॥
मिम्यक्ष येषु रोदसी नु देवी सिषक्ति पूषा अभ्यर्धयज्वा ।
श्रुत्वा हवं मरुतो यद्ध याथ भूमा रेजन्ते अध्वनि प्रविक्ते ॥ ५ ॥

अथ नवमो वर्गः ॥ ९ ॥

अभि त्यं वीरं गिर्वणसमर्चेन्द्रं ब्रह्मणा जरितर्नवेन ।
श्रवदिद्धवमुप च स्तवानो रासद्वाजाँ उप महो गृणानः ॥ ६ ॥
ओमानमापो मानुषीरमृक्तं धात तोकाय तनयाय शं योः ।
यूयं हि ष्ठा भिषजो मातृतमा विश्वस्य स्थातुर्जगतो जनित्रीः ॥ ७ ॥
आ नो देवः सविता त्रायमाणो हिरण्यपाणिर्यजतो जगम्यात् ।
यो दत्रवाँ उषसो न प्रतीकं व्यूर्णुते दाशुषे वार्याणि ॥ ८ ॥
उत त्वं सूनो सहसो नो अद्या देवाँ अस्मिन्नध्वरे ववृत्याः ।
स्यामहं ते सदमिद्रातौ तव स्यामग्नेऽवसा सुवीरः ॥ ९ ॥
उत त्या मे हवमा जग्म्यातं नासत्या धीभिर्युवमङ्ग विप्रा ।
अत्रिं न महस्तमसोऽमुमुक्तं तूर्वतं नरा दुरितादभीके ॥ १० ॥

अथ दशमो वर्गः ॥ १० ॥

ते नो रायो द्युमतो वाजवतो दातारो भूत नृवतः पुरुक्षोः ।
दशस्यन्तो दिव्याः पार्थिवासो गोजाता अप्या मृळता च देवाः ॥ ११ ॥
ते नो रुद्रः सरस्वती सजोषा मीळ्हुष्मन्तो विष्णुर्मृळन्तु वायुः ।
ऋभुक्षा वाजो दैव्यो विधाता पर्जन्यावाता पिप्यतामिषं नः ॥ १२ ॥
उत स्य देवः सविता भगो नोऽपां नपादवतु दानु पप्रिः ।
त्वष्टा देवेभिर्जनिभिः सजोषा द्यौर्देवेभिः पृथिवी समुद्रैः ॥ १३ ॥
उत नोऽहिर्बुध्न्यः शृणोत्वज एकपात्पृथिवी समुद्रः ।
विश्वे देवा ऋतावृधो हुवानाः स्तुता मन्त्राः कविशस्ता अवन्तु ॥ १४ ॥

एवा नपातो मम तस्य धीभिर्भरद्वाजा अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
ग्ना हुतासो वसवोऽधृष्टा विश्वे स्तुतासो भूता यजत्राः ॥ १५ ॥

[५१] एकपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—ऋजिश्वाः ॥ देवता—विश्वे देवाः ॥ छन्दः—१-३, ५, ७, १०, ११, १२ निचृत्त्रिष्टुप्; ४, ६, ९ स्वराट्पङ्क्तिः; ८ त्रिष्टुप्; १३-१५ निचृदुष्णिक्; १६ निचृदनुष्टुप्॥ स्वरः—१-३, ५, ७, ८, १०-१२ धैवतः; ४, ६, ९ पञ्चमः; १३-१५ ऋषभः; १६ गान्धारः ॥

अथैकादशो वर्गः ॥ ११ ॥

उदु त्यच्चक्षुर्महि मित्रयोराँ एति प्रियं वरुणयोरदब्धम् ।
ऋतस्य शुचि दर्शतमनीकं रुक्मो न दिव उदिता व्यद्यौत् ॥ १ ॥
वेद यस्त्रीणि विदथान्येषां देवानां जन्म सनुतरा च विप्रः ।
ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन्नभि चष्टे सूरो अर्य एवान् ॥ २ ॥
स्तुष उ वो मह ऋतस्य गोपानदितिं मित्रं वरुणं सुजातान् ।
अर्यमणं भगमदब्धधीतीनच्छा वोचे सधन्यः पावकान् ॥ ३ ॥
रिशादसः सत्पतीँरदब्धान्महो राज्ञः सुवसनस्य दातॄन् ।
यूनः सुक्षत्रान्क्षयतो दिवो नॄनादित्यान्याम्यदितिं दुवोयु ॥ ४ ॥
द्यौ३ष्पितः पृथिवि मातरध्रुगग्ने भ्रातर्वसवो मृळता नः ।
विश्व आदित्या अदिते सजोषा अस्मभ्यं शर्म बहुलं वि यन्त ॥ ५ ॥

अथ द्वादशो वर्गः ॥ १२ ॥

मा नो वृकाय वृक्ये समस्मा अघायते रीरधता यजत्राः ।
यूयं हि ष्ठा रथ्यो नस्तनूनां यूयं दक्षस्य वचसो बभूव ॥ ६ ॥
मा व एनो अन्यकृतं भुजेम मा तत्कर्म वसवो यच्चयध्वे ।
विश्वस्य हि क्षयथ विश्वदेवाः स्वयं रिपुस्तन्वं रीरिषीष्ट ॥ ७ ॥
नम इदुग्रं नम आ विवासे नमो दाधार पृथिवीमुत द्याम् ।
नमो देवेभ्यो नम ईश एषां कृतं चिदेनो नमसा विवासे ॥ ८ ॥
ऋतस्य वो रथ्यः पूतदक्षानृतस्य पस्त्यसदो अदब्धान् ।
ताँ आ नमोभिरुरुचक्षसो नॄन्विश्वान्व आ नमे महो यजत्राः ॥ ९ ॥

ते हि श्रेष्ठवर्चसस्त उ नस्तिरो विश्वानि दुरिता नयन्ति ।
सुक्षत्रासो वरुणो मित्रो अग्निर्ऋतधीतयो वक्मराजसत्याः ॥ १० ॥

अथ त्रयोदशो वर्गः ॥ १३ ॥

ते न इन्द्रः पृथिवी क्षाम वर्धन्पूषा भगो अदितिः पञ्च जनाः ।
सुशर्माणः स्ववसः सुनीथा भवन्तु नः सुत्रात्रासः सुगोपाः ॥ ११ ॥
नू सद्मानं दिव्यं नंशि देवा भारद्वाजः सुमतिं याति होता ।
आसानेभिर्यजमानो मियेधैर्देवानां जन्म वसूयुर्ववन्द ॥ १२ ॥
अप त्यं वृजिनं रिपुं स्तेनमग्ने दुराध्यम् ।
दविष्ठमस्य सत्पते कृधी सुगम् ॥ १३ ॥
ग्रावाणः सोम नो हि कं सखित्वनाय वावशुः ।
जही न्य१त्रिणं पणिं वृको हि षः ॥ १४ ॥
यूयं हि ष्ठा सुदानव इन्द्रज्येष्ठा अभिद्यवः ।
कर्ता नो अध्वन्ना सुगं गोपा अमा ॥ १५ ॥
अपि पन्थामगन्महि स्वस्तिगामनेहसम् ।
येन विश्वाः परि द्विषो वृणक्ति विन्दते वसु ॥ १६ ॥

[५२] द्विपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—ऋजिश्वाः ॥ देवता—विश्वे देवाः ॥ छन्दः—१, ४, १५, १६ निचृत्त्रिष्टुप्; २, ३, ६, १३, १७ त्रिष्टुप्; ५ भुरिक्पङ्क्तिः; ७, ८, ११ गायत्री; ९, १०, १२ निचृद्गायत्री; १४ विराड् जगती ॥ स्वरः—१-४, ६, १३, १५, १६, १७ धैवतः; ५ पञ्चमः; ७-१२ षड्जः; १४ निषादः ॥

अथ चतुर्दशो वर्गः ॥ १४ ॥

न तद्दिवा न पृथिव्यानु मन्ये न यज्ञेन नोत शमीभिराभिः ।
उब्जन्तु तं सुभ्व१ः पर्वतासो नि हीयतामतियाजस्य यष्टा ॥ १ ॥
अति वा यो मरुतो मन्यते नो ब्रह्म वा यः क्रियमाणं निनित्सात् ।
तपूंषि तस्मै वृजिनानि सन्तु ब्रह्मद्विषमभि तं शोचतु द्यौः ॥ २ ॥
किमङ्ग त्वा ब्रह्मणः सोम गोपां किमङ्ग त्वाहुरभिशस्तिपां नः ।
किमङ्ग नः पश्यसि निद्यमानान्ब्रह्मद्विषे तपुषिं हेतिमस्य ॥ ३ ॥

अवन्तु मामुषसो जायमाना अवन्तु मा सिन्धवः पिन्वमानाः ।
अवन्तु मा पर्वतासो ध्रुवासोऽवन्तु मा पितरो देवहूतौ ॥ ४ ॥
विश्वदानीं सुमनसः स्याम पश्येम नु सूर्यमुच्चरन्तम् ।
तथा करद्वसुपतिर्वसूनां देवाँ ओहानोऽवसागमिष्ठः ॥ ५ ॥

अथ पञ्चदशो वर्गः ॥ १५ ॥

इन्द्रो नेदिष्ठमवसागमिष्ठः सरस्वती सिन्धुभिः पिन्वमाना ।
पर्जन्यो न ओषधीभिर्मयोभुरग्निः सुशंसः सुहवः पितेव ॥ ६ ॥
विश्वे देवास आ गत शृणुता म इमं हवम् । एदं बर्हिर्नि षीदत ॥ ७ ॥
यो वो देवा घृतस्नुना हव्येन प्रतिभूषति । तं विश्व उप गच्छथ ॥ ८ ॥
उप नः सूनवो गिरः शृण्वन्त्वमृतस्य ये । सुमृळीका भवन्तु नः ॥ ९ ॥
विश्वे देवा ऋतावृध ऋतुभिर्हवनश्रुतः । जुषन्तां युज्यं पयः ॥ १० ॥

अथ षोडशो वर्गः ॥ १६ ॥

स्तोत्रमिन्द्रो मरुद्गणस्त्वष्टृमान्मित्रो अर्यमा । इमा हव्या जुषन्त नः ॥ ११ ॥
इमं नो अग्ने अध्वरं होतर्वयुनशो यज । चिकित्वान्दैव्यं जनम् ॥ १२ ॥
विश्वे देवाः शृणुतेमं हवं मे ये अन्तरिक्षे य उप द्यवि ष्ठ ।
ये अग्निजिह्वा उत वा यजत्रा आसद्यास्मिन्बर्हिषि मादयध्वम् ॥ १३ ॥
विश्वे देवा मम शृण्वन्तु यज्ञिया उभे रोदसी अपां नपाच्च मन्म ।
मा वो वचांसि परिचक्ष्याणि वोचं सुम्नेष्विद्वो अन्तमा मदेम ॥ १४ ॥
ये के च ज्मा महिनो अहिमाया दिवो जज्ञिरे अपां सधस्थे ।
ते अस्मभ्यमिषये विश्वमायुः क्षप उस्रा वरिवस्यन्तु देवाः ॥ १५ ॥
अग्नीपर्जन्याववतं धियं मेऽस्मिन्हवे सुहवा सुष्टुतिं नः ।
इळामन्यो जनयद्गर्भमन्यः प्रजावतीरिष आ धत्तमस्मे ॥ १६ ॥
स्तीर्णे बर्हिषि समिधाने अग्नौ सूक्तेन महा नमसा विवासे ।
अस्मिन्नो अद्य विदथे यजत्रा विश्वे देवा हविषि मादयध्वम् ॥ १७ ॥

[५३] त्रिपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—पूषा ॥ छन्दः—१, ३, ४, ६, ७, १० गायत्री; २, ५, ९ निचृद्गायत्री; ८ निचृदनुष्टुप् ॥ स्वरः—१-७, ९, १० षड्जः; ८ गान्धारः ॥

अथ सप्तदशो वर्गः ॥ १७ ॥

वयमु त्वा पथस्पते रथं न वाजसातये । धिये पूषन्नयुज्महि ॥ १ ॥
अभि नो नर्यं वसु वीरं प्रयतदक्षिणम् । वामं गृहपतिं नय ॥ २ ॥
अदित्सन्तं चिदाघृणे पूषन्दानाय चोदय । पणेश्चिद्वि म्रदा मनः ॥ ३ ॥
वि पथो वाजसातये चिनुहि वि मृधो जहि । साधन्तामुग्र नो धियः ॥ ४ ॥
परि तृन्धि पणीनामारया हृदया कवे । अथेमस्मभ्यं रन्धय ॥ ५ ॥

अथाष्टादशो वर्गः ॥ १८ ॥

वि पूषन्नारया तुद पणेरिच्छ हृदि प्रियम् । अथेमस्मभ्यं रन्धय ॥ ६ ॥
आ रिख किकिरा कृणु पणीनां हृदया कवे । अथेमस्मभ्यं रन्धय ॥ ७ ॥
यां पूषन्ब्रह्मचोदनीमारां बिभर्ष्याघृणे ।
तया समस्य हृदयमा रिख किकिरा कृणु ॥ ८ ॥
या ते अष्ट्रा गोओपशाघृणे पशुसाधनी । तस्यास्ते सुम्नमीमहे ॥ ९ ॥
उत नो गोषणिं धियमश्वसां वाजसामुत । नृवत्कृणुहि वीतये ॥ १० ॥

[५४] चतुःपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—पूषा ॥ छन्दः—१, २, ४, ६-९ गायत्री; ३, १० निचृद्गायत्री; ५ विराड्गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

अथैकोनविंशो वर्गः ॥ १९ ॥

सं पूषन्विदुषा नय यो अञ्जसानुशासति । य एवेदमिति ब्रवत् ॥ १ ॥
समु पूष्णा गमेमहि यो गृहाँ अभिशासति । इम एवेति च ब्रवत् ॥ २ ॥
पूष्णश्चक्रं न रिष्यति न कोशोऽव पद्यते । नो अस्य व्यथते पविः ॥ ३ ॥
यो अस्मै हविषाविधन्न तं पूषापि मृष्यते । प्रथमो विन्दते वसु ॥ ४ ॥
पूषा गा अन्वेतु नः पूषा रक्षत्वर्वतः । पूषा वाजं सनोतु नः ॥ ५ ॥

अथ विंशो वर्गः ॥ २० ॥

पूषन्ननु प्र गा इहि यजमानस्य सुन्वतः । अस्माकं स्तुवतामुत ॥ ६ ॥

मार्किर्नेशन्माकीं रिषन्माकीं सं शारि केवटे। अथारिष्टाभिरा गहि॥ ७॥
शृण्वन्तं पूषणं वयमिर्यमनष्टवेदसम्। ईशानं राय ईमहे ॥ ८॥
पूषन्तव व्रते वयं न रिष्येम कदा चन। स्तोतारस्त इह स्मसि ॥ ९॥
परि पूषा परस्ताद्धस्तं दधातु दक्षिणम्। पुनर्नो नष्टमाजतु ॥ १०॥

[५५] पञ्चपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः॥ देवता—पूषा॥ छन्दः—१, २, ५, ६ गायत्री; ३, ४ विराड्गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

अथैकविंशो वर्गः॥ २१॥

एहि वां विमुचो नपादाघृणे सं सचावहै। रथीर्ऋतस्य नो भव॥ १॥
रथीतमं कपर्दिनमीशानं राधसो महः। रायः सखायमीमहे॥ २॥
रायो धारास्याघृणे वसो राशिरजाश्व। धीवतोधीवतः सखा ॥ ३॥
पूषणं न्व१जाश्वमुप स्तोषाम वाजिनम्। स्वसुर्यो जार उच्यते॥ ४॥
मातुर्दिधिषुमब्रवं स्वसुर्जारः शृणोतु नः। भ्रातेन्द्रस्य सखा मम॥ ५॥
आजासः पूषणं रथे निशृम्भास्ते जनश्रियम्। देवं वहन्तु बिभ्रतः॥ ६॥

[५६] षट्पञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः॥ देवता—पूषा॥ छन्दः—१, ४, ५ गायत्री; २, ३ निचृद्गायत्री; ६ स्वराडुष्णिक्॥ स्वरः—१-५ षड्जः; ६ ऋषभः॥

अथ द्वाविंशो वर्गः॥ २२॥

य एनमादिदेशति करम्भादिति पूषणम्। न तेन देव आदिशे॥ १॥
उत घा स रथीतमः सख्या सत्पतिर्युजा। इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते॥ २॥
उतादः परुषे गवि सूरश्चक्रं हिरण्ययम्। न्यैरयद्रथीतमः॥ ३॥
यदद्य त्वा पुरुष्टुत ब्रवाम दस्र मन्तुमः। तत्सु नो मन्म साधय॥ ४॥
इमं च नो गवेषणं सातये सीषधो गणम्। आरात्पूषन्नसि श्रुतः॥ ५॥
आ ते स्वस्तिमीमह आरेअघामुपावसुम् ।
अद्या च सर्वतातये श्वश्च सर्वतातये ॥ ६॥

[५७] सप्तपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः॥ देवता—इन्द्रापूषणौ॥ छन्दः—१, ६ विराड्गायत्री; २, ३ निचृद्गायत्री; ४, ५ गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

अथ त्रयोविंशो वर्गः॥ २३॥

इन्द्रा नु पूषणा वयं सख्याय स्वस्तये। हुवेम वाजसातये॥ १॥
सोममन्य उपासदत्पातवे चम्वोः सुतम्। करम्भमन्य इच्छति॥ २॥
अजा अन्यस्य वह्नयो हरी अन्यस्य संभृता। ताभ्यां वृत्राणि जिघ्नते॥ ३॥
यदिन्द्रो अनयद्रितो महीरपो वृषन्तमः। तत्र पूषाभवत्सचा॥ ४॥
तां पूष्णः सुमतिं वयं वृक्षस्य प्र वयामिव। इन्द्रस्य चा रभामहे॥ ५॥
उत्पूषणं युवामहेऽभीशूँरिव सारथिः। मह्या इन्द्रं स्वस्तये॥ ६॥

[५८] अष्टपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः॥ देवता—पूषा॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप्; २ विराड्जगती; ३, ४ विराट्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—१, ३, ४ धैवतः; २ निषादः॥

अथ चतुर्विंशो वर्गः॥ २४॥

शुक्रं ते अन्यद्यजतं ते अन्यद्विषुरूपे अहनी द्यौरिवासि।
विश्वा हि माया अवसि स्वधावो भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्तु॥ १॥
अजाश्वः पशुपा वाजपस्त्यो धियंजिन्वो भुवने विश्वे अर्पितः।
अष्ट्रां पूषा शिथिरामुद्वरीवृजत्संचक्षाणो भुवना देव ईयते॥ २॥
यास्ते पूषन्नावो अन्तः समुद्रे हिरण्ययीरन्तरिक्षे चरन्ति।
ताभिर्यासि दूत्यां सूर्यस्य कामेन कृत श्रव इच्छमानः॥ ३॥
पूषा सुबन्धुर्दिव आ पृथिव्या इळस्पतिर्मघवा दस्मवर्चाः।
यं देवासो अददुः सूर्यायै कामेन कृतं तवसं स्वञ्चम्॥ ४॥

[५९] एकोनषष्टीतमं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः॥ देवता—इन्द्राग्नी॥ छन्दः—१, ३-५ निचृद्बृहती; २ विराड्बृहती; ६, ७, ९ भुरिगनुष्टुप्; ८ उष्णिक्; १० अनुष्टुप्॥ स्वरः—१-५ मध्यमः; ६, ७, ९, १० गान्धारः; ८ ऋषभः॥

अथ पञ्चविंशो वर्गः॥ २५॥

प्र नु वोचा सुतेषु वां वीर्या३ यानि चक्रथुः ।
हतासो वां पितरो देवशत्रव इन्द्राग्नी जीवथो युवम् ॥ १॥
बळित्था महिमा वामिन्द्राग्नी पनिष्ठ आ ।
समानो वां जनिता भ्रातरा युवं यमाविहेहमातरा ॥ २॥

ओकिवांसा सुते सचाँ अश्वा सप्ती इवादने ।
इन्द्रा न्व१ग्नी अवसेह वज्रिणा वयं देवा हवामहे ॥ ३ ॥
य इन्द्राग्नी सुतेषु वां स्तवत्तेष्वृतावृधा ।
जोषवाकं वदतः पज्रहोषिणा न देवा भसथश्चन ॥ ४ ॥
इन्द्राग्नी को अस्य वां देवौ मर्तश्चिकेतति ।
विषूचो अश्वान्युयुजान ईयत एकः समान आ रथे ॥ ५ ॥

अथ षड्विंशो वर्गः ॥ २६ ॥

इन्द्राग्नी अपादियं पूर्वागात्पद्वतीभ्यः ।
हित्वी शिरो जिह्वया वावदच्चरत्त्रिंशत्पदा न्यक्रमीत् ॥ ६ ॥
इन्द्राग्नी आ हि तन्वते नरो धन्वानि बाह्वोः ।
मा नो अस्मिन्महाधने परा वर्क्तं गविष्टिषु ॥ ७ ॥
इन्द्राग्नी तपन्ति माघा अर्यो अरातयः ।
अप द्वेषांस्या कृतं युयुतं सूर्यादधि ॥ ८ ॥
इन्द्राग्नी युवोरपि वसु दिव्यानि पार्थिवा ।
आ न इह प्र यच्छतं रयिं विश्वायुपोषसम् ॥ ९ ॥
इन्द्राग्नी उक्थवाहसा स्तोमेभिर्हवनश्रुता ।
विश्वाभिर्गीर्भिरा गतमस्य सोमस्य पीतये ॥ १० ॥

[६०] षष्टीतमं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—इन्द्राग्नी ॥ छन्दः—१, ३ निचृत्त्रिष्टुप्; २ विराट्त्रिष्टुप्; ४, ६, ७ विराड्गायत्री; ५, ९, ११ निचृद्गायत्री; ८, १०, १२ गायत्री; १३ स्वराट्पङ्क्तिः; १४ निचृदनुष्टुप्; १५ विराडनुष्टुप् ॥ स्वरः—१-३ धैवतः; ४-१२ षड्जः; १३ पञ्चमः; १४, १५ गान्धारः ॥

अथ सप्तविंशो वर्गः ॥ २७ ॥

श्नथद्वृत्रमुत सनोति वाजमिन्द्रा यो अग्नी सहुरी सपर्यात् ।
इरज्यन्ता वसव्यस्य भूरेः सहस्तमा सहसा वाजयन्ता ॥ १ ॥
ता योधिष्टमभि गा इन्द्र नूनमपः स्वरुषसो अग्न ऊळ्हाः ।
दिशः स्वरुषस इन्द्र चित्रा अपो गा अग्ने युवसे नियुत्वान् ॥ २ ॥

आ वृत्रहणा वृत्रहभिः शुष्मैरिन्द्र यातं नमोभिरग्ने अर्वाक् ।
युवं राधोभिरकवेभिरिन्द्राग्ने अस्मे भवतमुत्तमेभिः ॥ ३ ॥
ता हुवे ययोरिदं पप्ने विश्वं पुरा कृतम् । इन्द्राग्नी न मर्धतः ॥ ४ ॥
उग्रा विघनिना मृध इन्द्राग्नी हवामहे । ता नो मृळात ईदृशे ॥ ५ ॥

अथाष्टाविंशो वर्गः ॥ २८ ॥

हतो वृत्राण्यार्या हतो दासानि सत्पती । हतो विश्वा अप द्विषः ॥ ६ ॥
इन्द्राग्नी युवामिमे३ऽभि स्तोमा अनूषत । पिबतं शंभुवा सुतम् ॥ ७ ॥
या वां सन्ति पुरुस्पृहो नियुतो दाशुषे नरा । इन्द्राग्नी ताभिरा गतम् ॥ ८ ॥
ताभिरा गच्छतं नरोपेदं सवनं सुतम् । इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥ ९ ॥
तमीळिष्व यो अर्चिषा वना विश्वा परिष्वजत् ।
कृष्णा कृणोति जिह्वया ॥ १० ॥

अथ एकोनत्रिंशो वर्गः ॥ २९ ॥

य इद्ध आविवासति सुम्नमिन्द्रस्य मर्त्यः । द्युम्नाय सुतरा अपः ॥ ११ ॥
ता नो वाजवतीरिष आशून्पिपृतमर्वतः । इन्द्रमग्निं च वोळ्हवे ॥ १२ ॥
उभा वामिन्द्राग्नी आहुवध्या उभा राधसः सह मादयध्यै ।
उभा दाताराविषां रयीणामुभा वाजस्य सातये हुवे वाम् ॥ १३ ॥
आ नो गव्येभिरश्व्यैर्वसव्यै३रुप गच्छतम् ।
सखायौ देवौ सख्याय शंभुवेन्द्राग्नी ता हवामहे ॥ १४ ॥
इन्द्राग्नी शृणुतं हवं यजमानस्य सुन्वतः ।
वीतं हव्यान्या गतं पिबतं सोम्यं मधु ॥ १५ ॥

[६१] एकषष्टीतमं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—सरस्वती ॥ छन्दः—१, १३ निचृज्जगती; २ जगती; ३ विराड्जगती; ४, ९, ११, १२ निचृद्गायत्री; ५, ६, १० विराड्गायत्री; ७, ८ गायत्री; १४ पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१-३, १३ निषादः; ४-१२ षड्जः; १४ पञ्चमः ॥

अथ त्रिंशो वर्गः ॥ ३० ॥

इयमददाद्रभसमृणच्युतं दिवोदासं वध्र्यश्वाय दाशुषे ।
या शश्वन्तमाचखादावसं पणिं ता ते दात्राणि तविषा सरस्वति ॥ १ ॥

इयं शुष्मेभिर्बिसखा इवारुजत्सानु गिरीणां तविषेभिरूर्मिभिः ।
पारावतघ्नीमवसे सुवृक्तिभिः सरस्वतीमा विवासेम धीतिभिः ॥ २ ॥
सरस्वति देवनिदो नि बर्हय प्रजां विश्वस्य बृसयस्य मायिनः ।
उत क्षितिभ्योऽवनीरविन्दो विषमेभ्यो अस्रवो वाजिनीवति ॥ ३ ॥
प्र णो देवी सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती । धीनामवित्र्यवतु ॥ ४ ॥
यस्त्वा देवि सरस्वत्युपब्रूते धने हिते । इन्द्रं न वृत्रतूर्ये ॥ ५ ॥

अथ एकत्रिंशो वर्गः ॥ ३१ ॥

त्वं देवि सरस्वत्यवा वाजेषु वाजिनि । रदा पूषेव नः सनिम् ॥ ६ ॥
उत स्या नः सरस्वती घोरा हिरण्यवर्तनिः । वृत्रघ्नी वष्टि सुष्टुतिम् ॥ ७ ॥
यस्या अनन्तो अह्रुतस्त्वेषश्चरिष्णुरर्णवः । अमश्चरति रोरुवत् ॥ ८ ॥
सा नो विश्वा अति द्विषः स्वसॄरन्या ऋतावरी । अतन्नहेव सूर्यः ॥ ९ ॥
उत नः प्रिया प्रियासु सप्तस्वसा सुजुष्टा । सरस्वती स्तोम्या भूत् ॥ १० ॥

अथ द्वात्रिंशो वर्गः ॥ ३२ ॥

आपप्रुषी पार्थिवान्युरु रजो अन्तरिक्षम् । सरस्वती निदस्पातु ॥ ११ ॥
त्रिषधस्था सप्तधातुः पञ्च जाता वर्धयन्ती । वाजेवाजे हव्या भूत् ॥ १२ ॥
प्र या महिम्ना महिनासु चेकिते द्युम्नेभिरन्या अपसामपस्तमा ।
रथइव बृहती विभ्वने कृतोपस्तुत्या चिकितुषा सरस्वती ॥ १३ ॥
सरस्वत्यभि नो नेषि वस्यो माप स्फरीः पयसा मा न आ धक् ।
जुषस्व नः सख्या वेश्या च मा त्वत्क्षेत्राण्यरणानि गन्म ॥ १४ ॥

इति चतुर्थाष्टकेऽष्टमोऽध्यायः ॥

इति चतुर्थोऽष्टकः ॥

अथ पञ्चमोऽष्टके प्रथमोऽध्यायः

प्रथमोऽनुवाकः [६२] द्विषष्टीतमं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—अश्विनौ ॥ छन्दः—१, २ भुरिक्पङ्क्तिः ३ विराट्त्रिष्टुप्; ४, ६-८, १० निचृत्त्रिष्टुप्; ५, ९, ११ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१, २ पञ्चमः; ३-११ धैवतः ॥

अथ प्रथमो वर्गः ॥ १ ॥

स्तुषे नरा दिवो अस्य प्रसन्ताश्विना हुवे जरमाणो अर्कैः ।
या सद्य उस्रा व्युषि ज्मो अन्तान्युयूषतः पर्युरू वरांसि ॥ १ ॥
ता यज्ञमा शुचिभिश्चक्रमाणा रथस्य भानुं रुरुचू रजोभिः ।
पुरू वरांस्यमिता मिमानापो धन्वान्यति याथो अज्रान् ॥ २ ॥
ता ह त्यद्वर्तिर्यदरध्रमुग्रेत्था धियं ऊहथुः शश्वदश्वैः ।
मनोजवेभिरिषिरैः शयध्यै परि व्यथिर्दाशुषो मर्त्यस्य ॥ ३ ॥
ता नव्यसो जरमाणस्य मन्मोप भूषतो युयुजानसप्ती ।
शुभं पृक्षमिषमूर्जं वहन्ता होता यक्षत्प्रत्नो अध्रुग्युवाना ॥ ४ ॥
ता वल्गू दस्रा पुरुशाकतमा प्रत्ना नव्यसा वचसा विवासे ।
या शंसते स्तुवते शंभविष्ठा बभूवतुर्गृणते चित्रराती ॥ ५ ॥

अथ द्वितीयो वर्गः ॥ २ ॥

ता भुज्युं विभिरद्भ्यः समुद्रात्तुग्रस्य सूनुमूहथू रजोभिः ।
अरेणुभिर्योजनेभिर्भुजन्ता पतत्रिभिरर्णसो निरुपस्थात् ॥ ६ ॥
वि जयुषा रथ्या यातमद्रिं श्रुतं हवं वृषणा वध्रिमत्याः ।
दशस्यन्ता शयवे पिप्यथुर्गामिति च्यवाना सुमतिं भुरण्यू ॥ ७ ॥
यद्रोदसी प्रदिवो अस्ति भूमा हेळो देवानामुत मर्त्यत्रा ।
तदादित्या वसवो रुद्रियासो रक्षोयुजे तपुरघं दधात ॥ ८ ॥
य ईं राजानावृतुथा विदधद्रजसो मित्रो वरुणश्चिकेतत् ।
गम्भीराय रक्षसे हेतिमस्य द्रोघाय चिद्वचस आनवाय ॥ ९ ॥
अन्तरैश्चक्रैस्तनयाय वर्तिर्द्युमता यातं नृवता रथेन ।
सनुत्येन त्यजसा मर्त्यस्य वनुष्यतामपि शीर्षा ववृक्तम् ॥ १० ॥

आ परमाभिरुत मध्यमाभिर्नियुद्भिर्यातमवमाभिरर्वाक्।
दृळ्हस्य चिद्गोमतो वि व्रजस्य दुरो वर्तं गृणते चित्रराती ॥ ११ ॥

[६३] त्रिषष्टीतमं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—अश्विनौ ॥ छन्दः—१ स्वराड्बृहती; २, ४, ६, ७ पङ्क्तिः; ३, १० भुरिक्पङ्क्तिः; ५, ९ निचृत्त्रिष्टुप्; ८ स्वराट्पङ्क्तिः; ११ आसुरीपङ्क्तिः ॥ स्वरः—१ मध्यमः; २-४, ६-८, १०, ११ पञ्चमः; ५, ९ धैवतः ॥

अथ तृतीयो वर्गः ॥ ३ ॥

क्व१ त्या वल्गू पुरुहूताद्य दूतो न स्तोमोऽविदन्नमस्वान्।
आ यो अर्वाङ्नासत्या ववर्त प्रेष्ठा ह्यसथो अस्य मन्मन् ॥ १ ॥
अरं मे गन्तं हवनायास्मै गृणाना यथा पिबाथो अन्धः।
परि ह त्यद्वर्तिर्याथो रिषो न यत्परो नान्तरस्तुतुर्यात् ॥ २ ॥
अकारि वामन्धसो वरीमन्नस्तारि बर्हिः सुप्रायणतमम्।
उत्तानहस्तो युवयुर्ववन्दा वां नक्षन्तो अद्रय आञ्जन् ॥ ३ ॥
ऊर्ध्वो वामग्निरध्वरेष्वस्थात्प्र रातिरेति जूर्णिनी घृताची।
प्र होता गूर्तमना उराणोऽयुक्त यो नासत्या हवीमन् ॥ ४ ॥
अधि श्रिये दुहिता सूर्यस्य रथं तस्थौ पुरुभुजा शतोतिम्।
प्र मायाभिर्मायिना भूतमत्र नरा नृतू जनिमन्यज्ञियानाम् ॥ ५ ॥

अथ चतुर्थो वर्गः ॥ ४ ॥

युवं श्रीभिर्दर्शताभिराभिः शुभे पुष्टिमूहथुः सूर्यायाः ।
प्र वां वयो वपुषेऽनु पप्तन्नक्षद्वाणी सुष्टुता धिष्ण्या वाम् ॥ ६ ॥
आ वां वयोऽश्वासो वहिष्ठा अभि प्रयो नासत्या वहन्तु।
प्र वां रथो मनोजवा असर्जीषः पृक्ष इषिधो अनु पूर्वीः ॥ ७ ॥
पुरु हि वां पुरुभुजा देष्णं धेनुं न इषं पिन्वतमसक्राम्।
स्तुतश्च वां माध्वी सुष्टुतिश्च रसाश्च ये वामनु रातिमग्मन् ॥ ८ ॥
उत म ऋज्रे पुरयस्य रघ्वी सुमीळ्हे शतं पेरुके च पक्वा।
शाण्डो दाद्धिरणिनः स्मद्दिष्टीन्दश वशासो अभिषाच ऋष्वान् ॥ ९ ॥

सं वां शता नासत्या सहस्राश्वानां पुरुपन्था गिरे दात्।
भरद्वाजाय वीर नू गिरे दाद्धता रक्षांसि पुरुदंससा स्युः ॥ १० ॥
आ वां सुम्ने वरिमन्त्सूरिभिः ष्याम् ॥ ११ ॥

[६४] चतुःषष्टीतमं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—उषाः ॥ छन्दः—१, २, ६ विराट्त्रिष्टुप्; ३ त्रिष्टुप्; ४ निचृत्त्रिष्टुप्; ५ पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१-४, ६ धैवतः; ५ पञ्चमः ॥

अथ पञ्चमो वर्गः ॥ ५ ॥

उदु श्रिय उषसो रोचमाना अस्थुरपां नोर्मयो रुशन्तः।
कृणोति विश्वा सुपथा सुगान्यभूदु वस्वी दक्षिणा मघोनी ॥ १ ॥
भद्रा ददृक्ष उर्विया वि भास्युत्ते शोचिर्भानवो द्यामपप्तन्।
आविर्वक्षः कृणुषे शुम्भमानोषो देवि रोचमाना महोभिः ॥ २ ॥
वहन्ति सीमरुणासो रुशन्तो गावः सुभगामुर्विया प्रथानाम्।
अपेजते शूरो अस्तेव शत्रून्बाधते तमो अजिरो न वोळ्हा ॥ ३ ॥
सुगोत ते सुपथा पर्वतेष्ववाते अपस्तरसि स्वभानो।
सा न आ वह पृथुयामन्नृष्वे रयिं दिवो दुहितरिषयध्यै ॥ ४ ॥
सा वह योक्षभिरवातोषो वरं वहसि जोषमनु ।
त्वं दिवो दुहितर्या ह देवी पूर्वहूतौ मंहना दर्शता भूः ॥ ५ ॥
उत्ते वयश्चिद्वसतेरपप्तन्नरश्च ये पितुभाजो व्युष्टौ ।
अमा सते वहसि भूरि वाममुषो देवि दाशुषे मर्त्याय ॥ ६ ॥

[६५] पञ्चषष्टीतमं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—उषाः ॥ छन्दः—१ भुरिक्पङ्क्तिः; २, ३ विराट्त्रिष्टुप्; ४, ६ निचृत्त्रिष्टुप्; ५ विराट्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१, ५ पञ्चमः; २-४, ६ धैवतः ॥

अथ षष्ठो वर्गः ॥ ६ ॥

एषा स्या नो दुहिता दिवोजाः क्षितीरुच्छन्ती मानुषीरजीगः।
या भानुना रुशता राम्यास्वज्ञायि तिरस्तमसश्चिदक्तून् ॥ १ ॥
वि तद्ययुररुणयुग्भिरश्वैश्चित्रं भान्त्युषसश्चन्द्ररथाः।
अग्रं यज्ञस्य बृहतो नयन्तीर्वि ता बाधन्ते तम ऊर्म्यायाः ॥ २ ॥

श्रवो वाजमिषमूर्जं वहन्तीर्नि दाशुष उषसो मर्त्याय ।
मघोनीर्वीरवत्पत्यमाना अवो धात विधते रत्नमद्य ॥ ३ ॥
इदा हि वो विधते रत्नमस्तीदा वीराय दाशुष उषासः ।
इदा विप्राय जरते यदुक्था नि ष्म मावते वहथा पुरा चित् ॥ ४ ॥
इदा हि त उषो अद्रिसानो गोत्रा गवामङ्गिरसो गृणन्ति ।
व्य१र्केण बिभिदुर्ब्रह्मणा च सत्या नृणामभवद्देवहूतिः ॥ ५ ॥
उच्छा दिवो दुहितः प्रत्नवन्नो भरद्वाजवद्विधते मघोनि ।
सुवीरं रयिं गृणते रिरीह्युरुगायमधि धेहि श्रवो नः ॥ ६ ॥

[६६] षट्षष्टीतमं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—मरुतः ॥ छन्दः—१, ९, ११ निचृत्त्रिष्टुप्; २, ५ विराट्त्रिष्टुप्; ३, ४ निचृत्पङ्क्तिः; ६, ७, १० भुरिक्पङ्क्तिः; ८ स्वराट्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१, २, ५, ९, ११ धैवतः; ३, ४, ६-८, १० पञ्चमः ॥

अथ सप्तमो वर्गः ॥ ७ ॥

वपुर्नु तच्चिकितुषे चिदस्तु समानं नाम धेनु पत्यमानम् ।
मर्तेष्वन्यद्दोहसे पीपाय सकृच्छुक्रं दुदुहे पृश्निरूधः ॥ १ ॥
ये अग्नयो न शोशुचन्निधाना द्विर्यत्त्रिर्मरुतो वावृधन्त ।
अरेणवो हिरण्ययास एषां साकं नृम्णैः पौंस्येभिश्च भूवन् ॥ २ ॥
रुद्रस्य ये मीळ्हुषः सन्ति पुत्रा यांश्चो नु दाधृविर्भरध्यै ।
विदे हि माता महो मही षा सेत्पृश्निः सुभ्वे३ गर्भमाधात् ॥ ३ ॥
न य ईषन्ते जनुषोऽया न्व१न्तः सन्तोऽवद्यानि पुनानाः ।
निर्यद्दुह्रे शुचयोऽनु जोषमनु श्रिया तन्वमुक्षमाणाः ॥ ४ ॥
मक्षू न येषु दोहसे चिदया आ नाम धृष्णु मारुतं दधानाः ।
न ये स्तौना अयासो मह्ना नू चित्सुदानुरव यासदुग्रान् ॥ ५ ॥

अथाष्टमो वर्गः ॥ ८ ॥

त इदुग्राः शवसा धृष्णुषेणा उभे युजन्त रोदसी सुमेके ।
अध स्मैषु रोदसी स्वशोचिरामवत्सु तस्थौ न रोकः ॥ ६ ॥

अनेनो वो मरुतो यामो अस्त्वनश्वश्चिद्यमजत्यरथीः ।
अनवसो अनभीशू रजस्तूर्वि रोदसी पथ्या याति साधन् ॥ ७ ॥
नास्य वर्ता न तरुता न्वस्ति मरुतो यमवथ वाजसातौ ।
तोके वा गोषु तनये यमप्सु स व्रजं दर्ता पार्ये अध द्योः ॥ ८ ॥
प्र चित्रमर्कं गृणते तुराय मारुताय स्वतवसे भरध्वम् ।
ये सहांसि सहसा सहन्ते रेजते अग्ने पृथिवी मखेभ्यः ॥ ९ ॥
त्विषीमन्तो अध्वरस्येव दिद्युत्तृषुच्यवसो जुह्वो३ नाग्नेः ।
अर्चत्रयो धुनयो न वीरा भ्राजज्जन्मानो मरुतो अधृष्टाः ॥ १० ॥
तं वृधन्तं मारुतं भ्राजदृष्टिं रुद्रस्य सूनुं हवसा विवासे ।
दिवः शर्धाय शुचयो मनीषा गिरयो नाप उग्रा अस्पृध्रन् ॥ ११ ॥

[६७] सप्तषष्टीतमं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—मित्रावरुणौ ॥ छन्दः—१, ९ स्वराट्पङ्क्तिः; २, १० भुरिक्पङ्क्तिः; ३, ७, ८, ११ निचृत्त्रिष्टुप्; ४, ५ त्रिष्टुप्; ६ विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१, २, ९, १० पञ्चमः; ३-८, ११ धैवतः ॥

अथ नवमो वर्गः ॥ ९ ॥

विश्वेषां वः सतां ज्येष्ठतमा गीर्भिर्मित्रावरुणा वावृधध्यै ।
सं या रश्मेव यमतुर्यमिष्ठा द्वा जनाँ असमा बाहुभिः स्वैः ॥ १ ॥
इयं मद्वां प्र स्तृणीते मनीषोप प्रिया नमसा बर्हिरच्छ ।
यन्तं नो मित्रावरुणावधृष्टं छर्दिर्यद्वां वरूथ्यं सुदानू ॥ २ ॥
आ यातं मित्रावरुणा सुशस्त्युप प्रिया नमसा हूयमाना ।
सं यावप्नःस्थो अपसेव जनाञ्छ्रुधीयतश्चिद्यतथो महित्वा ॥ ३ ॥
अश्वा न या वाजिना पूतबन्धू ऋता यद्गर्भमदितिर्भरध्यै ।
प्र या महि महान्ता जायमाना घोरा मर्ताय रिपवे नि दीधः ॥ ४ ॥
विश्वे यद्वां मंहना मन्दमानाः क्षत्रं देवासो अदधुः सजोषाः ।
परि यद्भूथो रोदसी चिदुर्वी सन्ति स्पशो अदब्धासो अमूराः ॥ ५ ॥

अथ दशमो वर्गः ॥ १० ॥

ता हि क्षत्रं धारयेथे अनु द्यून्दृंहेथे सानुमुपमादिव द्योः ।
दृळ्हो नक्षत्र उत विश्वदेवो भूमिमातान्द्यां धासिनायोः ॥ ६ ॥
ता विग्रं धैथे जठरं पृणध्या आ यत्सद्म सभृतयः पृणन्ति ।
न मृष्यन्ते युवतयोऽवाता वि यत्पयो विश्वजिन्वा भरन्ते ॥ ७ ॥
ता जिह्वया सदमेदं सुमेधा आ यद्वां सत्यो अरतिर्ऋते भूत् ।
तद्वां महित्वं घृतान्नावस्तु युवं दाशुषे वि चयिष्टमंहः ॥ ८ ॥
प्र यद्वां मित्रावरुणा स्पूर्धन्प्रिया धाम युवधिता मिनन्ति ।
न ये देवास ओहसा न मर्ता अयज्ञसाचो अप्यो न पुत्राः ॥ ९ ॥
वि यद्वाचं कीस्तासो भरन्ते शंसन्ति के चिन्निविदो मनानाः ।
आद्वां ब्रवाम सत्यान्युक्था नकिर्देवेभिर्यतथो महित्वा ॥ १० ॥
अवोरित्था वां छर्दिषो अभिष्टौ युवोर्मित्रावरुणावस्कृधोयु ।
अनु यद्गावः स्फुरानृजिप्यं धृष्णुं यद्रणे वृषणं युनजन् ॥ ११ ॥

[६८] अष्टषष्टितमं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—इन्द्रावरुणौ ॥ छन्दः—१, ४, ११ त्रिष्टुप्; २ भुरिक्पङ्क्तिः; ३, ७, ८ स्वराट्पङ्क्तिः; ५ पङ्क्तिः; ६ निचृत्त्रिष्टुप्; ९, १० निचृज्जगती ॥ स्वरः—१, ४, ६, ११ धैवतः; २, ३, ५, ७, ८ पञ्चमः; ९, १० निषादः ॥

अथैकादशो वर्गः ॥ ११ ॥

श्रुष्टी वां यज्ञ उद्यतः सजोषा मनुष्वद् वृक्तबर्हिषो यजध्यै ।
आ य इन्द्रावरुणाविषे अद्य महे सुम्नाय मह आववर्तत् ॥ १ ॥
ता हि श्रेष्ठा देवताता तुजा शूराणां शविष्ठा ता हि भूतम् ।
मघोनां मंहिष्ठा तुविशुष्म ऋतेन वृत्रतुरा सर्वसेना ॥ २ ॥
ता गृणीहि नमस्येभिः शूषैः सुम्नेभिरिन्द्रावरुणा चकाना ।
वज्रेणान्यः शवसा हन्ति वृत्रं सिषक्त्यन्यो वृजनेषु विप्रः ॥ ३ ॥
ग्नाश्च यन्नरश्च वावृधन्त विश्वे देवासो नरां स्वगूर्ताः ।
प्रैभ्य इन्द्रावरुणा महित्वा द्यौश्च पृथिवि भूतमुर्वी ॥ ४ ॥

स इत्सुदानुः स्ववाँ ऋतावेन्द्रा यो वां वरुण दाशति त्मन् ।
इषा स द्विषस्तरेद्दास्वान्वंसद्रयिं रयिवतश्च जनान् ॥ ५ ॥

अथ द्वादशो वर्गः ॥ १२ ॥

यं युवं दाश्वध्वराय देवा रयिं धत्थो वसुमन्तं पुरुक्षुम् ।
अस्मे स इन्द्रावरुणावपि ष्यात्प्र यो भनक्ति वनुषामशस्तीः ॥ ६ ॥
उत नः सुत्रात्रो देवगोपाः सूरिभ्य इन्द्रावरुणा रयिः ष्यात् ।
येषां शुष्मः पृतनासु साह्वान्प्र सद्यो द्युम्ना तिरते ततुरिः ॥ ७ ॥
नू न इन्द्रावरुणा गृणाना पृङ्क्तं रयिं सौश्रवसाय देवा ।
इत्था गृणन्तो महिनस्य शर्धोऽपो न नावा दुरिता तरेम ॥ ८ ॥
प्र सम्राजे बृहते मन्म नु प्रियमर्च देवाय वरुणाय सप्रथः ।
अयं य उर्वी महिना महिव्रतः क्रत्वा विभात्यजरो न शोचिषा ॥ ९ ॥
इन्द्रावरुणा सुतपाविमं सुतं सोमं पिबतं मद्यं धृतव्रता ।
युवो रथो अध्वरं देववीतये प्रति स्वसरमुप याति पीतये ॥ १० ॥
इन्द्रावरुणा मधुमत्तमस्य वृष्णः सोमस्य वृषणा वृषेथाम् ।
इदं वामन्धः परिषिक्तमस्मे आसद्यास्मिन्बर्हिषि मादयेथाम् ॥ ११ ॥

[६९] एकोनसप्ततितमं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—इन्द्राविष्णू ॥ छन्दः—१, ३, ६, ७ निचृत्त्रिष्टुप्; २, ४, ८ त्रिष्टुप्; ५ ब्राह्म्युष्णिक् ॥ स्वरः—१-४, ६-८ धैवतः; ५ ऋषभः ॥

अथ त्रयोदशो वर्गः ॥ १३ ॥

सं वां कर्मणा समिषा हिनोमीन्द्राविष्णू अपसस्पारे अस्य ।
जुषेथां यज्ञं द्रविणं च धत्तमरिष्टैर्नः पथिभिः पारयन्ता ॥ १ ॥
या विश्वासां जनितारा मतीनामिन्द्राविष्णू कलशा सोमधाना ।
प्र वां गिरः शस्यमाना अवन्तु प्र स्तोमासो गीयमानासो अर्कैः ॥ २ ॥
इन्द्राविष्णू मदपती मदानामा सोमं यातं द्रविणो दधाना ।
सं वामञ्जन्त्वक्तुभिर्मतीनां सं स्तोमासः शस्यमानास उक्थैः ॥ ३ ॥
आ वामश्वासो अभिमातिषाह इन्द्राविष्णू सधमादो वहन्तु ।
जुषेथां विश्वा हवना मतीनामुप ब्रह्माणि शृणुतं गिरो मे ॥ ४ ॥

इन्द्राविष्णू तत्पनयाय्यं वां सोमस्य मद उरु चक्रमाथे।
अकृणुतमन्तरिक्षं वरीयोऽप्रथतं जीवसे नो रजांसि ॥५॥
इन्द्राविष्णू हविषा वावृधानाग्राद्वाना नमसा रातहव्या ।
घृतासुती द्रविणं धत्तमस्मे समुद्रः स्थः कलशः सोमधानः ॥६॥
इन्द्राविष्णू पिबतं मध्वो अस्य सोमस्य दस्रा जठरं पृणेथाम्।
आ वामन्धांसि मदिराण्यग्मन्नुप ब्रह्माणि शृणुतं हवं मे ॥७॥
उभा जिग्यथुर्न परा जयेथे न परा जिग्ये कतरश्चनैनोः।
इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथां त्रेधा सहस्रं वि तदैरयेथाम् ॥८॥

[७०] सप्ततितमं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—द्यावापृथिव्यौ ॥ छन्दः—१, ५ निचृज्जगती; २-४, ६ जगती ॥ स्वरः—निषादः ॥

अथ चतुर्दशो वर्गः ॥ १४ ॥

घृतवती भुवनानामभिश्रियोर्वी पृथ्वी मधुदुघे सुपेशसा ।
द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते अजरे भूरिरेतसा ॥१॥
असश्चन्ती भूरिधारे पयस्वती घृतं दुहाते सुकृते शुचिव्रते ।
राजन्ती अस्य भुवनस्य रोदसी अस्मे रेतः सिञ्चतं यन्मनुर्हितम् ॥२॥
यो वामृजवे क्रमणाय रोदसी मर्तो ददाश धिषणे स साधति।
प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि युवोः सिक्ता विषुरूपाणि सव्रता ॥३॥
घृतेन द्यावापृथिवी अभीवृते घृतश्रिया घृतपृचा घृतावृधा ।
उर्वी पृथ्वी होतृवूर्ये पुरोहिते ते इद्विप्रा ईळते सुम्नमिष्टये ॥४॥
मधु नो द्यावापृथिवी मिमिक्षतां मधुश्चुता मधुदुघे मधुव्रते ।
दधाने यज्ञं द्रविणं च देवता महि श्रवो वाजमस्मे सुवीर्यम् ॥५॥
ऊर्जं नो द्यौश्च पृथिवी च पिन्वतां पिता माता विश्वविदा सुदंससा।
संरराणे रोदसी विश्वशम्भुवा सनिं वाजं रयिमस्मे समिन्वताम् ॥६॥

[७१] एकसप्ततितमं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—सविता ॥ छन्दः—१ जगती; २, ३ निचृज्जगती; ४ त्रिष्टुप्; ५, ६ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१-३ निषादः; ४-६ धैवतः ॥

अथ पञ्चदशो वर्गः ॥ १५ ॥

उदु ष्य देवः सविता हिरण्यया बाहू अयंस्त सवनाय सुक्रतुः।
घृतेन पाणी अभि प्रुष्णुते मखो युवा सुदक्षो रजसो विधर्मणि ॥१॥
देवस्य वयं सवितुः सवीमनि श्रेष्ठे स्याम वसुनश्च दावने।
यो विश्वस्य द्विपदो यश्चतुष्पदो निवेशने प्रसवे चासि भूमनः ॥२॥
अदब्धेभिः सवितः पायुभिष्ट्वं शिवेभिरद्य परि पाहि नो गयम्।
हिरण्यजिह्वः सुविताय नव्यसे रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत ॥३॥
उदु ष्य देवः सविता दमूना हिरण्यपाणिः प्रतिदोषमस्थात्।
अयोहनुर्यजतो मन्द्रजिह्व आ दाशुषे सुवति भूरि वामम् ॥४॥
उदू अयाँ उपवक्तेव बाहू हिरण्यया सविता सुप्रतीका ।
दिवो रोहांस्यरुहत्पृथिव्या अरीरमत्पतयत्कच्चिदभ्वम् ॥५॥
वाममद्य सवितर्वाममु श्वो दिवेदिवे वाममस्मभ्यं सावीः ।
वामस्य हि क्षयस्य देव भूरेरया धिया वामभाजः स्याम ॥६॥

[७२] द्विसप्ततितमं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—इन्द्रासोमौ ॥ छन्दः—१, ३ निचृत्त्रिष्टुप्; २, ४, ५ विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

अथ षोडशो वर्गः ॥ १६ ॥

इन्द्रासोमा महि तद्वां महित्वं युवं महानि प्रथमानि चक्रथुः।
युवं सूर्यं विविदथुर्युवं स्वर्विश्वा तमांस्यहतं निदश्च ॥१॥
इन्द्रासोमा वासयथ उषासमुत्सूर्यं नयथो ज्योतिषा सह ।
उप द्यां स्कम्भथुः स्कम्भनेनाप्रथतं पृथिवीं मातरं वि ॥२॥
इन्द्रासोमावहिमपः परिष्ठां हथो वृत्रमनु वां द्यौरमन्यत ।
प्रार्णांस्यैरयतं नदीनामा समुद्राणि पप्रथुः पुरूणि ॥३॥
इन्द्रासोमा पक्वमामास्वन्तर्नि गवामिद्दधथुर्वक्षणासु ।
जगृभथुरनपिनद्धमासु रुशच्चित्रासु जगतीष्वन्तः ॥४॥
इन्द्रासोमा युवमङ्ग तरुत्रमपत्यसाचं श्रुत्यं रराथे ।
युवं शुष्मं नर्यं चर्षणिभ्यः सं विव्यथुः पृतनाषाहमुग्रा ॥५॥

[७३] त्रिसप्ततीतमं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—बृहस्पतिः ॥ छन्दः—१, २ त्रिष्टुप्;
३ विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

अथ सप्तदशो वर्गः ॥ १७ ॥

यो अद्रिभित्प्रथमजा ऋतावा बृहस्पतिराङ्गिरसो हविष्मान् ।
द्विबर्हज्मा प्राघर्मसत्पिता न आ रोदसी वृषभो रोरवीति ॥ १ ॥
जनाय चिद्य ईवत उ लोकं बृहस्पतिर्देवहूतौ चकार ।
घ्नन्वृत्राणि वि पुरो दर्दरीति जयञ्छत्रूँरमित्रान्पृत्सु साहन् ॥ २ ॥
बृहस्पतिः समजयद्वसूनि महो व्रजान् गोमतो देव एषः ।
अपः सिषासन्त्स्व१रप्रतीतो बृहस्पतिर्हन्त्यमित्रमर्कैः ॥ ३ ॥

[७४] चतुःसप्ततितमं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—सोमारुद्रौ ॥ छन्दः—१, २, ४ त्रिष्टुप्;
३ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

अथाष्टादशो वर्गः ॥ १८ ॥

सोमारुद्रा धारयेथामसुर्य१ं प्र वामिष्टयोऽरमश्नुवन्तु ।
दमेदमे सप्त रत्ना दधाना शं नो भूतं द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ १ ॥
सोमारुद्रा वि वृहतं विषूचीममीवा या नो गयमाविवेश ।
आरे बाधेथां निर्ऋतिं पराचैरस्मे भद्रा सौश्रवसानि सन्तु ॥ २ ॥
सोमारुद्रा युवमेतान्यस्मे विश्वा तनूषु भेषजानि धत्तम् ।
अव स्यतं मुञ्चतं यन्नो अस्ति तनूषु बद्धं कृतमेनो अस्मत् ॥ ३ ॥
तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवौ सोमारुद्राविह सु मृळतं नः ।
प्र नो मुञ्चतं वरुणस्य पाशाद्गोपायतं नः सुमनस्यमाना ॥ ४ ॥

[७५] पञ्चसप्ततितमं सूक्तम्

ऋषिः—पायुर्भारद्वाजः ॥ देवता—१ वर्म; २ धनुः; ३ ज्या; ४ आर्त्नी; ५ इषुधिः;
६[1] सारथिः; ६[2] रश्मयः; ७ अश्वाः; ८ रथः; ९ रथगोपाः; १० लिङ्गोक्ताः; ११,
१२, १५, १६, इषवः; १३ प्रतोदः; १४ हस्तघ्नः; १७-१९ लिङ्गोक्ता सङ्ग्रामाशिषः
(१७ युद्धभूमिर्ब्रह्मणस्पतिरदितिश्च; १८ कवचसोमवरुणाः; १९ देवा ब्रह्म च)॥
छन्दः—१, ३ निचृत्त्रिष्टुप्; २, ४, ५, ७-९, ११, १४, १८ त्रिष्टुप्; ६ जगती;

१० विराड्जगती; १२, १९ विराडनुष्टुप्; १३ स्वराडुष्णिक्; १५ निचृद्
अनुष्टुप्; १६ अनुष्टुप्; १७ पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१-५, ७-९, ११, १४,
१८ धैवतः; ६, १० निषादः; १२, १५, १६, १९ गान्धारः;
१३ ऋषभः; १७ पञ्चमः ॥

अथैकोनविंशो वर्गः ॥ १९ ॥

जीमूतस्येव भवति प्रतीकं यद्वर्मी याति समदामुपस्थे ।
अनाविद्धया तन्वा जय त्वं स त्वा वर्मणो महिमा पिपर्तु ॥ १ ॥
धन्वना गा धन्वनाजिं जयेम धन्वना तीव्राः समदो जयेम ।
धनुः शत्रोरपकामं कृणोति धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम ॥ २ ॥
वक्ष्यन्तीवेदा गनीगन्ति कर्णं प्रियं सखायं परिषस्वजाना ।
योषेव शिङ्क्ते वितताधि धन्वञ्ज्या इयं समने पारयन्ती ॥ ३ ॥
ते आचरन्ती समनेव योषा मातेव पुत्रं बिभृतामुपस्थे ।
अप शत्रून्विध्यतां संविदाने आर्त्नी इमे विष्फुरन्ती अमित्रान् ॥ ४ ॥
बह्वीनां पिता बहुरस्य पुत्रश्चिश्चा कृणोति समनावगत्य ।
इषुधिः सङ्काः पृतनाश्च सर्वाः पृष्ठे निनद्धो जयति प्रसूतः ॥ ५ ॥

अथ विंशो वर्गः ॥ २० ॥

रथे तिष्ठन्नयति वाजिनः पुरो यत्रयत्र कामयते सुषारथिः ।
अभीशूनां महिमानं पनायत मनः पश्चादनु यच्छन्ति रश्मयः ॥ ६ ॥
तीव्रान्घोषान्कृण्वते वृषपाणयोऽश्वा रथेभिः सह वाजयन्तः ।
अवक्रामन्तः प्रपदैरमित्रान् क्षिणन्ति शत्रूँरनपव्ययन्तः ॥ ७ ॥
रथवाहनं हविरस्य नाम यत्रायुधं निहितमस्य वर्म ।
तत्रा रथमुप शग्मं सदेम विश्वाहा वयं सुमनस्यमानाः ॥ ८ ॥
स्वादुषंसदः पितरो वयोधाः कृच्छ्रेश्रितः शक्तीवन्तो गभीराः ।
चित्रसेना इषुबला अमृध्राः सतोवीरा उरवो व्रातसाहाः ॥ ९ ॥
ब्राह्मणासः पितरः सोम्यासः शिवे नो द्यावापृथिवी अनेहसा ।
पूषा नः पातु दुरितादृतावृधो रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत ॥ १० ॥

अथैकविंशो वर्गः ॥ २१ ॥

सुपर्णं वस्ते मृगो अस्या दन्तो गोभिः संनद्धा पतति प्रसूता ।
यत्रा नरः सं च वि च द्रवन्ति तत्रास्मभ्यमिषवः शर्म यंसन् ॥ ११ ॥
ऋजीते परि वृङ्धि नोऽश्मा भवतु नस्तनूः ।
सोमो अधि ब्रवीतु नोऽदितिः शर्म यच्छतु ॥ १२ ॥
आ जङ्घन्ति सान्वेषां जघनाँ उप जिघ्नते ।
अश्वाजनि प्रचेतसोऽश्वान्त्समत्सु चोदय ॥ १३ ॥
अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुं ज्याया हेतिं परिबाधमानः ।
हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान्पुमान्पुमांसं परि पातु विश्वतः ॥ १४ ॥
आलाक्ता या रुरुशीर्ष्ण्यथो यस्या अयो मुखम् ।
इदं पर्जन्यरेतस इष्वै देव्यै बृहन्नमः ॥ १५ ॥

अथ द्वाविंशो वर्गः ॥ २२ ॥

अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसंशिते ।
गच्छामित्रान्प्र पद्यस्व मामीषां कं चनोच्छिषः ॥ १६ ॥
यत्र बाणाः संपतन्ति कुमारा विशिखाइव ।
तत्रा नो ब्रह्मणस्पतिरदितिः शर्म यच्छतु विश्वाहा शर्म यच्छतु ॥ १७ ॥
मर्माणि ते वर्मणा छादयामि सोमस्त्वा राजामृतेनानु वस्ताम् ।
उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वानु देवा मदन्तु ॥ १८ ॥
यो नः स्वो अरणो यश्च निष्ट्यो जिघांसति ।
देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरम् ॥ १९ ॥

इति षष्ठं मण्डलम् ॥

अथ सप्तमं मण्डलम्

प्रथमोऽनुवाकः [१] प्रथमं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१-१८ एकादशाक्षरपादैस्त्रिपदा विराड् गायत्री, १९-२५ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१-१८ षड्जः; १९-२५ धैवतः ॥

अथ त्रयोविंशो वर्गः ॥ २३ ॥

अग्निं नरो दीधितिभिररण्योर्हस्तच्युती जनयन्त प्रशस्तम् ।
दूरेदृशं गृहपतिमथर्युम् ॥ १ ॥
तमग्निमस्ते वसवो न्यृण्वन्त्सुप्रतिचक्षमवसे कुतश्चित् ।
दक्षाय्यो यो दम आस नित्यः ॥ २ ॥
प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरो नोऽजस्रया सूर्म्या यविष्ठ ।
त्वां शश्वन्त उप यन्ति वाजाः ॥ ३ ॥
प्र ते अग्नयोऽग्निभ्यो वरं निः सुवीरासः शोशुचन्त द्युमन्तः ।
यत्रा नरः समासते सुजाताः ॥ ४ ॥
दा नो अग्ने धिया रयिं सुवीरं स्वपत्यं सहस्य प्रशस्तम् ।
न यं यावा तरति यातुमावान् ॥ ५ ॥

अथ चतुर्विंशो वर्गः ॥ २४ ॥

उप यमेति युवतिः सुदक्षं दोषा वस्तोर्हविष्मती घृताची ।
उप स्वैनमरमतिर्वसूयुः ॥ ६ ॥
विश्वा अग्नेऽप दहारातीर्येभिस्तपोभिरदहो जरूथम् ।
प्र निस्वरं चातयस्वामीवाम् ॥ ७ ॥
आ यस्ते अग्न इधते अनीकं वसिष्ठ शुक्र दीदिवः पावक ।
उतो न एभिः स्तवथैरिह स्याः ॥ ८ ॥
वि ये ते अग्ने भेजिरे अनीकं मर्ता नरः पित्र्यासः पुरुत्रा ।
उतो न एभिः सुमना इह स्याः ॥ ९ ॥

इमे नरो वृत्रहत्येषु शूरा विश्वा अदेवीरभि सन्तु मायाः।
ये मे धियं पनयन्त प्रशस्ताम् ॥ १० ॥

अथ पञ्चविंशो वर्गः ॥ २५ ॥

मा शूने अग्ने नि षदाम नृणां माशेषसोऽवीरता परि त्वा।
प्रजावतीषु दुर्यासु दुर्य ॥ ११ ॥
यमश्वी नित्यमुपयाति यज्ञं प्रजावन्तं स्वपत्यं क्षयं नः।
स्वजन्मना शेषसा वावृधानम् ॥ १२ ॥
पाहि नो अग्ने रक्षसो अजुष्टात्पाहि धूर्तेररुषो अघायोः।
त्वा युजा पृतनायूँरभि ष्याम् ॥ १३ ॥
सेदग्निरग्नीँरत्यस्त्वन्यान्यत्र वाजी तनयो वीळुपाणिः।
सहस्रपाथा अक्षरा समेति ॥ १४ ॥
सेदग्निर्यो वनुष्यतो निपाति समेद्धारमंहस उरुष्यात्।
सुजातासः परि चरन्ति वीराः ॥ १५ ॥

अथ षड्विंशो वर्गः ॥ २६ ॥

अयं सो अग्निराहुतः पुरुत्रा यमीशानः समिदिन्धे हविष्मान्।
परि यमेत्यध्वरेषु होता ॥ १६ ॥
त्वे अग्न आहवनानि भूरीशानास आ जुहुयाम नित्या।
उभा कृण्वन्तो वहतू मियेधे ॥ १७ ॥
इमो अग्ने वीततमानि हव्याजस्रो वक्षि देवतातिमच्छ।
प्रति न ईं सुरभीणि व्यन्तु ॥ १८ ॥
मा नो अग्नेऽवीरते परा दा दुर्वाससेऽमतये मा नो अस्यै।
मा नः क्षुधे मा रक्षस ऋतावो मा नो दमे मा वन आ जुहूर्थाः ॥ १९ ॥
नू मे ब्रह्माण्यग्न उच्छशाधि त्वं देव मघवद्भ्यः सुषूदः।
रातौ स्यामोभयास आ ते यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ २० ॥

अथ सप्तविंशो वर्गः ॥ २७ ॥

त्वमग्ने सुहवो रण्वसंदृक्सुदीती सूनो सहसो दिदीहि।
मा त्वे सचा तनये नित्य आ धङ्मा वीरो अस्मन्नर्यो वि दासीत् ॥ २१ ॥
मा नो अग्ने दुर्भृतये सचैषु देवेद्धेष्वग्निषु प्र वोचः।
मा ते अस्मान्दुर्मतयो भृमाच्चिद्देवस्य सूनो सहसो नशन्त ॥ २२ ॥
स मर्तो अग्ने स्वनीक रेवानमर्त्ये य आजुहोति हव्यम्।
स देवता वसुवनिं दधाति यं सूरिरर्थी पृच्छमान एति ॥ २३ ॥
महो नो अग्ने सुवितस्य विद्वान्रयिं सूरिभ्य आ वहा बृहन्तम्।
येन वयं सहसावन्मदेमाविक्षितास आयुषा सुवीराः ॥ २४ ॥
नू मे ब्रह्माण्यग्न उच्छशाधि त्वं देव मघवद्भ्यः सुषूदः।
रातौ स्यामोभयास आ ते यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ २५ ॥

इति पञ्चमाष्टके प्रथमोऽध्यायः ॥

अथ पञ्चमाष्टके द्वितीयोऽध्यायः

[२] द्वितीयं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—आप्रियः ॥ छन्दः—१, ९ विराट्त्रिष्टुप्; २, ४ त्रिष्टुप्; ३, ६-८, १०, ११ निचृत्त्रिष्टुप्; ५ पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१-४, ६-११ धैवतः; ५ पञ्चमः ॥

अथ प्रथमो वर्गः ॥ १ ॥

जुषस्व नः समिधमग्ने अद्य शोचा बृहद्यजतं धूममृण्वन्।
उप स्पृश दिव्यं सानु स्तूपैः सं रश्मिभिस्ततनः सूर्यस्य ॥ १ ॥
नराशंसस्य महिमानमेषामुप स्तोषाम यजतस्य यज्ञैः।
ये सुक्रतवः शुचयो धियंधाः स्वदन्ति देवा उभयानि हव्या ॥ २ ॥
ईळेन्यं वो असुरं सुदक्षमन्तर्दूतं रोदसी सत्यवाचम्।
मनुष्वदग्निं मनुना समिद्धं समध्वराय सदमिन्महेम ॥ ३ ॥
सपर्यवो भरमाणा अभिज्ञु प्र वृञ्जते नमसा बर्हिरग्नौ।
आजुह्वाना घृतपृष्ठं पृषद्वदध्वर्यवो हविषा मर्जयध्वम् ॥ ४ ॥

स्वाध्योऽ वि दुरो देवयन्तोऽ शिश्रयू रथयुर्देवताता ।
पूर्वी शिशुं न मातरा रिहाणे समग्रुवो न समनेष्वञ्जन् ॥ ५ ॥

अथ द्वितीयो वर्गः ॥ २ ॥

उत योषणे दिव्ये मही न उषासानक्ता सुदुघेव धेनुः ।
बर्हिषदा पुरुहूते मघोनी आ यज्ञिये सुविताय श्रयेताम् ॥ ६ ॥
विप्रा यज्ञेषु मानुषेषु कारू मन्ये वां जातवेदसा यजध्यै ।
ऊर्ध्वं नो अध्वरं कृतं हवेषु ता देवेषु वनथो वार्याणि ॥ ७ ॥
आ भारती भारतीभिः सजोषा इळा देवैर्मनुष्येभिरग्निः ।
सरस्वती सारस्वतेभिरर्वाक्तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदन्तु ॥ ८ ॥
तन्नस्तुरीपमध पोषयित्नु देव त्वष्टर्वि रराणः स्यस्व ।
यतो वीरः कर्मण्यः सुदक्षो युक्तग्रावा जायते देवकामः ॥ ९ ॥
वनस्पतेऽव सृजोप देवानग्निर्हविः शमिता सूदयाति ।
सेदु होता सत्यतरो यजाति यथा देवानां जनिमानि वेद ॥ १० ॥
आ याह्यग्ने समिधानो अर्वाङिन्द्रेण देवैः सरथं तुरेभिः ।
बर्हिर्न आस्तामदितिः सुपुत्रा स्वाहा देवा अमृता मादयन्ताम् ॥ ११ ॥

[३] तृतीयं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१, ९, १० विराट्त्रिष्टुप्; २ स्वराट्पङ्क्तिः; ३ भुरिक्पङ्क्तिः; ४, ६-८ निचृत्त्रिष्टुप्; ५ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१, ४-१० धैवतः; २, ३ पञ्चमः ॥

अथ तृतीयो वर्गः ॥ ३ ॥

अग्निं वो देवमग्निभिः सजोषा यजिष्ठं दूतमध्वरे कृणुध्वम् ।
यो मर्त्येषु निध्रुविर्ऋतावा तपुर्मूर्धा घृतान्नः पावकः ॥ १ ॥
प्रोथदश्वो न यवसेऽविष्यन्यदा महः संवरणाद् व्यस्थात् ।
आदस्य वातो अनु वाति शोचिरध स्म ते व्रजनं कृष्णमस्ति ॥ २ ॥
उद्यस्य ते नवजातस्य वृष्णोऽग्ने चरन्त्यजरा इधानाः ।
अच्छा द्यामरुषो धूम एति सं दूतो अग्न ईयसे हि देवान् ॥ ३ ॥

वि यस्य ते पृथिव्यां पाजो अश्रेत्तृषु यदन्ना समवृक्त जम्भैः ।
सेनेव सृष्टा प्रसितिष्ट एति यवं न दस्म जुह्वा विवेक्षि ॥ ४ ॥
तमिद्दोषा तमुषसि यविष्ठमग्निमत्यं न मर्जयन्त नरः ।
निशिशाना अतिथिमस्य योनौ दीदाय शोचिराहुतस्य वृष्णः ॥ ५ ॥

अथ चतुर्थो वर्गः ॥ ४ ॥

सुसंदृक्ते स्वनीक प्रतीकं वि यद्रुक्मो न रोचस उपाके ।
दिवो न ते तन्यतुरेति शुष्मश्चित्रो न सूरः प्रति चक्षि भानुम् ॥ ६ ॥
यथा वः स्वाहाग्नये दाशेम परीळाभिर्घृतवद्भिश्च हव्यैः ।
तेभिर्नो अग्ने अमितैर्महोभिः शतं पूर्भिरायसीभिर्नि पाहि ॥ ७ ॥
या वा ते सन्ति दाशुषे अधृष्टा गिरो वा याभिर्नृवतीरुरुष्याः ।
ताभिर्नः सूनो सहसो नि पाहि स्मत्सूरीञ्जरितॄञ्जातवेदः ॥ ८ ॥
निर्यत्पूतेव स्वधितिः शुचिर्गात्स्वया कृपा तन्वा रोचमानः ।
आ यो मात्रोरुशेन्यो जनिष्ट देवयज्याय सुक्रतुः पावकः ॥ ९ ॥
एता नो अग्ने सौभगा दिदीह्यपि क्रतुं सुचेतसं वतेम ।
विश्वा स्तोतृभ्यो गृणते च सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ १० ॥

[४] चतुर्थं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१, ३, ४, ७ भुरिक्पङ्क्तिः; २, ५ निचृत्त्रिष्टुप्; ६ स्वराट्पङ्क्तिः; ८, ९ पङ्क्तिः; १० विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१, ३, ४, ६-९ पञ्चमः; २, ५, १० धैवतः ॥

अथ पञ्चमो वर्गः ॥ ५ ॥

प्र वः शुक्राय भानवे भरध्वं हव्यं मतिं चाग्नये सुपूतम् ।
यो दैव्यानि मानुषा जनूंष्यन्तर्विश्वानि विद्मना जिगाति ॥ १ ॥
स गृत्सो अग्निस्तरुणश्चिदस्तु यतो यविष्ठो अजनिष्ट मातुः ।
सं यो वना युवते शुचिदन्भूरि चिदन्ना समिदत्ति सद्यः ॥ २ ॥
अस्य देवस्य संसद्यनीके यं मर्तासः श्येतं जगृभ्रे ।
नि यो गृभं पौरुषेयीमुवोच दुरोकमग्निरायवे शुशोच ॥ ३ ॥

अयं कविरकविषु प्रचेता मर्तेष्वग्निरमृतो नि धायि।
स मा नो अत्र जुहुरः सहस्वः सदा त्वे सुमनसः स्याम॥ ४॥
आ यो योनिं देवकृतं ससाद क्रत्वा ह्य१ग्निरमृताँ अतारीत्।
तमोषधीश्च वनिनश्च गर्भं भूमिश्च विश्वधायसं बिभर्ति॥ ५॥

अथ षष्ठो वर्गः॥ ६॥

ईशे ह्य१ग्निरमृतस्य भूरेरीशे रायः सुवीर्यस्य दातोः।
मा त्वा वयं सहसावन्नवीरा माप्सवः परि षदाम मादुवः॥ ६॥
परिषद्यं ह्यरणस्य रेक्णो नित्यस्य रायः पतयः स्याम।
न शेषो अग्ने अन्यजातमस्त्यचेतानस्य मा पथो वि दुक्षः॥ ७॥
नहि ग्रभायारणः सुशेवोऽन्योदर्यो मनसा मन्तवा उ।
अधा चिदोकः पुनरित्स एत्या नो वाज्यभीषाळेतु नव्यः॥ ८॥
त्वमग्ने वनुष्यतो नि पाहि त्वमु नः सहसावन्नवद्यात्।
सं त्वा ध्वस्मन्वदभ्येतु पाथः सं रयिः स्पृहयाय्यः सहस्री॥ ९॥
एता नो अग्ने सौभगा दिदीह्यपि क्रतुं सुचेतसं वतेम।
विश्वा स्तोतृभ्यो गृणते च सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥ १०॥

[५] पञ्चमं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः॥ देवता—वैश्वानरः॥ छन्दः—१, ४ विराट्त्रिष्टुप्;
२, ३, ८, ९ निचृत्त्रिष्टुप्; ५, ७ स्वराट्पङ्क्तिः; ६ पङ्क्तिः॥
स्वरः—१-४, ८, ९ धैवतः; ५-७ पञ्चमः॥

अथ सप्तमो वर्गः॥ ७॥

प्राग्नये तवसे भरध्वं गिरं दिवो अरतये पृथिव्याः।
यो विश्वेषाममृतानामुपस्थे वैश्वानरो वावृधे जागृवद्भिः॥ १॥
पृष्टो दिवि धाय्यग्निः पृथिव्यां नेता सिन्धूनां वृषभः स्तियानाम्।
स मानुषीरभि विशो वि भाति वैश्वानरो वावृधानो वरेण॥ २॥
त्वद्भिया विश आयन्नसिक्नीरसमना जहतीर्भोजनानि।
वैश्वानर पूरवे शोशुचानः पुरो यदग्ने दरयन्नदीदेः॥ ३॥

तव त्रिधातु पृथिवी उत द्यौर्वैश्वानर व्रतमग्ने सचन्त।
त्वं भासा रोदसी आ ततन्थाजस्रेण शोचिषा शोशुचानः॥ ४॥
त्वामग्ने हरितो वावशाना गिरः सचन्ते धुनयो घृताचीः।
पतिं कृष्टीनां रथ्यं रयीणां वैश्वानरमुषसां केतुमह्नाम्॥ ५॥

अथाष्टमो वर्गः॥ ८॥

त्वे असुर्य१ं वसवो न्यृण्वन्क्रतुं हि ते मित्रमहो जुषन्त।
त्वं दस्यूँरोकसो अग्न आज उरु ज्योतिर्जनयन्नार्याय॥ ६॥
स जायमानः परमे व्योमन्वायुर्न पाथः परि पासि सद्यः।
त्वं भुवना जनयन्नभि क्रन्नपत्याय जातवेदो दशस्यन्॥ ७॥
तामग्ने अस्मे इषमेरयस्व वैश्वानर द्युमतीं जातवेदः।
यया राधः पिन्वसि विश्ववार पृथु श्रवो दाशुषे मर्त्याय॥ ८॥
तं नो अग्ने मघवद्भ्यः पुरुक्षुं रयिं नि वाजं श्रुत्यं युवस्व।
वैश्वानर महि नः शर्म यच्छ रुद्रेभिरग्ने वसुभिः सजोषाः॥ ९॥

[६] षष्ठं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः॥ देवता—वैश्वानरः॥ छन्दः—१, ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप्;
२ निचृत्पङ्क्तिः; ३, ७ भुरिक्पङ्क्तिः; ६ विराट्त्रिष्टुप्॥
स्वरः—१, ४-६ धैवतः; २, ३, ७ पञ्चमः॥

अथ नवमो वर्गः॥ ९॥

प्र सम्राजो असुरस्य प्रशस्तिं पुंसः कृष्टीनामनुमाद्यस्य।
इन्द्रस्येव प्र तवसस्कृतानि वन्दे दारुं वन्दमानो विवक्मि॥ १॥
कविं केतुं धासिं भानुमद्रेर्हिन्वन्ति शं राज्यं रोदस्योः।
पुरन्दरस्य गीर्भिरा विवासेऽग्नेर्व्रतानि पूर्व्या महानि॥ २॥
न्यक्रतून्ग्रथिनो मृध्रवाचः पणीँरश्रद्धाँ अवृधाँ अयज्ञान्।
प्रप्र तान्दस्यूँरग्निर्विवाय पूर्वश्चकारापराँ अयज्यून्॥ ३॥
यो अपाचीने तमसि मदन्तीः प्राचीश्चकार नृतमः शचीभिः।
तमीशानं वस्वो अग्निं गृणीषेऽनानतं दमयन्तं पृतन्यून्॥ ४॥

यो देह्यो३ अनमयद्वधस्नैर्यो अर्यपत्नीरुषसश्चकार ।
स निरुध्या नहुषो यह्वो अग्निर्विशश्चक्रे बलिहृतः सहोभिः ॥ ५ ॥
यस्य शर्मन्नुप विश्वे जनास एवैस्तस्थुः सुमतिं भिक्षमाणाः ।
वैश्वानरो वरमा रोदस्योराग्निः ससाद पित्रोरुपस्थम् ॥ ६ ॥
आ देवो ददे बुध्न्या३ वसूनि वैश्वानर उदिता सूर्यस्य ।
आ समुद्रादवरादा परस्मादाग्निर्ददे दिव आ पृथिव्याः ॥ ७ ॥

[७] सप्तमं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१, ३ त्रिष्टुप्; २ भुरिक्पङ्क्तिः; ४-६ निचृत्त्रिष्टुप्; ७ स्वराट्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१, ३-६ धैवतः; २, ७ पञ्चमः ॥

अथ दशमो वर्गः ॥ १० ॥

प्र वो देवं चित्सहसानमग्निमश्वं न वाजिनं हिषे नमोभिः ।
भवा नो दूतो अध्वरस्य विद्वान्त्मना देवेषु विविदे मितद्रुः ॥ १ ॥
आ याह्यग्ने पथ्या३ अनु स्वा मन्द्रो देवानां सख्यं जुषाणः ।
आ सानु शुष्मैर्नदयन्पृथिव्या जम्भेभिर्विश्वमुशधग्वनानि ॥ २ ॥
प्राचीनो यज्ञः सुधितं हि बर्हिः प्रीणीते अग्निरीळितो न होता ।
आ मातरा विश्ववारे हुवानो यतो यविष्ठ जज्ञिषे सुशेवः ॥ ३ ॥
सद्यो अध्वरे रथिरं जनन्त मानुषासो विचेतसो य एषाम् ।
विशामधायि विश्पतिर्दुरोणे३ऽग्निर्मन्द्रो मधुवचा ऋतावा ॥ ४ ॥
असादि वृतो वह्निराजगन्वानग्निर्ब्रह्मा नृषदने विधर्ता ।
द्यौश्च यं पृथिवी वावृधाते आ यं होता यजति विश्ववारम् ॥ ५ ॥
एते द्युम्नेभिर्विश्वमातिरन्त मन्त्रं ये वारं नर्या अतक्षन् ।
प्र ये विशस्तिरन्त श्रोषमाणा आ ये मे अस्य दीधयन्नृतस्य ॥ ६ ॥
नू त्वामग्न ईमहे वसिष्ठा ईशानं सूनो सहसो वसूनाम् ।
इषं स्तोतृभ्यो मघवद्भ्य आनड्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

[८] अष्टमं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१, ७ स्वराट्पङ्क्तिः; २-४, ६ त्रिष्टुप्; ५ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१, ७ पञ्चमः; २-६ धैवतः ॥

अथैकादशो वर्गः ॥ ११ ॥

इन्धे राजा समर्यो नमोभिर्यस्य प्रतीकमाहुतं घृतेन ।
नरो हव्येभिरीळते सबाध आग्निरग्र उषसामशोचि ॥ १ ॥
अयमु ष्य सुमहाँ अवेदि होता मन्द्रो मनुषो यह्वो अग्निः ।
वि भा अकः ससृजानः पृथिव्यां कृष्णपविरोषधीभिर्ववक्षे ॥ २ ॥
कया नो अग्ने वि वसः सुवृक्तिं कामु स्वधामृणवः शस्यमानः ।
कदा भवेम पतयः सुदत्र रायो वन्तारो दुष्टरस्य साधोः ॥ ३ ॥
प्रप्रायमग्निर्भरतस्य शृण्वे वि यत्सूर्यो न रोचते बृहद्भाः ।
अभि यः पूरुं पृतनासु तस्थौ द्युतानो दैव्यो अतिथिः शुशोच ॥ ४ ॥
असन्नित्त्वे आहवनानि भूरि भुवो विश्वेभिः सुमना अनीकैः ।
स्तुतश्चिदग्ने शृण्विषे गृणानः स्वयं वर्धस्व तन्वं सुजात ॥ ५ ॥
इदं वचः शतसाः संसहस्रमुदग्नये जनिषीष्ट द्विबर्हाः ।
शं यत्स्तोतृभ्य आपये भवाति द्युमदमीवचातनं रक्षोहा ॥ ६ ॥
नू त्वामग्न ईमहे वसिष्ठा ईशानं सूनो सहसो वसूनाम् ।
इषं स्तोतृभ्यो मघवद्भ्य आनड्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

[९] नवमं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप्; २, ३ भुरिक्पङ्क्तिः; ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप्; ६ स्वराट्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१, ४, ५ धैवतः; २, ३, ६ पञ्चमः ॥

अथ द्वादशो वर्गः ॥ १२ ॥

अबोधि जार उषसामुपस्थाद्धोता मन्द्रः कवितमः पावकः ।
दधाति केतुमुभयस्य जन्तोर्हव्या देवेषु द्रविणं सुकृत्सु ॥ १ ॥
स सुक्रतुर्यो वि दुरः पणीनां पुनानो अर्कं पुरुभोजसं नः ।
होता मन्द्रो विशां दमूनास्तिरस्तमो ददृशे राम्याणाम् ॥ २ ॥
अमूरः कविरदितिर्विवस्वान्सुसंसन्मित्रो अतिथिः शिवो नः ।
चित्रभानुरुषसां भात्यग्रेऽपां गर्भः प्रस्व१ आ विवेश ॥ ३ ॥

ईळेन्यो वो मनुषो युगेषु समनगा अशुचज्जातवेदाः।
सुसंदृशा भानुना यो विभाति प्रति गावः समिधानं बुधन्त ॥ ४ ॥
अग्ने याहि दूत्यं१ मा रिषण्यो देवाँ अच्छा ब्रह्मकृता गणेन।
सरस्वतीं मरुतो अश्विनापो यक्षि देवान्रत्नधेयाय विश्वान् ॥ ५ ॥
त्वामग्ने समिधानो वसिष्ठो जरूथं हन्यक्षि राये पुरन्धिम्।
पुरुणीथा जातवेदो जरस्व यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥

[१०] दशमं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१-३ निचृत्त्रिष्टुप्; ४, ५ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

अथ त्रयोदशो वर्गः ॥ १३ ॥

उषो न जारः पृथु पाजो अश्रेद्दविद्युतद्दीद्यच्छोशुचानः।
वृषा हरिः शुचिरा भाति भासा धियो हिन्वान उशतीरजीगः ॥ १ ॥
स्व१र्ण वस्तोरुषसामरोचि यज्ञं तन्वाना उशिजो न मन्म।
अग्निर्जन्मानि देव आ वि विद्वान्द्रवद् दूतो देवयावा वनिष्ठः ॥ २ ॥
अच्छा गिरो मतयो देवयन्तीरग्निं यन्ति द्रविणं भिक्षमाणाः।
सुसन्दृशं सुप्रतीकं स्वञ्चं हव्यवाहमरतिं मानुषाणाम् ॥ ३ ॥
इन्द्रं नो अग्ने वसुभिः सजोषा रुद्रं रुद्रेभिरा वहा बृहन्तम्।
आदित्येभिरदितिं विश्वजन्यां बृहस्पतिमृक्वभिर्विश्ववारम् ॥ ४ ॥
मन्द्रं होतारमुशिजो यविष्ठमग्निं विश ईळते अध्वरेषु।
स हि क्षपावाँ अभवद्रयीणामतन्द्रो दूतो यजथाय देवान् ॥ ५ ॥

[११] एकादशं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१ स्वराट्पङ्क्तिः; २, ४ भुरिक्पङ्क्तिः;
३ विराट्त्रिष्टुप्; ५ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१, २, ४ पञ्चमः;
३, ५ धैवतः ॥

अथ चतुर्दशो वर्गः ॥ १४ ॥

महाँ अस्यध्वरस्य प्रकेतो न ऋते त्वदमृता मादयन्ते।
आ विश्वेभिः सरथं याहि देवैर्न्यग्ने होता प्रथमः सदेह ॥ १ ॥

त्वामीळते अजिरं दूत्याय हविष्मन्तः सदमिन्मानुषासः।
यस्य देवैरासदो बर्हिरग्नेऽहान्यस्मै सुदिना भवन्ति ॥ २ ॥
त्रिश्चिदक्तोः प्र चिकितुर्वसूनि त्वे अन्तर्दाशुषे मर्त्याय।
मनुष्वदग्न इह यक्षि देवान्भवा नो दूतो अभिशस्तिपावा ॥ ३ ॥
अग्निरीशे बृहतो अध्वरस्याग्निर्विश्वस्य हविषः कृतस्य।
क्रतुं ह्यस्य वसवो जुषन्ताथा देवा दधिरे हव्यवाहम् ॥ ४ ॥
आग्ने वह हविरद्याय देवानिन्द्रज्येष्ठास इह मादयन्ताम्।
इमं यज्ञं दिवि देवेषु धेहि यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

[१२] द्वादशं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१ विराट्त्रिष्टुप्; २ त्रिष्टुप्;
३ पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१, २ धैवतः; ३ पञ्चमः ॥

अथ पञ्चदशो वर्गः ॥ १५ ॥

अगन्म महा नमसा यविष्ठं यो दीदाय समिद्धः स्वे दुरोणे।
चित्रभानुं रोदसी अन्तरुर्वी स्वाहुतं विश्वतः प्रत्यञ्चम् ॥ १ ॥
स मह्ना विश्वा दुरितानि साह्वानग्निः ष्टवे दम आ जातवेदाः।
स नो रक्षिषद् दुरितादवद्यादस्मान्गृणत उत नो मघोनः ॥ २ ॥
त्वं वरुण उत मित्रो अग्ने त्वां वर्धन्ति मतिभिर्वसिष्ठाः।
त्वे वसु सुषणनानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥

[१३] त्रयोदशं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—वैश्वानरः ॥ छन्दः—१, २ स्वराट्पङ्क्तिः;
३ भुरिक्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—पञ्चमः ॥

अथ षोडशो वर्गः ॥ १६ ॥

प्राग्नये विश्वशुचे धियन्धेऽसुरघ्ने मन्म धीतिं भरध्वम्।
भरे हविर्न बर्हिषि प्रीणानो वैश्वानराय यतये मतीनाम् ॥ १ ॥
त्वमग्ने शोचिषा शोशुचान आ रोदसी अपृणा जायमानः।
त्वं देवाँ अभिशस्तेरमुञ्चो वैश्वानर जातवेदो महित्वा ॥ २ ॥

जातो यदग्ने भुवना व्यख्यः पशून्न गोपा इर्यः परिज्मा।
वैश्वानर ब्रह्मणे विन्द गातुं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥

[१४] चतुर्दशं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१ निचृद्बृहती; २ निचृत्त्रिष्टुप्;
३ विराट्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—१ मध्यमः; २, ३ धैवतः ॥

अथ सप्तदशो वर्गः ॥ १७ ॥

समिधा जातवेदसे देवाय देवहूतिभिः ।
हविर्भिः शुक्रशोचिषे नमस्विनो वयं दाशेमाग्नये ॥ १ ॥
वयं ते अग्ने समिधा विधेम वयं दाशेम सुष्टुती यजत्र।
वयं घृतेनाध्वरस्य होतर्वयं देव हविषा भद्रशोचे ॥ २ ॥
आ नो देवेभिरुप देवहूतिमग्ने याहि वषट्कृतिं जुषाणः।
तुभ्यं देवाय दाशतः स्याम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥

[१५] पञ्चदशं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१, ३, ७, १०, १२, १४ विराड्गायत्री;
२, ४-६, ९, १३ गायत्री; ८ निचृद्गायत्री; ११, १५ आर्च्युष्णिक् ॥
स्वरः—१-१०, १२-१४ षड्जः; ११, १५ ऋषभः ॥

अथाष्टादशो वर्गः ॥ १८ ॥

उपसद्याय मीळ्हुष आस्ये जुहुता हविः। यो नो नेदिष्ठमाप्यम् ॥ १ ॥
यः पञ्च चर्षणीरभि निषसाद दमेदमे। कविर्गृहपतिर्युवा ॥ २ ॥
स नो वेदो अमात्यमग्नी रक्षतु विश्वतः। उतास्मान्पात्वंहसः ॥ ३ ॥
नवं नु स्तोममग्नये दिवः श्येनाय जीजनम्। वस्वः कुविद्वनाति नः ॥ ४ ॥
स्पार्हा यस्य श्रियो दृशे रयिर्वीरवतो यथा। अग्रे यज्ञस्य शोचतः ॥ ५ ॥

अथैकोनविंशो वर्गः ॥ १९ ॥

सेमां वेतु वषट्कृतिमग्निर्जुषत नो गिरः। यजिष्ठो हव्यवाहनः ॥ ६ ॥
नि त्वा नक्ष्य विश्पते द्युमन्तं देव धीमहि। सुवीरमग्न आहुत ॥ ७ ॥
क्षप उस्रश्च दीदिहि स्वग्नयस्त्वया वयम्। सुवीरस्त्वमस्मयुः ॥ ८ ॥
उप त्वा सातये नरो विप्रासो यन्ति धीतिभिः। उपाक्षरा सहस्रिणी ॥ ९ ॥

अग्नी रक्षांसि सेधति शुक्रशोचिरमर्त्यः। शुचिः पावक ईड्यः ॥ १० ॥

अथ विंशो वर्गः ॥ २० ॥

स नो राधांस्या भरेशानः सहसो यहो। भगश्च दातु वार्यम् ॥ ११ ॥
त्वमग्ने वीरवद्यशो देवश्च सविता भगः। दितिश्च दाति वार्यम् ॥ १२ ॥
अग्ने रक्षा णो अंहसः प्रति ष्म देव रीषतः। तपिष्ठैरजरो दह ॥ १३ ॥
अधा मही न आयस्यनाधृष्टो नृपीतये। पूर्भवा शतभुजिः ॥ १४ ॥
त्वं नः पाह्यंहसो दोषावस्तरघायतः। दिवा नक्तमदाभ्य ॥ १५ ॥

[१६] षोडशं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१ स्वराडनुष्टुप्; २ भुरिग्बृहती; ३ निचृद्बृहती; ४, ९, १० बृहती; ५ निचृदनुष्टुप्; ६, ८, १२ निचृत्पङ्क्तिः; ७ अनुष्टुप्; ११ भुरिगनुष्टुप् ॥
स्वरः—१, ५, ७, ११ गान्धारः; २-४, ९, १० मध्यमः; ६, ८, १२ पञ्चमः ॥

अथैकविंशो वर्गः ॥ २१ ॥

एना वो अग्निं नमसोर्जो नपातमा हुवे ।
प्रियं चेतिष्ठमरतिं स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् ॥ १ ॥
स योजते अरुषा विश्वभोजसा स दुद्रवत्स्वाहुतः ।
सुब्रह्मा यज्ञः सुशमी वसूनां देवं राधो जनानाम् ॥ २ ॥
उदस्य शोचिरस्थादाजुह्वानस्य मीळ्हुषः ।
उद् धूमासो अरुषासो दिविस्पृशः समग्निमिन्धते नरः ॥ ३ ॥
तं त्वा दूतं कृण्महे यशस्तमं देवाँ आ वीतये वह ।
विश्वा सूनो सहसो मर्तभोजना रास्व तद्यत्त्वेमहे ॥ ४ ॥
त्वमग्ने गृहपतिस्त्वं होता नो अध्वरे ।
त्वं पोता विश्ववार प्रचेता यक्षि वेषि च वार्यम् ॥ ५ ॥
कृधि रत्नं यजमानाय सुक्रतो त्वं हि रत्नधा असि ।
आ न ऋते शिशीहि विश्वमृत्विजं सुशंसो यश्च दक्षते ॥ ६ ॥

अथ द्वाविंशो वर्गः ॥ २२ ॥

त्वे अग्ने स्वाहुत प्रियासः सन्तु सूरयः ।
यन्तारो ये मघवानो जनानामूर्वान्दयन्त गोनाम् ॥ ७ ॥

येषामिळा घृतहस्ता दुरोण आँ अपि प्राता निषीदति ।
ताँस्त्रायस्व सहस्य द्रुहो निदो यच्छा नः शर्म दीर्घश्रुत् ॥ ८ ॥
स मन्द्रया च जिह्वया वह्निरासा विदुष्टरः ।
अग्ने रयिं मघवद्भ्यो न आ वह हव्यदातिं च सूदय ॥ ९ ॥
ये राधांसि ददत्यश्व्या मघा कामेन श्रवसो महः ।
ताँ अंहसः पिपृहि पर्तृभिष्ट्वं शतं पूर्भिर्यविष्ठ्य ॥ १० ॥
देवो वो द्रविणोदाः पूर्णां विवष्ट्यासिचम् ।
उद्वा सिञ्चध्वमुप वा पृणध्वमादिद्वो देव ओहते ॥ ११ ॥
तं होतारमध्वरस्य प्रचेतसं वह्निं देवा अकृण्वत ।
दधाति रत्नं विधते सुवीर्यमग्निर्जनाय दाशुषे ॥ १२ ॥

[१७] सप्तदशं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१, ३, ४, ६, ७ आर्च्युष्णिक्; २ साम्नीत्रिष्टुप्; ५ साम्नीपङ्क्तिः ॥ स्वरः—१, ३, ४, ६, ७ ऋषभः; २ धैवतः; ५ पञ्चमः ॥

अथ त्रयोविंशो वर्गः ॥ २३ ॥

अग्ने भव सुषमिधा समिद्ध उत बर्हिरुर्विया वि स्तृणीताम् ॥ १ ॥
उत द्वार उशतीर्वि श्रयन्तामुत देवाँ उशत आ वहेह ॥ २ ॥
अग्ने वीहि हविषा यक्षि देवान्त्स्वध्वरा कृणुहि जातवेदः ॥ ३ ॥
स्वध्वरा करति जातवेदा यक्षद्देवाँ अमृतान्पिप्रयच्च ॥ ४ ॥
वंस्व विश्वा वार्याणि प्रचेतः सत्या भवन्त्वाशिषो नो अद्य ॥ ५ ॥
त्वामु ते दधिरे हव्यवाहं देवासो अग्न ऊर्ज आ नपातम् ॥ ६ ॥
ते ते देवाय दाशतः स्याम महो नो रत्ना वि दध इयानः ॥ ७ ॥

द्वितीयोऽनुवाकः

[१८] अष्टादशं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—१-२१ इन्द्रः; २२-२५ सुदासः पैजवनस्य दानस्तुतिः ॥ छन्दः—१, १७, २१ पङ्क्तिः; २, ४, १२, २२ भुरिक्पङ्क्तिः; ३, ७ विराट्त्रिष्टुप्; ५, ९, ११, १६, १९, २० निचृत्त्रिष्टुप्; ६, १०, १५, १८, २३-२५ त्रिष्टुप्; ८, १३, १४ स्वराट्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१, २, ४, ८, १२-१४, १७, २१, २२ पञ्चमः; ३, ५-७, ९-११, १५, १६, १८-२०, २३-२५ धैवतः ॥

अथ चतुर्विंशो वर्गः ॥ २४ ॥

त्वे ह यत्पितरश्चिन्न इन्द्र विश्वा वामा जरितारो असन्वन् ।
त्वे गावः सुदुघास्त्वे ह्यश्वास्त्वं वसु देवयते वनिष्ठः ॥ १ ॥
राजेव हि जनिभिः क्षेष्येवाव द्युभिरभि विदुष्कविः सन् ।
पिशा गिरो मघवन्गोभिरश्वैस्त्वायतः शिशीहि राये अस्मान् ॥ २ ॥
इमा उ त्वा पस्पृधानासो अत्र मन्द्रा गिरो देवयन्तीरुप स्थुः ।
अर्वाची ते पथ्या राय एतु स्याम ते सुमताविन्द्र शर्मन् ॥ ३ ॥
धेनुं न त्वा सूयवसे दुदुक्षन्नुप ब्रह्माणि ससृजे वसिष्ठः ।
त्वामिन्मे गोपतिं विश्व आहा न इन्द्रः सुमतिं गन्त्वच्छ ॥ ४ ॥
अर्णांसि चित्पप्रथाना सुदास इन्द्रो गाधान्यकृणोत्सुपारा ।
शर्धन्तं शिम्युमुचथस्य नव्यः शापं सिन्धूनामकृणोदशस्तीः ॥ ५ ॥

अथ पञ्चविंशो वर्गः ॥ २५ ॥

पुरोळा इत्तुर्वशो यक्षुरासीद्राये मत्स्यासो निशिता अपीव ।
श्रुष्टिं चक्रुर्भृगवो द्रुह्यवश्च सखा सखायमतरद्विषूचोः ॥ ६ ॥
आ पक्थासो भलानसो भनन्तालिनासो विषाणिनः शिवासः ।
आ योऽनयत्सधमा आर्यस्य गव्या तृत्सुभ्यो अजगन्युधा नॄन् ॥ ७ ॥
दुराध्यो३ अदितिं स्रेवयन्तोऽचेतसो वि जगृभ्रे परुष्णीम् ।
मह्नाविव्यक्पृथिवीं पत्यमानः पशुष्कविरशयच्चायमानः ॥ ८ ॥
ईयुरर्थं न न्यर्थं परुष्णीमाशुश्चनेदभिपित्वं जगाम ।
सुदास इन्द्रः सुतुकाँ अमित्रानरन्धयन्मानुषे वध्रिवाचः ॥ ९ ॥
ईयुर्गावो न यवसादगोपा यथाकृतमभि मित्रं चितासः ।
पृश्निगावः पृश्निनिप्रेषितासः श्रुष्टिं चक्रुर्नियुतो रन्तयश्च ॥ १० ॥

अथ षड्विंशो वर्गः ॥ २६ ॥

एकं च यो विंशतिं च श्रवस्या वैकर्णयोर्जनान्राजा न्यस्तः ।
दस्मो न सद्मन्नि शिशाति बर्हिः शूरः सर्गमकृणोदिन्द्र एषाम् ॥ ११ ॥

अध श्रुतं कवषं वृद्धमप्स्वनु द्रुह्युं नि वृणग्वज्रबाहुः।
वृणाना अत्र सख्याय सख्यं त्वायन्तो ये अमदन्ननु त्वा ॥ १२ ॥
वि सद्यो विश्वा दृंहितान्येषामिन्द्रः पुरः सहसा सप्त दर्दः।
व्यानवस्य तृत्सवे गयं भाग्जेष्म पूरुं विदथे मृध्रवाचम् ॥ १३ ॥
नि गव्यवोऽनवो द्रुह्यवश्च षष्टिः शता सुषुपुः षट् सहस्रा।
षष्टिर्वीरासो अधि षड् दुवोयु विश्वेदिन्द्रस्य वीर्या कृतानि ॥ १४ ॥
इन्द्रेणैते तृत्सवो वेविषाणा आपो न सृष्टा अधवन्त नीचीः।
दुर्मित्रासः प्रकलविन्मिमाना जहुर्विश्वानि भोजना सुदासे ॥ १५ ॥

अथ सप्तविंशो वर्गः ॥ २७ ॥

अर्धं वीरस्य शृतपामनिन्द्रं परा शर्धन्तं नुनुदे अभि क्षाम्।
इन्द्रो मन्युं मन्युम्यो मिमाय भेजे पथो वर्तनिं पत्यमानः ॥ १६ ॥
आध्रेण चित्तद्वेकं चकार सिंह्यं चित्पेत्वेना जघान ।
अव स्रक्तीर्वेश्यावृश्चदिन्द्रः प्रायच्छद्विश्वा भोजना सुदासे ॥ १७ ॥
शश्वन्तो हि शत्रवो रारधुष्टे भेदस्य चिच्छर्धतो विन्द रन्धिम्।
मर्ताँ एनः स्तुवतो यः कृणोति तिग्मं तस्मिन्नि जहि वज्रमिन्द्र ॥ १८ ॥
आवदिन्द्रं यमुना तृत्सवश्च प्रात्र भेदं सर्वताता मुषायत्।
अजासश्च शिग्रवो यक्षवश्च बलिं शीर्षाणि जभ्रुरश्व्यानि ॥ १९ ॥
न त इन्द्र सुमतयो न रायः संचक्षे पूर्वा उषसो न नूत्नाः।
देवकं चिन्मान्यमानं जघन्थाव त्मना बृहतः शम्बरं भेत् ॥ २० ॥

अथाष्टाविंशो वर्गः ॥ २८ ॥

प्र ये गृहादममदुस्त्वाया पराशरः शतयातुर्वसिष्ठः ।
न ते भोजस्य सख्यं मृषन्ताधा सूरिभ्यः सुदिना व्युच्छान् ॥ २१ ॥
द्वे नप्तुर्देववतः शते गोर्द्वा रथा वधूमन्ता सुदासः ।
अर्हन्नग्ने पैजवनस्य दानं होतेव सद्म पर्येमि रेभन् ॥ २२ ॥

चत्वारो मा पैजवनस्य दानाः स्मद्दिष्टयः कृशनिनो निरेके।
ऋज्रासो मा पृथिविष्ठाः सुदासस्तोकं तोकाय श्रवसे वहन्ति ॥ २३ ॥
यस्य श्रवो रोदसी अन्तरुर्वी शीर्ष्णेशीर्ष्णे विबभाजा विभक्ता।
सप्तेदिन्द्रं न स्रवतो गृणन्ति नि युध्यामधिमशिशादभीके ॥ २४ ॥
इमं नरो मरुतः सश्चतानु दिवोदासं न पितरं सुदासः।
अविष्टना पैजवनस्य केतं दूणाशं क्षत्रमजरं दुवोयु ॥ २५ ॥

[१९] एकोनविंशं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१, ५ त्रिष्टुप्; २ निचृत्पङ्क्तिः; ३, ६ निचृत्त्रिष्टुप्; ४ पङ्क्तिः; ७, ९, १० विराट्त्रिष्टुप्; ८, ११ भुरिक्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१, ३, ५-७, ९, १० धैवतः; २, ४, ८, ११ पञ्चमः ॥

अथैकोनत्रिंशो वर्गः ॥ २९ ॥

यस्तिग्मशृङ्गो वृषभो न भीम एकः कृष्टीश्च्यावयति प्र विश्वाः।
यः शश्वतो अदाशुषो गयस्य प्रयन्तासि सुष्वितराय वेदः ॥ १ ॥
त्वं ह त्यदिन्द्र कुत्समावः शुश्रूषमाणस्तन्वा समर्ये।
दासं यच्छुष्णं कुयवं न्यस्मा अरन्धय आर्जुनेयाय शिक्षन् ॥ २ ॥
त्वं धृष्णो धृषता वीतहव्यं प्रावो विश्वाभिरूतिभिः सुदासम्।
प्र पौरुकुत्सिं त्रसदस्युमावः क्षेत्रसाता वृत्रहत्येषु पूरुम् ॥ ३ ॥
त्वं नृभिर्नृमणो देववीतौ भूरीणि वृत्रा हर्यश्व हंसि।
त्वं नि दस्युं चुमुरिं धुनिं चास्वापयो दभीतये सुहन्तु ॥ ४ ॥
तव च्यौत्नानि वज्रहस्त तानि नव यत्पुरो नवतिं च सद्यः।
निवेशने शततमाविवेषीरहञ्च वृत्रं नमुचिमुताहन् ॥ ५ ॥

अथ त्रिंशो वर्गः ॥ ३० ॥

सना ता त इन्द्र भोजनानि रातहव्याय दाशुषे सुदासे।
वृष्णे ते हरी वृषणा युनज्मि व्यन्तु ब्रह्माणि पुरुशाक वाजम् ॥ ६ ॥
मा ते अस्यां सहसावन्परिष्टावघाय भूम हरिवः परादै।
त्रायस्व नोऽवृकेभिर्वरूथैस्तव प्रियासः सूरिषु स्याम ॥ ७ ॥

प्रियास इत्ते मघवन्नभिष्टौ नरो मदेम शरणे सखायः।
नि तुर्वशं नि याद्वं शिशीह्यतिथिग्वाय शंस्यं करिष्यन्॥ ८ ॥
सद्यश्चिन्नु ते मघवन्नभिष्टौ नरः शंसन्त्युक्थशास उक्था।
ये ते हवेभिर्वि पणीँरदाशन्नस्मान्वृणीष्व युज्याय तस्मै॥ ९ ॥
एते स्तोमा नरां नृतम तुभ्यमस्मद्र्यञ्चो ददतो मघानि।
तेषामिन्द्र वृत्रहत्ये शिवो भूः सखा च शूरोऽविता च नृणाम्॥ १० ॥
नू इन्द्र शूर स्तवमान ऊती ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधस्व।
उप नो वाजान्मिमीह्युप स्तीन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥ ११ ॥

इति पञ्चमाष्टके द्वितीयोऽध्यायः॥

अथ पञ्चमाष्टके तृतीयोऽध्यायः

[२०] विंशं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१ स्वराट्पङ्क्तिः; २, ४, १० निचृत्त्रिष्टुप्; ३, ५ विराट्त्रिष्टुप्; ६, ८, ९ त्रिष्टुप्; ७ भुरिक्पङ्क्तिः॥ स्वरः—१, ७ पञ्चमः; २-६, ८-१० धैवतः॥

अथ प्रथमो वर्गः॥ १ ॥

उग्रो जज्ञे वीर्याय स्वधावाञ्चक्रिरपो नर्यो यत्करिष्यन्।
जग्मिर्युवा नृषदनमवोभिस्त्राता न इन्द्र एनसो महश्चित्॥ १ ॥
हन्ता वृत्रमिन्द्रः शूशुवानः प्रावीन्नु वीरो जरितारमूती।
कर्ता सुदासे अह वा उ लोकं दाता वसु मुहुरा दाशुषे भूत्॥ २ ॥
युध्मो अनर्वा खजकृत्समद्वा शूरः सत्राषाड् जनुषेमषाळ्हः।
व्यास इन्द्रः पृतनाः स्वोजा अधा विश्वं शत्रूयन्तं जघान॥ ३ ॥
उभे चिदिन्द्र रोदसी महित्वा पप्राथ तविषीभिस्तुविष्मः।
नि वज्रमिन्द्रो हरिवान्मिमिक्षन्त्समन्धसा मदेषु वा उवोच॥ ४ ॥
वृषा जजान वृषणं रणाय तमु चिन्नारी नर्यं ससूव।
प्र यः सेनानीरध नृभ्यो अस्तीनः सत्वा गवेषणः स धृष्णुः॥ ५ ॥

अथ द्वितीयो वर्गः॥ २ ॥

नू चित्स भ्रेषते जनो न रेषन्मनो यो अस्य घोरमाविवासात्।
यज्ञैर्य इन्द्रे दधते दुवांसि क्षयत्स राय ऋतपा ऋतेजाः॥ ६ ॥
यदिन्द्र पूर्वो अपराय शिक्षन्नयज्ज्यायान्कनीयसो देष्णम्।
अमृत इत्पर्यासीत दूरमा चित्र चित्र्यं भरा रयिं नः॥ ७ ॥
यस्त इन्द्र प्रियो जनो ददाशदसन्निरेके अद्रिवः सखा ते।
वयं ते अस्यां सुमतौ चनिष्ठाः स्याम वरूथे अघ्नतो नृपीतौ॥ ८ ॥
एष स्तोमो अचिक्रदद् वृषा त उत स्तामुर्मघवन्नक्रपिष्ट।
रायस्कामो जरितारं त आगन्त्वमङ्ग शक्र वस्व आ शको नः॥ ९ ॥
स न इन्द्र त्वयताया इषे धास्त्मना च ये मघवानो जुनन्ति।
वस्वी षु ते जरित्रे अस्तु शक्तिर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥ १० ॥

[२१] एकविंशं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१, ६, ८, ९ विराट्त्रिष्टुप्; २, १० निचृत्त्रिष्टुप्; ३, ७ भुरिक्पङ्क्तिः; ४, ५ स्वराट्पङ्क्तिः॥ स्वरः—१, २, ६, ८-१० धैवतः; ३-५, ७ पञ्चमः॥

अथ तृतीयो वर्गः॥ ३ ॥

असावि देवं गोऋजीकमन्धो न्यस्मिन्निन्द्रो जनुषेमुवोच।
बोधामसि त्वा हर्यश्व यज्ञैर्बोधा नः स्तोममन्धसो मदेषु॥ १ ॥
प्र यन्ति यज्ञं विपयन्ति बर्हिः सोममादो विदथे दुध्रवाचः।
न्यु भ्रियन्ते यशसो गृभादा दूरउपब्दो वृषणो नृषाचः॥ २ ॥
त्वमिन्द्र स्रवितवा अपस्कः परिष्ठिता अहिना शूर पूर्वीः।
त्वद्वावक्रे रथ्यो३ न धेना रेजन्ते विश्वा कृत्रिमाणि भीषा॥ ३ ॥
भीमो विवेषायुधेभिरेषामपांसि विश्वा नर्याणि विद्वान्।
इन्द्रः पुरो जर्हृषाणो वि दूधोद्वि वज्रहस्तो महिना जघान॥ ४ ॥
न यातव इन्द्र जूजुवुर्नो न वन्दना शविष्ठ वेद्याभिः।
स शर्धदर्यो विषुणस्य जन्तोर्मा शिश्नदेवा अपि गुर्ऋतं नः॥ ५ ॥

अथ चतुर्थो वर्गः ॥ ४ ॥

अभि क्रत्वेन्द्र भूरध ज्मन्न ते विव्यङ्महिमानं रजांसि ।
स्वेना हि वृत्रं शवसा जघन्थ न शत्रुरन्तं विविदद्युधा ते ॥ ६ ॥
देवाश्चित्ते असुर्याय पूर्वेऽनु क्षत्राय ममिरे सहांसि ।
इन्द्रो मघानि दयते विषह्येन्द्रं वाजस्य जोहुवन्त सातौ ॥ ७ ॥
कीरिश्चिद्धि त्वामवसे जुहावेशानमिन्द्र सौभगस्य भूरेः ।
अवो बभूथ शतमूते अस्मे अभिक्षत्तुस्त्वावतो वरूता ॥ ८ ॥
सखायस्त इन्द्र विश्वह स्याम नमोवृधासो महिना तरुत्र ।
वन्वन्तु स्मा तेऽवसा समीके३ऽभीतिमर्यो वनुषां शवांसि ॥ ९ ॥
स न इन्द्र त्वयताया इषे धास्त्मना च ये मघवानो जुनन्ति ।
वस्वी षु ते जरित्रे अस्तु शक्तिर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ १० ॥

[२२] द्वाविंशं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१ भुरिगुष्णिक्; २, ७ निचृदनुष्टुप्; ३ भुरिगनुष्टुप्; ४ आर्चीपङ्क्तिः; ५ अनुष्टुप्; ६, ८ विराडनुष्टुप्; ९ विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१ ऋषभः; २, ३, ५-८ गान्धारः; ४ पञ्चमः; ९ धैवतः ॥

अथ पञ्चमो वर्गः ॥ ५ ॥

पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा यं ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः ।
सोतुर्बाहुभ्यां सुयतो नार्वा ॥ १ ॥
यस्ते मदो युज्यश्चारुरस्ति येन वृत्राणि हर्यश्व हंसि ।
स त्वामिन्द्र प्रभूवसो ममत्तु ॥ २ ॥
बोधा सु मे मघवन्वाचमेमां यां ते वसिष्ठो अर्चति प्रशस्तिम् ।
इमा ब्रह्म सधमादे जुषस्व ॥ ३ ॥
श्रुधी हवं विपिपानस्याद्रेर्बोधा विप्रस्यार्चतो मनीषाम् ।
कृष्वा दुवांस्यन्तमा सचेमा ॥ ४ ॥
न ते गिरो अपि मृष्ये तुरस्य न सुष्टुतिमसुर्यस्य विद्वान् ।
सदा ते नाम स्वयशो विवक्मि ॥ ५ ॥

अथ षष्ठो वर्गः ॥ ६ ॥

भूरि हि ते सवना मानुषेषु भूरि मनीषी हवते त्वामित् ।
मारे अस्मन्मघवञ्ज्योक्कः ॥ ६ ॥
तुभ्येदिमा सवना शूर विश्वा तुभ्यं ब्रह्माणि वर्धना कृणोमि ।
त्वं नृभिर्हव्यो विश्वधासि ॥ ७ ॥
नू चिन्नु ते मन्यमानस्य दस्मोदश्नुवन्ति महिमानमुग्र ।
न वीर्यमिन्द्र ते न राधः ॥ ८ ॥
ये च पूर्व ऋषयो ये च नूत्ना इन्द्र ब्रह्माणि जनयन्त विप्राः ।
अस्मे ते सन्तु सख्या शिवानि यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ९ ॥

[२३] त्रयोविंशं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१, ६ भुरिक्पङ्क्तिः; २, ३ विराट्त्रिष्टुप्; ४ स्वराट्पङ्क्तिः; ५ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१, ४, ६ पञ्चमः; २, ३, ५ धैवतः ॥

अथ सप्तमो वर्गः ॥ ७ ॥

उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्येन्द्रं समर्ये महया वसिष्ठ ।
आ यो विश्वानि शवसा ततानोपश्रोता म ईवतो वचांसि ॥ १ ॥
अयामि घोष इन्द्र देवजामिरिरज्यन्त यच्छुरुधो विवाचि ।
नहि स्वमायुश्चिकिते जनेषु तानीदंहांस्यति पर्ष्यस्मान् ॥ २ ॥
युजे रथं गवेषणं हरिभ्यामुप ब्रह्माणि जुजुषाणमस्थुः ।
वि बाधिष्ट स्य रोदसी महित्वेन्द्रो वृत्राण्यप्रती जघन्वान् ॥ ३ ॥
आपश्चित्पिप्युः स्तर्यो३ न गावो नक्षन्नृतं जरितारस्त इन्द्र ।
याहि वायुर्न नियुतो नो अच्छा त्वं हि धीभिर्दयसे वि वाजान् ॥ ४ ॥
ते त्वा मदा इन्द्र मादयन्तु शुष्मिणं तुविराधसं जरित्रे ।
एको देवत्रा दयसे हि मर्तानस्मिञ्छूर सवने मादयस्व ॥ ५ ॥
एवेदिन्द्रं वृषणं वज्रबाहुं वसिष्ठासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
स नः स्तुतो वीरवद्धातु गोमद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥

[२४] चतुर्विंशं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१, ३ निचृत्त्रिष्टुप्; २, ५ त्रिष्टुप्; ४ विराट्त्रिष्टुप्; ६ विराट्पङ्क्तिः॥ स्वरः—१-५ धैवतः; ६ पञ्चमः॥

अथाष्टमो वर्गः॥८॥

योनिष्ट इन्द्र सदने अकारि तमा नृभिः पुरुहूत प्र याहि।
असो यथा नोऽविता वृधे च ददो वसूनि ममदश्च सोमैः॥१॥
गृभीतं ते मन इन्द्र द्विबर्हाः सुतः सोमः परिषिक्ता मधूनि।
विसृष्टधेना भरते सुवृक्तिरियमिन्द्रं जोहुवती मनीषा ॥२॥
आ नो दिव आ पृथिव्या ऋजीषिन्निदं बर्हिः सोमपेयाय याहि।
वहन्तु त्वा हरयो मद्र्यञ्चमाङ्गूषमच्छा तवसं मदाय॥३॥
आ नो विश्वाभिरूतिभिः सजोषा ब्रह्म जुषाणो हर्यश्व याहि।
वरीवृजत्स्थविरेभिः सुशिप्रास्मे दधद्वृषणं शुष्ममिन्द्र॥४॥
एष स्तोमो मह उग्राय वाहे धुरी३वात्यो न वाजयन्नधायि।
इन्द्र त्वायमर्क ईट्टे वसूनां दिवीव द्यामधि नः श्रोमतं धाः॥५॥
एवा न इन्द्र वार्यस्य पूर्धि प्र ते महीं सुमतिं वेविदाम।
इषं पिन्व मघवद्भ्यः सुवीरां यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥६॥

[२५] पञ्चविंशं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१ निचृत्पङ्क्तिः; २ विराट्पङ्क्तिः; ३ विराट्त्रिष्टुप्; ४ पङ्क्तिः; ५ निचृत्त्रिष्टुप्; ६ स्वराट्पङ्क्तिः॥ स्वरः—१, २, ४, ६ पञ्चमः; ३, ५ धैवतः॥

अथ नवमो वर्गः॥९॥

आ ते मह इन्द्रोत्युग्र समन्यवो यत्समरन्त सेनाः।
पताति दिद्युन्नर्यस्य बाह्वोर्मा ते मनो विष्वद्र्यग्वि चारीत्॥१॥
नि दुर्ग इन्द्र श्नथिह्यमित्रानभि ये नो मर्तासो अमन्ति।
आरे तं शंसं कृणुहि निनित्सोरा नो भर संभरणं वसूनाम्॥२॥
शतं ते शिप्रिन्नूतयः सुदासे सहस्रं शंसा उत रातिरस्तु।
जहि वधर्वनुषो मर्त्यस्यास्मे द्युम्नमधि रत्नं च धेहि॥३॥

त्वावतो हीन्द्र क्रत्वे अस्मि त्वावतोऽवितुः शूर रातौ।
विश्वेदहानि तविषीव उग्रँ ओकः कृणुष्व हरिवो न मर्धीः॥४॥
कुत्सा एते हर्यश्वाय शूषमिन्द्रे सहो देवजूतमियानाः।
सत्रा कृधि सुहना शूर वृत्रा वयं तरुत्राः सनुयाम वाजम्॥५॥
एवा न इन्द्र वार्यस्य पूर्धि प्र ते महीं सुमतिं वेविदाम।
इषं पिन्व मघवद्भ्यः सुवीरां यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥६॥

[२६] षड्विंशं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१-४ त्रिष्टुप्; ५ निचृत्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

अथ दशमो वर्गः॥१०॥

न सोम इन्द्रमसुतो ममाद नाब्रह्माणो मघवानं सुतासः।
तस्मा उक्थं जनये यज्जुजोषन्नृवन्नवीयः शृणवद्यथा नः॥१॥
उक्थउक्थे सोम इन्द्रं ममाद नीथेनीथे मघवानं सुतासः।
यदीं सबाधः पितरं न पुत्राः समानदक्षा अवसे हवन्ते॥२॥
चकार ता कृणवन्नूनमन्या यानि ब्रुवन्ति वेधसः सुतेषु।
जनीरिव पतिरेकः समानो नि मामृजे पुर इन्द्रः सु सर्वाः॥३॥
एवा तमाहुरुत शृण्व इन्द्र एको विभक्ता तरणिर्मघानाम्।
मिथस्तुर ऊतयो यस्य पूर्वीरस्मे भद्राणि सश्चत प्रियाणि॥४॥
एवा वसिष्ठ इन्द्रमूतये नृन्कृष्टीनां वृषभं सुते गृणाति।
सहस्रिण उप नो माहि वाजान्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥५॥

[२७] सप्तविंशं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१, ५ विराट्त्रिष्टुप्; २ निचृत्त्रिष्टुप्; ३, ४ त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

अथैकादशो वर्गः॥११॥

इन्द्रं नरो नेमधिता हवन्ते यत्पार्या युनजते धियस्ताः।
शूरो नृषाता शवसश्चकान आ गोमति व्रजे भजा त्वं नः॥१॥
य इन्द्र शुष्मो मघवन्ते अस्ति शिक्षा सखिभ्यः पुरुहूत नृभ्यः।
त्वं हि दृळ्हा मघवन्विचेता अपा वृधि परिवृतं न राधः॥२॥

इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधि क्षमि विषुरूपं यदस्ति।
ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद्राध उपस्तुतश्चिदर्वाक्॥ ३॥
नू चिन्न इन्द्रो मघवा सहूती दानो वाजं नि यमते न ऊती।
अनूना यस्य दक्षिणा पीपाय वामं नृभ्यो अभिवीता सखिभ्यः॥ ४॥
नू इन्द्र राये वरिवस्कृधी न आ ते मनो ववृत्याम मघाय।
गोमदश्वावद्रथवद् व्यन्तो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥ ५॥

[२८] अष्टाविंशं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१, २, ५ निचृत्त्रिष्टुप्; ३ भुरिक्पङ्क्तिः; ४ स्वराट्पङ्क्तिः॥ स्वरः—१, २, ५ धैवतः; ३, ४ पञ्चमः॥

अथ द्वादशो वर्गः॥ १२॥

ब्रह्मा ण इन्द्रोप याहि विद्वानर्वाञ्चस्ते हरयः सन्तु युक्ताः।
विश्वे चिद्धि त्वा विहवन्त मर्ता अस्माकमिच्छृणुहि विश्वमिन्व॥ १॥
हवं त इन्द्र महिमा व्यानड् ब्रह्म यत्पासि शवसिन्नृषीणाम्।
आ यद्वज्रं दधिषे हस्त उग्र घोरः सन्क्रत्वा जनिष्ठा अषाळ्हः॥ २॥
तव प्रणीतीन्द्र जोहुवानान्त्सं यन्नॄन्न रोदसी निनेथ।
महे क्षत्राय शवसे हि जज्ञेऽतूतुजिं चित्तूतुजिरशिश्नत्॥ ३॥
एभिर्न इन्द्राहभिर्दशस्य दुर्मित्रासो हि क्षितयः पवन्ते।
प्रति यच्चष्टे अनृतमनेना अव द्विता वरुणो मायी नः सात्॥ ४॥
वोचेमेदिन्द्रं मघवानमेनं महो रायो राधसो यद्दन्नः।
यो अर्चतो ब्रह्मकृतिमविष्ठो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥ ५॥

[२९] एकोनत्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१ स्वराट्पङ्क्तिः; २ विराट्त्रिष्टुप्; ३ पङ्क्तिः; ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—१, ३ पञ्चमः; २, ४, ५ धैवतः॥

अथ त्रयोदशो वर्गः॥ १३॥

अयं सोम इन्द्र तुभ्यं सुन्व आ तु प्र याहि हरिवस्तदोकाः।
पिबा त्व१स्य सुषुतस्य चारोर्ददो मघानि मघवन्नियानः॥ १॥

ब्रह्मन्वीर ब्रह्मकृतिं जुषाणोऽर्वाचीनो हरिभिर्याहि तूयम्।
अस्मिन्नू षु सवने मादयस्वोप ब्रह्माणि शृणव इमा नः॥ २॥
का ते अस्त्यरंकृतिः सूक्तैः कदा नूनं ते मघवन्दाशेम।
विश्वा मतीरा ततने त्वायाधा म इन्द्र शृणवो हवेमा॥ ३॥
उतो घा ते पुरुष्या३ इदासन्येषां पूर्वेषामशृणोर्ऋषीणाम्।
अधाहं त्वा मघवञ्जोहवीमि त्वं न इन्द्रासि प्रमतिः पितेव॥ ४॥
वोचेमेदिन्द्रं मघवानमेनं महो रायो राधसो यद्दन्नः।
यो अर्चतो ब्रह्मकृतिमविष्ठो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥ ५॥

[३०] त्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१, विराट्त्रिष्टुप्; २ निचृत्त्रिष्टुप्; ३ निचृत्पङ्क्तिः; ४, ५ स्वराट्पङ्क्तिः॥ स्वरः—१, २ धैवतः; ३-५ पञ्चमः॥

अथ चतुर्दशो वर्गः॥ १४॥

आ नो देव शवसा याहि शुष्मिन्भवा वृध इन्द्र रायो अस्य।
महे नृम्णाय नृपते सुवज्र महि क्षत्राय पौंस्याय शूर॥ १॥
हवन्त उ त्वा हव्यं विवाचि तनूषु शूराः सूर्यस्य सातौ।
त्वं विश्वेषु सेन्यो जनेषु त्वं वृत्राणि रन्धया सुहन्तु॥ २॥
अहा यदिन्द्र सुदिना व्युच्छान्दधो यत्केतुमुपमं समत्सु।
न्य१ग्निः सीददसुरो न होता हुवानो अत्र सुभगाय देवान्॥ ३॥
वयं ते त इन्द्र ये च देव स्तवन्त शूर ददतो मघानि।
यच्छा सूरिभ्य उपमं वरूथं स्वाभुवो जरणामश्नवन्त॥ ४॥
वोचेमेदिन्द्रं मघवानमेनं महो रायो राधसो यद्दन्नः।
यो अर्चतो ब्रह्मकृतिमविष्ठो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥ ५॥

[३१] एकत्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१ विराड्गायत्री; २, ८ गायत्री; ३-५ आर्च्युष्णिक्; ६, ७, ९ निचृद्गायत्री; १०, ११ भुरिगनुष्टुप्; १२ अनुष्टुप्॥ स्वरः—१, २, ६-९ षड्जः; ३-५ ऋषभः; १०-१२ गान्धारः॥

अथ पञ्चदशो वर्गः ॥ १५ ॥

प्र व इन्द्राय मादनं हर्यश्वाय गायत। सखायः सोमपाव्ने ॥ १ ॥
शंसेदुक्थं सुदानव उत द्युक्षं यथा नरः। चकृमा सत्यराधसे ॥ २ ॥
त्वं न इन्द्र वाजयुस्त्वं गव्युः शतक्रतो। त्वं हिरण्ययुर्वसो ॥ ३ ॥
वयमिन्द्र त्वायवोऽभि प्र णोनुमो वृषन्। विद्धी त्वस्य नो वसो ॥ ४ ॥
मा नो निदे च वक्तवेऽर्यो रन्धीरराव्णे। त्वे अपि क्रतुर्मम ॥ ५ ॥
त्वं वर्मासि सप्रथः पुरोयोधश्च वृत्रहन्। त्वया प्रति ब्रुवे युजा ॥ ६ ॥

अथ षोडशो वर्गः ॥ १६ ॥

महाँ उतासि यस्य तेऽनु स्वधावरी सहः। मम्नाते इन्द्र रोदसी ॥ ७ ॥
तं त्वा मरुत्वती परि भुवद्वाणी सयावरी। नक्षमाणा सह द्युभिः ॥ ८ ॥
ऊर्ध्वासस्त्वान्विन्दवो भुवन्दस्ममुप द्यवि। सं ते नमन्त कृष्टयः ॥ ९ ॥
प्र वो महे महिवृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम्।
विशः पूर्वीः प्र चरा चर्षणिप्राः ॥ १० ॥
उरुव्यचसे महिने सुवृक्तिमिन्द्राय ब्रह्म जनयन्त विप्राः।
तस्य व्रतानि न मिनन्ति धीराः ॥ ११ ॥
इन्द्रं वाणीरनुत्तमन्युमेव सत्रा राजानं दधिरे सहध्यै।
हर्यश्वाय बर्हया समापीन् ॥ १२ ॥

[३२] द्वात्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—१-२५, २६[२], २७ वसिष्ठः; २६[१] वसिष्ठः शक्तिर्वा॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१, ४, २४ विराड्बृहती; २, ९ पङ्क्तिः ३ साम्नीपङ्क्तिः; ५, १३, १५, १९, २३ निचृत्पङ्क्तिः; ६, ८, १२, १६, १८, २६ निचृद्बृहती; ७ विराट्पङ्क्तिः; १०, १४ भुरिगनुष्टुप्; ११, २७ बृहती; १७, २५ भुरिग्बृहती; २०, २२ स्वराडनुष्टुप्; २१ स्वराड्बृहती॥ स्वरः—१, ४, ६, ८, ११, १२, १६-१८, २१, २४-२७ मध्यमः; २, ३, ५, ७, ९, १३, १५, १९, २३ पञ्चमः; १०, १४, २०, २२ गान्धारः॥

अथ सप्तदशो वर्गः ॥ १७ ॥

मो षु त्वा वाघतश्चनारे अस्मन्नि रीरमन्।
आरात्ताच्चित्सधमादं न आ गहीह वा सन्नुप श्रुधि ॥ १ ॥

इमे हि ते ब्रह्मकृतः सुते सचा मधौ न मक्ष आसते।
इन्द्रे कामं जरितारो वसूयवो रथे न पादमा दधुः ॥ २ ॥
रायस्कामो वज्रहस्तं सुदक्षिणं पुत्रो न पितरं हुवे ॥ ३ ॥
इम इन्द्राय सुन्विरे सोमासो दध्याशिरः।
ताँ आ मदाय वज्रहस्त पीतये हरिभ्यां याह्योक आ ॥ ४ ॥
श्रवच्छुत्कर्ण ईयते वसूनां नू चिन्नो मर्धिषद्गिरः।
सद्यश्चिद्यः सहस्राणि शता ददन्नकिर्दित्सन्तमा मिनत् ॥ ५ ॥

अथाष्टादशो वर्गः ॥ १८ ॥

स वीरो अप्रतिष्कुत इन्द्रेण शूशुवे नृभिः।
यस्ते गभीरा सवनानि वृत्रहन्त्सुनोत्या च धावति ॥ ६ ॥
भवा वरूथं मघवन्मघोनां यत्समजासि शर्धतः।
वि त्वाहतस्य वेदनं भजेमह्या दूणाशो भरा गयम् ॥ ७ ॥
सुनोता सोमपाव्ने सोममिन्द्राय वज्रिणे।
पचता पक्तीरवसे कृणुध्वमित्पृणन्नित्पृणते मयः ॥ ८ ॥
मा स्रेधत सोमिनो दक्षता महे कृणुध्वं राय आतुजे।
तरणिरिज्जयति क्षेति पुष्यति न देवासः कवत्नवे ॥ ९ ॥
नकिः सुदासो रथं पर्यास न रीरमत्।
इन्द्रो यस्याविता यस्य मरुतो गमत्स गोमति व्रजे ॥ १० ॥

अथैकोनविंशो वर्गः ॥ १९ ॥

गमद्वाजं वाजयन्निन्द्र मर्त्यो यस्य त्वमविता भुवः।
अस्माकं बोध्यविता रथानामस्माकं शूर नृणाम् ॥ ११ ॥
उदिन्न्वस्य रिच्यतेंऽशो धनं न जिग्युषः।
य इन्द्रो हरिवान्न दभन्ति तं रिपो दक्षं दधाति सोमिनि ॥ १२ ॥
मन्त्रमखर्वं सुधितं सुपेशसं दधात यज्ञियेष्वा।
पूर्वीश्चन प्रसितयस्तरन्ति तं य इन्द्रे कर्मणा भुवत् ॥ १३ ॥

कस्तमिन्द्र त्वावसुमा मर्त्यो दधर्षति ।
श्रद्धा इत्ते मघवन्पार्ये दिवि वाजी वाजं सिषासति ॥ १४ ॥
मघोनः स्म वृत्रहत्येषु चोदय ये ददति प्रिया वसु ।
तव प्रणीती हर्यश्व सूरिभिर्विश्वा तरेम दुरिता ॥ १५ ॥

अथ विंशो वर्गः ॥ २० ॥

तवेदिन्द्रावमं वसु त्वं पुष्यसि मध्यमम् ।
सत्रा विश्वस्य परमस्य राजसि नकिष्ट्वा गोषु वृण्वते ॥ १६ ॥
त्वं विश्वस्य धनदा असि श्रुतो य ईं भवन्त्याजयः ।
तवायं विश्वः पुरुहूत पार्थिवोऽवस्युर्नाम भिक्षते ॥ १७ ॥
यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय ।
स्तोतारमिद्दिधिषेय रदावसो न पापत्वाय रासीय ॥ १८ ॥
शिक्षेयमिन्महयते दिवेदिवे राय आ कुहचिद्विदे ।
नहि त्वदन्यन्मघवन्न आप्यं वस्यो अस्ति पिता चन ॥ १९ ॥
तरणिरित्सिषासति वाजं पुरन्ध्या युजा ।
आ व इन्द्रं पुरुहूतं नमे गिरा नेमिं तष्टेव सुद्र्वम् ॥ २० ॥

अथैकविंशो वर्गः ॥ २१ ॥

न दुष्टुती मर्त्यो विन्दते वसु न स्रेधन्तं रयिर्नशत् ।
सुशक्तिरिन्मघवन्तुभ्यं मावते देष्णं यत्पार्ये दिवि ॥ २१ ॥
अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धाइव धेनवः ।
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥ २२ ॥
न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते ।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥ २३ ॥
अभी षतस्तदा भरेन्द्र ज्यायः कनीयसः ।
पुरूवसुर्हि मघवन्त्सनादसि भरेभरे च हव्यः ॥ २४ ॥
परा णुदस्व मघवन्नमित्रान्त्सुवेदा नो वसू कृधि ।
अस्माकं बोध्यविता महाधने भवा वृधः सखीनाम् ॥ २५ ॥

इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
शिक्षा णो अस्मिन्पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥ २६ ॥
मा नो अज्ञाता वृजना दुराध्यो३ माशिवासो अव क्रमुः ।
त्वया वयं प्रवतः शश्वतीरपोऽति शूर तरामसि ॥ २७ ॥

[३३] त्रयस्त्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—संस्तवो वसिष्ठस्य सपुत्रस्येन्द्रेण वा संवादः; १-९ वसिष्ठपुत्राः; १०-१४ वसिष्ठः ॥ देवता—त एव ॥ छन्दः—१, २, ६, १२, १३ त्रिष्टुप्; ३-५, ७, ९, १४ निचृत्त्रिष्टुप्; ८, ११ विराट्त्रिष्टुप्; १० भुरिक्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१-९, ११-१४ धैवतः; १० पञ्चमः ॥

अथ द्वाविंशो वर्गः ॥ २२ ॥

श्वित्यञ्चो मा दक्षिणतस्कपर्दा धियंजिन्वासो अभि हि प्रमन्दुः ।
उत्तिष्ठन्वोचे परि बर्हिषो नृन्न मे दूरादवितवे वसिष्ठाः ॥ १ ॥
दूरादिन्द्रमनयन्ना सुतेन तिरो वैशन्तमति पान्तमुग्रम् ।
पाशद्युम्नस्य वायतस्य सोमात्सुतादिन्द्रोऽवृणीता वसिष्ठान् ॥ २ ॥
एवेन्नु कं सिन्धुमेभिस्ततारेवेन्नु कं भेदमेभिर्जघान ।
एवेन्नु कं दाशराज्ञे सुदासं प्रावदिन्द्रो ब्रह्मणा वो वसिष्ठाः ॥ ३ ॥
जुष्टी नरो ब्रह्मणा वः पितॄणामक्षमव्ययं न किला रिषाथ ।
यच्छक्वरीषु बृहता रवेणेन्द्रे शुष्ममदधाता वसिष्ठाः ॥ ४ ॥
उद्द्यामिवेत्तृष्णजो नाथितासोऽदीधयुर्दाशराज्ञे वृतासः ।
वसिष्ठस्य स्तुवत इन्द्रो अश्रोदुरुं तृत्सुभ्यो अकृणोदु लोकम् ॥ ५ ॥

अथ त्रयोविंशो वर्गः ॥ २३ ॥

दण्डाइवेद्गोअजनास आसन्परिच्छिन्ना भरता अर्भकासः ।
अभवच्च पुरएता वसिष्ठ आदित्तृत्सूनां विशो अप्रथन्त ॥ ६ ॥
त्रयः कृण्वन्ति भुवनेषु रेतस्तिस्रः प्रजा आर्या ज्योतिरग्राः ।
त्रयो घर्मास उषसं सचन्ते सर्वाँ इत्ताँ अनु विदुर्वसिष्ठाः ॥ ७ ॥
सूर्यस्येव वक्षथो ज्योतिरेषां समुद्रस्येव महिमा गभीरः ।
वातस्येव प्रजवो नान्येन स्तोमो वसिष्ठा अन्वेतवे वः ॥ ८ ॥

त इन्निण्यं हृदयस्य प्रकेतैः सहस्रवल्शमभि सं चरन्ति ।
यमेन ततं परिधिं वयन्तोऽप्सरस उप सेदुर्वसिष्ठाः ॥ ९ ॥
विद्युतो ज्योतिः परि संजिहानं मित्रावरुणा यदपश्यतां त्वा ।
तत्ते जन्मोतैकं वसिष्ठागस्त्यो यत्त्वा विश आजभार ॥ १० ॥

अथ चतुर्विंशो वर्गः ॥ २४ ॥

उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठोर्वश्या ब्रह्मन्मनसोऽधि जातः ।
द्रप्सं स्कन्नं ब्रह्मणा दैव्येन विश्वे देवाः पुष्करे त्वाददन्त ॥ ११ ॥
स प्रकेत उभयस्य प्रविद्वान्त्सहस्रदान उत वा सदानः ।
यमेन ततं परिधिं वयिष्यन्नप्सरसः परि जज्ञे वसिष्ठः ॥ १२ ॥
सत्रे ह जाताविषिता नमोभिः कुम्भे रेतः सिषिचतुः समानम् ।
ततो ह मान उदियाय मध्यात्ततो जातमृषिमाहुर्वसिष्ठम् ॥ १३ ॥
उक्थभृतं सामभृतं बिभर्ति ग्रावाणं बिभ्रत्प्र वदात्यग्रे ।
उपैनमाध्वं सुमनस्यमाना आ वो गच्छाति प्रतृदो वसिष्ठः ॥ १४ ॥

तृतीयोऽनुवाकः

[३४] चतुस्त्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—१-१५, १८-२५ विश्वे देवाः; १६ अहिः; १७ अहिर्बुध्न्यः ॥ छन्दः—१, २, ५, १२-१४, १६, १९, २० भुरिगार्चीगायत्री; ३, ४,१७ आर्चीगायत्री; ६-११, १५, १८, २१ पादनिचृद्गायत्री; २२, २४ निचृदार्षीत्रिष्टुप्; २३ आर्षी त्रिष्टुप्; २५ विराडार्षीत्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१-२१ षड्जः; २२-२५ धैवतः ॥

अथ पञ्चविंशो वर्गः ॥ २५ ॥

प्र शुक्रैतु देवी मनीषा अस्मत्सुतष्टो रथो न वाजी ॥ १ ॥
विदुः पृथिव्या दिवो जनित्रं शृण्वन्त्यापो अध क्षरन्तीः ॥ २ ॥
आपश्चिदस्मै पिन्वन्त पृथ्वीर्वृत्रेषु शूरा मंसन्त उग्राः ॥ ३ ॥
आ धूर्ष्वस्मै दधाताश्वानिन्द्रो न वज्री हिरण्यबाहुः ॥ ४ ॥
अभि प्र स्थाताहेव यज्ञं यातेव पत्मन्त्मना हिनोत ॥ ५ ॥
त्मना समत्सु हिनोत यज्ञं दधात केतुं जनाय वीरम् ॥ ६ ॥
उदस्य शुष्माद्भानुर्नार्त बिभर्ति भारं पृथिवी न भूम ॥ ७ ॥
ह्वयामि देवाँ अयातुरग्ने साधन्नृतेन धियं दधामि ॥ ८ ॥

अभि वो देवीं धियं दधिध्वं प्र वो देवत्रा वाचं कृणुध्वम् ॥ ९ ॥
आ चष्ट आसां पाथो नदीनां वरुण उग्रः सहस्रचक्षाः ॥ १० ॥

अथ षड्विंशो वर्गः ॥ २६ ॥

राजा राष्ट्रानां पेशो नदीनामनुत्तमस्मै क्षत्रं विश्वायु ॥ ११ ॥
अविष्टो अस्मान्विश्वासु विक्ष्वद्युं कृणोत शंसं निनित्सोः ॥ १२ ॥
व्येतु दिद्युद् द्विषामशेवा युयोत विष्वग्रपस्तनूनाम् ॥ १३ ॥
अवीन्नो अग्निर्हव्यान्नमोभिः प्रेष्ठो अस्मा अधायि स्तोमः ॥ १४ ॥
सजूर्देवेभिरपां नपातं सखायं कृध्वं शिवो नो अस्तु ॥ १५ ॥
अब्जामुक्थैरहिं गृणीषे बुध्ने नदीनां रजःसु षीदन् ॥ १६ ॥
मा नोऽहिर्बुध्न्यो रिषे धान्मा यज्ञो अस्य स्रिधदृतायोः ॥ १७ ॥
उत न एषु नृषु श्रवो धुः प्र राये यन्तु शर्धन्तो अर्यः ॥ १८ ॥
तपन्ति शत्रुं स्व१र्ण भूमा महासेनासो अमेभिरेषाम् ॥ १९ ॥
आ यन्नः पत्नीर्गमन्त्यच्छा त्वष्टा सुपाणिर्दधातु वीरान् ॥ २० ॥

अथ सप्तविंशो वर्गः ॥ २७ ॥

प्रति नः स्तोमं त्वष्टा जुषेत स्यादस्मे अरमतिर्वसूयुः ॥ २१ ॥
ता नो रासन्रातिषाचो वसून्या रोदसी वरुणानी शृणोतु ।
वरूत्रीभिः सुशरणो नो अस्तु त्वष्टा सुदत्रो वि दधातु रायः ॥ २२ ॥
तन्नो रायः पर्वतास्तन्न आपस्तद्रातिषाच ओषधीरुत द्यौः ।
वनस्पतिभिः पृथिवी सजोषा उभे रोदसी परि पासतो नः ॥ २३ ॥
अनु तदुर्वी रोदसी जिहातामनु द्युक्षो वरुण इन्द्रसखा ।
अनु विश्वे मरुतो ये सहासो रायः स्याम धरुणं धियध्यै ॥ २४ ॥
तन्न इन्द्रो वरुणो मित्रो अग्निराप ओषधीर्वनिनो जुषन्त ।
शर्मन्त्स्याम मरुतामुपस्थे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ २५ ॥

[३५] पञ्चत्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—विश्वे देवाः ॥ छन्दः—१-५, ११, १२ त्रिष्टुप्; ६, ८, १०, १५ निचृत्त्रिष्टुप्; ७, ९ विराट्त्रिष्टुप्; १३, १४ भुरिक्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१-१२, १५ धैवतः; १३, १४ पञ्चमः ॥

अथाष्टाविंशो वर्गः ॥ २८ ॥

शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या ।
शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ ॥ १ ॥
शं नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शं नः पुरन्धिः शमु सन्तु रायः ।
शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शं नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु ॥ २ ॥
शं नो धाता शमु धर्ता नो अस्तु शं न उरूची भवतु स्वधाभिः ।
शं रोदसी बृहती शं नो अद्रिः शं नो देवानां सुहवानि सन्तु ॥ ३ ॥
शं नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शं नो मित्रावरुणावश्विना शम् ।
शं नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शं न इषिरो अभि वातु वातः ॥ ४ ॥
शं नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु ।
शं न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः ॥ ५ ॥

अथैकोनत्रिंशो वर्गः ॥ २९ ॥

शं न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः ।
शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः शं नस्त्वष्टा ग्नाभिरिह शृणोतु ॥ ६ ॥
शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शं नो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः ।
शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु शं नः प्रस्व१ः शम्वस्तु वेदिः ॥ ७ ॥
शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नश्चतस्रः प्रदिशो भवन्तु ।
शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ॥ ८ ॥
शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः ।
शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः ॥ ९ ॥
शं नो देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवन्तूषसो विभातीः ।
शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शंभुः ॥ १० ॥

अथ त्रिंशो वर्गः ॥ ३० ॥

शं नो देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु ।
शमभिषाचः शमु रातिषाचः शं नो दिव्याः पार्थिवाः शं नो अप्याः ॥ ११ ॥

शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु शं नो अर्वन्तः शमु सन्तु गावः ।
शं न ऋभवः सुकृतः सुहस्ताः शं नो भवन्तु पितरो हवेषु ॥ १२ ॥
शं नो अज एकपाद्देवो अस्तु शं नोऽहिर्बुध्न्य१ः शं समुद्रः ।
शं नो अपां नपात्पेरुरस्तु शं नः पृश्निर्भवतु देवगोपा ॥ १३ ॥
आदित्या रुद्रा वसवो जुषन्तेदं ब्रह्म क्रियमाणं नवीयः ।
शृण्वन्तु नो दिव्याः पार्थिवासो गोजाता उत ये यज्ञियासः ॥ १४ ॥
ये देवानां यज्ञिया यज्ञियानां मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ १५ ॥

इति पञ्चमाष्टके तृतीयोऽध्यायः ॥

अथ पञ्चमाष्टके चतुर्थोऽध्यायः

[३६] षट्त्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—विश्वे देवाः ॥ छन्दः—१, ७ भुरिक्पङ्क्तिः; २ त्रिष्टुप्; ३, ४, ६ निचृत्त्रिष्टुप्; ५ पङ्क्तिः; ८, ९ विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१, ५, ७ पञ्चमः; २-४, ६, ८, ९ धैवतः ॥

अथ प्रथमो वर्गः ॥ १ ॥

प्र ब्रह्मैतु सदनादृतस्य वि रश्मिभिः ससृजे सूर्यो गाः ।
वि सानुना पृथिवी सस्र उर्वी पृथु प्रतीकमध्येधे अग्निः ॥ १ ॥
इमां वां मित्रावरुणा सुवृक्तिमिषं न कृण्वे असुरा नवीयः ।
इनो वामन्यः पदवीरदब्धो जनं च मित्रो यतति ब्रुवाणः ॥ २ ॥
आ वातस्य ध्रजतो रन्त इत्या अपीपयन्त धेनवो न सूदाः ।
महो दिवः सदने जायमानोऽचिक्रदद् वृषभः सस्मिन्नूधन् ॥ ३ ॥
गिरा य एता युनजद्धरी त इन्द्र प्रिया सुरथा शूर धायू ।
प्र यो मन्युं रिरिक्षतो मिनात्या सुक्रतुमर्यमणं ववृत्याम् ॥ ४ ॥
यजन्ते अस्य सख्यं वयश्च नमस्विनः स्व ऋतस्य धामन् ।
वि पृक्षो बाबधे नृभिः स्तवान इदं नमो रुद्राय प्रेष्ठम् ॥ ५ ॥

अथ द्वितीयो वर्गः ॥ २ ॥

आ यत्साकं यशसो वावशानाः सरस्वती सप्तथी सिन्धुमाता ।
याः सुष्वयन्त सुदुघाः सुधारा अभि स्वेन पयसा पीप्यानाः ॥ ६ ॥
उत त्ये नो मरुतो मन्दसाना धियं तोकं च वाजिनोऽवन्तु ।
मा नः परि ख्यदक्षरा चरन्त्यवीवृधन्युज्यं ते रयिं नः ॥ ७ ॥
प्र वो महीमरमतिं कृणुध्वं प्र पूषणं विदथ्यं१ न वीरम् ।
भगं धियोऽवितारं नो अस्याः सातौ वाजं रातिषाचं पुरंधिम् ॥ ८ ॥
अच्छायं वो मरुतः श्लोक एत्वच्छा विष्णुं निषिक्तपामवोभिः ।
उत प्रजायै गृणते वयो धुर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ९ ॥

[३७] सप्तत्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—विश्वे देवाः ॥ छन्दः—१, ३ त्रिष्टुप्; २, ७ निचृत्त्रिष्टुप्; ४ निचृत्पङ्क्तिः; ५, ८ विराट्त्रिष्टुप्; ६ स्वराट्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१-३, ५, ७, ८ धैवतः; ४, ६ पञ्चमः ॥

अथ तृतीयो वर्गः ॥ ३ ॥

आ वो वाहिष्ठो वहतु स्तवध्यै रथो वाजा ऋभुक्षणो अमृक्तः ।
अभि त्रिपृष्ठैः सवनेषु सोमैर्मदे सुशिप्रा महभिः पृणध्वम् ॥ १ ॥
यूयं ह रत्नं मघवत्सु धत्थ स्वर्दृश ऋभुक्षणो अमृक्तम् ।
सं यज्ञेषु स्वधावन्तः पिबध्वं वि नो राधांसि मतिभिर्दयध्वम् ॥ २ ॥
उवोचिथ हि मघवन्देष्णं महो अर्भस्य वसुनो विभागे ।
उभा ते पूर्णा वसुना गभस्ती न सूनृता नि यमते वसव्या ॥ ३ ॥
त्वमिन्द्र स्वयशा ऋभुक्षा वाजो न साधुरस्तमेष्यृक्वा ।
वयं नु ते दाश्वांसः स्याम ब्रह्म कृण्वन्तो हरिवो वसिष्ठाः ॥ ४ ॥
सनितासि प्रवतो दाशुषे चिद्याभिर्विवेषो हर्यश्व धीभिः ।
ववन्मा नु ते युज्याभिरूती कदा न इन्द्र राय आ दशस्येः ॥ ५ ॥

अथ चतुर्थो वर्गः ॥ ४ ॥

वासयसीव वेधसस्त्वं नः कदा न इन्द्र वचसो बुबोधः ।
अस्तं तात्या धिया रयिं सुवीरं पृक्षो नो अर्वा न्युहीत वाजी ॥ ६ ॥

अभि यं देवी निर्ऋतिश्चिदीशे नक्षन्त इन्द्रं शरदः सुपृक्षः ।
उप त्रिबन्धुर्जरदष्टिमेत्यस्ववेशं यं कृणवन्त मर्ताः ॥ ७ ॥
आ नो राधांसि सवितः स्तवध्या आ रायो यन्तु पर्वतस्य रातौ ।
सदा नो दिव्यः पायुः सिषक्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ८ ॥

[३८] अष्टात्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—१-६[१] सविता; ६[२] सविता भगो वा; ७, ८ वाजिनः ॥ छन्दः—१, ३, ८ निचृत्त्रिष्टुप्; २, ४, ६ स्वराट्पङ्क्तिः; ५ विराट्त्रिष्टुप्; ७ भुरिक्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१, ३, ५, ८ धैवतः; २, ४, ६, ७ पञ्चमः ॥

अथ पञ्चमो वर्गः ॥ ५ ॥

उदु ष्य देवः सविता ययाम हिरण्ययीममतिं यामशिश्रेत् ।
नूनं भगो हव्यो मानुषेभिर्वि यो रत्ना पुरूवसुर्दधाति ॥ १ ॥
उदु तिष्ठ सवितः श्रुध्य१स्य हिरण्यपाणे प्रभृतावृतस्य ।
व्यु१र्वीं पृथ्वीममतिं सृजान आ नृभ्यो मर्तभोजनं सुवानः ॥ २ ॥
अपि ष्टुतः सविता देवो अस्तु यमा चिद्विश्वे वसवो गृणन्ति ।
स नः स्तोमान्नमस्य१श्चनो धाद्विश्वेभिः पातु पायुभिर्नि सूरीन् ॥ ३ ॥
अभि यं देव्यदितिर्गृणाति सवं देवस्य सवितुर्जुषाणा ।
अभि सम्राजो वरुणो गृणन्त्यभि मित्रासो अर्यमा सजोषाः ॥ ४ ॥
अभि ये मिथो वनुषः सपन्ते रातिं दिवो रातिषाचः पृथिव्याः ।
अहिर्बुध्न्य उत नः शृणोतु वरूत्र्येकधेनुभिर्नि पातु ॥ ५ ॥
अनु तन्नो जास्पतिर्मंसीष्ट रत्नं देवस्य सवितुरियानः ।
भगमुग्रोऽवसे जोहवीति भगमनुग्रो अध याति रत्नम् ॥ ६ ॥
शं नो भवन्तु वाजिनो हवेषु देवताता मितद्रवः स्वर्काः ।
जम्भयन्तोऽहिं वृकं रक्षांसि सनेम्यस्मद्युयवन्नमीवाः ॥ ७ ॥
वाजेवाजेऽवत वाजिनो नो धनेषु विप्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं तृप्ता यात पथिभिर्देवयानैः ॥ ८ ॥

[३९] एकोनचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—विश्वे देवाः ॥ छन्दः—१, २, ५, ७ निचृत्त्रिष्टुप्; ३ स्वराट्त्रिष्टुप्; ४, ६ विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

अथ षष्ठो वर्गः ॥ ६ ॥

ऊर्ध्वो अग्निः सुमतिं वस्वो अश्रेत्प्रतीची जूर्णिर्देवतातिमेति ।
भेजाते अद्री रथ्येव पन्थामृतं होता न इषितो यजाति ॥ १ ॥
प्र वावृजे सुप्रया बर्हिरेषामा विश्पतीव बीरिट इयाते ।
विशामक्तोरुषसः पूर्वहूतौ वायुः पूषा स्वस्तये नियुत्वान् ॥ २ ॥
ज्मया अत्र वसवो रन्त देवा उरावन्तरिक्षे मर्जयन्त शुभ्राः ।
अर्वाक्पथ उरुज्रयः कृणुध्वं श्रोता दूतस्य जग्मुषो नो अस्य ॥ ३ ॥
ते हि यज्ञेषु यज्ञियास ऊमाः सधस्थं विश्वे अभि सन्ति देवाः ।
ताँ अध्वर उशतो यक्ष्यग्ने श्रुष्टी भगं नासत्या पुरन्धिम् ॥ ४ ॥
आग्ने गिरो दिव आ पृथिव्या मित्रं वह वरुणमिन्द्रमग्निम् ।
आर्यमणमदितिं विष्णुमेषां सरस्वती मरुतो मादयन्ताम् ॥ ५ ॥
ररे हव्यं मतिभिर्यज्ञियानां नक्षत्कामं मर्त्यानामसिन्वन् ।
धाता रयिमविदस्यं सदासां सक्षीमहि युज्येभिर्नु देवैः ॥ ६ ॥
नू रोदसी अभिष्टुते वसिष्ठैर्ऋतावानो वरुणो मित्रो अग्निः ।
यच्छन्तु चन्द्रा उपमं नो अर्कं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

[४०] चत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—विश्वे देवाः ॥ छन्दः—१ पङ्क्तिः; २, ४ विराट्त्रिष्टुप्; ३ भुरिक्पङ्क्तिः; ५, ७ निचृत्त्रिष्टुप्; ६ विराट्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१, ३, ६ पञ्चमः; २, ४, ५, ७ धैवतः ॥

अथ सप्तमो वर्गः ॥ ७ ॥

ओ श्रुष्टिर्विदथ्या३ समेतु प्रति स्तोमं दधीमहि तुराणाम् ।
यदद्य देवः सविता सुवाति स्यामास्य रत्निनो विभागे ॥ १ ॥
मित्रस्तन्नो वरुणो रोदसी च द्युभक्तमिन्द्रो अर्यमा ददातु ।
दिदेष्टु देव्यदिती रेक्णो वायुश्च यन्नियुवैते भगश्च ॥ २ ॥

सेदुग्रो अस्तु मरुतः स शुष्मी यं मर्त्यं पृषदश्वा अवाथ ।
उतेमग्निः सरस्वती जुनन्ति न तस्य रायः पर्येतास्ति ॥ ३ ॥
अयं हि नेता वरुण ऋतस्य मित्रो राजानो अर्यमापो धुः ।
सुहवा देव्यदितिरनर्वा ते नो अंहो अति पर्षन्नरिष्टान् ॥ ४ ॥
अस्य देवस्य मीळ्हुषो वया विष्णोरेषस्य प्रभृथे हविर्भिः ।
विदे हि रुद्रो रुद्रियं महित्वं यासिष्टं वर्तिरश्विनाविरावत् ॥ ५ ॥
मात्र पूषन्नाघृण इरस्यो वरूत्री यद्रातिषाचश्च रासन् ।
मयोभुवो नो अर्वन्तो नि पान्तु वृष्टिं परिज्मा वातो ददातु ॥ ६ ॥
नू रोदसी अभिष्टुते वसिष्ठैर्ऋतावानो वरुणो मित्रो अग्निः ।
यच्छन्तु चन्द्रा उपमं नो अर्कं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

[४१] एकचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—१ लिङ्गोक्ताः; २-६ भगः; ७ उषाः ॥ छन्दः—१ निचृज्जगती; २, ३, ५, ७ निचृत्त्रिष्टुप्; ४ पङ्क्तिः; ६ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१ निषादः; २, ३, ५-७ धैवतः; ४ पञ्चमः ॥

अथाष्टमो वर्गः ॥ ८ ॥

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना ।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रुद्रं हुवेम ॥ १ ॥
प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता ।
आध्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुरश्चिद्राजा चिद्यं भगं भक्षीत्याह ॥ २ ॥
भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः ।
भग प्र णो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम ॥ ३ ॥
उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम् ।
उतोदिता मघवन्त्सूर्यस्य वयं देवानां सुमतौ स्याम ॥ ४ ॥
भग एव भगवाँ अस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम ।
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुरएता भवेह ॥ ५ ॥

समध्वरायोषसो नमन्त दधिक्रावेव शुचये पदाय ।
अर्वाचीनं वसुविदं भगं नो रथमिवाश्वा वाजिन आ वहन्तु ॥ ६ ॥
अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासो वीरवतीः सदमुच्छन्तु भद्राः ।
घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

[४२] द्विचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—विश्वे देवाः ॥ छन्दः—१, ३ निचृत्त्रिष्टुप्; २ त्रिष्टुप्; ४, ५ विराट्त्रिष्टुप्; ६ निचृत्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१-५ धैवतः; ६ पञ्चमः ॥

अथ नवमो वर्गः ॥ ९ ॥

प्र ब्रह्माणो अङ्गिरसो नक्षन्त प्र क्रन्दनुर्नभन्यस्य वेतु ।
प्र धेनव उदप्रुतो नवन्त युज्यातामद्री अध्वरस्य पेशः ॥ १ ॥
सुगस्ते अग्ने सनवित्तो अध्वा युक्ष्वा सुते हरितो रोहितश्च ।
ये वा सद्मन्नरुषा वीरवाहो हुवे देवानां जनिमानि सत्तः ॥ २ ॥
समु वो यज्ञं महयन्नमोभिः प्र होता मन्द्रो रिरिच उपाके ।
यजस्व सु पुर्वणीक देवाना यज्ञियामरमतिं ववृत्याः ॥ ३ ॥
यदा वीरस्य रेवतो दुरोणे स्योनशीरतिथिराचिकेतत् ।
सुप्रीतो अग्निः सुधितो दम आ स विशे दाति वार्यमियत्यै ॥ ४ ॥
इमं नो अग्ने अध्वरं जुषस्व मरुत्स्विन्द्रे यशसं कृधी नः ।
आ नक्ता बर्हिः सदतामुषासोशन्ता मित्रावरुणा यजेह ॥ ५ ॥
एवाग्निं सहस्यं वसिष्ठो रायस्कामो विश्वप्स्न्यस्य स्तौत् ।
इषं रयिं पप्रथद्वाजमस्मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥

[४३] त्रिचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—विश्वे देवाः ॥ छन्दः—१ निचृत्त्रिष्टुप्; २, ५ भुरिक्पङ्क्तिः; ३ विराट्त्रिष्टुप्; ४ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१, ३, ४ धैवतः; २, ५ पञ्चमः ॥

अथ दशमो वर्गः ॥ १० ॥

प्र वो यज्ञेषु देवयन्तो अर्चन्द्यावा नमोभिः पृथिवी इषध्यै ।
येषां ब्रह्माण्यसमानि विप्रा विष्वग्वियन्ति वनिनो न शाखाः ॥ १ ॥

प्र यज्ञ एतु हेत्वो न सप्तिरुद्यच्छध्वं समनसो घृताचीः ।
स्तृणीत बर्हिरध्वराय साधूर्ध्वा शोचींषि देवयून्यस्थुः ॥ २ ॥
आ पुत्रासो न मातरं विभृत्राः सानौ देवासो बर्हिषः सदन्तु ।
आ विश्वाची विदथ्यामनक्त्वग्ने मा नो देवताता मृधस्कः ॥ ३ ॥
ते सीषपन्त जोषमा यजत्रा ऋतस्य धाराः सुदुघा दुहानाः ।
ज्येष्ठं वो अद्य मह आ वसूनामा गन्तन समनसो यति ष्ठ ॥ ४ ॥
एवा नो अग्ने विक्ष्वा दशस्य त्वया वयं सहसावन्नास्क्राः ।
राया युजा सधमादो अरिष्टा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

[४४] चतुश्चत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—लिङ्गोक्ताः ॥ छन्दः—१ निचृज्जगती; २, ३ निचृत्त्रिष्टुप्; ४, ५ पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१ निषादः; २, ३ धैवतः; ४, ५ पञ्चमः ॥

अथैकादशो वर्गः ॥ ११ ॥

दधिक्रां वः प्रथममश्विनोषसमग्निं समिद्धं भगमूतये हुवे ।
इन्द्रं विष्णुं पूषणं ब्रह्मणस्पतिमादित्यान्द्यावापृथिवी अपः स्वः ॥ १ ॥
दधिक्रामु नमसा बोधयन्त उदीराणा यज्ञमुपप्रयन्तः ।
इळां देवीं बर्हिषि सादयन्तोऽश्विना विप्रा सुहवा हुवेम ॥ २ ॥
दधिक्रावाणं बुबुधानो अग्निमुप ब्रुव उषसं सूर्यं गाम् ।
ब्रध्नं मँश्चतोर्वरुणस्य बभ्रुं ते विश्वास्मद्दुरिता यावयन्तु ॥ ३ ॥
दधिक्रावा प्रथमो वाज्यर्वाग्रे रथानां भवति प्रजानन् ।
संविदान उषसा सूर्येणादित्येभिर्वसुभिरङ्गिरोभिः ॥ ४ ॥
आ नो दधिक्राः पथ्यामनक्त्वृतस्य पन्थामन्वेतवा उ ।
शृणोतु नो दैव्यं शर्धो अग्निः शृण्वन्तु विश्वे महिषा अमूराः ॥ ५ ॥

[४५] पञ्चचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—सविता ॥ छन्दः—१ विराट्त्रिष्टुप्; २ त्रिष्टुप्; ३, ४ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

अथ द्वादशो वर्गः॥ १२॥

आ देवो यातु सविता सुरत्नोऽ न्तरिक्षप्रा वहमानो अश्वैः।
हस्ते दधानो नर्या पुरूणि निवेशयञ्च प्रसुवञ्च भूम॥ १॥
उदस्य बाहू शिथिरा बृहन्ता हिरण्यया दिवो अन्ताँ अनष्टाम्।
नूनं सो अस्य महिमा पनिष्ट सूरश्चिदस्मा अनु दादपस्याम्॥ २॥
स घा नो देवः सविता सहावा साविषद्वसुपतिर्वसूनि।
विश्रयमाणो अमतिमुरूचीं मर्तभोजनमध रासते नः॥ ३॥
इमा गिरः सवितारं सुजिह्वं पूर्णगभस्तिमीळते सुपाणिम्।
चित्रं वयो बृहदस्मे दधातु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥ ४॥

[४६] षट्चत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः॥ देवता—रुद्रः॥ छन्दः—१ विराड्जगती; २ निचृत्त्रिष्टुप्; ३ निचृत् जगती; ४ स्वराट्पङ्क्तिः॥ स्वरः—१, ३ निषादः; २ धैवतः; ४ पञ्चमः॥

अथ त्रयोदशो वर्गः॥ १३॥

इमा रुद्राय स्थिरधन्वने गिरः क्षिप्रेषवे देवाय स्वधाव्ने।
अषाळ्हाय सहमानाय वेधसे तिग्मायुधाय भरता शृणोतु नः॥ १॥
स हि क्षयेण क्षम्यस्य जन्मनः साम्राज्येन दिव्यस्य चेतति।
अवन्नवन्तीरुप नो दुरश्चरानमीवो रुद्र जासु नो भव॥ २॥
या ते दिद्युदवसृष्टा दिवस्परि क्ष्मया चरति परि सा वृणक्तु नः।
सहस्रं ते स्वपिवात भेषजा मा नस्तोकेषु तनयेषु रीरिषः॥ ३॥
मा नो वधी रुद्र मा परा दा मा ते भूम प्रसितौ हीळितस्य।
आ नो भज बर्हिषि जीवशंसे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥ ४॥

[४७] सप्तचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः॥ देवता—आपः॥ छन्दः—१, ३ त्रिष्टुप्; २ विराट्त्रिष्टुप्; ४ स्वराट्पङ्क्तिः॥ स्वरः—१-३ धैवतः; ४ पञ्चमः॥

अथ चतुर्दशो वर्गः॥ १४॥

आपो यं वः प्रथमं देवयन्त इन्द्रपानमूर्मिमकृण्वतेळः ।
तं वो वयं शुचिमरिप्रमद्य घृतप्रुषं मधुमन्तं वनेम ॥ १॥

तमूर्मिमापो मधुमत्तमं वोऽ पां नपादवत्वाशुहेमा ।
यस्मिन्निन्द्रो वसुभिर्मादयाते तमश्याम देवयन्तो वो अद्य॥ २॥
शतपवित्राः स्वधया मदन्तीर्देवीर्देवानामपि यन्ति पाथः।
ता इन्द्रस्य न मिनन्ति व्रतानि सिन्धुभ्यो हव्यं घृतवज्जुहोत॥ ३॥
याः सूर्यो रश्मिभिराततान याभ्य इन्द्रो अरदद्गातुमूर्मिम्।
ते सिन्धवो वरिवो धातना नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥ ४॥

[४८] अष्टचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः॥ देवता—१-३ ऋभवः; ४ ऋभवो विश्वे देवा वा॥ छन्दः—१ भुरिक्पङ्क्तिः; २ निचृत्त्रिष्टुप्; ३ त्रिष्टुप्; ४ विराट्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—१ पञ्चमः; २-४ धैवतः॥

अथ पञ्चदशो वर्गः॥ १५॥

ऋभुक्षणो वाजा मादयध्वमस्मे नरो मघवानः सुतस्य।
आ वोऽ र्वाचः क्रतवो न यातां विभ्वो रथं नर्यं वर्तयन्तु॥ १॥
ऋभुर्ऋभुभिरभि वः स्याम विभ्वो विभुभिः शवसा शवांसि।
वाजो अस्माँ अवतु वाजसाताविन्द्रेण युजा तरुषेम वृत्रम्॥ २॥
ते चिद्धि पूर्वीरभि सन्ति शासा विश्वाँ अर्य उपरताति वन्वन्।
इन्द्रो विभ्वाँ ऋभुक्षा वाजो अर्यः शत्रोर्मिथत्या कृणवन्वि नृम्णम्॥ ३॥
नू देवासो वरिवः कर्तना नो भूत नो विश्वेऽ वसे सजोषाः।
समस्मे इषं वसवो ददीरन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥ ४॥

[४९] एकोनपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः॥ देवता—आपः॥ छन्दः—१ निचृत्त्रिष्टुप्; २, ३ त्रिष्टुप्; ४ विराट्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

अथ षोडशो वर्गः॥ १६॥

समुद्रज्येष्ठाः सलिलस्य मध्यात्पुनाना यन्त्यनिविशमानाः ।
इन्द्रो या वज्री वृषभो रराद ता आपो देवीरिह मामवन्तु॥ १॥
या आपो दिव्या उत वा स्रवन्ति खनित्रिमा उत वा याः स्वयंजाः।
समुद्रार्था याः शुचयः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु॥ २॥

यासां राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यञ्जनानाम्।
मधुश्चुतः शुचयो याः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु॥ ३॥
यासु राजा वरुणो यासु सोमो विश्वे देवा यासूर्जं मदन्ति।
वैश्वानरो यास्वग्निः प्रविष्टस्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥ ४॥

[५०] पञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः॥ देवता—१ मित्रावरुणौ; २ अग्निः; ३ विश्वे देवाः; ४ नद्यः॥
छन्दः—१, ३ स्वराट्त्रिष्टुप्; २ निचृज्जगती; ४ भुरिगतिजगती॥
स्वरः—१, ३ धैवतः; २, ४ निषादः॥

अथ सप्तदशो वर्गः॥ १७॥

आ मां मित्रावरुणेह रक्षतं कुलाययद्विश्वयन्मा न आ गन्।
अजकावं दुर्दृशीकं तिरो दधे मा मां पद्येन रपसा विदत्त्सरुः॥ १॥
यद्विजामन्परुषि वन्दनं भुवदष्ठीवन्तौ परि कुल्फौ च देहत्।
अग्निष्टच्छोचन्नप बाधतामितो मा मां पद्येन रपसा विदत्त्सरुः॥ २॥
यच्छल्मलौ भवति यन्नदीषु यदोषधीभ्यः परि जायते विषम्।
विश्वे देवा निरितस्तत्सुवन्तु मा मां पद्येन रपसा विदत्त्सरुः॥ ३॥
याः प्रवतो निवत उद्वत उदन्वतीरनुदकाश्च याः ।
ता अस्मभ्यं पयसा पिन्वमानाः शिवा देवीरशिपदा भवन्तु
सर्वा नद्यो अशिमिदा भवन्तु ॥ ४॥

[५१] एकपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः॥ देवता—आदित्याः॥ छन्दः—१, २ त्रिष्टुप्;
३ निचृत्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

अथाष्टादशो वर्गः॥ १८॥

आदित्यानामवसा नूतनेन सक्षीमहि शर्मणा शन्तमेन।
अनागास्त्वे अदितित्वे तुरास इमं यज्ञं दधतु श्रोषमाणाः॥ १॥
आदित्यासो अदितिर्मादयन्तां मित्रो अर्यमा वरुणो रजिष्ठाः।
अस्माकं सन्तु भुवनस्य गोपाः पिबन्तु सोममवसे नो अद्य॥ २॥

आदित्या विश्वे मरुतश्च विश्वे देवाश्च विश्वे ऋभवश्च विश्वे।
इन्द्रो अग्निरश्विना तुष्टुवाना यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३॥

[५२] द्विपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः॥ देवता—आदित्याः॥ छन्दः—१, ३ स्वराट्पङ्क्तिः;
२ निचृत्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—१, ३ पञ्चमः; २ धैवतः॥

अथ एकोनविंशो वर्गः॥ १९॥

आदित्यासो अदितयः स्याम पूर्देवत्रा वसवो मर्त्यत्रा।
सनेम मित्रावरुणा सनन्तो भवेम द्यावापृथिवी भवन्तः॥ १॥
मित्रस्तन्नो वरुणो मामहन्त शर्म तोकाय तनयाय गोपाः।
मा वो भुजेमान्यजातमेनो मा तत्कर्म वसवो यच्चयध्वे॥ २॥
तुरण्यवोऽङ्गिरसो नक्षन्त रत्नं देवस्य सवितुरियानाः।
पिता च तन्नो महान्यजत्रो विश्वे देवाः समनसो जुषन्त॥ ३॥

[५३] त्रिपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः॥ देवता—द्यावापृथिव्यौ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप्; २, ३ निचृत्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

अथ विंशो वर्गः॥ २०॥

प्र द्यावा यज्ञैः पृथिवी नमोभिः सबाध ईळे बृहती यजत्रे।
ते चिद्धि पूर्वे कवयो गृणन्तः पुरो मही दधिरे देवपुत्रे॥ १॥
प्र पूर्वजे पितरा नव्यसीभिर्गीर्भिः कृणुध्वं सदने ऋतस्य।
आ नो द्यावापृथिवी दैव्येन जनेन यातं महि वां वरूथम्॥ २॥
उतो हि वां रत्नधेयानि सन्ति पुरूणि द्यावापृथिवी सुदासे।
अस्मे धत्तं यदसदस्कृधोयु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥ ३॥

[५४] चतुःपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः॥ देवता—वास्तोष्पतिः॥ छन्दः—१, ३ निचृत्त्रिष्टुप्;
२ विराट्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

अथ एकविंशो वर्गः॥ २१॥

वास्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मान्त्स्वावेशो अनमीवो भवा नः।
यत्त्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्व शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे॥ १॥

वास्तोष्पते प्रतरणो न एधि गयस्फानो गोभिरश्वेभिरिन्दो ।
अजरासस्ते सख्ये स्याम पितेव पुत्रान्प्रति नो जुषस्व ॥ २ ॥
वास्तोष्पते शग्मया संसदा ते सक्षीमहि रण्वया गातुमत्या ।
पाहि क्षेम उत योगे वरं नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥

[५५] पञ्चपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—१ वास्तोष्पतिः; २-८ इन्द्रः ॥ छन्दः—१ निचृद्गायत्री; २-४ बृहती; ५, ७ अनुष्टुप्; ६, ८ निचृदनुष्टुप् ॥ स्वरः—१ षड्जः; २-४ मध्यमः; ५-८ गान्धारः ॥

अथ द्वाविंशो वर्गः ॥ २२ ॥

अमीवहा वास्तोष्पते विश्वा रूपाण्याविशन् ।
सखा सुशेव एधि नः ॥ १ ॥
यदर्जुन सारमेय दतः पिशङ्ग यच्छसे ।
वीव भ्राजन्त ऋष्टय उप स्रक्वेषु बप्सतो नि षु स्वप ॥ २ ॥
स्तेनं राय सारमेय तस्करं वा पुनःसर ।
स्तोतॄनिन्द्रस्य रायसि किमस्मान्दुच्छुनायसे नि षु स्वप ॥ ३ ॥
त्वं सूकरस्य दर्दृहि तव दर्दर्तु सूकरः ।
स्तोतॄनिन्द्रस्य रायसि किमस्मान्दुच्छुनायसे नि षु स्वप ॥ ४ ॥
सस्तु माता सस्तु पिता सस्तु श्वा सस्तु विश्पतिः ।
ससन्तु सर्वे ज्ञातयः सस्त्वयमभितो जनः ॥ ५ ॥
य आस्ते यश्च चरति यश्च पश्यति नो जनः ।
तेषां सं हन्मो अक्षाणि यथेदं हर्म्यं तथा ॥ ६ ॥
सहस्रशृङ्गो वृषभो यः समुद्रादुदाचरत् ।
तेना सहस्येना वयं नि जनान्त्स्वापयामसि ॥ ७ ॥
प्रोष्ठेशया वह्येशया नारीर्यास्तल्पशीवरीः ।
स्त्रियो याः पुण्यगन्धास्ताः सर्वाः स्वापयामसि ॥ ८ ॥

चतुर्थोऽनुवाकः

[५६] षट्पञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—मरुतः ॥ छन्दः—१ आर्चीगायत्री; २, ६, ७, ९ भुरिकार्चीगायत्री; ३-५ प्राजापत्याबृहती; ८, १० आर्च्युष्णिक्; ११ निचृदार्च्युष्णिक्; १२, १३, १५, १८, १९, २१ निचृत्त्रिष्टुप्; १४, १६ स्वराट्पङ्क्तिः; १७, २० त्रिष्टुप्; २२, २३, २५ विराट्त्रिष्टुप्; २४ पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१, २, ६, ७, ९ षड्जः; ३-५ मध्यमः; ८, १०, ११ ऋषभः; १२, १३, १५, १७-२३, २५ धैवतः; १४, १६, २४ पञ्चमः ॥

अथ त्रयोविंशो वर्गः ॥ २३ ॥

क ईं व्यक्ता नरः सनीळा रुद्रस्य मर्या अधा स्वश्वाः ॥ १ ॥
नकिर्ह्येषां जनूंषि वेद ते अङ्ग विद्रे मिथो जनित्रम् ॥ २ ॥
अभि स्वपूभिर्मिथो वपन्त वातस्वनसः श्येना अस्पृध्रन् ॥ ३ ॥
एतानि धीरो निण्या चिकेत पृश्निर्यदूधो मही जभार ॥ ४ ॥
सा विट् सुवीरा मरुद्भिरस्तु सनात्सहन्ती पुष्यन्ती नृम्णम् ॥ ५ ॥
यामं येष्ठाः शुभा शोभिष्ठाः श्रिया संमिश्ला ओजोभिरुग्राः ॥ ६ ॥
उग्रं व ओजः स्थिरा शवांस्यधा मरुद्भिर्गणस्तुविष्मान् ॥ ७ ॥
शुभ्रो वः शुष्मः क्रुध्मी मनांसि धुनिर्मुनिरिव शर्धस्य धृष्णोः ॥ ८ ॥
सनेम्यस्मद्युयोत दिद्युं मा वो दुर्मतिरिह प्रणङ् नः ॥ ९ ॥
प्रिया वो नाम हुवे तुराणामा यत्तृपन्मरुतो वावशानाः ॥ १० ॥

अथ चतुर्विंशो वर्गः ॥ २४ ॥

स्वायुधास इष्मिणः सुनिष्का उत स्वयं तन्वः शुम्भमानाः ॥ ११ ॥
शुची वो हव्या मरुतः शुचीनां शुचिं हिनोम्यध्वरं शुचिभ्यः ।
ऋतेन सत्यमृतसाप आयञ्छुचिजन्मानः शुचयः पावकाः ॥ १२ ॥
अंसेष्वा मरुतः खादयो वो वक्षःसु रुक्मा उपशिश्रियाणाः ।
वि विद्युतो न वृष्टिभी रुचाना अनु स्वधामायुधैर्यच्छमानाः ॥ १३ ॥
प्र बुध्न्या व ईरते महांसि प्र नामानि प्रयज्यवस्तिरध्वम् ।
सहस्रियं दम्यं भागमेतं गृहमेधीयं मरुतो जुषध्वम् ॥ १४ ॥
यदि स्तुतस्य मरुतो अधीथेत्था विप्रस्य वाजिनो हवीमन् ।
मक्षू रायः सुवीर्यस्य दात नू चिद्यमन्य आदभदरावा ॥ १५ ॥

अथ पञ्चविंशो वर्गः ॥ २५ ॥

अत्यासो न ये मरुतः स्वञ्चो यक्षदृशो न शुभयन्त मर्याः ।
ते हर्म्येष्ठाः शिशवो न शुभ्रा वत्सासो न प्रक्रीळिनः पयोधाः ॥ १६ ॥
दशस्यन्तो नो मरुतो मृळन्तु वरिवस्यन्तो रोदसी सुमेके ।
आरे गोहा नृहा वधो वो अस्तु सुम्नेभिरस्मे वसवो नमध्वम् ॥ १७ ॥
आ वो होता जोहवीति सत्तः सत्राचीं रातिं मरुतो गृणानः ।
य ईवतो वृषणो अस्ति गोपाः सो अद्वयावी हवते व उक्थैः ॥ १८ ॥
इमे तुरं मरुतो रामयन्तीमे सहः सहस आ नमन्ति ।
इमे शंसं वनुष्यतो नि पान्ति गुरु द्वेषो अररुषे दधन्ति ॥ १९ ॥
इमे रध्रं चिन्मरुतो जुनन्ति भृमिं चिद्यथा वसवो जुषन्त ।
अप बाधध्वं वृषणस्तमांसि धत्त विश्वं तनयं तोकमस्मे ॥ २० ॥

अथ षडविंशो वर्गः ॥ २६ ॥

मा वो दात्रान्मरुतो निरराम मा पश्चाद्दघ्म रथ्यो विभागे ।
आ नः स्पार्हे भजतना वसव्ये३ यदीं सुजातं वृषणो वो अस्ति ॥ २१ ॥
सं यद्धनन्त मन्युभिर्जनासः शूरा यह्वीष्वोषधीषु विक्षु ।
अध स्मा नो मरुतो रुद्रियासस्त्रातारो भूत पृतनास्वर्यः ॥ २२ ॥
भूरि चक्र मरुतः पित्र्याण्युक्थानि या वः शस्यन्ते पुरा चित् ।
मरुद्भिरुग्रः पृतनासु साळ्हा मरुद्भिरित्सनिता वाजमर्वा ॥ २३ ॥
अस्मे वीरो मरुतः शुष्म्यस्तु जनानां यो असुरो विधर्ता ।
अपो येन सुक्षितये तरेमाध स्वमोको अभि वः स्याम ॥ २४ ॥
तन्न इन्द्रो वरुणो मित्रो अग्निराप ओषधीर्वनिनो जुषन्त ।
शर्मन्त्स्याम मरुतामुपस्थे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ २५ ॥

[५७] सप्तपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—मरुतः ॥ छन्दः—१ विराट्त्रिष्टुप्; २, ४ त्रिष्टुप्; ३, ५-७ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

अथ सप्तविंशो वर्गः ॥ २७ ॥

मध्वो वो नाम मारुतं यजत्राः प्र यज्ञेषु शवसा मदन्ति ।
ये रेजयन्ति रोदसी चिदुर्वी पिन्वन्त्युत्सं यदयासुरुग्राः ॥ १ ॥
निचेतारो हि मरुतो गृणन्तं प्रणेतारो यजमानस्य मन्म ।
अस्माकमद्य विदथेषु बर्हिरा वीतये सदत पिप्रियाणाः ॥ २ ॥
नैतावदन्ये मरुतो यथेमे भ्राजन्ते रुक्मैरायुधैस्तनूभिः ।
आ रोदसी विश्वपिशः पिशानाः समानमञ्ज्यञ्जते शुभे कम् ॥ ३ ॥
ऋधक्सा वो मरुतो दिद्युदस्तु यद्व आगः पुरुषता कराम ।
मा वस्तस्यामपि भूमा यजत्रा अस्मे वो अस्तु सुमतिश्चनिष्ठा ॥ ४ ॥
कृते चिदत्र मरुतो रणन्तानवद्यासः शुचयः पावकाः ।
प्र णोऽवत सुमतिभिर्यजत्राः प्र वाजेभिस्तिरत पुष्यसे नः ॥ ५ ॥
उत स्तुतासो मरुतो व्यन्तु विश्वेभिर्नामभिर्नरो हवींषि ।
ददात नो अमृतस्य प्रजायै जिगृत रायः सूनृता मघानि ॥ ६ ॥
आ स्तुतासो मरुतो विश्व ऊती अच्छा सूरीन्त्सर्वताता जिगात ।
ये नस्त्मना शतिनो वर्धयन्ति यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

[५८] अष्टपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—मरुतः ॥ छन्दः—१ विराट्त्रिष्टुप्; २, ६ भुरिक्पङ्क्तिः; ३, ४ निचृत्त्रिष्टुप्; ५ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१, ३-५ धैवतः; २, ६ पञ्चमः ॥

अथाष्टाविंशो वर्गः ॥ २८ ॥

प्र साकमुक्षे अर्चता गणाय यो दैव्यस्य धाम्नस्तुविष्मान् ।
उत क्षोदन्ति रोदसी महित्वा नक्षन्ते नाकं निर्ऋतेरवंशात् ॥ १ ॥
जनूश्चिद्वो मरुतस्त्वेष्येण भीमासस्तुविमन्यवोऽयासः ।
प्र ये महोभिरोजसोत सन्ति विश्वो वो यामन्भयते स्वर्दृक् ॥ २ ॥
बृहद्वयो मघवद्भ्यो दधात जुजोषन्निन्मरुतः सुष्टुतिं नः ।
गतो नाध्वा वि तिराति जन्तुं प्र णः स्पार्हाभिरूतिभिस्तिरेत ॥ ३ ॥
युष्मोतो विप्रो मरुतः शतस्वी युष्मोतो अर्वा सहुरिः सहस्री ।
युष्मोतः सम्राळुत हन्ति वृत्रं प्र तद्वो अस्तु धूतयो देष्णम् ॥ ४ ॥

ताँ आ रुद्रस्य मीळ्हुषो विवासे कुविन्नंसन्ते मरुतः पुनर्नः ।
यत्सस्वर्ता जिहीळिरे यदाविरव तदेन ईमहे तुराणाम् ॥ ५ ॥
प्र सा वाचि सुष्टुतिर्मघोनामिदं सूक्तं मरुतो जुषन्त ।
आराच्चिद् द्वेषो वृषणो युयोत यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥

[५९] एकोनषष्टितमं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—१-११ मरुतः; १२ रुद्रः ॥ छन्दः—१ निचृद्बृहती; २ पङ्क्तिः; ३ बृहती; ४ निचृत्पङ्क्तिः; ५, १२ अनुष्टुप्; ६ स्वराड्बृहती; ७ निचृत्त्रिष्टुप्; ८ त्रिष्टुप्; ९, १० गायत्री; ११ निचृद्गायत्री ॥ स्वरः—१, ३, ६ मध्यमः; २, ४ पञ्चमः; ५, १२ गान्धारः; ७, ८ धैवतः; ९-११ षड्जः ॥

अथैकोनत्रिंशो वर्गः ॥ २९ ॥

यं त्रायध्व इदमिदं देवासो यं च नयथ ।
तस्मा अग्ने वरुण मित्रार्यमन्मरुतः शर्म यच्छत ॥ १ ॥
युष्माकं देवा अवसाहनि प्रिय ईजानस्तरति द्विषः ।
प्र स क्षयं तिरते वि महीरिषो यो वो वराय दाशति ॥ २ ॥
नहि वश्चरमं चन वसिष्ठः परिमंसते ।
अस्माकमद्य मरुतः सुते सचा विश्वे पिबत कामिनः ॥ ३ ॥
नहि व ऊतिः पृतनासु मर्धति यस्मा अराध्वं नरः ।
अभि व आवर्त्सुमतिर्नवीयसी तूयं यात पिपीषवः ॥ ४ ॥
ओ षु घृष्विराधसो यातनान्धांसि पीतये ।
इमा वो हव्या मरुतो ररे हि कं मो ष्व१न्यत्र गन्तन ॥ ५ ॥
आ च नो बर्हिः सदताविता च नः स्पार्हाणि दातवे वसु ।
अस्रेधन्तो मरुतः सोम्ये मधौ स्वाहेह मादयाध्वै ॥ ६ ॥

अथ त्रिंशो वर्गः ॥ ३० ॥

सस्वश्चिद्धि तन्व१ः शुम्भमाना आ हंसासो नीलपृष्ठा अपप्तन् ।
विश्वं शर्धो अभितो मा नि षेद नरो न रण्वाः सवने मदन्तः ॥ ७ ॥
यो नो मरुतो अभि दुर्हृणायुस्तिरश्चित्तानि वसवो जिघांसति ।
द्रुहः पाशान्प्रति स मुचीष्ट तपिष्ठेन हन्मना हन्तना तम् ॥ ८ ॥

सान्तपना इदं हविर्मरुतस्तज्जुजुष्टन । युष्माकोती रिशादसः ॥ ९ ॥
गृहमेधास आ गत मरुतो माप भूतन । युष्माकोती सुदानवः ॥ १० ॥
इहेह वः स्वतवसः कवयः सूर्यत्वचः । यज्ञं मरुत आ वृणे ॥ ११ ॥
त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥ १२ ॥

इति पञ्चमाष्टके चतुर्थोऽध्यायः ॥

अथ पञ्चमाष्टके पञ्चमोऽध्यायः

[६०] षष्टितमं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—१ सूर्यः; २-१२ मित्रावरुणौ ॥ छन्दः—१ पङ्क्तिः; २-४, ६, ७, १२ निचृत्त्रिष्टुप्; ५, ८, ११ त्रिष्टुप्; ९ विराट्पङ्क्तिः; १० स्वराट्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१, ९, १० पञ्चमः; २-८, ११, १२ धैवतः ॥

अथ प्रथमो वर्गः ॥ १ ॥

यदद्य सूर्य ब्रवोऽनागा उद्यन्मित्राय वरुणाय सत्यम् ।
वयं देवत्रादिते स्याम तव प्रियासो अर्यमन्गृणन्तः ॥ १ ॥
एष स्य मित्रावरुणा नृचक्षा उभे उदेति सूर्यो अभि ज्मन् ।
विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च गोपा ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन् ॥ २ ॥
अयुक्त सप्त हरितः सधस्थाद्या ईं वहन्ति सूर्यं घृताचीः ।
धामानि मित्रावरुणा युवाकुः सं यो यूथेव जनिमानि चष्टे ॥ ३ ॥
उद्वां पृक्षासो मधुमन्तो अस्थुरा सूर्यो अरुहच्छुक्रमर्णः ।
यस्मा आदित्या अध्वनो रदन्ति मित्रो अर्यमा वरुणः सजोषाः ॥ ४ ॥
इमे चेतारो अनृतस्य भूरेर्मित्रो अर्यमा वरुणो हि सन्ति ।
इम ऋतस्य वावृधुर्दुरोणे शग्मासः पुत्रा अदितेरदब्धाः ॥ ५ ॥
इमे मित्रो वरुणो दूळभासोऽचेतसं चिच्चितयन्ति दक्षैः ।
अपि क्रतुं सुचेतसं वतन्तस्तिरश्चिदंहः सुपथा नयन्ति ॥ ६ ॥

अथ द्वितीयो वर्गः ॥ २ ॥

इमे दिवो अनिमिषा पृथिव्याश्चिकित्वांसो अचेतसं नयन्ति ।
प्रव्राजे चिन्नद्यो गाधमस्ति पारं नो अस्य विष्पितस्य पर्षन् ॥ ७ ॥
यद्गोपावददितिः शर्म भद्रं मित्रो यच्छन्ति वरुणः सुदासे ।
तस्मिन्ना तोकं तनयं दधाना मा कर्म देवहेळनं तुरासः ॥ ८ ॥
अव वेदिं होत्राभिर्यजेत रिपः काश्चिद्वरुणध्रुतः सः ।
परि द्वेषोभिरर्यमा वृणक्तूरुं सुदासे वृषणा उ लोकम् ॥ ९ ॥
सस्वश्चिद्धि समृतिस्त्वेष्येषामपीच्येन सहसा सहन्ते ।
युष्मद्भिया वृषणो रेजमाना दक्षस्य चिन्महिना मृळता नः ॥ १० ॥
यो ब्रह्मणे सुमतिमायजाते वाजस्य सातौ परमस्य रायः ।
सीक्षन्त मन्युं मघवानो अर्य उरु क्षयाय चक्रिरे सुधातु ॥ ११ ॥
इयं देव पुरोहितिर्युवभ्यां यज्ञेषु मित्रावरुणावकारि ।
विश्वानि दुर्गा पिपृतं तिरो नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ १२ ॥

[६१] एकषष्टितमं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—मित्रावरुणौ ॥ छन्दः—१ भुरिक्पङ्क्तिः; २, ४ त्रिष्टुप्; ३, ५-७ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१ पञ्चमः; २-७ धैवतः ॥

अथ तृतीयो वर्गः ॥ ३ ॥

उद्वां चक्षुर्वरुण सुप्रतीकं देवयोरेति सूर्यस्ततन्वान् ।
अभि यो विश्वा भुवनानि चष्टे स मन्युं मर्त्येष्वा चिकेत ॥ १ ॥
प्र वां स मित्रावरुणावृतावा विप्रो मन्मानि दीर्घश्रुदियर्ति ।
यस्य ब्रह्माणि सुक्रतू अवाथ आ यत्क्रत्वा न शरदः पृणैथे ॥ २ ॥
प्रोरोर्मित्रावरुणा पृथिव्याः प्र दिव ऋष्वाद् बृहतः सुदानू ।
स्पशो दधाथे ओषधीषु विक्ष्वृधग्यतो अनिमिषं रक्षमाणा ॥ ३ ॥
शंसा मित्रस्य वरुणस्य धाम शुष्मो रोदसी बद्बधे महित्वा ।
अयन्मासा अयज्वनामवीराः प्र यज्ञमन्मा वृजनं तिराते ॥ ४ ॥

अमूरा विश्वा वृषणाविमा वां न यासु चित्रं ददृशे न यक्षम् ।
द्रुहः सचन्ते अनृता जनानां न वां निण्यान्यचिते अभूवन् ॥ ५ ॥
समु वां यज्ञं महयं नमोभिर्हुवे वां मित्रावरुणा सबाधः ।
प्र वां मन्मान्यृचसे नवानि कृतानि ब्रह्म जुजुषन्निमानि ॥ ६ ॥
इयं देव पुरोहितिर्युवभ्यां यज्ञेषु मित्रावरुणावकारि ।
विश्वानि दुर्गा पिपृतं तिरो नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

[६२] द्विषष्टितमं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—१-३ सूर्यः; ४-६ मित्रावरुणौ ॥ छन्दः—१, २, ६ विराट्त्रिष्टुप्; ३-५ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

अथ चतुर्थो वर्गः ॥ ४ ॥

उत्सूर्यो बृहदर्चींष्यश्रेत्पुरु विश्वा जनिम मानुषाणाम् ।
समो दिवा ददृशे रोचमानः क्रत्वा कृतः सुकृतः कर्तृभिर्भूत् ॥ १ ॥
स सूर्य प्रति पुरो न उद्गा एभिः स्तोमेभिरेतशेभिरेवैः ।
प्र नो मित्राय वरुणाय वोचोऽनागसो अर्यम्णे अग्नये च ॥ २ ॥
वि नः सहस्रं शुरुधो रदन्त्वृतावानो वरुणो मित्रो अग्निः ।
यच्छन्तु चन्द्रा उपमं नो अर्कमा नः कामं पूपुरन्तु स्तवानाः ॥ ३ ॥
द्यावाभूमी अदिते त्रासीथां नो ये वां जज्ञुः सुजनिमान ऋष्वे ।
मा हेळे भूम वरुणस्य वायोर्मा मित्रस्य प्रियतमस्य नृणाम् ॥ ४ ॥
प्र बाहवा सिसृतं जीवसे न आ नो गव्यूतिमुक्षतं घृतेन ।
आ नो जने श्रवयतं युवाना श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमा ॥ ५ ॥
नू मित्रो वरुणो अर्यमा नस्त्मने तोकाय वरिवो दधन्तु ।
सुगा नो विश्वा सुपथानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥

[६३] त्रिषष्टितमं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—१-५[1] सूर्यः; ५[2], ६ मित्रावरुणौ ॥ छन्दः—१, ६ विराट्त्रिष्टुप्; २-५ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

अथ पञ्चमो वर्गः ॥ ५ ॥

उद्वेति सुभगो विश्वचक्षाः साधारणः सूर्यो मानुषाणाम्।
चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्य देवश्चर्मेव यः समविव्यक्तमांसि ॥ १ ॥
उद्वेति प्रसवीता जनानां महान्केतुरर्णवः सूर्यस्य ।
समानं चक्रं पर्याविवृत्सन्यदेतशो वहति धूर्षु युक्तः ॥ २ ॥
विभ्राजमान उषसामुपस्थाद्रेभैरुदेत्यनुमद्यमानः ।
एष मे देवः सविता चच्छन्द यः समानं न प्रमिनाति धाम ॥ ३ ॥
दिवो रुक्म उरुचक्षा उदेति दूरेअर्थस्तरणिर्भ्राजमानः।
नूनं जनाः सूर्येण प्रसूता अयन्नर्थानि कृणवन्नपांसि ॥ ४ ॥
यत्रा चक्रुरमृता गातुमस्मै श्येनो न दीयन्नन्वेति पाथः।
प्रति वां सूर उदिते विधेम नमोभिर्मित्रावरुणोत हव्यैः ॥ ५ ॥
नू मित्रो वरुणो अर्यमा नस्त्मने तोकाय वरिवो दधन्तु।
सुगा नो विश्वा सुपथानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥

[६४] चतुःषष्टितमं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—मित्रावरुणौ ॥ छन्दः—१-४ त्रिष्टुप्; ५ विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

अथ षष्ठो वर्गः ॥ ६ ॥

दिवि क्षयन्ता रजसः पृथिव्यां प्र वां घृतस्य निर्णिजो ददीरन्।
हव्यं नो मित्रो अर्यमा सुजातो राजा सुक्षत्रो वरुणो जुषन्त ॥ १ ॥
आ राजाना मह ऋतस्य गोपा सिन्धुपती क्षत्रिया यातमर्वाक्।
इळां नो मित्रावरुणोत वृष्टिमव दिव इन्वतं जीरदानू ॥ २ ॥
मित्रस्तन्नो वरुणो देवो अर्यः प्र साधिष्ठेभिः पथिभिर्नयन्तु।
ब्रवद्यथा न आदरिः सुदास इषा मदेम सह देवगोपाः ॥ ३ ॥
यो वां गर्तं मनसा तक्षदेतमूर्ध्वां धीतिं कृणवद्धारयच्च।
उक्षेथां मित्रावरुणा घृतेन ता राजाना सुक्षितीस्तर्पयेथाम् ॥ ४ ॥
एष स्तोमो वरुण मित्र तुभ्यं सोमः शुक्रो न वायवेऽयामि।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरन्धीर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

[६५] पञ्चषष्टितमं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—मित्रावरुणौ ॥ छन्दः—१, ५ विराट्त्रिष्टुप्; २ त्रिष्टुप्; ३, ४ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

अथ सप्तमो वर्गः ॥ ७ ॥

प्रति वां सूर उदिते सूक्तैर्मित्रं हुवे वरुणं पूतदक्षम् ।
ययोरसुर्य१मक्षितं ज्येष्ठं विश्वस्य यामन्नाचिता जिगत्नु ॥ १ ॥
ता हि देवानामसुरा तावर्या ता नः क्षितीः करतमूर्जयन्तीः।
अश्याम मित्रावरुणा वयं वां द्यावा च यत्र पीपयन्नहा च ॥ २ ॥
ता भूरिपाशावनृतस्य सेतू दुरत्येतू रिपवे मर्त्याय।
ऋतस्य मित्रावरुणा पथा वामपो न नावा दुरिता तरेम ॥ ३ ॥
आ नो मित्रावरुणा हव्यजुष्टिं घृतैर्गव्यूतिमुक्षतमिळाभिः।
प्रति वामत्र वरमा जनाय पृणीतमुद्नो दिव्यस्य चारोः ॥ ४ ॥
एष स्तोमो वरुण मित्र तुभ्यं सोमः शुक्रो न वायवेऽयामि।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरन्धीर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

[६६] षट्षष्टितमं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—१-३, १७-१९ मित्रावरुणौ; ४-१३ आदित्याः; १४-१६ सूर्यः ॥ छन्दः—१, २, ४, ९ निचृद्गायत्री; ३ विराड्गायत्री; ५-७, १८, १९ आर्षीगायत्री; ८ स्वराड्गायत्री; १० निचृद्बृहती; ११ स्वराड्बृहती; १२ आर्चीस्वराड्बृहती; १३, १५ आर्षीभुरिग् बृहती; १४ आर्षीविराड्बृहती; १६ पुरउष्णिक्; १७ पादनिचृद्गायत्री ॥ स्वरः—१-९, १७-१९ षड्जः; १०-१५ मध्यमः; १६ ऋषभः ॥

अथाष्टमो वर्गः ॥ ८ ॥

प्र मित्रयोर्वरुणयोः स्तोमो न एतु शूष्यः। नमस्वान्तुविजातयोः ॥ १ ॥
या धारयन्त देवाः सुदक्षा दक्षपितरा। असुर्याय प्रमहसा ॥ २ ॥
ता नः स्तिपा तनूपा वरुण जरितॄणाम्। मित्र साधयतं धियः ॥ ३ ॥
यदद्य सूर उदितेऽनागा मित्रो अर्यमा। सुवाति सविता भगः ॥ ४ ॥
सुप्रावीरस्तु स क्षयः प्र नु यामन्त्सुदानवः। ये नो अंहोऽतिपिप्रति ॥ ५ ॥

अथ नवमो वर्गः ॥ ९ ॥

उत स्वराजो अदितिरदब्धस्य व्रतस्य ये। महो राजान ईशते॥ ६ ॥
प्रति वां सूर उदिते मित्रं गृणीषे वरुणम्। अर्यमणं रिशादसम्॥ ७ ॥
राया हिरण्यया मतिरियमवृकाय शवसे। इयं विप्रा मेधसातये॥ ८ ॥
ते स्याम देव वरुण ते मित्र सूरिभिः सह। इषं स्वश्च धीमहि॥ ९ ॥
बहवः सूरचक्षसोऽग्निजिह्वा ऋतावृधः ।
त्रीणि ये येमुर्विदथानि धीतिभिर्विश्वानि परिभूतिभिः ॥ १० ॥

अथ दशमो वर्गः ॥ १० ॥

वि ये दधुः शरदं मासमादहर्यज्ञमक्तुं चादृचम् ।
अनाप्यं वरुणो मित्रो अर्यमा क्षत्रं राजान आशत ॥ ११ ॥
तद्वो अद्य मनामहे सूक्तैः सूर उदिते ।
यदोहते वरुणो मित्रो अर्यमा यूयमृतस्य रथ्यः ॥ १२ ॥
ऋतावान ऋतजाता ऋतावृधो घोरासो अनृतद्विषः ।
तेषां वः सुम्ने सुच्छर्दिष्टमे नरः स्याम ये च सूरयः ॥ १३ ॥
उदु त्यद्दर्शतं वपुर्दिव एति प्रतिह्वरे ।
यदीमाशुर्वहति देव एतशो विश्वस्मै चक्षसे अरम् ॥ १४ ॥
शीर्ष्णः शीर्ष्णो जगतस्तस्थुषस्पतिं समया विश्वमा रजः।
सप्त स्वसारः सुविताय सूर्यं वहन्ति हरितो रथे ॥ १५ ॥

अथैकादशो वर्गः ॥ ११ ॥

तच्चक्षुर्देवहितं शुक्रमुच्चरत् ।
पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतम् ॥ १६ ॥
काव्येभिरदाभ्या यातं वरुण द्युमत्। मित्रश्च सोमपीतये॥ १७ ॥
दिवो धामभिर्वरुण मित्रश्चा यातमद्रुहा। पिबतं सोममातुजी॥ १८ ॥
आ यातं मित्रावरुणा जुषाणावाहुतिं नरा। पातं सोममृतावृधा॥ १९ ॥

[६७] सप्तषष्टितमं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः॥ देवता—अश्विनौ॥ छन्दः—१, २, ६-८, १० निचृत्त्रिष्टुप्; ३, ५, ९ विराट्त्रिष्टुप्; ४ आर्षीत्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

अथ द्वादशो वर्गः ॥ १२ ॥

प्रति वां रथं नृपती जरध्यै हविष्मता मनसा यज्ञियेन।
यो वां दूतो न धिष्ण्यावजीगरच्छा सूनुर्न पितरा विवक्मि॥ १ ॥
अशोच्यग्निः समिधानो अस्मे उपो अदृश्रन्तमसश्चिदन्ताः ।
अचेति केतुरुषसः पुरस्ताच्छ्रिये दिवो दुहितुर्जायमानः ॥ २ ॥
अभि वां नूनमश्विना सुहोता स्तोमैः सिषक्ति नासत्या विवक्वान्।
पूर्वीभिर्यातं पथ्याभिरर्वाक्स्वर्विदा वसुमता रथेन ॥ ३ ॥
अवोर्वां नूनमश्विना युवाकुर्हुवे यद्वां सुते माध्वी वसूयुः।
आ वां वहन्तु स्थविरासो अश्वाः पिबाथो अस्मे सुषुता मधूनि॥ ४ ॥
प्राचीमु देवाश्विना धियं मेऽमृध्रां सातये कृतं वसूयुम्।
विश्वा अविष्टं वाज आ पुरन्धीस्ता नः शक्तं शचीपती शचीभिः॥ ५ ॥

अथ त्रयोदशो वर्गः ॥ १३ ॥

अविष्टं धीष्वश्विना न आसु प्रजावद्रेतो अह्रयं नो अस्तु।
आ वां तोके तनये तूतुजानाः सुरत्नासो देववीतिं गमेम॥ ६ ॥
एष स्य वां पूर्वगत्वेव सख्ये निधिर्हितो माध्वी रातो अस्मे।
अहेळता मनसा यातमर्वागश्नन्ता हव्यं मानुषीषु विक्षु ॥ ७ ॥
एकस्मिन्योगे भुरणा समाने परि वां सप्त स्रवतो रथो गात्।
न वायन्ति सुभ्वो देवयुक्ता ये वां धूर्षु तरणयो वहन्ति॥ ८ ॥
असश्चता मघवद्भ्यो हि भूतं ये राया मघदेयं जुनन्ति।
प्र ये बन्धुं सूनृताभिस्तिरन्ते गव्या पृञ्चन्तो अश्व्या मघानि॥ ९ ॥
नू मे हवमा शृणुतं युवाना यासिष्टं वर्तिरश्विनाविरावत्।
धत्तं रत्नानि जरतं च सूरीन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥ १० ॥

[६८] अष्टषष्टितमं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः॥ देवता—अश्विनौ॥ छन्दः—१, ६, ८ साम्नीत्रिष्टुप्; २, ३, ५ साम्नीनिचृत्त्रिष्टुप्; ४, ७ साम्नीभुरिगासुरीविराट्त्रिष्टुप्; ९ निचृत्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

अथ चतुर्दशो वर्गः॥ १४॥

आ शुभ्रा यातमश्विना स्वश्वा गिरो दस्रा जुजुषाणा युवाकोः।
हव्यानि च प्रतिभृता वीतं नः ॥ १ ॥
प्र वामन्धांसि मद्यान्यस्थुररं गन्तं हविषो वीतये मे ।
तिरो अर्यो हवनानि श्रुतं नः ॥ २ ॥
प्र वां रथो मनोजवा इयर्ति तिरो रजांस्यश्विना शतोतिः ।
अस्मभ्यं सूर्यावसू इयानः ॥ ३ ॥
अयं ह यद्वां देवया उ अद्रिरूर्ध्वो विवक्ति सोमसुद्युवभ्याम्।
आ वल्गू विप्रो ववृतीत हव्यैः ॥ ४ ॥
चित्रं ह यद्वां भोजनं न्वस्ति न्यत्रये महिष्वन्तं युयोतम् ।
यो वामोमानं दधते प्रियः सन् ॥ ५ ॥

अथ पञ्चदशो वर्गः॥ १५॥

उत त्यद्वां जुरते अश्विना भूच्च्यवानाय प्रतीत्यं हविर्दे ।
अधि यद्वर्प इतऊति धत्थः ॥ ६ ॥
उत त्यं भुज्युमश्विना सखायो मध्ये जहुर्दुरेवासः समुद्रे ।
निरीं पर्षदरावा यो युवाकुः ॥ ७ ॥
वृकाय चिज्जसमानाय शक्तमुत श्रुतं शयवे हूयमाना ।
यावघ्न्यामपिन्वतमपो न स्तर्यं चिच्छक्त्यश्विना शचीभिः ॥ ८ ॥
एष स्य कारुर्जरते सूक्तैरग्रे बुधान उषसां सुमन्मा ।
इषा तं वर्धदघ्न्या पयोभिर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ९ ॥

[६९] एकोनसप्ततितमं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः॥ देवता—अश्विनौ॥ छन्दः—१, ४, ६, ८ निचृत्त्रिष्टुप्; २, ७ त्रिष्टुप्; ३ आर्षीस्वराट्त्रिष्टुप्; ५ विराट्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

अथ षोडशो वर्गः॥ १६॥

आ वां रथो रोदसी बद्बधानो हिरण्ययो वृषभिर्यात्वश्वैः।
घृतवर्तनिः पविभी रुचान इषां वोळ्हा नृपतिर्वाजिनीवान्॥ १ ॥
स पप्रथानो अभि पञ्च भूमा त्रिबन्धुरो मनसा यातु युक्तः।
विशो येन गच्छथो देवयन्तीः कुत्रा चिद्याममश्विना दधाना॥ २ ॥
स्वश्वा यशसा यातमर्वाग्दस्रा निधिं मधुमन्तं पिबाथः।
वि वां रथो वध्वा३ यादमानोऽन्तान्दिवो बाधते वर्तनिभ्याम्॥ ३ ॥
युवोः श्रियं परि योषावृणीत सूरो दुहिता परितक्म्यायाम्।
यद्देवयन्तमवथः शचीभिः परि घ्रंसमोमना वां वयो गात्॥ ४ ॥
यो ह स्य वां रथिरा वस्त उस्रा रथो युजानः परियाति वर्तिः।
तेन नः शं योरुषसो व्युष्टौ न्यश्विना वहतं यज्ञे अस्मिन्॥ ५ ॥
नरा गौरेव विद्युतं तृषाणास्माकमद्य सवनोप यातम्।
पुरुत्रा हि वां मतिभिर्हवन्ते मा वामन्ये नि यमन्देवयन्तः॥ ६ ॥
युवं भुज्युमवविद्धं समुद्र उदूहथुरर्णसो अस्रिधानैः ।
पतत्रिभिरश्रमैरव्यथिभिर्दंसनाभिरश्विना पारयन्ता ॥ ७ ॥
नू मे हवमा शृणुतं युवाना यासिष्टं वर्तिरश्विनाविरावत्।
धत्तं रत्नानि जरतं च सूरीन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥ ८ ॥

[७०] सप्ततितमं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः॥ देवता—अश्विनौ॥ छन्दः—१, ३, ४, ६ निचृत्त्रिष्टुप्; २, ५, ७ विराट्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

अथ सप्तदशो वर्गः॥ १७॥

आ विश्ववाराश्विना गतं नः प्र तत्स्थानमवाचि वां पृथिव्याम्।
अश्वो न वाजी शुनपृष्ठो अस्थादा यत्सेदथुर्ध्रुवसे न योनिम्॥ १ ॥
सिषक्ति सा वां सुमतिश्चनिष्ठातापि घर्मो मनुषो दुरोणे।
यो वां समुद्रान्त्सरितः पिपर्त्येतग्वा चिन्न सुयुजा युजानः॥ २ ॥

यानि स्थानान्यश्विना दधाथे दिवो यह्वीष्वोषधीषु विक्षु।
नि पर्वतस्य मूर्धनि सदन्तेषं जनाय दाशुषे वहन्ता ॥ ३ ॥
चनिष्टं देवा ओषधीष्वप्सु यद्योग्या अश्नवैथे ऋषीणाम्।
पुरूणि रत्ना दधतौ न्य१स्मे अनु पूर्वाणि चख्यथुर्युगानि ॥ ४ ॥
शुश्रुवांसा चिदश्विना पुरूण्यभि ब्रह्माणि चक्षाथे ऋषीणाम्।
प्रति प्र यातं वरमा जनायास्मे वामस्तु सुमतिश्चनिष्ठा ॥ ५ ॥
यो वां यज्ञो नासत्या हविष्मान्कृतब्रह्मा समर्यो३ भवाति।
उप प्र यातं वरमा वसिष्ठमिमा ब्रह्माण्यृच्यन्ते युवभ्याम् ॥ ६ ॥
इयं मनीषा इयमश्विना गीरिमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम्।
इमा ब्रह्माणि युवयून्यग्मन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

पञ्चमोऽनुवाकः

[७१] एकसप्ततितमं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—अश्विनौ ॥ छन्दः—१, ५ त्रिष्टुप्;
२-४, ६ विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

अथाष्टादशो वर्गः ॥ १८ ॥

अप स्वसुरुषसो नग्जिहीते रिणक्ति कृष्णीररुषाय पन्थाम्।
अश्वामघा गोमघा वां हुवेम दिवा नक्तं शरुमस्मद्युयोतम् ॥ १ ॥
उपायातं दाशुषे मर्त्याय रथेन वाममश्विना वहन्ता।
युयुतमस्मदनिराममीवां दिवा नक्तं माध्वी त्रासीथां नः ॥ २ ॥
आ वां रथमवमस्यां व्युष्टौ सुम्नायवो वृषणो वर्तयन्तु।
स्यूमगभस्तिमृतयुग्भिरश्वैराश्विना वसुमन्तं वहेथाम् ॥ ३ ॥
यो वां रथो नृपती अस्ति वोळ्हा त्रिवन्धुरो वसुमाँ उस्रयामा।
आ न एना नासत्योप यातमभि यद्वां विश्वप्स्न्यो जिगाति ॥ ४ ॥
युवं च्यवानं जरसोऽमुमुक्तं नि पेदव ऊहथुराशुमश्वम्।
निरंहसस्तमसः स्पर्तमत्रिं नि जाहुषं शिथिरे धातमन्तः ॥ ५ ॥
इयं मनीषा इयमश्विना गीरिमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम्।
इमा ब्रह्माणि युवयून्यग्मन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥

[७२] द्विसप्ततितमं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—अश्विनौ ॥ छन्दः—१-४ निचृत्त्रिष्टुप्;
५ विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

अथैकोनविंशो वर्गः ॥ १९ ॥

आ गोमता नासत्या रथेनाश्वावता पुरुश्चन्द्रेण यातम्।
अभि वां विश्वा नियुतः सचन्ते स्पार्हया श्रिया तन्वा शुभाना ॥ १ ॥
आ नो देवेभिरुप यातमर्वाक्सजोषसा नासत्या रथेन।
युवोर्हि नः सख्या पित्र्याणि समानो बन्धुरुत तस्य वित्तम् ॥ २ ॥
उदु स्तोमासो अश्विनोरबुध्रञ्जामि ब्रह्माण्युषसश्च देवीः।
आविवासन्रोदसी धिष्ण्येमे अच्छा विप्रो नासत्या विवक्ति ॥ ३ ॥
वि चेदुच्छन्त्यश्विना उषासः प्र वां ब्रह्माणि कारवो भरन्ते।
ऊर्ध्वं भानुं सविता देवो अश्रेद् बृहदग्नयः समिधा जरन्ते ॥ ४ ॥
आ पश्चातान्नासत्या पुरस्तादाश्विना यातमधरादुदक्तात्।
आ विश्वतः पाञ्चजन्येन राया यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

[७३] त्रिसप्ततितमं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—अश्विनौ ॥ छन्दः—१, ५ विराट्त्रिष्टुप्;
२-४ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

अथ विंशो वर्गः ॥ २० ॥

अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति स्तोमं देवयन्तो दधानाः।
पुरुदंसा पुरुतमा पुराजामर्त्या हवते अश्विना गीः ॥ १ ॥
न्यु प्रियो मनुषः सादि होता नासत्या यो यजते वन्दते च।
अश्नीतं मध्वो अश्विना उपाक आ वां वोचे विदथेषु प्रयस्वान् ॥ २ ॥
अहेम यज्ञं पथामुराणा इमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम्।
श्रुष्टीवेव प्रेषितो वामबोधि प्रति स्तोमैर्जरमाणो वसिष्ठः ॥ ३ ॥
उप त्या वह्नी गमतो विशं नो रक्षोहणा संभृता वीळुपाणी।
समन्धांस्यग्मत मत्सराणि मा नो मर्धिष्टमा गतं शिवेन ॥ ४ ॥

आ पश्चातान्नासत्या पुरस्तादाश्विना यातमधरादुदक्तात्।
आ विश्वतः पाञ्चजन्येन राया यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

[७४] चतुःसप्ततितमं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—अश्विनौ ॥ छन्दः—१, ३ निचृद्बृहती; २, ४, ६ आर्षीभुरिग्बृहती; ५ आर्षीबृहती ॥ स्वरः—मध्यमः ॥

अथैकविंशो वर्गः ॥ २१ ॥

इमा उ वां दिविष्टय उस्रा हवन्ते अश्विना ।
अयं वामह्वेऽवसे शचीवसू विशंविशं हि गच्छथः ॥ १ ॥
युवं चित्रं ददथुर्भोजनं नरा चोदेथां सूनृतावते ।
अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतं पिबतं सोम्यं मधु ॥ २ ॥
आ यातमुप भूषतं मध्वः पिबतमश्विना ।
दुग्धं पयो वृषणा जेन्यावसू मा नो मर्धिष्टमा गतम् ॥ ३ ॥
अश्वासो ये वामुप दाशुषो गृहं युवां दीयन्ति बिभ्रतः ।
मक्षूयुभिर्नरा हयेभिरश्विना देवा यातमस्मयू ॥ ४ ॥
अधा ह यन्तो अश्विना पृक्षः सचन्त सूरयः ।
ता यंसतो मघवद्भ्यो ध्रुवं यशश्छर्दिरस्मभ्यं नासत्या ॥ ५ ॥
प्र ये ययुरवृकासो रथाइव नृपातारो जनानाम् ।
उत स्वेन शवसा शूशुवुर्नर उत क्षियन्ति सुक्षितिम् ॥ ६ ॥

[७५] पञ्चसप्ततितमं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—उषाः ॥ छन्दः—१, ८ निचृत्त्रिष्टुप्; २, ४, ५ विराट्त्रिष्टुप्; ३ आर्चीस्वराट्त्रिष्टुप्; ६, ७ आर्षीत्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

अथ द्वाविंशो वर्गः ॥ २२ ॥

व्यु१षा आवो दिविजा ऋतेनाविष्कृण्वाना महिमानमागात् ।
अप द्रुहस्तम आवरजुष्टमङ्गिरस्तमा पथ्या अजीगः ॥ १ ॥
महे नो अद्य सुविताय बोध्युषो महे सौभगाय प्र यन्धि ।
चित्रं रयिं यशसं धेह्यस्मे देवि मर्तेषु मानुषि श्रवस्युम् ॥ २ ॥

एते त्ये भानवो दर्शतायाश्चित्रा उषसो अमृतास आगुः ।
जनयन्तो दैव्यानि व्रतान्यापृणन्तो अन्तरिक्षा व्यस्थुः ॥ ३ ॥
एषा स्या युजाना पराकात्पञ्च क्षितीः परि सद्यो जिगाति ।
अभिपश्यन्ती वयुना जनानां दिवो दुहिता भुवनस्य पत्नी ॥ ४ ॥
वाजिनीवती सूर्यस्य योषा चित्रामघा राय ईशे वसूनाम् ।
ऋषिष्टुता जरयन्ती मघोन्युषा उच्छति वह्निभिर्गृणाना ॥ ५ ॥
प्रति द्युतानामरुषासो अश्वाश्चित्रा अदृश्रन्नुषसं वहन्तः ।
याति शुभ्रा विश्वपिशा रथेन दधाति रत्नं विधते जनाय ॥ ६ ॥
सत्या सत्येभिर्महती महद्भिर्देवी देवेभिर्यजता यजत्रैः ।
रुजद् दृळ्हानि दददुस्रियाणां प्रति गाव उषसं वावशन्त ॥ ७ ॥
नू नो गोमद्वीरवद्धेहि रत्नमुषो अश्वावत्पुरुभोजो अस्मे ।
मा नो बर्हिः पुरुषता निदे कर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ८ ॥

[७६] षट्सप्ततितमं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—उषाः ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप्; २ विराट्त्रिष्टुप्; ३-७ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

अथ त्रयोविंशो वर्गः ॥ २३ ॥

उदु ज्योतिरमृतं विश्वजन्यं विश्वानरः सविता देवो अश्रेत् ।
क्रत्वा देवानामजनिष्ट चक्षुराविरकर्भुवनं विश्वमुषाः ॥ १ ॥
प्र मे पन्था देवयाना अदृश्रन्नमर्धन्तो वसुभिरिष्कृतासः ।
अभूदु केतुरुषसः पुरस्तात्प्रतीच्यागादधि हर्म्येभ्यः ॥ २ ॥
तानीदहानि बहुलान्यासन्या प्राचीनमुदिता सूर्यस्य ।
यतः परि जारइवाचरन्त्युषो ददृक्षे न पुनर्यतीव ॥ ३ ॥
त इद्देवानां सधमाद आसन्नृतावानः कवयः पूर्व्यासः ।
गूळ्हं ज्योतिः पितरो अन्वविन्दन्त्सत्यमन्त्रा अजनयन्नुषासम् ॥ ४ ॥
समान ऊर्वे अधि संगतासः सं जानते न यतन्ते मिथस्ते ।
ते देवानां न मिनन्ति व्रतान्यमर्धन्तो वसुभिर्यादमानाः ॥ ५ ॥

प्रति त्वा स्तोमैरीळते वसिष्ठा उषर्बुधः सुभगे तुष्टुवांसः।
गवां नेत्री वाजपत्नी न उच्छोषः सुजाते प्रथमा जरस्व॥ ६॥
एषा नेत्री राधसः सूनृतानामुषा उच्छन्ती रिभ्यते वसिष्ठैः।
दीर्घश्रुतं रयिमस्मे दधाना यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥ ७॥

[७७] सप्तसप्ततितमं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः॥ देवता—उषाः॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप्; २-५ निचृत्त्रिष्टुप्;
६ विराट्त्रिष्टुप्॥ स्वरः धैवतः॥

अथ चतुर्विंशो वर्गः॥ २४॥

उपो रुरुचे युवतिर्न योषा विश्वं जीवं प्रसुवन्ती चरायै।
अभूदग्निः समिधे मानुषाणामकर्ज्योतिर्बाधमाना तमांसि॥ १॥
विश्वं प्रतीची सप्रथा उदस्थाद्रुशद्वासो बिभ्रती शुक्रमश्वैत्।
हिरण्यवर्णा सुदृशीकसंदृग्गवां माता नेत्र्यह्नामरोचि॥ २॥
देवानां चक्षुः सुभगा वहन्ती श्वेतं नयन्ती सुदृशीकमश्वम्।
उषा अदर्शि रश्मिभिर्व्यक्ता चित्रामघा विश्वमनु प्रभूता॥ ३॥
अन्तिवामा दूरे अमित्रमुच्छोर्वीं गव्यूतिमभयं कृधी नः।
यावय द्वेष आ भरा वसूनि चोदय राधो गृणते मघोनि॥ ४॥
अस्मे श्रेष्ठेभिर्भानुभिर्वि भाह्युषो देवि प्रतिरन्ती न आयुः।
इषं च नो दधती विश्ववारे गोमदश्वावद्रथवच्च राधः॥ ५॥
यां त्वा दिवो दुहितर्वर्धयन्त्युषः सुजाते मतिभिर्वसिष्ठाः।
सास्मासु धा रयिमृष्वं बृहन्तं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥ ६॥

[७८] अष्टसप्ततितमं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः॥ देवता—उषाः॥ छन्दः—१, २ त्रिष्टुप्; ३, ४ निचृत्त्रिष्टुप्;
५ विराट्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

अथ पञ्चविंशो वर्गः॥ २५॥

प्रति केतवः प्रथमा अदृश्रन्नूर्ध्वा अस्या अञ्जयो वि श्रयन्ते।
उषो अर्वाचा बृहता रथेन ज्योतिष्मता वाममस्मभ्यं वक्षि॥ १॥

प्रति षीमग्निर्जरते समिद्धः प्रति विप्रासो मतिभिर्गृणन्तः।
उषा याति ज्योतिषा बाधमाना विश्वा तमांसि दुरिताप देवी॥ २॥
एता उ त्याः प्रत्यदृश्रन्पुरस्ताज्ज्योतिर्यच्छन्तीरुषसो विभातीः।
अजीजनन्त्सूर्यं यज्ञमग्निमपाचीनं तमो अगादजुष्टम्॥ ३॥
अचेति दिवो दुहिता मघोनी विश्वे पश्यन्त्युषसं विभातीम्।
आस्थाद्रथं स्वधया युज्यमानमा यमश्वासः सुयुजो वहन्ति॥ ४॥
प्रति त्वाद्य सुमनसो बुधन्तास्माकासो मघवानो वयं च।
तिल्विलायध्वमुषसो विभातीर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥ ५॥

[७९] एकोनाशीतितमं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः॥ देवता—उषाः॥ छन्दः—१, ४ निचृत्त्रिष्टुप्; २, ३ विराट्त्रिष्टुप्;
५ आर्चीस्वराट्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

अथ षड्विंशो वर्गः॥ २६॥

व्यु१षा आवः पथ्या३ जनानां पञ्च क्षितीर्मानुषीर्बोधयन्ती।
सुसन्दृग्भिरुक्षभिर्भानुमश्रेद्वि सूर्यो रोदसी चक्षसावः॥ १॥
व्यञ्जते दिवो अन्तेष्वक्तून्विशो न युक्ता उषसो यतन्ते।
सं ते गावस्तम आ वर्तयन्ति ज्योतिर्यच्छन्ति सवितेव बाहू॥ २॥
अभूदुषा इन्द्रतमा मघोन्यजीजनत्सुविताय श्रवांसि।
वि दिवो देवी दुहिता दधात्यङ्गिरस्तमा सुकृते वसूनि॥ ३॥
तावदुषो राधो अस्मभ्यं रास्व यावत्स्तोतृभ्यो अरदो गृणाना।
यां त्वा जज्ञुर्वृषभस्या रवेण वि दृळ्हस्य दुरो अद्रेरौर्णोः॥ ४॥
देवंदेवं राधसे चोदयन्त्यस्मद्र्यक्सूनृता ईरयन्ती।
व्युच्छन्ती नः सनये धियो धा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥ ५॥

[८०] अशीतितमं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः॥ देवता—उषाः॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप्; २ विराट्त्रिष्टुप्;
३ निचृत्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

अथ सप्तविंशो वर्गः ॥ २७ ॥

प्रति स्तोमेभिरुषसं वसिष्ठा गीर्भिर्विप्रासः प्रथमा अबुध्रन् ।
विवर्तयन्तीं रजसी समन्ते आविष्कृण्वतीं भुवनानि विश्वा ॥ १ ॥
एषा स्या नव्यमायुर्दधाना गूढ्वी तमो ज्योतिषोषा अबोधि ।
अग्र एति युवतिरह्रयाणा प्राचिकितत्सूर्यं यज्ञमग्निम् ॥ २ ॥
अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासो वीरवतीः सदमुच्छन्तु भद्राः ।
घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥

इति पञ्चमाष्टके पञ्चमोऽध्यायः ॥

अथ पञ्चमाष्टके षष्ठोऽध्यायः

[८१] एकाशीतितमं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—उषाः ॥ छन्दः—१ विराड्बृहती; २ भुरिग्बृहती; ३ आर्षीबृहती; ४, ६ आर्षीभुरिग्बृहती; ५ निचृद्बृहती ॥ स्वरः—मध्यमः ॥

अथ प्रथमो वर्गः ॥ १ ॥

प्रत्यु अदर्श्यायत्यु१च्छन्ती दुहिता दिवः ।
अपो महि व्ययति चक्षसे तमो ज्योतिष्कृणोति सूनरी ॥ १ ॥
उदुस्रियाः सृजते सूर्यः सचाँ उद्यन्नक्षत्रमर्चिवत् ।
तवेदुषो व्युषि सूर्यस्य च सं भक्तेन गमेमहि ॥ २ ॥
प्रति त्वा दुहितर्दिव उषो जीरा अभुत्स्महि ।
या वहसि पुरु स्पार्हं वनन्वति रत्नं न दाशुषे मयः ॥ ३ ॥
उच्छन्ती या कृणोषि मंहना महि प्रख्यै देवि स्वर्दृशे ।
तस्यास्ते रत्नभाज ईमहे वयं स्याम मातुर्न सूनवः ॥ ४ ॥
तच्चित्रं राध आ भरोषो यद्दीर्घश्रुत्तमम् ।
यत्ते दिवो दुहितर्मर्तभोजनं तद्रास्व भुनजामहै ॥ ५ ॥
श्रवः सूरिभ्यो अमृतं वसुत्वनं वाजाँ अस्मभ्यं गोमतः ।
चोदयित्री मघोनः सूनृतावत्युषा उच्छदप स्रिधः ॥ ६ ॥

[८२] द्व्यशीतितमं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—इन्द्रावरुणौ ॥ छन्दः—१, २, ६, ७, ९ निचृज्जगती; ३ आर्चीभुरिग्जगती; ४, ५, १० आर्षीविराड्जगती; ८ विराड्जगती ॥ स्वरः—निषादः ॥

अथ द्वितीयो वर्गः ॥ २ ॥

इन्द्रावरुणा युवमध्वराय नो विशे जनाय महि शर्म यच्छतम् ।
दीर्घप्रयज्युमति यो वनुष्यति वयं जयेम पृतनासु दूढ्यः ॥ १ ॥
सम्राळन्यः स्वराळन्य उच्यते वां महान्ताविन्द्रावरुणा महावसू ।
विश्वे देवासः परमे व्योमनि सं वामोजो वृषणा सं बलं दधुः ॥ २ ॥
अन्वपां खान्यतृन्तमोजसा सूर्यमैरयतं दिवि प्रभुम् ।
इन्द्रावरुणा मदे अस्य मायिनोऽपिन्वतमपितः पिन्वतं धियः ॥ ३ ॥
युवामिद्युत्सु पृतनासु वह्नयो युवां क्षेमस्य प्रसवे मितज्ञवः ।
ईशाना वस्व उभयस्य कारव इन्द्रावरुणा सुहवा हवामहे ॥ ४ ॥
इन्द्रावरुणा यदिमानि चक्रथुर्विश्वा जातानि भुवनस्य मज्मना ।
क्षेमेण मित्रो वरुणं दुवस्यति मरुद्भिरुग्रः शुभमन्य ईयते ॥ ५ ॥

अथ तृतीयो वर्गः ॥ ३ ॥

महे शुल्काय वरुणस्य नु त्विष ओजो मिमाते ध्रुवमस्य यत्स्वम् ।
अजामिमन्यः श्नथयन्तमातिरद्दभ्रेभिरन्यः प्र वृणोति भूयसः ॥ ६ ॥
न तमंहो न दुरितानि मर्त्यमिन्द्रावरुणा न तपः कुतश्चन ।
यस्य देवा गच्छथो वीथो अध्वरं न तं मर्तस्य नशते परिह्वृतिः ॥ ७ ॥
अर्वाङ् नरा दैव्येनावसा गतं शृणुतं हवं यदि मे जुजोषथः ।
युवोर्हि सख्यमुत वा यदाप्यं मार्डीकमिन्द्रावरुणा नि यच्छतम् ॥ ८ ॥
अस्माकमिन्द्रावरुणा भरेभरे पुरोयोधा भवतं कृष्ट्योजसा ।
यद्वां हवन्त उभये अध स्पृधि नरस्तोकस्य तनयस्य सातिषु ॥ ९ ॥
अस्मे इन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा द्युम्नं यच्छन्तु महि शर्म सप्रथः ।
अवध्रं ज्योतिरदितेर्ऋतावृधो देवस्य श्लोकं सवितुर्मनामहे ॥ १० ॥

इयमिन्द्रं वरुणमष्ट मे गीः प्रावत्तोके तनये तूतुजाना।
सुरत्नासो देववीतिं गमेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

[८६] षडशीतितमं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—वरुणः ॥ छन्दः—१, ३-५, ८ निचृत्त्रिष्टुप्; २, ७ विराट्त्रिष्टुप्; ६ आर्षीत्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

अथाष्टमो वर्गः ॥ ८ ॥

धीरा त्वस्य महिना जनूंषि वि यस्तस्तम्भ रोदसी चिदुर्वी।
प्र नाकमृष्वं नुनुदे बृहन्तं द्विता नक्षत्रं पप्रथच्च भूम ॥ १ ॥
उत स्वया तन्वा३ सं वदे तत्कदा न्व१न्तर्वरुणे भुवानि।
किं मे हव्यमहृणानो जुषेत कदा मृळीकं सुमना अभि ख्यम् ॥ २ ॥
पृच्छे तदेनो वरुण दिदृक्षूपो एमि चिकितुषो विपृच्छम्।
समानमिन्मे कवयश्चिदाहुरयं ह तुभ्यं वरुणो हृणीते ॥ ३ ॥
किमागं आस वरुण ज्येष्ठं यत्स्तोतारं जिघांससि सखायम्।
प्र तन्मे वोचो दूळभ स्वधावोऽव त्वानेना नमसा तुर इयाम् ॥ ४ ॥
अव द्रुग्धानि पित्र्या सृजा नोऽव या वयं चकृमा तनूभिः।
अव राजन्पशुतृपं न तायुं सृजा वत्सं न दाम्नो वसिष्ठम् ॥ ५ ॥
न स स्वो दक्षो वरुण ध्रुतिः सा सुरा मन्युर्विभीदको अचित्तिः।
अस्ति ज्यायान्कनीयस उपारे स्वप्नश्चनेदनृतस्य प्रयोता ॥ ६ ॥
अरं दासो न मीळ्हुषे कराण्यहं देवाय भूर्णयेऽनागाः।
अचेतयदचितो देवो अर्यो गृत्सं राये कवितरो जुनाति ॥ ७ ॥
अयं सु तुभ्यं वरुण स्वधावो हृदि स्तोम उपश्रितश्चिदस्तु।
शं नः क्षेमे शमु योगे नो अस्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ८ ॥

[८७] सप्ताशीतितमं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—वरुणः ॥ छन्दः—१ विराट्त्रिष्टुप्; २, ३, ५ आर्षीत्रिष्टुप्; ४, ६, ७ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

अथ नवमो वर्गः ॥ ९ ॥

रदत्पथो वरुणः सूर्याय प्राणांसि समुद्रिया नदीनाम्।
सर्गो न सृष्टो अर्वतीर्ऋतायञ्चकार महीरवनीरहभ्यः ॥ १ ॥
आत्मा ते वातो रज आ नवीनोत्पशुर्न भूर्णिर्यवसे ससवान्।
अन्तर्मही बृहती रोदसीमे विश्वा ते धाम वरुण प्रियाणि ॥ २ ॥
परि स्पशो वरुणस्य स्मदिष्टा उभे पश्यन्ति रोदसी सुमेके।
ऋतावानः कवयो यज्ञधीराः प्रचेतसो य इषयन्त मन्म ॥ ३ ॥
उवाच मे वरुणो मेधिराय त्रिः सप्त नामाघ्न्या बिभर्ति।
विद्वान्पदस्य गुह्या न वोचद्युगाय विप्र उपराय शिक्षन् ॥ ४ ॥
तिस्रो द्यावो निहिता अन्तरस्मिन्तिस्रो भूमीरुपराः षड्विधानाः।
गृत्सो राजा वरुणश्चक्र एतं दिवि प्रेङ्खं हिरण्ययं शुभे कम् ॥ ५ ॥
अव सिन्धुं वरुणो द्यौरिव स्थाद्द्रप्सो न श्वेतो मृगस्तुविष्मान्।
गम्भीरशंसो रजसो विमानः सुपारक्षत्रः सतो अस्य राजा ॥ ६ ॥
यो मृळयाति चक्रुषे चिदागो वयं स्याम वरुणे अनागाः।
अनु व्रतान्यदितेर्ऋधन्तो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

[८८] अष्टाशीतितमं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—वरुणः ॥ छन्दः—१-३, ६ निचृत्त्रिष्टुप्; ४, ५, ७ विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

अथ दशमो वर्गः ॥ १० ॥

प्र शुन्ध्युवं वरुणाय प्रेष्ठां मतिं वसिष्ठ मीळ्हुषे भरस्व।
य ईमर्वाञ्चं करते यजत्रं सहस्रामघं वृषणं बृहन्तम् ॥ १ ॥
अधा न्वस्य संदृशं जगन्वानग्नेरनीकं वरुणस्य मंसि।
स्व१र्यदश्मन्नधिपा उ अन्धोऽभि मा वपुर्दृशये निनीयात् ॥ २ ॥
आ यद्रुहाव वरुणश्च नावं प्र यत्समुद्रमीरयाव मध्यम्।
अधि यदपां स्नुभिश्चराव प्र प्रेङ्ख ईङ्खयावहै शुभे कम् ॥ ३ ॥

वसिष्ठं ह वरुणो नाव्याधादृषिं चकार स्वपा महोभिः ।
स्तोतारं विप्रः सुदिनत्वे अह्नां यान्नु द्यावस्ततनन्यादुषासः ॥ ४ ॥
क्व१ त्यानि नौ सख्या बभूवुः सचावहे यदवृकं पुरा चित् ।
बृहन्तं मानं वरुण स्वधावः सहस्रद्वारं जगमा गृहं ते ॥ ५ ॥
य आपिर्नित्यो वरुण प्रियः सन्त्वामागांसि कृणवत्सखा ते ।
मा त एनस्वन्तो यक्षिन्भुजेम यन्धि ष्मा विप्रः स्तुवते वरूथम् ॥ ६ ॥
ध्रुवासु त्वासु क्षितिषु क्षियन्तो व्य१स्मत्पाशं वरुणो मुमोचत् ।
अवो वन्वाना अदितेरुपस्थाद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

[८९] एकोननवतितमं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—वरुणः ॥ छन्दः—१-४ आर्षीगायत्री;
५ पादनिचृज्जगती ॥ स्वरः—१-४ षड्जः; ५ निषादः ॥

अथैकादशो वर्गः ॥ ११ ॥

मो षु वरुण मृन्मयं गृहं राजन्नहं गमम् । मृळा सुक्षत्र मृळय ॥ १ ॥
यदेमि प्रस्फुरन्निव दृतिर्न ध्मातो अद्रिवः । मृळा सुक्षत्र मृळय ॥ २ ॥
क्रत्वः समह दीनता प्रतीपं जगमा शुचे । मृळा सुक्षत्र मृळय ॥ ३ ॥
अपां मध्ये तस्थिवांसं तृष्णाविदज्जरितारम् । मृळा सुक्षत्र मृळय ॥ ४ ॥
यत्किं चेदं वरुण दैव्ये जनेऽभिद्रोहं मनुष्या३श्चरामसि ।
अचित्ती यत्तव धर्मा युयोपिम मा नस्तस्मादेनसो देव रीरिषः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽनुवाकः

[९०] नवतितमं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—१-४ वायुः; ५-७ इन्द्रवायू ॥ छन्दः—१, २,
७ विराट्त्रिष्टुप्; ३ त्रिष्टुप्; ४-६ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

अथ द्वादशो वर्गः ॥ १२ ॥

प्र वीरया शुचयो दद्रिरे वामध्वर्युभिर्मधुमन्तः सुतासः ।
वह वायो नियुतो याह्यच्छा पिबा सुतस्यान्धसो मदाय ॥ १ ॥
ईशानाय प्रहुतिं यस्त आनट् शुचिं सोमं शुचिपास्तुभ्यं वायो ।
कृणोषि तं मर्त्येषु प्रशस्तं जातोजातो जायते वाज्यस्य ॥ २ ॥

राये नु यं जज्ञतू रोदसीमे राये देवी धिषणा धाति देवम् ।
अध वायुं नियुतः सश्चत स्वा उत श्वेतं वसुधितिं निरेके ॥ ३ ॥
उच्छन्नुषसः सुदिना अरिप्रा उरु ज्योतिर्विविदुर्दीध्यानाः ।
गव्यं चिदूर्वमुशिजो वि वव्रुस्तेषामनु प्रदिवः सस्रुरापः ॥ ४ ॥
ते सत्येन मनसा दीध्यानाः स्वेन युक्तासः क्रतुना वहन्ति ।
इन्द्रवायू वीरवाहं रथं वामीशानयोरभि पृक्षः सचन्ते ॥ ५ ॥
ईशानासो ये दधते स्वर्णो गोभिरश्वेभिर्वसुभिर्हिरण्यैः ।
इन्द्रवायू सूरयो विश्वमायुरर्वद्भिर्वीरैः पृतनासु सह्युः ॥ ६ ॥
अर्वन्तो न श्रवसो भिक्षमाणा इन्द्रवायू सुष्टुतिभिर्वसिष्ठाः ।
वाजयन्तः स्ववसे हुवेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

[९१] एकनवतितमं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—१, ३ वायुः; २, ४-७ इन्द्रवायू ॥ छन्दः—१, ४, ७ विराट्
त्रिष्टुप्; २, ५, ६ आर्षीत्रिष्टुप्; ३ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

अथ त्रयोदशो वर्गः ॥ १३ ॥

कुविदङ्ग नमसा ये वृधासः पुरा देवा अनवद्यास आसन् ।
ते वायवे मनवे बाधितायावासयन्नुषसं सूर्येण ॥ १ ॥
उशन्ता दूता न दभाय गोपा मासश्च पाथः शरदश्च पूर्वीः ।
इन्द्रवायू सुष्टुतिर्वामियाना मार्डीकमीट्टे सुवितं च नव्यम् ॥ २ ॥
पीवोअन्नाँ रयिवृधः सुमेधाः श्वेतः सिषक्ति नियुतामभिश्रीः ।
ते वायवे समनसो वि तस्थुर्विश्वेन्नरः स्वपत्यानि चक्रुः ॥ ३ ॥
यावत्तरस्तन्वो३ यावदोजो यावन्नरश्चक्षसा दीध्यानाः ।
शुचिं सोमं शुचिपा पातमस्मे इन्द्रवायू सदतं बर्हिरेदम् ॥ ४ ॥
नियुवाना नियुतः स्पार्हवीरा इन्द्रवायू सरथं यातमर्वाक् ।
इदं हि वां प्रभृतं मध्वो अग्रमध प्रीणाना वि मुमुक्तमस्मे ॥ ५ ॥
या वां शतं नियुतो याः सहस्रमिन्द्रवायू विश्ववाराः सचन्ते ।
आभिर्यातं सुविदत्राभिरर्वाक्पातं नरा प्रतिभृतस्य मध्वः ॥ ६ ॥

अर्व॑न्तो॒ न श्रव॑सो॒ भिक्ष॑माणा इन्द्रवा॒यू सु॑ष्टु॒तिभि॒र्वसि॑ष्ठाः ।
वा॒ज॒यन्तः॒ स्वव॑से हुवेम यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥ ७ ॥

[९२] द्विनवतितमं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—१, ३-५ वायुः; २ इन्द्रवायू ॥ छन्दः—१ निचृत्त्रिष्टुप्;
२-४ विराट्त्रिष्टुप्; ५ आर्षीत्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

अथ चतुर्दशो वर्गः ॥ १४ ॥

आ वा॑यो भूष शुचिपा॒ उप॑ नः स॒हस्रं॑ ते नि॒युतो॑ विश्ववार ।
उपो॑ ते॒ अन्धो॒ मद्य॑मयामि॒ यस्य॑ देव दधि॒षे पू॑र्व॒पेय॑म् ॥ १ ॥
प्र सोता॑ जी॒रो अ॑ध्व॒रेष्व॑स्था॒त्सोम॒मिन्द्रा॑य वा॒यवे॒ पिब॑ध्यै ।
प्र यद्वां॒ मध्वो॑ अग्रि॒यं भर॑न्त्यध्व॒र्यवो॑ देव॒यन्तः॒ शची॑भिः ॥ २ ॥
प्र या॒भिर्यासि॑ दा॒श्वांस॒मच्छा॑ नि॒युद्भि॑र्वायवि॒ष्टये॑ दुरो॒णे ।
नि नो॑ र॒यिं सु॒भोज॑सं युवस्व॒ नि वी॒रं गव्य॒मश्व्यं॑ च॒ राधः॑ ॥ ३ ॥
ये वा॒यव॑ इन्द्र॒माद॑नास॒ आदे॑वासो नि॒तोश॑नासो अ॒र्यः ।
घ्नन्तो॑ वृ॒त्राणि॑ सू॒रिभिः॑ ष्याम सास॒ह्वांसो॑ यु॒धा नृभि॑र॒मित्रा॑न् ॥ ४ ॥
आ नो॑ नि॒युद्भिः॑ श॒तिनी॑भिरध्व॒रं स॑ह॒स्रिणी॑भि॒रुप॑ याहि य॒ज्ञम् ।
वायो॑ अ॒स्मिन्त्सव॑ने मादयस्व यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥ ५ ॥

[९३] त्रिनवतितमं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—इन्द्राग्नी ॥ छन्दः—१, ८ निचृत्त्रिष्टुप्; २, ५ आर्षीत्रिष्टुप्;
३, ४, ६, ७ विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

अथ पञ्चदशो वर्गः ॥ १५ ॥

शुचिं॑ नु स्तोमं॒ नव॑जातम॒द्येन्द्रा॑ग्नी वृत्रहणा जु॒षेथा॑म् ।
उ॒भा हि वां॑ सु॒हवा॒ जोह॑वीमि॒ ता वाजं॑ स॒द्य उ॑श॒ते धेष्ठा॑ ॥ १ ॥
ता सा॑न॒सी श॑वसाना॒ हि भू॒तं सा॑कं॒वृधा॒ शव॑सा शूशु॒वांसा॑ ।
क्षय॑न्तौ रा॒यो यव॑सस्य॒ भूरेः॑ पृ॒ङ्क्तं वाज॑स्य॒ स्थवि॑रस्य॒ घृष्वेः॑ ॥ २ ॥
उपो॑ ह॒ यद्वि॒दथं॑ वा॒जिनो॒ गुर्धी॒भिर्विप्राः॒ प्रम॑तिमि॒च्छमा॑नाः ।
अर्व॑न्तो॒ न काष्ठां॒ नक्ष॑माणा इन्द्रा॒ग्नी जोहु॑वतो॒ नर॒स्ते ॥ ३ ॥

गी॒र्भिर्विप्रः॒ प्रम॑तिमि॒च्छमा॑न॒ ईट्टे॑ र॒यिं य॒शसं॑ पूर्व॒भाज॑म् ।
इन्द्रा॑ग्नी वृत्रहणा सुवज्रा॒ प्र नो॒ नव्ये॑भिस्तिरतं दे॒ष्णैः ॥ ४ ॥
सं यन्म॒ही मिथ॑ती स्पर्ध॑माने तनू॒रुचा॒ शूर॑साता॒ यतै॑ते ।
अदे॑वयुं वि॒दथे॑ देव॒युभिः॑ स॒त्रा ह॑तं सोम॒सुता॒ जने॑न ॥ ५ ॥

अथ षोडशो वर्गः ॥ १६ ॥

इ॒मामु॒ षु सोम॑सुति॒मुप॑ न॒ एन्द्रा॑ग्नी सौमन॒साय॑ यातम् ।
नू चि॒द्धि परि॑म॒म्नाथे॑ अ॒स्माना वां॒ शश्व॑द्भि॒र्ववृतीय॒ वाजैः॑ ॥ ६ ॥
सो अ॑ग्न ए॒ना नम॑सा॒ समि॑द्धो॒ऽच्छा॑ मि॒त्रं वरु॑ण॒मिन्द्रं॑ वोचेः ।
यत्सी॒माग॑श्चकृ॒मा तत्सु मृ॑ळ॒ तद॑र्य॒मादि॑तिः शिश्रथन्तु ॥ ७ ॥
ए॒ता अ॑ग्न आशुषा॒णास॑ इ॒ष्टीर्यु॒वोः सचा॒भ्य॑श्याम॒ वाजा॑न् ।
मेन्द्रो॑ नो॒ विष्णु॑र्म॒रुतः॒ परि॑ ख्यन्यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥ ८ ॥

[९४] चतुर्नवतितमं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—इन्द्राग्नी ॥ छन्दः—१, ३, ८, १० आर्षीनिचृद्गायत्री;
२, ४-७, ९, ११ आर्षीगायत्री; १२ आर्षीनिचृदनुष्टुप् ॥
स्वरः—१-११ षड्जः; १२ गान्धारः ॥

अथ सप्तदशो वर्गः ॥ १७ ॥

इ॒यं वा॑म॒स्य मन्म॑न॒ इन्द्रा॑ग्नी पू॒र्व्यस्तु॑तिः । अ॒भ्राद् वृ॒ष्टिरि॑वाजनि ॥ १ ॥
शृ॒णु॒तं ज॑रि॒तुर्हव॒मिन्द्रा॑ग्नी॒ वन॑तं॒ गिरः॑ । ई॒शा॒ना पि॑प्यतं॒ धियः॑ ॥ २ ॥
मा पा॑प॒त्वाय॑ नो न॒रेन्द्रा॑ग्नी॒ माभिश॑स्तये । मा नो॑ रीरधतं नि॒दे ॥ ३ ॥
इन्द्रे॑ अ॒ग्ना नमो॑ बृ॒हत्सु॑वृ॒क्तिमेर॑यामहे । धि॒या धेना॑ अव॒स्यवः॑ ॥ ४ ॥
ता हि शश्व॑न्त॒ ईळ॑त इ॒त्था विप्रा॑स ऊ॒तये॑ । स॒बाधो॒ वाज॑सातये ॥ ५ ॥
ता वां॑ गी॒र्भिर्वि॑प॒न्यवः॒ प्रय॑स्वन्तो हवामहे । मे॒धसा॑ता सनि॒ष्यवः॑ ॥ ६ ॥

अथाष्टादशो वर्गः ॥ १८ ॥

इन्द्रा॑ग्नी॒ अव॒सा ग॑त॒मस्मभ्यं॑ चर्षणीसहा । मा नो॑ दुः॒शंस॑ ईशत ॥ ७ ॥
मा कस्य॑ नो॒ अर॑रुषो धू॒र्तिः प्रण॒ङ्मर्त्य॑स्य । इन्द्रा॑ग्नी॒ शर्म॑ यच्छतम् ॥ ८ ॥
गोम॒द्धिर॑ण्यव॒द्वसु॒ यद्वा॒मश्वा॑व॒दीम॑हे । इन्द्रा॑ग्नी॒ तद्व॑नेमहि ॥ ९ ॥

यत्सोम आ सुते नर इन्द्राग्नी अजोहवुः। सप्तीवन्ता सपर्यवः ॥ १० ॥
उक्थेभिर्वृत्रहन्तमा या मन्दाना चिदा गिरा। आङ्गूषैराविवासतः ॥ ११ ॥
ताविद्दुःशंसं मर्त्यं दुर्विद्वांसं रक्षस्विनम् ।
आभोगं हन्मना हतमुदधिं हन्मना हतम् ॥ १२ ॥

[९५] पञ्चनवतितमं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—१, २, ४-६ सरस्वती; ३ सरस्वान् ॥ छन्दः—१ पादनिचृत् त्रिष्टुप्; २, ५, ६ आर्षीत्रिष्टुप्; ३, ४ विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

अथैकोनविंशो वर्गः ॥ १९ ॥

प्र क्षोदसा धायसा सस्र एषा सरस्वती धरुणमायसी पूः।
प्रबाबधाना रथ्येव याति विश्वा अपो महिना सिन्धुरन्याः ॥ १ ॥
एकाचेतत्सरस्वती नदीनां शुचिर्यती गिरिभ्य आ समुद्रात्।
रायश्चेतन्ती भुवनस्य भूरेर्घृतं पयो दुदुहे नाहुषाय ॥ २ ॥
स वावृधे नर्यो योषणासु वृषा शिशुर्वृषभो यज्ञियासु।
स वाजिनं मघवद्भ्यो दधाति वि सातये तन्वं मामृजीत ॥ ३ ॥
उत स्या नः सरस्वती जुषाणोप श्रवत्सुभगा यज्ञे अस्मिन्।
मितज्ञुभिर्नमस्यैरियाना राया युजा चिदुत्तरा सखिभ्यः ॥ ४ ॥
इमा जुह्वाना युष्मदा नमोभिः प्रति स्तोमं सरस्वति जुषस्व।
तव शर्मन्प्रियतमे दधाना उप स्थेयाम शरणं न वृक्षम् ॥ ५ ॥
अयमु ते सरस्वति वसिष्ठो द्वारावृतस्य सुभगे व्यावः।
वर्ध शुभ्रे स्तुवते रासि वाजान्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥

[९६] षण्णवतितमं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—१-३ सरस्वती; ४-६ सरस्वान् ॥ छन्दः—१ आर्चीभुरिग्बृहती; २ आर्षीभुरिग्बृहतीः ३ निचृत्पङ्क्तिः; ४, ५ निचृद्गायत्री; ६ आर्षीगायत्री ॥ स्वरः—१, २ मध्यमः; ३ पञ्चमः; ४-६ षड्जः ॥

अथ विंशो वर्गः ॥ २० ॥

बृहदु गायिषे वचोऽसुर्या नदीनाम् ।
सरस्वतीमिन्महया सुवृक्तिभिः स्तोमैर्वसिष्ठ रोदसी ॥ १ ॥

उभे यत्ते महिना शुभ्रे अन्धसी अधिक्षियन्ति पूरवः ।
सा नो बोध्यवित्री मरुत्सखा चोद राधो मघोनाम् ॥ २ ॥
भद्रमिद्भद्रा कृणवत्सरस्वत्यकवारी चेतति वाजिनीवती ।
गृणाना जमदग्निवत्स्तुवाना च वसिष्ठवत् ॥ ३ ॥
जनीयन्तो न्वग्रवः पुत्रीयन्तः सुदानवः। सरस्वन्तं हवामहे ॥ ४ ॥
ये ते सरस्व ऊर्मयो मधुमन्तो घृतश्चुतः। तेभिर्नोऽविता भव ॥ ५ ॥
पीपिवांसं सरस्वतः स्तनं यो विश्वदर्शतः। भक्षीमहि प्रजामिषम् ॥ ६ ॥

[९७] सप्तनवतितमं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—१ इन्द्रः; २, ४-८ बृहस्पतिः; ३, ९ इन्द्राब्रह्मणस्पती; १० इन्द्राबृहस्पती ॥ छन्दः—१ आर्षीत्रिष्टुप्; २, ४, ७ विराट्त्रिष्टुप्; ३, ५, ६, ८-१० निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

अथैकविंशो वर्गः ॥ २१ ॥

यज्ञे दिवो नृषदने पृथिव्या नरो यत्र देवयवो मदन्ति।
इन्द्राय यत्र सवनानि सुन्वे गमन्मदाय प्रथमं वयश्च ॥ १ ॥
आ दैव्या वृणीमहेऽवांसि बृहस्पतिर्नो मह आ सखायः।
यथा भवेम मीळ्हुषे अनागा यो नो दाता परावतः पितेव ॥ २ ॥
तमु ज्येष्ठं नमसा हविर्भिः सुशेवं ब्रह्मणस्पतिं गृणीषे।
इन्द्रं श्लोको महि दैव्यः सिषक्तु यो ब्रह्मणो देवकृतस्य राजा ॥ ३ ॥
स आ नो योनिं सदतु प्रेष्ठो बृहस्पतिर्विश्ववारो यो अस्ति।
कामो रायः सुवीर्यस्य तं दात्पर्षन्नो अति सश्चतो अरिष्टान् ॥ ४ ॥
तमा नो अर्कममृताय जुष्टमिमे धासुरमृतासः पुराजाः।
शुचिक्रन्दं यजतं पस्त्यानां बृहस्पतिमनर्वाणं हुवेम ॥ ५ ॥

अथ द्वाविंशो वर्गः ॥ २२ ॥

तं शग्मासो अरुषासो अश्वा बृहस्पतिं सहवाहो वहन्ति।
सहश्चिद्यस्य नीलवत्सधस्थं नभो न रूपमरुषं वसानाः ॥ ६ ॥

स हि शुचिः शतपत्रः स शुन्ध्युर्हिरण्यवाशीरिषिरः स्वर्षाः।
बृहस्पतिः स स्वावेश ऋष्वः पुरू सखिभ्य आसुतिं करिष्ठः ॥ ७ ॥
देवी देवस्य रोदसी जनित्री बृहस्पतिं वावृधतुर्महित्वा।
दक्षाय्याय दक्षता सखायः करद् ब्रह्मणे सुतरा सुगाधा ॥ ८ ॥
इयं वां ब्रह्मणस्पते सुवृक्तिर्ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे अकारि।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधीर्जजस्तमर्यो वनुषामरातीः ॥ ९ ॥
बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य।
धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ १० ॥

[९८] अष्टनवतितमं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—१-६ इन्द्रः; ७ इन्द्राबृहस्पती ॥ छन्दः—१, २, ६, ७ निचृत्त्रिष्टुप्; ३ विराट्त्रिष्टुप्; ४, ५ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

अथ त्रयविंशो वर्गः ॥ २३ ॥

अध्वर्यवोऽरुणं दुग्धमंशुं जुहोतन वृषभाय क्षितीनाम्।
गौराद्वेदीयाँ अवपानमिन्द्रो विश्वाहेद्याति सुतसोममिच्छन् ॥ १ ॥
यद्दधिषे प्रदिवि चार्वन्नं दिवेदिवे पीतिमिदस्य वक्षि।
उत हृदोत मनसा जुषाण उशन्निन्द्र प्रस्थितान्पाहि सोमान् ॥ २ ॥
जज्ञानः सोमं सहसे पपाथ प्र ते माता महिमानमुवाच।
एन्द्र पप्राथोर्वन्तरिक्षं युधा देवेभ्यो वरिवश्चकर्थ ॥ ३ ॥
यद्योधया महतो मन्यमानान्त्साक्षाम तान्बाहुभिः शाशदानान्।
यद्वा नृभिर्वृत इन्द्राभियुध्यास्तं त्वयाजिं सौश्रवसं जयेम ॥ ४ ॥
प्रेन्द्रस्य वोचं प्रथमा कृतानि प्र नूतना मघवा या चकार।
यदेददेवीरसहिष्ट माया अथाभवत्केवलः सोमो अस्य ॥ ५ ॥
तवेदं विश्वमभितः पशव्यं यत्पश्यसि चक्षसा सूर्यस्य।
गवामसि गोपतिरेक इन्द्र भक्षीमहि ते प्रयतस्य वस्वः ॥ ६ ॥
बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य।
धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

[९९] नवनवतितमं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—१-३, ७ विष्णुः; ४-६ इन्द्राविष्णू ॥ छन्दः—१, ६ विराट्त्रिष्टुप्; २, ३ त्रिष्टुप्; ४, ५, ७ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

अथ चतुर्विंशो वर्गः ॥ २४ ॥

परो मात्रया तन्वा वृधान न ते महित्वमन्वश्नुवन्ति।
उभे ते विद्म रजसी पृथिव्या विष्णो देव त्वं परमस्य वित्से ॥ १ ॥
न ते विष्णो जायमानो न जातो देव महिम्नः परमन्तमाप।
उदस्तभ्ना नाकमृष्वं बृहन्तं दाधर्थ प्राचीं ककुभं पृथिव्याः ॥ २ ॥
इरावती धेनुमती हि भूतं सूयवसिनी मनुषे दशस्या।
व्यस्तभ्ना रोदसी विष्णवेते दाधर्थ पृथिवीमभितो मयूखैः ॥ ३ ॥
उरुं यज्ञाय चक्रथुरु लोकं जनयन्ता सूर्यमुषासमग्निम्।
दासस्य चिद् वृषशिप्रस्य माया जघ्नथुर्नरा पृतनाज्येषु ॥ ४ ॥
इन्द्राविष्णू दृंहिताः शम्बरस्य नव पुरो नवतिं च श्नथिष्टम्।
शतं वर्चिनः सहस्रं च साकं हथो अप्रत्यसुरस्य वीरान् ॥ ५ ॥
इयं मनीषा बृहती बृहन्तोरुक्रमा तवसा वर्धयन्ती।
ररे वां स्तोमं विदथेषु विष्णो पिन्वतमिषो वृजनेष्विन्द्र ॥ ६ ॥
वषट् ते विष्णवास आ कृणोमि तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम्।
वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

[१००] शततमं सूक्तम्

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—विष्णुः ॥ छन्दः—१, २, ५-७ निचृत्त्रिष्टुप्; ३ विराट्त्रिष्टुप्; ४ आर्षीत्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

अथ पञ्चविंशो वर्गः ॥ २५ ॥

नू मर्तो दयते सनिष्यन्यो विष्णव उरुगायाय दाशत्।
प्र यः सत्राचा मनसा यजात एतावन्तं नर्यमाविवासात् ॥ १ ॥
त्वं विष्णो सुमतिं विश्वजन्यामप्रयुतामेवयावो मतिं दाः।
पर्चो यथा नः सुवितस्य भूरेरश्वावतः पुरुश्चन्द्रस्य रायः ॥ २ ॥